छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में परम्परा और प्रयोग

डॉ. इंदु जोशी

TZP Publication

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में परम्परा और प्रयोग

लेखक : डॉ. इंदु जोशी

प्रकाशक : TZP Publication House

शब्दांकन : एस्केज़

5c|52 Vishnu Garden Extn, New Delhi- 110018 Regd under MSME

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its author.

© Copyright, 2023 Shivaansh Tiwari

First Edition : 2023

Price – INR

Chayavadottar Hindi Kavya me Parampara aur Prayog

Dr. Indu Joshi

ISBN :

Criticism Book

© Shivaansh Tiwari

Composed by : Eskays

The opinions/ contents expressed in this book are solely of the author and do not represent the opinions/ standings/ Thoughts of Publisher.

यह पुस्तक साहित्यिक जीवन के पथ प्रदर्शक

मेरे गुरु श्री नवल

(कलकत्ता महानगर के श्रेष्ठ रचनाकार)

को समर्पित है।

अनुक्रमणिका

अध्याय– १		**पृष्ठ संख्या**
“क”	छायावादोत्तर शब्द का अभिप्राय	1
	छायावादोत्तर काल की परिसीमा और उसके सामाजिक आधार की खोज	2
“ख”	छायावादोत्तर काल और साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन की दृष्टि एवं उसका लोक-तात्विक आधार	6
अध्याय - २		
	साहित्य में परम्परा	12
	परम्परा और प्रयोग	14
	परम्पराओं की निरन्तरता का अनुशीलन	21
	साहित्य में परम्परा और प्रयोग की धारणा	22
	संस्कृति और साहित्य	25
	समाज का सांस्कृतिक आधार	27
	साहित्य	28
	छायावादोत्तर काव्य	31
	मानवतावादी दृष्टि	33
	साहित्य बोध और प्रयोग	37
	मध्ययुगीनता व आधुनिकता	38
	मूल्यांकन के प्राचीन और नवीन निकष	40
	इतिहास दृष्टि में प्रयोग या नवीनता	42
	छायावादोत्तर काल के समाज और साहित्य का सम्बन्ध	44
	आधार और अधिरचना	50

	विचारधारा और साहित्य	52
	परम्परा का मूल्यांकन	54
	परम्परा और आधुनिकता	56
	हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, यथार्थवाद, कलावाद में पारस्परिक स्पर्धामूलक संघर्ष	58
	प्रगतिशील आन्दोलन का विघटन	62
	व्यक्तिवादी रचना दृष्टि के रूप में प्रयोगवाद और नई कविता	67
	छायावाद और प्रयोगवाद कड़ी के रूप में	69
	प्रगतिवाद का स्वरूप विश्लेषण	70
	सन् १९५१ के बाद छायावादोत्तर छायावादी संस्कार की कविता	74
	प्रगतिवादी कविता	78
	नागार्जुन	79
	केदारनाथ अग्रवाल	86
	त्रिलोचन शास्त्री	92
	मुक्तिबोध	98
	तार सप्तक का मूल्यांकन	107
	दूसरा सप्तक	111
	तीसरा सप्तक	115
	प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय	119
अध्याय - ३		
	छायावादोत्तर हिन्दी कविता मूल्यांकन के आधार और इतिहास	
“क”	छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा	138

	माखनलाल चतुर्वेदी	139
	बालकृष्ण शर्मा “नवीन”	146
	सोहनलाल द्विवेदी	152
	मैथिलीशरण गुप्त	153
	सियाराम शरण गुप्त	159
	दिनकर	162
	श्याम नारायण पाण्डेय	170
	केदारनाथ मिश्र ‘प्रभात’	171
“ख”	उत्तर छायावाद - रोमांटिक भावबोध के कवि	
	बच्चन	172
	नरेन्द्र शर्मा	180
	अंचल	186
	आरसी प्रसाद सिंह	192
	जानकी बल्लभ शास्त्री	193
	गोपाल सिंह नेपाली	195
	शम्भूनाथ सिंह	196
अध्याय - ४		
	प्रयोगवादी काव्यधारा	208
	नकेनवाद के कवि और उनकी रचनायें	211
अध्याय - ५		
	छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में परम्परा और प्रयोग के विविध रूपों का अन्वेषण	
क –	पन्त, निराला - छायावादी संस्थान के कवि	226
ख –	रोमांटिक काव्यधारा	249
ग –	प्रगीत कविता	270

घ –	राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा	294
अध्याय - ६		
	प्रयोगवाद और नई कविता	
	परम्परा से पार्थक्य और प्रयोग के विविध आयाम	329
	क्षणवाद	333
	लघुमानवता	337
	परिवेश और प्रतीति	341
अध्याय - ७		
	समकालीन हिन्दी कविता	346
	युयुत्सावाद	350
	अस्वीकृत कविता	356
	अकविता	358
	बीट कविता	364
	नवगीत	368
अध्याय - ८		
	छायावादोत्तर काव्य की भाषा-परम्परा और प्रयोग	376
अध्याय - ९		
	उपसंहार	388

प्रस्तावना

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का अनुशीलन अध्येताओं ने कई कोणों से किया है। छायावाद की परवर्ती काव्यधाराओं की संवेदना और शिल्प का मूल्यांकन अनेक शोध प्रबन्धों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। निःसंदेह नयी मूल्यांकन दृष्टि हिन्दी के विचार साहित्य को समृद्ध करने में सहायक सिद्ध हुई है। किन्तु पूर्ववर्ती शोध प्रबंधों का ऋण पक्ष यह है कि छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की प्रयोगधर्मी प्रकृति का विवेचन करते समय सजातीय काव्य परम्परा से उसके सम्बन्ध और उस सम्बन्ध की महत्ता को अपेक्षित गुरूता नहीं दी गयी। यह महत्वपूर्ण बिन्दु पूर्ववर्ती प्रबन्धों में अविवेचित रह गया है कि सारे रचनात्मक प्रयोग परम्परा से वैसे ही सम्पूक्त होते हैं जैसे पुनर्नवा प्रकृति को कायम रख कर ही कोई परम्परा दीर्घजीवी हो सकती है। युगधर्म के अनुरूप नवता के प्रति जहाँ औदार्य का अभाव होता है वहाँ की सर्जनशील ऊर्जा क्षीण हो जाती है। विविध सरणियों में सुदीर्घ यात्रा करने वाली भारतीय संस्कृति का स्वकीय वैशिष्ट्य है उसका औदार्य उसकी पुनर्नवा प्रकृति कविता की सुदीर्घ परम्परा, हिन्दी कविता की अजस्र प्रवाहमान धारा का भी यही रहस्य है। कविता में विभिन्न युगों में होने वाले प्रयोग कविता की प्राणवत्ता को समृद्ध करने में कृती प्रयत्न हैं, परम्परा को गतिशील करने के रचनात्मक प्रयत्न पूर्ववर्ती शोध-प्रबंधों में इस दृष्टि का अभाव रहा है। परिणामतः परम्परा और प्रयोग को एक दूसरे का विरोधी मानकर छायावादोत्तर काव्य पर भी विचार किया गया। कविता का नया प्रतिमान भी इस विचार दृष्टि को सही दृष्टि नहीं मान सकता। मेरी दृष्टि पूर्ववर्ती अनुसंधान और विवेचन की इस सीमा के प्रति सचेत रही है मेरे सामने विवेचन की वे भ्रांतिवादी दृष्टियाँ भी चुनौती के रूप में खड़ी थी जिनके अनुसार वर्तमान के लिए पुरातन पूर्णतः अप्रासंगिक होता है या फिर कविता के नये प्रयोग "बैठे ठाले का धंधा " और क्षीण प्रतिभा का प्रमाण मान लिया जाता है न केवल छायावादोत्तर बल्कि पूर्ववर्ती काव्य और छायावादी काव्य धारा के सम्यक् मूल्यांकन में इन भ्रांतिवादी दृष्टियों ने समय-समय पर अवरोध उत्पन्न किया है। छायावाद सम्बन्धी आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल के विवेचन और छायावादोत्तर हिन्दी काव्य सम्बन्ध विशेषतः नयी कविता सम्बन्धी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के विवेचन को विधायक मुद्रा का महत्व समझते हुए भी इस ऐतिहासिक सच्चाई को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि इन शीर्षस्थ आचार्यों की कठोर अनुशासन मुद्रा ने प्रयोगधर्मी सृजनशीलता को विचलित कर देने वाला आघात दिया था। परवर्ती काल में उन आचार्यों के उन्मत काव्य विवेक और सहृदयता ने नये प्रयोग के मूल में स्थित प्रातिभ शक्ति को अपेक्षित महत्व दिया था। उनकी भूमिका आचार्यों की गरिमा के अनुरूप विवेकाश्रित भूमिका थी।

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परागत पुष्ट काव्य चेतना के प्रतीक पुरुष हैं। अज्ञेय कविता में प्रयोग के ज्येष्ठ पुरस्कर्ता के रूप में विख्यात है। दोनों की काव्य प्रवृति और संवेदना तथा शिल्प व्यक्तिगत - प्रवृति में भिन्नता थी । किन्तु सच्चाई यह भी है कि आधुनिक हिंदी कवियों में मैथिलीशरण गुप्त अज्ञेय के सर्वाधिक प्रिय कवि थे अपनी प्रयोगधर्मिता और नवता के आग्रह के चलते छायावादोत्तर काल के सर्वाधिक विवादास्पद रचनाकार अज्ञेय रहे। किन्तु अज्ञेय की प्रातिभ शक्ति के कायल परम्पराप्रिय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त थे। परम्पराप्रिय मैथिलीशरण गुप्त की कविता परम्परा मितिक होते हुए भी नयी संचेतना से संपृक्त है और कविता में नये प्रयोग के अप्रतिम पुरस्कर्ता प्रवक्ता अज्ञेय की कविता में परम्परा का विरोध नहीं है। वे सिर्फ यही आग्रह करते हैं कि परम्परा मेरे लिए कोई पोटली नहीं जिसे माये पर रखा जाए यानी अज्ञेय परम्परा से अपनी रचना के लिए अपेक्षित पोषण ग्रहण करते हैं। अतिशय उदारतापूर्वक परम्परा में अंधी प्रतिबद्धता और अविवेक प्रसूत प्रयोग रचनाधर्म के लिए विधायक नहीं होता। छायावादोत्तर हिन्दी कविता के सन्दर्भ में इसी विवेक दृष्टि को स्पष्ट करने की मैने चेष्टा की है।

प्रयोग के लिये प्रयोग का प्रच्छन्न आग्रह लेकर समय-समय पर होने वाले काव्यान्दोलनों की लघुता पर टिप्पणी करते उस हीन मान्यता पर भी मैंने यथास्थान दृष्टिपात किया है जो जातीय स्वाभिमान के आग्रह से जड़ता को कविता के माध्यम से कायम रखना चाहती है। निःसंदेह राष्ट्रीय काव्यधारा

की सांस्कृतिक चेतना छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की प्रमुख धारा के रूप में अक्षुण्ण रही, इसपर प्रस्तुत प्रबन्ध में यथास्थान विचार किया गया है। यह संकेत करना भी मुझे आवश्यक लगा कि राष्ट्रीय काव्य का अर्थ पूर्वपुरुषों का नाम जप और देश के भूगोल का स्थूल स्तवन नहीं होता। कविता एक ऊंची विधा है और इस विधा की आवश्यक शर्तों की उपेक्षा कर न तो परम्परा को समृद्ध करना सम्भव है और न प्रयोग को प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। अनेक काव्य आन्दोलनों की अधोगति का कारण रचना धर्म से जुड़े गम्भीर दायित्व की उपेक्षा ही है। जीवन और रचना के क्षेत्र में जैसे परम्परा का सजीव और गतिशील पक्ष आवश्यक है, वैसे ही विवेक सम्मत प्रयोग ही विधायक हो सकता है। छायावादोत्तर विशेषतः स्वाधीन भारत की कविता में प्रयोग के आत्यन्तिक आग्रह के चलते कविता में वैयक्तिक उलझनें इतनी बढ़ गयी कि कविता के रसज भी कविता से उदासीन होने लगे। ऐसे प्रयोग के चलते कविता का सामाजिक प्रयोजन क्षीण हुआ एवं इस दुर्बलता से अच्छे-अच्छे लोगों की रचना प्रभावित हो गयी। जो विचारों में समष्टि के आग्रही थे, उनकी कविता को भी वैयक्तिक प्रयोग की दुरुहता के कारण लोक सम्मान नहीं मिला। दरअसल सम्प्रेषण की समस्या साहित्य चिन्तकों के सामने शीर्ष महत्व की समस्या बन गयी।

नयी कविता के मुहावरे पुराने संस्कार के लिये दुरुह और प्रतिकूल थे। आरंभ में छायावादी काव्य के सामने भी सम्प्रेषण की समस्या थी। अज्ञेय, मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह के सन्दर्भ में छायावादोत्तर कविता की प्रयोगमूलक जटिलता की समस्या पर मैने विचार किया है। कविता के सामाजिक प्रयोजन को कविता से जुड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न मानकर छायावादोत्तर काव्य के सन्दर्भ में विनम्रतापूर्वक यह संकेत किया है कि राजनीतिक विचार से कवि की प्रतिबद्धता, राष्ट्रीयता के नाम पर परम्परा प्रियता का आत्यन्तिक आग्रह और विश्व मानुष चेतना से जुड़ने की उत्कट इच्छा ने कवियों को समष्टि की सही संवेदना और समाज के यथार्थ परिदृश्य से एक अंश तक दूर कर दिया। अपनी निजी संवेदना और अनुभूति की प्रेरणा से नहीं, विजातीय संकेत से काव्य रचना होने लगी कवि की निजी सत्ता दुर्बल हुई और सामाजिक प्रयोजन को भी अपेक्षित गुरुता नहीं दी जा सकी। एक ही संवेदना को एक

ही मुहावरे में अधिकांश रचनाकार प्रस्तुत करने लगे। नयी कविता के इस पक्ष पर उन्होंने भी टिप्पणी की जो नयी शिल्प संवेदना के समर्थक थे।

नयी कविता के सन्दर्भ में इस ऐतिहासिक घटना को भी स्मरण रखना जरूरी है कि हिन्दी की नयी कविता को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान मिला। प्रयोगधर्मी कविता के प्रतीक पुरुष अज्ञेय की कविता नॉबेल पुरस्कार के लिये प्रस्तावित हुई, चेकोस्लोवाकिया के अन्तर्राष्ट्रीय काव्य पुरस्कार और भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित हुई। प्रस्तुत प्रबन्ध में अज्ञेय को छायावादोत्तर काव्य में प्रयोग के प्रतीक पुरुष के रूप में और मैथिलीशरण गुप्त को ज्येष्ठ श्रेष्ठ परम्परावादी कवि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्य के सन्दर्भ में माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, श्यामनारायण पाण्डेय और केदारनाथ मिश्र प्रभात के सांस्कृतिक अवदान को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। समकालीन हिन्दी कविता के सन्दर्भ में प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नयी कविता साठोतरी हिंदी कविता और नवगीत की प्रयोगमूलक विशिष्टता का मूल्यांकन किया गया है।

देखा जाय तो गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की संवेदना के ही कवि थे माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर और प्रभात पुरा आख्यान को उपजीव्य बनाकर सोहन लाल द्विवेदी ने राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध किया हल्दीघाटी और जौहर के कवि पं. श्यामनारायण पाण्डेय छायावादोत्तर काल में रचना विरत ही रहे किन्तु पुरानी कृतियों के आधार पर उनकी लोकप्रियता विशेष रचना समाज में बनी रही। अपने उद्देश्य की सीमा को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय काव्यधारा के इन विशिष्ट कवियों के ऐतिहासिक महत्व का संकेत भर देना मैंने उचित समझा है।

प्रयोग वैविध्य छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का प्रमुख वैशिष्ट्य है। मैंने इन प्रयोगभितिक काव्य आन्दोलनों की सीमा शक्ति पर विशेष चर्चा की है। शिल्प और संवेदना के विविध प्रयोग इस काल खण्ड में हुए, चर्चा का विषय बने हिन्दी कविता की प्रयोगमूलक प्रवृति विविधता उर्वरता का प्रमाण है और इसमें परम्परा विच्छिन्नता भी मिलती है । मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास

किया है कि प्रातिभ उष्मा प्रस्तुत प्रयोग से हिन्दी कविता का स्तर समृद्ध हुआ है एवं गतिशील परम्परा के तहत किए प्रयोग काव्य विधा के महत्व को किसी भी रूप में खंडित नहीं करता और न तो परम्परा से पूरी तरह विच्छिन्न है। इसके ठीक विपरीत जहाँ नवता के अनावश्यक आग्रह से प्रयोग के लिये प्रयोग का औद्धत्य है वहाँ प्रयोग का तीखापन तो दिखाई पड़ता है किन्तु कविता कमजोर हो जाती है या कविता के नाम पर भाषा की विक्षोभक मुद्रा भर दिखाई पड़ती है। इस काल की कविता एक सीमित अर्थ में समय के यथार्थ की अभिव्यक्ति मानी जा सकती है किन्तु कवि दायित्व भी होता है जिससे उदासीन होने पर कवि की रचनात्मक भूमिका और कविता का उद्देश्य क्षीण हो जाता है। साठोत्तरी पीढ़ी में अभाव दिखाई पड़ता है।

इस विषय को लेकर मेरे समक्ष कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ मि उपस्थित हुई थी। चूंकि मैंने १९७० तक की अवधि को ही इस विषय के अन्तर्गत रखा है जबकि छायावादोत्तर काल की धारा को अब तक माना जा सकता है। किन्तु साठोत्तरी कविता के पश्चात् हमें कोई नया आन्दोलन नहीं मिलता, केवल नवगीत की विधा ही सक्रिय परिलक्षित होती है और या जनवादी चेतना की कविताएँ। इस विषय की अपनी सीमाएं हैं। विषय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उसे एक कलेवर में बाँधने का प्रयत्न है सम्पूर्ण विषय नौ अध्याय में विभक्त है।

अंत में में गुरुवर विष्णुकांत शास्त्री, डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, कवि नवल, कवि छविनाथ मिश्र के प्रति श्रद्धा निवेदित करती हूँ जिनके बहुमूल्य सुझाव के कारण यह कार्य संपन्न हुआ। मेरे छात्र मोहित शर्मा के प्रति आभार जिसके उत्कट उत्साह और लगन से इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हुआ ।

अध्याय– १

"क"

छायावादोत्तर शब्द का अभिप्राय

जब हम इस शब्द की तात्विक व्याख्या करते हैं तो इसका आशय छायावाद की अनुवर्ती तथा परवर्ती चेतना से है। कोई भी धारा या तो क्रमागत धारा में रूपांतर कर उत्पन्न होती है या वह एकदम विच्छिन्न होकर परिवर्तन का रुख अपनाती है। रुपांतरण और परिवर्तन इन दोनों में पम्परा और प्रयोग अन्तर्भूत है। परम्परा काल सातत्य के समानान्तर सांस्कृतिक-यात्रा का दस्तावेज है जिससे प्रभाव ग्रहण करने के उपरान्त सर्जक वर्तमान को व्यापक और उन्नत करता है। प्रयोग एक समसामयिक आवश्यकता है जो परम्परागत उच्छिष्ट से मुक्त होकर युग-बोध से सम्पृक्त कर हमारी चेतना को अधिक जागरुक और सक्रिय करता है। परम्परा का स्वीकार मनुष्य की आवश्यकता है ताकि अनुभव और चिंतन व्यापक फलक पर प्रसारित होकर सही दृष्टि और सही समझ का प्रवर्तन करने में सफलीभूत हों। छायावादोत्तर काव्य की सापेक्षता में हम देखते हैं कि छायावाद की अतिशय काल्पनिक उड़ान, वायवी अशरीरी अपार्थिव प्रेम की अभिव्यंजना, ललित कोमल वक्र भंगिमा, आध्यात्मिक सांस्कृतिक ऊँचाइयों में नये का प्रवर्तन असंभव दृष्टिगोचर हो रहा था। मानों यहाँ आकर जीवंत काव्य की धारा स्वत: अपनी जड़, निष्प्रभ पड़ती चेतना के विरुद्ध आगे बढ़कर उठ खड़ी होना चाहती थी जिससे सजीव और सप्राण तत्वों में निहित प्रगति को नैरन्तर्य मिल सके। दूसरी ओर देश की बदलती परिस्थिति की असहनीय और दुर्दमनीय स्थितियों ने मनुष्य की चेतना को भीतर तक आहत कर डाला। आस्था और विश्वास के मूल्य जीवन के चरमराते मूल्यों के सामने दुर्बल पड़ गये। वास्तविक और नगण्य सत्य से साक्षात्कार करती आत्मा गगन विहारिणी न होकर धरती की कंकरीली पथरीली जमीं पर उतर आई। इन दो वैषम्यों के बीच से स्वयं छायावाद के प्रवर्तक पंत और निराला ने बाहर निकलकर नयी यथार्थ चेतना को अंगीकार किया क्योंकि अब छायावाद की भावप्रवणता समय की बदलती परिस्थितियों की वस्तुवादी काव्यधारा का संवहन करने में प्रतिकूल दिखाई दे रही थी। फलत: नयी संवेदना, नये जीवन परिवेश, नयी स्थितियों में जन्म लेने वाली

छायावादोत्तर काव्यधारा का प्रादुर्भाव इसी नयी प्रतिक्रिया की पृष्ठभूमि में हुआ। छायावादोत्तर काव्य किसी एक विशेष धारा का अनुयायी नहीं है। इसमें कई प्रवृत्तियाँ सम्माहित है यथा उत्तर छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नकेनवाद, नई कविता और समकालीन हिन्दी कविता। इस युग में नवीन साहित्यिक प्रयोग, युगबोध और तात्कालिक मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह है। उसकी पृष्ठभूमि में हम देखते हैं कि उत्तरछायावाद और राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता अपनी परम्परा की अनुचेतना का विकास है। उत्तरछायावाद की धारा छायावाद के तत्वों से प्रभावित होने के उपरान्त भी अपनी प्रगाढ़ अनुभूतियों के प्रयोग से एक स्वतन्त्र काव्यधारा का स्वरूप ग्रहण करती है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा अतीत और वर्तमान दोनों के प्रति जागरूक दृष्टिकोण अपनाकर उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही है। शेष बाकी प्रवृत्तियाँ नयी चेतना से अनुप्रेरित है जो परम्परा का निषेध करते हुए प्रयोग के द्वारा नये क्षितिजों का निर्माण करने का यत्न करती परिलक्षित होती है। अस्तु छायावादोत्तर शब्द से अभिप्राय एक ऐसी धारा से है जो परम्परा और प्रयोग की सही संगति का विकास है या वह एक ऐसा अथाह सागर है जहाँ कई नदियों का जल आकर एकत्रित है। यहाँ एकत्रित जलराशि का महत्व है, भिन्न-भिन्न नदियों के जल का नहीं।

छायावादोत्तर काल की परिसीमा और उसके सामाजिक आधार की खोज

किसी भी काल की परिसीमा निर्धारित करना अपने आप में एक विवादास्पद सवाल है कोई भी काव्य अपनी जातीय और ऐतिहासिक समृद्धि का संवाहक होता है। वह अपनी परम्परा के बोध से अग्रिम चेतना को प्रवाहयुक्त करता है। युग की सापेक्षता में जब कोई काव्य नये में प्रवेश करता है तो वह करवट लेती चेतना में अपनी पूर्ववर्ती धारा के क्षयी अंशों का उच्छेदन कर अग्रिम चरण की भूमिका तैयार करता है। वह मौलिक प्रतिभा और अतीत की सक्रियता दोनों का अन्वय प्रयोग से करता है प्रत्युत प्रयोग में प्रगति है, एक नैरन्तर्य है जो काल की सीमाओं को लाँघते हुए एक अनवरत क्रमबद्धता को बनाये रखता है। काल तो अखंड है, परम्परा भी शाश्वत नहीं है, प्रयोग भी अन्तिम सत्य नहीं फिर वे कौन सी विवशतायें हैं जो किसी भी प्रयोगधर्मी कलाकार को एक

निश्चित सीमा के पश्चात नये के निर्माण को मजबूर करती हैं। क्या सचमुच वह युग उसी सीमा में उपयोगी रहता है, परवर्ती काल में अनुपयोगी हो जाता है? या प्रबुद्ध कलाकार अपनी सुविधा से एक रेखा खींचता है, अपनी परिसमाप्ति को सहज भाव से स्वीकार लेता है। और नये को स्थान मिल जाता है। आशय यह है कि साहित्य की सकारात्मक धारा सदा ही जीवन और परिस्थिति के अनुकूल संशोधित और परिवर्तित होती रहती है। यदि वह इस प्रक्रिया का उल्लंघन करती है तो साहित्य के सही विकास के स्वरूप को कैसे समझा जा सकता है। साहित्य के विकास का दूसरा पक्ष युग के यथार्थ बिम्बों की पृष्ठभूमि भी निर्मित करता है। जो युग को परम्परा से भिन्न व्यक्तित्व प्रदान करती है। इस संधि स्थल पर ही युगचेत कलाकार अपनी परिसीमा को मान्य ठहराता है तथा अगले प्रगति के सोपान की दिशा निर्धारित करता है।

छायावादोत्तर काल की परिसीमा का निर्धारण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उसकी आरम्भिक तिथि का भी विश्लेषण करें। छायावादोत्तर काल की प्रारम्भिक तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वत्गण एकमत नहीं हैं। सभी ने कतिपय कृतियों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ लेखों के आधार पर १९३६ के आसपास के काल को ही इस काल का आरम्भ स्वीकार कर लिया है। परन्तु किसी काल के बीज अपने पूर्ववर्ती काव्य में निहित होते हैं जिनसे प्रेरित होकर वह अपनी पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। छायावाद के तत्वों का न तो विघटन ही हुआ था, ना ही पतन जैसा कि डॉ॰ देवराज उद्घोषणा करते हैं। सन् १९३० के आसपास सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति गुणात्मक परिवर्तन की इच्छुक थी क्योंकि आदर्श की सीमाओं में बंधकर श्वांस लेना अब दुष्कर तथा अतीव कठिन था। अतएव सन १९३० के राजनीतिक सामाजिक चेतना के ऐतिहासिक मोड़ ने सहज, सरल, प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति, वैयक्तिक सुख-दुःख से अनुरंजित अनुभूतियों की ओर स्वयं को मोड़ा पर उसकी पृष्ठभूमि में छायावादी तत्वों की परम्परा का निर्वाह था, निजी प्रगाढ़ अनुभूतियों के समाहार से एक नवीन स्वतन्त्र काव्य चेतना का आविर्भाव हुआ जिसे उत्तर छायावाद अथवा रोमांटिक भावबोध के कवि नाम से अभिहित किया गया। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल इसके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। मूलतः छायावादोत्तर काल का यहीं से आरम्भ होता है। इसी के समानान्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा परम्परा के उज्जवल और गौरवपूर्ण अतीत की परम्परा का समादार करते हुए, तीव्र व जटिल पड़ती स्थितियों से जूझकर सदा उत्कर्ष की ओर उन्मुख

रही। दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त आदि का योगदान अविस्मरणीय और दर्शनीय है। प्रगतिवाद सन १९३६ में पूर्ण प्रकाश में आया। एक सही दर्शन का आधार लेकर भी उसे सही ढंग से नहीं समझा गया एवं यह सिर्फ सिद्धान्त का शस्त्र बन गया। हालांकि इसी की एक शाखा प्रगतिशील धारा प्रगति की जमीं से जुड़कर लोकतात्विकता का आधार लेकर गत्योन्मुख हुई। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और मुक्तिबोध का अवदान प्रशंसनीय है। सन १९४२ में तार-सप्तक और प्रतीक पत्रिका के माध्यम से प्रयोग को साधन मानकर प्रयोगवाद ने परम्परा को अग्राह्य माना। इसी के समानान्तर नकेनवाद ने प्रयोग को साध्य रूप में स्वीकार कर अपने को प्रयोगवाद का प्रवर्तक घोषित किया। सन १९५३ में जीवन, परिवेश और विविध कोणों से आत्मसंघर्ष कर नया यथार्थ, नई अनुभूति में प्रकट हुआ, जो नई कविता की भूमि है। सन साठ के पश्चात् एक के बाद एक अंधाधुंध प्रयोग की बलवती प्रेरणा ने जातीय अस्मिता और संस्कृति की अवहेलना कर अभिनव प्रयोग को एक अनिवार्यता के रूप में ग्रहण किया, निजी स्थापना को स्थापित करने की कोशिश की। इन समस्त दीर्घ प्रयासों के पीछे समकालीन संकटग्रस्त स्थिति मूल कारण थी। वस्तुत: रचनाकार किसी युग की परिसीमा का निर्धारण युग की प्रवृत्तियों और कतिपय विशेष प्रमाणों के आधार पर करता है, हालांकि यह पर्याप्त कठिन कार्य है जिसपर सभी रचनाकारों का मत एक नहीं रहता, जो वाद-विवाद का कारण भी हो जाया करता है परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिये यह आवश्यक भी हो जाया करता है। अतएव हम छायावादोत्तर काल की परिसीमा १९७० का वर्ष स्वीकार करते हैं। कारण नवगीत तक साहित्य के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हुए, प्रयोग के द्वारा साहित्य के विकास की नई दृष्टियां अर्जित की गई।

छायावादोत्तर काल में एक नई समाजोन्मुखी साहित्य दृष्टि ग्रहण की गई। साहित्य और समाज को एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने के उपरान्त वर्तमान की समस्याओं, आगत की विकास की सम्भावनाओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया। छायावादोत्तर काल में चूंकि विविध धाराओं का समावेश है। अत: यहाँ विविध धाराओं के सन्दर्भ में समाजोन्मुख विकासशील दृष्टि को व्याख्यायित करने की कोशिश करेंगे। उत्तर-छायावाद की साहित्य चेतना में जर्जर, समाज की अतिवादी सीमा, सामाजिक प्रतिबन्धों के खिलाफ वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इस काल का

साहित्य छायावाद की आवरण प्रियता और आदर्श भावनाओं से मुक्त होकर वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्यक्ष, सपाट सीधी अभिव्यक्ति से जुड़ा, उसमें यथार्थवाद का विकास हुआ और व्यक्ति की अपनी समस्याओं पर टिकी समाज विरोधी भावना की अभिव्यक्ति हुई, आर्थिक संक्रान्ति और सामाजिक अंकुश के प्रतिकार के कारण साहित्य की नई धारणा का विकास हुआ। प्रगतिवाद युग में साहित्य के सन्दर्भ में एक सुनिश्चित समाजोन्मुख विकासशील दृष्टि अर्जित की गई, सामाजिक यथार्थ पर अवलम्बित नई चेतना में सर्वहारा वर्ग को विशेष महत्ता दी गई, जनसामान्य के यथार्थ बोध से साहित्य जुड़ा, समाज की प्रगति में उसे एक अनिवार्य माध्यम माना गया। यह साहित्य की नई समाजवादी धारणा थी। प्रयोगवाद युग में व्यक्ति की सुरक्षा अथवा व्यक्ति की स्वतंत्रता से साहित्यचेतना संपृक्त हुई परन्तु यह चेतना मध्यमवर्गीय जीवन और हृदय का ही यथार्थ चित्रांकन है जो सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अर्जन करती है, साहित्य को नये चिंतन से जोड़ती है। नई कविता के अन्तर्गत अपने परिवेश से सम्बद्ध जीवनानुभव ही काव्य अभिव्यक्ति का आधार है। सामाजिक वास्तविकताओं से अवगत साहित्यकार ने असलियत को जानते हुए भी अनुभूत भोगे यथार्थ को उद्घाटित किया है। समकालीन हिन्दी कविता में साहित्य समाज से असम्पृक्त होकर मात्र आक्रोश, विद्रोह को प्रश्रय देता है। खाद्य-संकट, बेरोजगारी, महंगाई, नेताओं के काले कारनामे विविध अमानुषिक व्यवहार, कुचक्रों के आघात ने साहित्य को जातीय संदर्भ और जातीय मूल्य के खिलाफ ध्वंस या विघटनकारी रूप को विकसित करने की शक्ति दी।

निष्कर्षत: छायावादोत्तर युग में विकसित इन विविध सोपानों से गुजरने के पश्चात् यह प्रकट होता है कि इस युग का साहित्य अपने समय की स्थितियों से प्रभावित होकर गतिशील है। कालविशेष में व्युत्पन्न विविध धाराओं ने युगसत्य की सापेक्षता में अनुभूति को ग्रहण किया है। उनके आधार पर साहित्य के विकास के सामाजिक आधार की खोज का प्रयत्न भी किया है। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मन्तव्य दर्शनीय है। आचार्य शुक्ल ने साहित्य को जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब स्वीकार किया है। यदि साहित्य जनता की चितवृत्ति का प्रतिबिंब है तो यह सच है कि चितवृत्ति समय के साथ परिवर्तित हो जाती है यह परिवर्तन साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन करता है। चूंकि साहित्य अपने प्रेरक तत्व समाज से प्राप्त करता है,

सामाजिक परिवर्तनों, घटनाओं और कारणों से प्रभावित होता है, अत: साहित्य का विकास समाजसापेक्ष होता है। किन्तु साहित्य सदैव समाज से ही प्रेरणा उपलब्ध नहीं करता। कभी-कभी समाज भी साहित्य से अनुप्रेरित होता है। 'साहित्य का विकास सामाजिक विकास की सापेक्षता में होता है लेकिन कई बार वह सामाजिक विकास की सीमाओं को छोड़ता हुआ आगे भी बढ़ जाता है। सामाजिक अंतर्वस्तु के विकास से साहित्य की अंतर्वस्तु भी परिवर्तित और विकसित होती है लेकिन दोनों में बराबर एकता और समानता अनिवार्य नहीं होती।' प्रगतिवाद ने जहाँ सामाजिक सापेक्षता में साहित्य का विकास देखा वहाँ प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन हिन्दी कविता ने नई दृष्टि के अनुरूप पुरानी धारणा में परिवर्तन किया। प्रगतिवाद साहित्य और समाज के बीच द्वन्द्वात्मक संबंध स्वीकार करता है और इतर विविध धारायें साहित्य को सिर्फ समाज से अनुस्यूत न मानकर भिन्न-भिन्न तत्वों, रूपों में बाँटकर अध्ययन करती है। इस प्रकार छायावादोत्तर युग में साहित्य के विकास के सामाजिक आधार की खोज नए विकास की संभावनाओं से समीकृत होकर की गई। यह केवल समाजसापेक्ष होकर साहित्य का अस्तित्व स्वीकार नहीं करती प्रत्युत परिवर्तित विविध आयामों के द्वारा भी विकसित होती है।

"ख"

छायावादोत्तर काल और साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन की दृष्टि एवं उसका लोक तात्विक आधार

काल विभाजन एक आवश्यक दृष्टि है। इससे साहित्य के स्वरूप में विकास, परिवर्तन के मूल कारण, प्रेरक उत्साहवर्द्धक शक्ति आदि का बोध होता है। आखिर क्यों? एक ही विशेष समय में एक से अधिक साहित्य प्रवृत्ति एक के पश्चात् एक के अनुक्रम में जन्म लेती है और समय की शिला पर अपने पग-चिन्ह छोड़ नये में पर्यवसित हो जाती है, तो कभी-कभी नयी अंर्तवस्तु के अनुरूप नये बोध परिवर्तन के द्वारा आकार ग्रहण करती है। इस प्रकार साहित्य का विकास पुराने और नये के सार्थक समन्वय द्वारा परिभाषित होता जाता है। यह परिभाषित करने की प्रवृत्ति ही काल विभाजन की आवश्यकता को बल देती है। काल विभाजन के अभाव में साहित्य के विकास को एक

अनवरत नैरन्तर्य रूप में समझ पाना भी कठिन हो जाता है। काल विभाजन की सही दृष्टि, सही मूल्यांकन की माँग करती है किन्तु जब हम विभिन्न आलोचकों की दृष्टियों का अन्वेषण करते हैं तो यह सत्य चरितार्थ होता है कि काल विभाजन को लेकर प्रत्येक साहित्यकार की निर्धारण दृष्टि में एक सहमति नहीं मिलती। अपनी चेष्टा, अपनी खोज के अनुसार कोई भी साहित्यकार एक ही काल के विभाजन के लिए भिन्न-भिन्न मतों की प्रस्तुति करता है परन्तु एक सुनिश्चित दृष्टि का उनमें नितान्त अभाव होता है।

छायावादोत्तर काल कविता का संक्रान्ति काल है। सन १९३० से लेकर सन १९७० तक का समय कविता के विभिन्न विकास का युग है। इस काल अवधि के काव्य साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। यथा: उत्तर छायावाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नकेनवाद, नई कविता और समकालीन हिन्दी कविता। इनमें किसी धारा में वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रसार है, किसी में राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रखर चेतना का आलोक विकीर्ण है, किसी में सामाजिकपक्ष मुखर है, किसी में प्रयोग का स्वीकार है, किसी में बौद्धिकता के प्रति आग्रह। हम पाते हैं कि उत्तरछायावाद और राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता अपनी परम्परा का अनुवर्ती विकास है। शेष धारायें प्रयोग के रूप में प्रस्तुत काल में ही प्रादुर्भूत है। वे सभी समय के नाजुक और परिवर्तित हालात से प्रभावित है, उत्प्रेरित है, विकसित है।

युग की प्रमुख प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर छायावादोत्तर युग में काल विभाजन की दृष्टि को विश्लेषित करें तो इसे निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

१. उत्तर छायावाद या रोमांटिक भावधारा

२. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा

३. प्रगतिवाद

४. प्रयोगवाद

५. नकेनवाद

६. नई कविता

७. समकालीन हिन्दी कविता

उत्तरछायावाद या रोमांटिक भावधारा में रोमानी प्रवृत्ति की बहुलता है। यह छायावाद की चेतना का अनुवर्ती विकास है, अत: इसे उत्तर छायावाद नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें वैयक्तिक संवेदना की वृत्ति है, व्यक्तिगत प्रेम और सामाजिक वैषम्यों से उत्पन्न वेदना की अभिव्यक्ति है। यह प्रवृत्ति लौकिक, मूर्त और मांसल प्रेम का चित्रण करती है। छायावादी आदर्शप्रियता और आवरण के विरुद्ध ये कवि जिस सपाट और प्रत्यक्ष भंगिमा के साथ प्रकट हुए उसका कारण युगीन प्रभाव था जो कवि की रोमानी प्रवृत्ति को उभारने में विशेष सहायक रहा।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा उत्तर छायावाद के समानान्तर उन्मुख हुई। यह भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होकर द्विवेदी युग और छायावाद युग में विस्तारित होकर छायावादोत्तर काल में अधिक वेगवती और प्रखर हुई।

प्रगतिवाद का मूल स्वर समाजवादी जीवन मूल्यों की यथार्थ दृष्टि को लेकर अवतरित हुआ। समाज सापेक्ष यथार्थवादी काव्य साहित्य का सृजन इसका मूल उद्देश्य था उसने हिन्दी काव्य-साहित्य को एक नई चेतना से संपृक्त किया जिसे प्रगतिवाद की संज्ञा मिली।

प्रयोगवाद 'प्रयोग' को काव्य धर्म मानकर चला। उनके प्रयोग का उद्देश्य काव्य में नये सत्य का अन्वेषण करना था प्रयोगवाद ने कला पक्ष में रस की अप्रासंगिकता, सम्प्रेषण की समस्या, अनुभव के उलझे हुए रूपों का विशेष उल्लेख किया। प्रयोग पर विशेष जोर देने के कारण इसे प्रयोगवाद ही कहा गया।

इसके पश्चात नकेनवाद का आविर्भाव हुआ नकेनवाद के उद्घोषक तीन कवि जिनका नाम प्रथम संयुक्ताक्षर से प्रारम्भ होता है अर्थात कवियों के नाम से इस धारा का प्रवर्त्तन हुआ नलिन विलोचन शर्मा, केसरी, नरेश। इसके प्रवर्त्तक प्रयोग को साध्य मानते हैं। अपने को सही प्रयोगवादी कहलाने की कोशिश भी इन्होंने की।

नई कविता में नये भावबोध, नये मूल्य और नये शिल्प विधान की खोज को मान्यता मिली। लघुमानव और क्षण बोध की विशेष परिचर्चा हुई परिवेशगत सच्चाई को उभारने का प्रयास भी हुआ।

समकालीन हिन्दी कविता में कविता नये-नये प्रयोग से विकसित होती रही। विद्रोह, आक्रोश, संत्रास, बिखराव, विघटित मूल्यों से यह प्रभाव अर्जित करती रही इसमें

युयुत्सावाद, अस्वीकृत कविता, अकविता, बीट कविता और नवगीत विशेष ध्यातव्य है। कुछ साहित्यकारों ने समकालीन हिन्दी कविता को साठोत्तरी कविता का नाम भी दिया है।

उपर्युक्त विभाजन की दृष्टि से हम साहित्य के विकास, परिवर्तन के विभिन्न मोड़ का उचित मूल्यांकन कर सकते हैं। किस प्रकार साहित्य की परम्परा जर्जर और पुरानी पड़ती चेतना के बदले युगसापेक्ष के अनुकूल नये सत्य का अन्वेषण करती है। नये-नये विचारों के आत्मग्रहण की वृत्ति साहित्य के क्षेत्र में कुछ भी शाश्वत नहीं समझती परन्तु वह उपलब्ध सत्यों का सम्पूर्ण उच्छेदन भी नहीं करती। वह उपलब्ध में संशोधन, रूपांतरण और परिवर्तन की प्रक्रिया से अनुपलब्ध की ओर सदैव गतिमान रहती है। उपर्युक्त काल विभाजन कालक्रम के अनुसार युग की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर किया गया है। यह पाया जाता है कि प्रत्येक काल की प्रवृत्ति एक विशेष दृष्टि का ही प्रतिनिधित्व करती है। जिसमें युगीन परिस्थितियों का प्रभाव होता है। इसके अलावा एक प्रवृत्ति प्रकाश में आने के पश्चात एक परम्परा को जन्म देती है तब उसके तत्व परिवर्तित काल की चेतना में घुलमिल कर एक नई परम्परा को निर्मित करते हैं। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक विशेषता यह रही है कि एक विशिष्ट काल में किसी रूप में जो काव्यसरिता वेग से प्रवाहित हुई, वह यद्यपि आगे चलकर मंद गति से बहने लगी पर १०० वर्षों के हिन्दी साहित्य के इतिहास में हम उसे कभी सर्वथा सूखी नहीं पाते'१ छायावादोत्तर काल और साहित्य के इतिहास में काल विभाजन की दृष्टि में यही भावना सन्निहित है। उसके लोक तात्विक आधार का विश्लेषण करें तो यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत काल के प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने लोक तत्वों के ग्रहण की परंपरा को आगे बढ़ाया। निराला और पन्त ने 'वे किसान की नई बहू की आँखें', 'वह बुड्ढा', 'वे आँखें', 'देवी सरस्वती' आदि कविताओं में गाँव के उत्पीड़ित लोग और ग्राम की लोक संस्कृति से अतीव सुन्दर रूपायन किया था। सन १९३० के बाद उभरे किसान आंदोलन से प्रेरित होकर छायावादोत्तर काल के कवियों ने निराला और पन्त की परम्परा को ही आगे बढ़ाया। लोक संस्कृति, लोक जीवन की भावनाओं से तत्व ग्रहण कर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, रामविलास शर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, भगवतीचरण वर्मा प्रभृति कवियों ने अपनी संस्कृति को एक नया रूप दिया, एक नई अर्थवत्ता दी, एक नई दृष्टि दी। 'साहित्य के इतिहास का अगर जनता के भावों,

विचारों, आकांक्षाओं और कल्पनाओं का इतिहास बनाना है तो उसके लिए केवल शिष्ट साहित्य पर ही ध्यान केन्द्रित करना उचित नहीं है, जनजीवन में व्याप्त लोक साहित्य का अनुशीलन भी जरूरी है।'२ नागार्जुन ने मिथिला की लोक संस्कृति को अनेक स्थलों पर प्रकट किया है। विजयी के बंशीधर में सामंती उत्पीड़न को दर्शाया गया है।

"बैठे दालान पर धीर गंभीर शान्त
गौर-हरित मृदु मसृण यवाकुंर छींटते
आ गये ब्राह्मण आशीर्वाद देने
दक्षिण में इकन्नी अधन्नी लेने
जयंती मंगला कपालिनी भद्रकाली
दुर्गा शिवा धात्री क्षमा नमोऽस्तुते स्वाहा स्वधा
जय हो यजमान की बाबू बबुआन की।" ३

प्रवास काल में मिथिलावासी कवि ने 'सिंदूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता में वेणु वन, सुन्दर भू-भाग, धान, लीचियां और आम आदि का चित्र प्रस्तुत किया है। केदारनाथ अग्रवाल की 'चन्द्रगहना से लौटती बैर' और 'वासंती हवा' में भी लोक जीवन की झाँकी दर्शनीय है। बुंदेलखण्ड की ग्राम-प्रकृति वहाँ के उत्सव, रस्मों-रिवाजों से सम्बद्ध लोकझाँकियाँ साकार हो उठी है। 'बुंदेलखण्ड का स्थानीय रंग उभारने वाले उपादानों में एक ओर यदि बाँधे मुरेठा शीश पर एक बीते के बराबर हरा ठिंगना चना है, ब्याह मण्डप में पधारने वाली सरसों है, चित्रकूट की अनगढ़ चौड़ी पहाड़ियाँ, रीवां के काँटेदार कुरूप पेड़ हैं, तो दूसरी तरफ केन नदी, सुग्गे की टें-टें का स्वर चित्रकूट के बोड़म यात्री तथा मंदी उजियारी के नीचे हुक्का गुड़गुड़ा कर घंटों आल्हा सुननेवाले किसान हैं।'४

छायावादोत्तर काल में इन लोक तत्वों का आधार लेकर हिन्दी साहित्य का नया विकास हुआ। अपने लोक जीवन के इन जीवंत उपादानों को पहचानकर उसका उचित मूल्याँकन वास्तव में सराहनीय है। प्राय: अनेक कवियों ने इस तत्व के आधार पर अनेक कवितायें लिखी। नरेन्द्र शर्मा की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

'कटहल, बेल, नीम महके हैं
खिली कामिनी फूलों वाली रंगी खड़ी सेमल पलाश औ
अमलताश की डाली डाली

आज लगे बैसाख नई अंबियां गदराती होगी
अब तो तुम्हें और भी मेरी याद न आती होगी।'५

ढप, ढोल, झांझ पर मदमस्त मजूदरों का चित्रण भी इसी प्रकार अत्यन्त मोहक है–

'बज रहे कहीं ढप ढोल झांझ, पर बहुत दूर
गा रही मदमस्त मजदूरों की टोली
कल काम धाम करना सबको पर नींद कहाँ है
है एक वर्ष में आती होली'६

निष्कर्षत: छायावादोत्तर कविता में प्राय: सर्वत्र लोक तत्व का निर्वाह हुआ है। लोक तत्वों का सम्बल लेकर इन कवियों ने अपने जन जीवन के मुख्य आधार प्रकृति, उत्सव, उल्लास, ग्राम्य जीवन, ग्राम्य संस्कृति को जीवित करने का प्रयास किया। जिससे भारतीय संस्कृति की भव्य परम्परा का स्तर ऊँचा हुआ और इसका एक नये स्तर से विकास भी हुआ।

————————————————

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. ९०

२. मैनेजर पाण्डे - साहित्य और इतिहास दृष्टि - पृ॰ ११५

३. नागार्जुन - युगधारा - पृ॰ ६८

४. रेखा अवस्थी - प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - पृ॰ १२५

५. नरेन्द्र शर्मा - पलाशवन - पृ॰ ३

६. वही - पृ॰ ६७

————————————————

अध्याय - २

साहित्य में परम्परा

साहित्य में परम्परा का स्वरूप मानव मूल्य और भावनात्मक अभिव्यक्ति के विकास रूप में व्यंजित होता है। साहित्य का उद्देश्य ही है उस नैसर्गिक आनन्द की उपलब्धि जो मानव जन्म के साथ मानव जीवन से सम्पृक्त होती है। किन्तु सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषमता के फलस्वरूप जहाँ भावभेद का अन्तर्भाव होता है। वैषम्य के अंतर्विरोध में भी अच्छी साहित्यिक परम्परा नैसर्गिक क्षणों को सुरक्षित रखती है तथा देशकाल की सीमा के लिये जो कुछ वांछनीय है, ग्रहणीय है उसमें परिवर्तन, संशोधन और विकास को भी वह अवकाश प्रदान करती है। प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश की परम्पराओं से अंशतः सन्दर्भ ग्रहण करता ही है। इस अंश सत्य से ही पूर्ण सत्य की उपलब्धि होती है। साहित्य के विकास के साथ-साथ नई परम्पराओं का भी निर्माण होता है और पुरानी परम्पराओं के सार्थक, पुष्ट सत्य में संशोधन, विकास और प्रयोग की प्रक्रिया भी चलती रहती है।

साहित्य और परम्परा के अंतर्सम्बन्ध के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यह संबंध सार्वभौम नहीं होता क्योंकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सन्दर्भ इसकी सार्वभौमिकता में व्यवधान डालते हैं। इन सन्दर्भों की उपज काल की स्थिति परिस्थिति के कारण होती है क्योंकि अनुकूल सापेक्ष्य दृष्टि इनकी प्रथम शर्त्त है। अतएव प्रतिगामी निःशेष अंशों का चयन भी मुख्य लक्ष्य है। रमेशचन्द्र शाह के अभिमत में ‘हम या तो परम्परा के नाम पर एक तथाकथित सांस्कृतिक ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति को ही श्रेष्ठ कविता के स्वयं सिद्ध प्रतिमान के रूप में जाने-अनजाने मान्यता प्रदान किये रहते हैं। या फिर इसके विपरीत छोर पर परम्पराओं की जीवित वास्तविकताओं से मुख मोड़कर तथा सर्जनप्रक्रिया के लिए उनके अस्तित्व बोध तक को सर्वथा असम्बद्ध, अनावश्यक करार देकर मात्र अपनी निरपेक्ष व्यक्ति संवेदना में ही नए से नए प्रभावों को आयात करने और पचाने में दूसरी भाषाओं के साथ होड़ करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं।’१ शाह एक ओर एक तथाकथित सांस्कृतिक ऐश्वर्य को स्वयं सिद्ध प्रतिमान मानकर परम्परा को माननीय कहते हैं दूसरी ओर परम्पराओं की जीवित वास्तविकताओं के

प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर अस्तित्व बोध तक को नि:संग तथा असम्बद्ध कहते हैं। अस्तु, परम्परा का स्वरूप प्रयोक्ता की मानसिकता पर निर्भर करता है। वह चाहे तो परम्परा का निर्वाह समय सापेक्ष दृष्टि के अनुकूल कर सकता है या प्रतिकूल प्रमाणित कर सकता है। उसके लिए परम्परा बोझ नहीं वरन एक गतिशील सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को वह नए प्रभावों के निष्कर्ष पर चढ़ाता है, नए प्रयोग के रूप में संशोधन द्वारा आत्मसात करता है। परम्परा के प्रति पूर्ण नकारात्मक निषेधवादी और नए प्रयोगवादी साहित्यकार नयेपन के जुनून में परम्परा की स्पन्दित दीप्त संवेदना से वंचित रह जाते हैं।

साहित्य में परम्परा का स्वरूप कभी-कभी अन्य कारणों से भी प्रभावित होता है। कभी-कभी वाह्य-प्रभाव मूल कारण होता है। ऐसे समय में नये सिरे से युगीन तात्कालिक मांग के अनुसार परिवर्तन और संशोधन अनिवार्य हो जाता है। यह परिवर्तन एक नई परम्परा की सर्जना करता है। कभी एक दीर्घ अन्तराल के पश्चात रचनात्मक क्रियाओं के माध्यम से साहित्यिक परम्परा उदित होती है। यह उदीयमान प्रक्रिया परिवर्तनात्मक और गुणात्मक कुछ भी हो सकती है। इसके अलावा सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों आरोह और अवरोह भी परम्परा में परिवर्तन और प्रयोग के पर्याय होते हैं। संवेदनशील साहित्यकार की दृष्टि मात्र स्थूल से नहीं बँधती वह सूक्ष्म गवेषणा के पश्चात स्वत: एक नई धारा का प्रतिनिंधित्व करने लगती है।

परम्परा के इन सब सोपानों से परम्परा के रूढ़िगत तत्वों का ही निष्कासन होता है। जो कुछ भी कालगत मृतप्राय हैं, विगलित जर्जरित होने के उपरान्त भी परम्परा के नाम पर पिष्टपेषित है उसका बहिष्कार कर प्रतिगामी नि:शेष अंश जो मानव अनुभव के माध्यम से नया है, जीवन संवेदनाओं और संदर्भों को उद्घाटित करने में समर्थ है, को निर्वाह दिया जाता है। अच्छी साहित्यिक परम्परा में इस नैरन्तर्य का निर्वाह रहता है। जहाँ इस नैरन्तर्य को शिथिल करने का प्रयत्न होता है वहाँ साहित्य की परम्परा भी जड़ होती है, समसामयिकता भी विनष्ट होती है। साहित्य न तो अतीत का आख्यान होता है न ही वह वर्तमान को अंतिम मान लेता है। सही अर्थों में वही साहित्य प्राणवान है जो कालातीत है। चूंकि परम्परा काल की प्रवहमानता में मनुष्य की सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज है, अत: साहित्य में इसी सांस्कृतिक धारा का दिग्दर्शन होता है। साहित्यकार परम्परा का

मंथन करता है और सर्जनात्मक स्वरूप को कालजीविता की पृष्ठभूमि पर कालातीत बनाता है।

परम्परा और प्रयोग

काल के सतत प्रवाह में क्रिया-प्रतिक्रियाओं के उद्भव और तिरोभाव की प्रक्रिया चलती रहती है। मनुष्य काल की साधना अखण्ड रूप में करता है। इसीलिए वह मात्र वर्तमान से प्रतिबद्ध नहीं होता, अपितु अतीत और भविष्य के प्रति भी जागरूक रहता है। काल की सतत प्रवहमान गत्यात्मक जीवंतता मनुष्य की चिंतना की ऊर्जा है। चूँकि साहित्यकार बौद्धिक प्राणीहै, चिन्तनशील जीव है। अत: वह न तो सर्वथा नवीन अनुभव के ग्रहण से पृथक् होता है, न परम्परा के व्यापक, गहन अनुभव से वंचित होता है। वह पके अनुभव को मथ कर विवेक की चलनी में छानकर नये अनुभव में उसको मिश्रित कर देता है। यह सम्मिश्रण ही परम्परा और प्रयोग है।

परम्परा और प्रयोग दो विरोधी पर्याय नहीं। प्रयोग ही दीर्घकाल की आवृत्ति के पश्चात परम्परा में बदल जाते हैं। स्वस्थ परम्परायें सदा नये प्रयोग को जन्म देती है। परम्परा और प्रयोग के इस अकाट्य संबंध विश्लेषण पूर्व दोनों पर अलग-अलग दृष्टि डालना युक्ति संगत होगा।

परम्परा शब्द की व्याख्या के लिए आलोचक और विद्वत्गण एकमत नहीं है। एक मत पुराणपंथी का है जिन्होंने परम्परा की व्याख्या एक निश्चित सीमा के भीतर की है। दूसरा दल आधुनिक विद्वानों का है जिन्होंने परम्परा के प्रति उदासीनता बरती है, एक वर्ग ऐसा भी है जिसने इन दोनों धाराओं को सम्मिश्रित कर एक पुष्ट आधार देने की कोशिश की है। अत: विविध स्थलों पर विभिन्न ग्रंथकारों, साहित्यकारों और आलोचकों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है।

संस्कृत हिन्दी में कोश में 'परं पूर्वक' पृ 'पूरणें धातु से' 'अच' प्रत्यय एवम् अलुक् समास द्वारा परम्परा शब्द की व्युत्पत्ति मान्य है।२ श्री वामन शिवराम आप्टे ने परम्परा को पाँच वर्गों में विभाजित किया है। (१) अविच्छिन्न शृंखला, नियमित सिलसिला (२) नियमित वस्तुओं की पंक्ति, (३) प्रणाली क्रम, सुव्यवस्था (४) वंश, कुटुम्ब कुल और (५) क्षति, चोट, मार डालना।३

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड ऐथिक्स में परम्परा को एक धरोहर के रूप में व्याख्यायित किया गया है।४

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज में परम्परा को पूर्व का विकास मानते हुए कहा गया है कि 'परम्परागत आचार, व्यवहार, संस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत एवं लोक कथाएं सब परम्परा के अंग हैं।'५

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में 'उन रीति-रिवाजों तथा प्रयासों को परम्परा की संज्ञा दी गई है जो संस्कृति, सभ्यता तथा समाज वर्ग को नैरन्तर्य तथा उसके विचारों को आकार दे सके।'६

उपर्युक्त परिभाषाओं में 'परम्परा' शब्द का व्यवहार तो सर्वत्र है पर किसी संश्लिष्ट अवधारणा का निरूपण नहीं मिलता। परम्परा को कहीं नियमित सिलसिला कहा गया है, कहीं धरोहर, कहीं पूर्व का विकास व्यावहारिक के रूप में, कहीं रीति-रिवाजों तथा प्रयास के अर्थ में विवेचित किया गया है। परम्परा को एक बँधी बँधाई लीक में विश्लेषित करने के कारण मूलस्वरूप अस्पष्ट हो गया है।

हिन्दी के मूर्द्धन्य साहित्यकारों ने परम्परा को विविध दृष्टियों से व्याख्यायित करने का सद्प्रयास किया है। पर कोई भी साहित्यकार एक निश्चित और सही रूप-रेखा का आकलन करने में समर्थ नहीं होता। वह एक प्रयास करता है और यह प्रयास आलोचना-प्रत्यालोचना के द्वारा नये को भी राह दिखाता चलता है। यहाँ हिन्दी के प्रख्यात मनीषियों के मन्तव्यों की विवेचना है।

डॉ॰ नलिन विलोचन शर्मा के अभिमत में 'परम्परा का व्यापकतम अर्थ है वे सारी संस्कारगत रुढ़ियां, साहित्यिक मान्यताएं और अभिव्यंजना की प्रणालियाँ, जो एक लेखक को अतीत से प्राप्त होती है।'७ इस परिभाषा में कतिपय दोष है। रूढ़ि परम्परा की जीवंतता को शमित करती है। साहित्यिक मान्यताओं में युगसंदर्भानुसार परिवर्तन अपेक्षित है। अभिव्यंजना की प्रणाली भी सदैव एकमत नहीं होती। परम्परा का व्यापकतम अर्थ क्या है नलिनजी का यहां आशय एकदम अस्पष्ट है। परम्परा पिष्टपेषण नहीं, न पुनः सर्जना है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र की परम्परा संबंधी धारणा अधिक प्रौढ़ व सटीक है। 'परम्परा का अर्थ है पर के भी जो परे हो, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हो, जो कभी भूत न हो न भविष्यत जो सतत वर्तमान हो, जो कभी सिद्ध न हो, निरन्तर साध्य हो परम्परा इसीलिए साधना का पर्याय है। आचार का अनुशासन वह इसलिए स्वीकार करती है एकाग्र होकर विचार के प्रवाह को साधे रहे। विचार को कभी जड़ न होने दे सीधी रेखा में नहीं वर्तुल गोलाईयों में उत्तरोत्तर उर्ध्वगामी होती रहे यह इतिसास चक्रों के व्यूह को तोड़ती चलती है, मनुष्य की स्वाधीनता के आयाम को तानती चलती है। यह मनुष्य को विचारों से नहीं, विचारों को मनुष्य से बाँधती है।'८ मिश्र जी ने परम्परा को सतत प्रवहनशील प्रक्रिया माना है तथापि परम्परा क्या है की अपेक्षा परम्परा की विशेषताओं पर विशेष बल दिया है। लेखक ने परम्परा की प्रवृत्ति को रेखांकित किया है।

लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में 'वस्तुत:' परम्परा की ग्राह्यता का मानदण्ड मात्र यह है कि वह प्रगति में बाधक न बने। उसकी सहज विकासशील प्रवृत्ति को उत्तरोत्तर विकसित होने दे। परम्परा का उतना ही अंश महत्वपूर्ण है, जो हमें संस्कार देता है, और वह संस्कार भी ऐसा, जिसमें उदारता हो, जो समूचे व्यक्तित्व में उदात्त चेतना समाहित करने के साथ आत्मपरक पृथकत्व को बनाये।९ लक्ष्मीकान्त वर्मा की धारणा है कि रूढ़ियों को तोड़ने से नई प्रवृत्ति उदित होती है एवं परम्परा में देश-काल के यथार्थ की संवहन शक्ति होनी चाहिए। साहित्यकार आज के यथार्थ के अनुकूल परम्परा को अर्जित करता है।

श्री गिरिजाकुमार माथुर के कथनानुसार लोग परम्परा को भूल जाते हैं कि जिस अर्थ में इस शब्द का अधिक उपयोग किया जाता है और वह है लीक का पालन, अन्धश्रद्धा, कर्मकाण्ड के रूप में उन पद्धतियों की स्वीकृति जो होती चली आई है परिवर्तन विमुखता, रीति के टूटने का भय आत्मा को छोड़कर आकार का सम्मान इत्यादि।१० माथुर जी ने परम्परा का प्रयोग रूढ़ि के अन्तर्गत किया है।

'सहचिन्तन' में परम्परा का स्पष्टीकरण करते हुए अमृतराय जी का कहना है कि 'परम्परा का निर्माण मनुष्य के गतिशील, आत्म-सजग, मनन चिन्तन उद्भावना और कर्म से होता है।'११ यहाँ परम्परा की अनुप्रेरक शक्तियों की चर्चा की गई है पर परम्परा है क्या ? इसका अध्ययन नहीं है।

हिन्दी के सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कलाकार अज्ञेय ने परम्परा को बिल्कुल अलग ढंग से विवेचित करने की चेष्टा की है। अतीत के सन्दर्भ में परम्परा का आकलन करते हुए अज्ञेय की मान्यता है 'वह अनुभव करेगा कि 'अतीत' उसीका का नाम है जो पहले वर्तमान है जबकि 'आज' वह है तो वर्तमान होना आरम्भ हुआ है। अतीत और वर्तमान के इस दोहरे अस्तित्व की उनकी पृथक वर्तमानता और उनकी एकसूत्रता की, निरन्तर अनुभूति ही ऐतिहासिक चेतना है और इस चेतना का अनवरत स्पन्दनशील विकास ही परम्परा का ज्ञान।'१२ अज्ञेय अतीत और वर्तमान की जीवन्त अनुभूति को परम्परा की ऐतिहासिक चेतना का विकास मानते हैं।

टी॰ शिप्ले ने 'विश्व साहित्य कोष' में इसका आकलन करते हुए कहा है- 'विकास की वह अनिवार्य रेखा जो अतीत से हम तक सीधी चली आई हो।'१३

अस्तु परम्परा एक गतिशील सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो काल सापेक्ष आकारों से मथकर अतीत और वर्तमान की जीवंत अनुभूतियों को आत्मसात कर सतत विकासोन्मुख रहती है। परन्तु आधुनिकता के प्रभाववश लेखकों ने मात्र नये कथ्य और नये शिल्प को ही स्वीकार किया। भौतिकतावादी यंत्र साधन से परिपूर्ण युग में पुरानी अनुप्रेरक, प्रभाववर्द्धक स्थापनाओं के प्रति गहरे प्रश्न उभरे। आस्था और विश्वास के मूल्यों का अधिमूल्यन हो रहा था। लेखक और आलोचक के वर्ग ने स्वयं को एकदम निरपेक्ष, स्वायत होकर परंपरा के अस्तित्व को निर्मूल सिद्ध करने की चेष्टा की। 'आज का कवि परम्परागत रूढ़ियों तथा संस्कारों के प्रति विक्षुब्ध हैं और उनका काव्यात्मक संवेदन भी उसी अनुपात में परम्परा से मुक्त है और निस्संग भी। परिवर्तित सौंदर्यबोध के कारण आज का कवि पिछली परम्परा को नकार कर अपना सम्पूर्णतया पृथक मार्ग खोजने में भी रत है।'१४ परम्परा के प्रति इनका दृष्टिकोण पूर्ण निषेधवादी है, नकारात्मक है। वर्तमान अतीत से एकदम कटकर अस्तित्व ग्रहण नहीं करता एवं वर्तमान से आगत पूर्णता प्राप्त करता है। नयेपन के जुनून के कारण इस धारा के लोग परम्परा की इयत्ता को अस्वीकारते हैं।

निष्कर्षत: परम्परा एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। वह एक ऐसी चिन्तनशील ऊर्जा है जो मनुष्य को देशकालबद्ध रचनात्मक विस्तार से आलोकित करती है। परम्परा का अवसान नहीं होता। उसकी जीवन्त चेतना का संक्रमण नैरन्तर्य में होता रहता है।

परम्परा नदी की धारा की तरह अपना मार्ग खुद निर्मित करती है। वह नदी की तरह प्रवाह और स्वच्छता से संपृक्त है। वह नैरन्तर्य है, सांस्कृतिक बोध की सतत जागरुक दृष्टि है।

'परम्परा को स्वीकार करने का अर्थ बंधन नहीं, अनुशासन का स्वेच्छा से वरण है, विधायक उदारता के लिए अपनी समस्त इच्छाओं का समर्पण। इसलिए वह इतिहास से बड़ी है और हमारे लिए तो अपरिहार्य है, वही हमारी शक्ति है। परम्परा अपने को काटकर, तोड़कर आगे बढ़ती है, इसलिए वह निरन्तर मनुष्य को अनुशासित रखते हुए भी स्वाधीनता के नये-नये आयामों को प्रतिष्ठित करती चलती हैं। परम्परा बन्धन नहीं, वह मनुष्य की मुक्ति अपने लिए नहीं, सबके लिए मुक्ति की निरंतर तलाश है।'१५ परम्परा को गत्यात्मक प्रक्रिया समझने वाला साहित्यकार परम्परा का विरोध नहीं करता। वह परम्परा को समझकर एक नया प्रयोग करता है। प्रयोग एक समसामयिक आवश्यकता है।

प्रत्येक साहित्यकार सृजनधर्मी कलाकार होता है। वह किसी सत्य को अंतिम सत्य नहीं मान लेता पुर्नपरीक्षण के निष्कर्ष पर चढ़ाकर वह उसको परखता है। उसका मुख्य प्रतिपाद्य नये का संधान होता है। पर प्रयोग में मात्र नये का वैषण नहीं होता, परम्परा की जीवंत अनुभूतियों के भीतर से गुजरने के बाद ही नये प्रयोग की स्थापना होती है।

प्रबुद्ध जिज्ञासु कलाकार नये भाव, नये विचार, नई अनुभूति, नई अभिव्यक्ति को आत्मग्राह्य करता है। पुराने प्रतिमानों का उन्मूलन न कर वह अपनी आत्मग्राह्यता को विकासशील तत्वों में सम्पृक्त करता है। प्रयोग परम्परा के निष्क्रिय अंशों को सक्रिय नहीं होने देता। 'प्रयोग प्रबुद्ध चेतना की विकास प्रवृत्ति का परिचायक है। जहाँ प्रयोग नहीं है लीक छोड़कर चलने की परम्परा नहीं है वहाँ निष्क्रियता जन्म लेती है। भोंडापन और खोखलापन विकसित होने लगता है। इसलिए प्रयोग की नवीनता में वह संभावनायें निहित रहती है जो परम्परा और रूढ़ि के प्रति विद्रोह करके नया रास्ता बनाने में गतिशील है।'१६ विकास में आस्था ही साहित्यकार को गति की ओर उन्मुख करती है। बँधी बँधाई लीक विकास में बाधा डालती है। अत: प्रयोग जो एक प्रक्रिया है निश्चित उद्देश्य से संचालित होता है। यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा साहित्यकार की

बहुमुखी प्रतिभा आत्म सत्य का अन्वेषण करती है, जड़ता को त्यागकर युग से प्रतिबद्ध भी होती है।

प्रयोग एक समसामयिक माँग है जिसके माध्यम से हम परम्परागत उच्छिष्ट से मुक्त होते हैं और जो कुछ परम्परा में संग्रहणीय है उसको विकसित करने की क्षमता प्रदान करते चलते हैं। प्रयोग जड़ता से मुक्त होता है। जिससे सतत प्रवहमान प्रक्रिया में सम्भावनापरक दृष्टि का सन्निवेश होता है। वह तो युगीन यथार्थ की अनिवार्यता है। क्योंकि परम्परित मूल्य इस यथार्थ अभिव्यंजना में सार्थक नहीं होता। प्रयोग जब फैशन के तौर पर ग्राह्य होता है उतना शीघ्र विलुप्त हो जाता है। उसका विघटन शीघ्र होता है 'प्रयोग आज का फैशन नहीं है। वह वर्तमान जीवन की अनिवार्यता है। जो इस अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करता वह कलासृजन की मूलभूत वैज्ञानिक क्षमता को भी स्वीकार नहीं करता और न आधुनिक मानव-संवेदना को स्वीकृति दे पाता है।'१७

अमृतराय ने 'सहचिन्तन' में प्रयोग की सार्थकता पर बल डालते हुए कहा है– 'युगधर्मी प्रयोगों से ही परम्परा का सूत्रपात हुआ था और उन्हीं के सहारे उसमें नित नयी कड़ियाँ जुड़ती रहती है और उन सबके लिये समय की धारा में छनती निथरती परम्परा हम तक आती है इसलिए कि हम भी अपने युगधर्मी प्रयोगों से उसमें नया कुछ जोड़ सकें। प्रयोगों की युगधर्मिता पर जितना बल दिया जाय कम है क्योंकि इसी में उसकी सार्थकता है।'१८ यानी प्रयोग को परम्परा से पृथक करके विश्लेषित नहीं किया जा सकता। प्रयोक्ता परम्परा को समय की धारा से निथारकर प्रयोग के रूप में ग्रहण करता है।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह प्रयोग की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए मानते हैं 'कविता में भी प्रयोग की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि एक विशेष युग की विशेष परिस्थितियों में वह कुछ ऐसे सत्यों की उपलब्धि करता है जिन्हें पूर्ववर्ती युगों के कवि अपने युग की सीमाओं के कारण नहीं उपलब्ध कर सके थे।'१९ परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में चेतना का विस्तार नये आयामों को अंगीकार करता है।

प्रयोग की प्रकृति के संबंध में मत प्रकट करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा का मन्तव्य है 'इसकी प्रकृति में यह तथ्य निहित है कि किसी भी वस्तु की मान्यता का ज्ञान प्रयोग द्वारा पुन: अनुभव किया जा सकता है और नई उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती है।

प्रयोग की प्रक्रिया द्वारा मान्य एवं निर्धारित तथ्यों के अतिरिक्त नए तथ्य भी प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही प्रयोग यह मानकर किया जाता है कि प्रयोगकर्त्ता की उपलब्धियाँ सही भले ही न हो किन्तु महत्वपूर्ण हो सकती है। इसलिए प्रत्येक प्रयोग का महत्व है और प्रयोगकर्त्ताओं की स्थापनाओं का महत्व है। दूसरे शब्दों में प्रयोग का उद्देश्य है मान्य सत्य का परीक्षण और फिर परीक्षण द्वारा नये आयामों का अन्वेषण।' २०

अज्ञेय ने स्वत: प्रयोग की महत्ता को प्रतिपादित किया है। प्रयोग में प्रगति निहित है। 'प्रयोग निरन्तर होते आये हैं और प्रयोगों के द्वारा ही कविता का कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है। यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग-विराग नहीं बदले, प्रेम अब भी प्रेम है, घृणा अब भी घृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गयी हैं।' २१

प्रयोग दीर्घ आवृत्ति के पश्चात स्वत: परम्परा में परिणत हो जाते हैं। प्रयोग ही परम्परा का निर्माण नहीं करते, परम्परा भी प्रयोग का सर्जन करती है।

'प्रत्येक प्रयोग कालान्तर में परम्परा बन जाता है इसलिए जिस परम्परा में आगे प्रयोग करने की प्रेरणा नहीं होती वह उतनी ही निरर्थक होती है जितना की वह प्रयोग जो नई परम्पराएं स्थापित करने में असमर्थ होता है।' २२

परम्परा और प्रयोग के अनिवार्य संबंध को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा का कहना है 'परम्परा हमारा दायित्व है और प्रगति विकास की प्रवृत्ति भविष्य की दृष्टि, सम्भावनाओं तक पहुँचने का माध्यम। इतिहास में कोई भी परम्परा चिर स्थायी नहीं रही है। उसने हमेशा नई परम्पराओं को प्रेरित किया है। प्रयोग और परम्परा में यही अनिवार्य संबंध है।' २३

प्रयोगधर्मी कलाकार परम्परा का पिष्टपेषण प्रयोग रूप में नहीं करता। न वह परम्परा की दुहाई देता है। परम्परा युग सन्दर्भ के अनुकूल अपने में परिवर्तन करती है प्रयोग ही इस परिवर्तन की दिशा है 'जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिये परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बाँधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले।' २४

परम्परा और प्रयोग का एक दूसरे से विरोध नहीं होता। परम्परा की सार्थकता प्रयोग है। परम्परा अतीत से सम्बद्ध है, प्रयोग भविष्य से। इस प्रकार परम्परा और प्रयोग के विश्लेषण से यह निष्कर्ष मिलता है-

१. प्रयोग की प्रेरणा परम्परा में संगुम्फित है।

२. प्रयोग रूढ़ि का बहिष्कार कर जीवंत और सजीव तत्वों को गत्यात्मक मोड़ देते हैं। इस प्रकार परम्परा का अनुशीलन होता रहता है। सजीवता सुरक्षित रहती है।

३. प्रयोग का परम्परा के साथ प्रमुख अंतर्संबंध यही है कि वह अतीत के सप्राण सन्दर्भों की प्रक्रिया से आगे बढ़ता है क्योंकि अतीत और भविष्य की कड़ी वर्तमान से बँधती है।

४. स्वस्थ परम्परायें नये प्रयोगों को स्फूर्त करती है। प्रयोग का लक्ष्य परम्परा बनना है।

परम्पराओं की निरन्तरता का अनुशीलन

परम्परा एक सप्राण सांस्कृतिक यात्रा है। इस विकास के अभाव में जड़ता और स्थैर्य का समावेश होता है। प्रवाह में नैरन्तर्य होता है, काल तथा साहित्य के अंर्तसंबंध भी नैरन्तर्य से जुड़े होते हैं। जिस प्रकार जीवन गति से पूर्ण है वैसे काव्य या साहित्य में भी कुछ शाश्वत और सार्वभौम नहीं है। साहित्यकार विस्मृत परम्पराओं की खोज करके, पुर्नव्यवस्थित करके काल सापेक्षता के अनुकूल स्थापना करके मौलिक प्रतिभा का परिचय देता है। वह युग की आवश्यकतानुसार नई सामाजिक चेतना, नये कलात्मक उपकरण, साहित्य के विकास की नई पद्धति का अनुसंधान परम्परा के अनुशीलन से करता है।

वह गत्यात्मक परम्परा का रूढ़ि से विच्छेद करता है। अंधश्रद्धा के पिष्टपेषण से साहित्यिक धारा को निस्संग करता है। दुर्बल तत्वों का परित्याग कर स्वस्थ एवं समर्थ परम्पराओं का निर्वाह करता है। उदाहरणार्थ कुरूक्षेत्र की घटना महाभारत कालीन इतिहास की उपज है पर महाभारतकालीन इतिहास का यह प्रसंग आज भी कालजयी है। अपने देशकालातीत सीमाओं का अतिक्रमण करके यह प्रसंग विभिन्न सरणियों से

सांस्कृतिक यात्रा में क्रियाशील है। आज कुरूक्षेत्र मनुष्य के भीतर चल रहा है। पथ भ्रमित अर्जुन भी खुद मनुष्य है तो पथ प्रदर्शक कृष्ण भी खुद मनुष्य ही। इस तरह साहित्यकार परम्पराओं के गंभीर ज्ञान, स्वतंत्र चिंतन, सामाजिक चेतना और वस्तुनिष्ठ दृष्टि के आधार पर एक सही मूल्यांकन पद्धति का विकास करता है प्रगतिशील परम्परा का संधान करता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता रही है परम्परा न तो सनातन होती है और न एक विशेष विचारधारा की पोषक। परम्परा को सनातन मानना और विशेष विचारधारा का पोषण अंधानुकरण है। परम्परा की नवीनता विस्मृत परम्पराओं की खोज करने, परम्पराओं को पुनर्व्यवस्थित करने पुन: नया मूल्यांकन करने में है। परम्परा एक व्यापक शब्द है। प्रत्येक क्षेत्र में विकास होता है। मूल्यों की अवधारणा बदलती है, नई अभिव्यंजनाओं का निर्माण होता है, इन सबमें सार्थक व सबल तत्व अपना स्थान स्वत: ग्रहण करते हैं और परंपरा को पुष्ट करते चलते हैं। जिससे परम्परा का निरन्तर अनुशीलन भी होता जाता है।

साहित्य में परम्परा और प्रयोग की धारणा

साहित्य शब्द सम्□धा□यत् इन तीन शब्दों का मिश्रण है। 'सम्' सम्यक् भावबोध उपसर्ग है। 'धा' धारण करने की क्षमता सम्पन्न धातु है तथा यत् प्रत्यय है। व्याकरण के अनुसार धा हित हो जाता है। अत: सम्+हित+यत्=साहित्य। इससे यह प्रकट होता है कि साहित्य में धारण करने की क्षमता है। साहित्य का क्षेत्र भी जीवन की भाँति प्रवाहपूर्ण है। उसकी सर्जनात्मक शक्ति परम्परा और प्रयोग का दस्तावेज है। वह न तो परम्परा बद्ध होती है न प्रयोग से प्रतिबद्ध होकर संचालित होती है। काल सातत्य के समानांतर सतत् मौलिक और परिवर्तन इच्छा अतीत के पौष्टिक पदार्थों से रस ग्रहण करने के उपरान्त नए काव्य की प्रेरक शक्ति होती है। आलोचक डॉ॰ एच॰बी॰ रूथ का कहना है कि- 'कला को सदैव नवीन रूप देते रहना चाहिये। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्य तत्व पर निर्भर रहता है। एक बार जब कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति की नवीनता समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यों में लग जाता है। कला या साहित्य में वह एक नई दृष्टि खोजता है पर ऐसी बासी अभिव्यक्तियों में उसे केवल स्थूल रूप का ही दर्शन होता है। इसीलिये किसी महान पुस्तक में नवीनता द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिये, जिससे पाठक प्रारम्भ

में ही आगे पढ़ने के लिये उत्सुक हो जाये और उसे विश्वास हो जाये कि 'अनुभूतियाँ' व्यापक और गम्भीर छवियों के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीड़ा की सामग्री मात्र हैं।२५

कवि या कलाकार उपलब्ध सत्यों को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करता। वह विवेक से मंथन करता है, सार अंश की बदलते परिप्रेक्ष्य में मीमांसा करता है, साहित्य में एक नई दृष्टि खोजता है ताकि रूढ़ि से विच्छेद हो, साहित्य का विकास हो।

साहित्य के विकास में परम्परा और प्रयोग का यह क्रम स्पष्ट परिलक्षित होता है। सिद्धों और नाथों की गुह्य कर्मकाण्ड साधना पद्धति और योग की चमत्कृत कर देने वाली प्रणाली में नाश के उभरते चिन्ह से संत साहित्य आविर्भूत हुआ। संत साहित्य में कबीर आदि ने नाथपंथियों और सहजयानियों के बहुत से शब्द, पद और दोहे ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिये थे। पर यह स्पष्ट है कि परम्परा से स्वीकार परिभाषित शब्दों, पदों और दोहों की भी अभिव्यंजना का ढंग नितांत मौलिक है, भिन्न अर्थ रखता है जो प्रयोग की प्रेरणा का सूचक है। इसके अलावा कबीर ने सामाजिक और आध्यात्मिक ढकोसलों पर कटु प्रहार, भर्त्सना के द्वारा एक नई परम्परा को भी जन्म दिया, परवर्ती काल की रचनाओं में जिसके बीज व्याप्त है। आगे संत साहित्य की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण धारा का उदय हुआ। राम और कृष्ण का चरित्र अपने पौराणिक स्रोतों से प्राणरस ग्रहण कर प्रयोगधर्मिता के नवीन आयाम पर विश्लेषित है। सूरदास और तुलसीदास का सांस्कृतिक बोध उन्हें अतीत की सीमाओं में नहीं बाँधता, काल की अखण्ड प्रवहमान चेतना से सम्पृक्त करता है। भक्ति की प्रबलता, अतिशयता से अवरूद्ध पड़ती चिंतना में रीतिकाल की सर्जना की। इस काल के आचार्यों ने काव्य चिंतन को नवीन दिशा प्रदत्त न कर, प्राचीन काव्य शास्त्रों का पुनः निर्वाह करने की चेष्टा की। परम्परा का अतिक्रमण न कर पाने के कारण इनका काव्य विकास की संभावनाओं से रहित था। अतएव अति शीघ्र इसकी प्रवृत्तियाँ काल के गर्त्त में दब गई।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हम पाते हैं कि यह काल नवजागरण काल है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की तेजी से पलटती स्थितियों ने काव्य की परम्परा को जीवन के साथ सम्पृक्त कर दिया। यहाँ काव्य की धारा ऐसी परम्परा के निर्माण में सन्नद्ध हुई जिसकी तुलना किसी अन्य युग से संभव ही नहीं। चिन्तन एवं दृष्टि का

विस्तार धरती के व्यापकतम विस्तृत तत्वों से संस्पर्श पाकर जीवन की हर एक अनुभूति को शब्दायित करने की कोशिश हुई। इस प्रकार भारतेन्दु युग के कवियों ने जीवन को एक नयी दिशा की ओर मोड़कर नयी परम्परा की संस्थापना की जिसमें प्रगति भी अनुस्यूत थी। इसमें विभिन्न सामाजिक समस्याओं के साथ देश भक्ति की उदात्त चेतना भी थी। इसके विपरीत द्विवेदी युग ने पूर्ववर्ती सामाजिक- समस्याओं में नए विषयों को आवेष्ठित कर गद्य और पद्य की भाषाओं का अंतर समाप्त किया एवं खड़ी बोली को पद्य में प्रतिष्ठित कर नया प्रयोग किया। यहाँ एक बार पुन: पौराणिक ग्रंथों के आधार पर राम और कृष्ण में लोक पक्ष का आदर्श दुहराया गया। भाषा, छन्द आदि दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता में अभिनव प्रयोग हुए। अपने साहित्य की परम्परित जड़ परिपाटियों से संघर्ष कर पुनर्संधान कर एक नवीन परम्परा को स्थापित करने का इनमें प्रयास है। छायावादी परम्परा अन्त: वाह्य के सौन्दर्य को समेटती नये-नये उपकरणों का प्रयोग करने के कारण अधिक चर्चित हुई। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी ने वैयक्तिक अनुभवों के साथ सांस्कृतिक और दार्शनिक परम्परा के समन्वय का प्रयोग किया। हिन्दी कविता राष्ट्रीयता, प्रेम और प्रकृति के विविध रुपों, सामाजिक विसंगतियों, काव्य रूपों के अभिनव प्रयोगों से अभिमण्डित हुई। उत्तर छायावाद ने छायावादी कवियों की व्यक्तिवादी अहम प्रवृत्ति को प्रगाढ़ अनुभूति के रंग में रंग कर प्रस्तुति की पर आत्मभुक्त भावनाओं का सीधा प्रसारण काव्य विषयों की निर्भीक अभिव्यंजना, खुलापन और साहस की वृत्ति अपने घेरे में सिमट कर मन्द पड़ती गयी।

राष्ट्रीय कविता की धारा उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की ओर अग्रसर हुई। प्रगतिवाद के अनन्तर हम देखते हैं कि राजनीतिक जीवन की नयी चेतना ने कविता की धारा को एक नया प्रवाह दिया। कविता ने स्थूल धरती पर कदम रखे, व्यक्ति के बदले सामूहिकता की खोज को काव्य का मुद्दा बनाया। इसका अर्थ कदापि नहीं कि ये कवि परम्परा की व्यापकता को अस्वीकारते हैं। साहित्य के विकास क्रम में हर नई प्रगति पुरानी प्रगति से नि:सृत होती है। वह प्रगति में अंधानुकरण नहीं करती। परम्परा अतीत से पौष्टिक रस ग्रहण करती है किन्तु देशकाल की अनिवार्यता को महत्ता देते हुए वह नूतन निर्माण की आकांक्षिणी भी है। इस समय के कवियों ने राजनीतिक, सामाजिक-वैषम्य, प्रेम-भावना, ग्रामीण सौंदर्य के चित्र अंकित किए जिसमें लोक संस्कृति की झाँकी यत्र-तत्र मिलती है। इसके विपरीत प्राचीन प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण विद्रोह का स्वर लेकर

प्रयोगवाद का प्रादुर्भाव हुआ। प्रयोगवादी कवियों ने परम्परा का उन्मूलन कर मात्र प्रयोग को प्राथमिकता दी।

शिल्प के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किये। उन्होंने प्रयोग के द्वारा ही कला का सही विकास स्वीकार किया। परम्परा उनके लिए अग्राह्य थी। इसके पश्चात आने वाली प्रवृत्तियों में मात्र प्रयोग को महत्ता मिली जो काल के प्रवाह में छोटे-छोटे टापुओं का ही निर्माण कर पायी किसी महाद्वीप की खोज में असमर्थ रही।

निष्कर्षत: साहित्य में परम्परा और प्रयोग एक दूसरे से प्रभाव प्राप्त करने के पश्चात एक नई उद्भावना को जन्म देते हैं। कोई भी रचना अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर पूर्ववर्ती उपकरणों से मार्ग विच्छिन्न करती है पर उसके भीतर परम्परा की गहरी छाप अंकित होती है जो अवसर-अनुकूल पट परिवर्तन में विश्वास करती है। परम्परा और प्रयोग का सम्बन्ध समसामयिक होता है। परम्परा का सम्बन्ध अतीत चेतना से होता है, प्रयोग हमारे समसामयिक समय की अनिवार्यता है। परम्परा जीवंत सांस्कृतिक उपलब्धि है। प्रयोक्ता समय के निष्कर्ष पर कसकर उसके स्रोतों को एक नई भंगिमा से युक्त करता है ताकि भविष्य की संभावना भी इसमें आकार प्राप्त कर सप्राणता को सुरक्षित रखे।

संस्कृति और साहित्य

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'कृ' धातु से पूर्व सम् उपसर्ग और उसके उपरान्त 'क्तिन्' प्रत्यय के से योग से हुई।२६ 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण के अर्थ में सुट् का आगम करके क्तिन प्रत्यय के योग से व्युत्पति के आधार पर संस्कृति का अर्थ भूषण युक्त सम्यक् कृति हुआ।२७ अंग्रेजी में। संस्कृति के लिये कल्चर शब्द का प्रयोग होता है।'२८ सुविख्यात फ्रांसीसी विचारक बेकन ने सर्वप्रथम 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया। 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति कुलटुरा (ण्ल्र्त्ले) शब्द से हुई है जो लैटिन भाषा की कोलर (ण्दतेल) धातु से निष्पन्न है।२९ इसका प्रयोग अंग्रेजी साहित्य में कृषि तथा पशुपालन के अर्थ में प्रयुक्त है। हिन्दी विश्वकोष के अनुसार 'संस्कृति का अर्थ शुद्धि संस्कार सम्पन्न परिष्कार से है।'३०

संस्कार संवलित संस्कृति की अतीव सुन्दर व्याख्या डॉ. बलदेव मिश्र ने प्रतिपादित की है 'संस्कृति है मानव-जीवन के विचार, उच्चार, आचार का संशुद्धीकरण अथवा परिमार्जन वह है मानव-समाज की परिमार्जित मति, रूचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम।' ३१

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह विदित होता है कि संस्कृति भी एक जीवंत प्रक्रिया है। वह किसी काल विशेष का दस्तावेज नहीं वरन् एक व्यापक, संश्लिष्ट और गतिशील चेतना है जिसमें परम्परागत और समकालीन मूल्यों का संश्लेषण रहता है। एक पीढ़ी के गृहीत आचार, व्यवहार, संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते चले जाते हैं। हस्तांतरण के पीछे संस्कृति की सप्राणता व व्यापकता की ऊर्जा क्रियाशील होती है। संस्कृति अतएव किसी भी समाज के चिन्तन और व्यवहार की पद्धति है जो मनुष्य के आचरण को अनुशासित करती है, व्यवहार का नियमन करती है एवम संस्कार का परिमार्जन करती है। संस्कृति भी वही जीवन्त संस्कृति है जिसमें आत्मालोचन, आत्मविश्लेषण और विवेक द्वारा प्रयोग की निरन्तरता और मनुष्य की अनन्त सम्भावनाओं के प्रति आदर तथा आस्था की भावना रहती है। परम्परा और प्रयोग की दृष्टि से यदि संस्कृति की व्याख्या करें तो हम कह सकते हैं कि किसी भी देश, जाति की संस्कृति का उद्देश्य, विचारों और संस्कारों को जन्म देना है जो मनुष्य की कल्पनाशीलता और सृजनशीलता को मुक्त अवसर प्रदान करके उन्हें सजीव और सबल बनाये रखने की प्रेरणा दे सके। विचार और संस्कार में एक गतानुगतिक रूप होता है। जिससे एक और वर्तमान सह्य होता है दूसरी ओर भविष्य की सम्भावनायें और चरममूल्यों की स्थापना होती है तथा अस्तित्व भी सार्थक होता है। जब हम संस्कृति की सापेक्षता में साहित्य की व्याख्या करते हैं तो देखते हैं कि साहित्य सांस्कृतिक अनुचेतना को अनुप्राणित, विकसित और परिमार्जित करने का सर्वोत्तम साधन है। साहित्य मनोरंजन का विषय नहीं वरन समसामयिक स्थितियों-परिस्थितियों के सांस्कृतिक विकास का जरिया है। साहित्य संस्कृति का संबल अर्जित कर पुरातन आस्थाओं और मान्यताओं को नवस्फूर्ति से परिपूर्ण करता है। वह वर्तमान के अनुरूप अतीत को परिवर्द्धित करता है तथा वर्तमान में अतीत का मिश्रण। साहित्य भी किसी देश, जाति के महत उद्देश्य और विचारों का संवाहक होता है। मनुष्य की कल्पना प्रवण वृत्ति और सौन्दर्य परख दृष्टि साहित्य में खुलकर अभिव्यक्ति पाती है। यह अभिव्यक्ति साहित्य की प्राणवत्ता शक्ति है। इस

शक्ति का स्वरूप और प्रेरणा तत्व संस्कृति से अनुप्रेरित शक्ति है। साहित्यकार अपनी संस्कृति के अनुरूप ही जीवन के प्रति मंगलमय आशावादी दृष्टि को अपनाता है। यही कारण है कि प्रियप्रवास, साकेत, राम की शक्ति पूजा, कामायनी, हिमकिरीटनी आदि में नवीन प्रेरणाओं को प्रसार मिला। इस नवप्रेरणा के उत्स में परम्परा के जाति-गत, संस्कारगत, विचारगत विभिन्न रूपों का प्रभाव परिलक्षित होता है जो मानसिक रचना संसार के ज्ञात-अज्ञात रूप में अभिव्यक्ति पाते रहते हैं। भीष्म का संघर्ष, अश्वत्थामा की धारणा युधिष्ठिर के प्रति, कर्ण का शापित जीवन अतीत के माध्यम से वर्तमान की व्यंजना है। डॉ. सरनामसिंह ने 'साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिम्ब तथा अनागत का प्रदीप माना है।'[३२] संस्कृति का संरक्षण साहित्य में होता है। साहित्य व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। संस्कृति की जड़ता से उद्धार समाज की प्रथम शर्त्त है एवं साहित्य इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। वह मानव संवेदनाों को परिष्कृत करता है। संस्कृति की गत्यात्मक प्रक्रिया के कारण चिन्तन के क्षेत्र में नूतन आयामों का वह उद्‌घाटन करता है। इस प्रकार संस्कृति और साहित्य में भी परम्परा और प्रयोग की प्रणाली दुहराई जाती है।

समाज का सांस्कृतिक आधार

समाज के सांस्कृतिक आधार पर जब हम विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृति के दो कार्य हैं। प्रथमत: वैचारिक स्तर पर मानवीय चिन्तन और कल्पना में अवरोध उत्पन्न करने वाले तत्वों को पहचानना द्वितीयत: ऐसे औजारों को ईजाद करना जिससे व्यवर्धक तत्व नष्ट हो, चिन्तन का मुक्त प्रवाह विकासोन्मुख हो।

संस्कृति समाज का ऐसा गुण है जिसमें समाज जीवन के समस्त गुण अवगुणों की विस्तृत व्याख्या होती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ संस्कृति के उपादान नये गुणों का संचयन करते हैं। प्रत्येक युग के समाज के अपने विधि निषेध होते हैं, अपने सांस्कृतिक आधार होते हैं, अपने जीवन दृष्टिकोण होते हैं। समाज की भौतिकता में परिवर्द्धन विचारों को ईजाद करता है। अतीत और वर्तमान के संघर्ष से मौलिक प्रतिभा नैरन्तर्य के क्रम को अपनाती है। समाज अतीत से परे नहीं हटता, वह अतीत की प्रतिगामी विचार पद्धतियों का संवाहक होता है, वर्तमान को वह अंतिम सीमान्त नहीं मानता अपितु इन शक्तियों से जूझकर वस्तुपरक दृष्टि का मूल्यांकन करता है।

'अशोक के फूल' शीर्षक निबन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समाज के इस रूप पर प्रकाश डाला है। 'मनुष्य की जीवनीशक्ति बड़ी निर्मम है वह सभ्यता और संस्कृति के वृथामोह को रौंदती चली आ रही है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।' ३३ समाज की विकासशील परंपरा में कुछ ऐसे तत्व मिलते हैं जिनमें अपने समय की सांस्कृतिक चेतना, भावना और विचारधारा की अभिव्यक्ति होती है। छायावाद ने जब इतिवृत्तात्मकता का परित्याग किया और मनुष्य के सूक्ष्म रूप को पहचानने की चेष्टा की तो वहीं उसने मनुष्य के नैसर्गिक रूप को जानने-पहचानने एवं समझने की भी कोशिश की। छायावाद ने मनुष्य को प्रत्यय के रूप में पहचाना और इस प्रत्यय के भावनात्मक परिवेश का अन्वेषण किया। इस दृष्टि से छायावाद ने मनुष्य को पहचानने के गुणात्मक आधार बनाये। ये गुणात्मक आधार ही छायावादी संवेदना के मूल आधार हैं। छायावादोत्तर काल में इस प्रत्यय को यथार्थ रूप में तथा स्थूल रूप में, गुणात्मक पहचान को सगुणात्मक रूप में बदलने का प्रयत्न हुआ।

छायावादी संवेदना भी दो भागों में विभाजित हुई। स्थूलवादी और सगुणवादी। स्थूलवादी रूप का विकास प्रगतिवाद के अन्तर्गत हुआ जबकि सगुणवादी रूप का प्रयोगवाद के अंदर। प्रगतिवाद प्रत्यय को वस्तुसम्बन्धों के द्वारा विश्लेषित करता है, प्रयोगवादी प्रत्यय व्यक्ति की अति प्रधानता पर बल देता है। इस विकास धारा के उत्स के भीतर समाज के सांस्कृतिक आधार कार्यरत होते हैं, जिनसे प्रेरित होकर कोई प्रवृत्ति प्रकट होती है। उस प्रवृत्ति के तत्व के भीतर ये आधार मौजूद होते हैं। अस्तु तात्पर्य यह है कि सामाजिक वस्तु के विकास से संस्कृति के आधार भी परिवर्तित और विकसित होते हैं। संस्कृति की सापेक्षता में समाज के समस्त परिवर्तन को समझा जा सकता है। अवरोधक, जर्जरित तत्वों का निष्कासन चिन्तन के मुक्त प्रवाह की अनिवार्य शर्त्त है। नवीन जीवन के वर्द्धक मूल्यों के आत्मग्रहण बिना प्रवाह कुएं के बँधे जल की भांति है।

साहित्य

'विकासवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार कोई भी वस्तु परम्परा से विच्छिन्न नहीं हो सकती, जिसे हम नवीन कहते हैं। वह भी वस्तुतः वातावरण के प्रभाव से परम्परा का एक नया मोड़ होता है।' ३४ साहित्य के विकास के संबंध में भी परम्परा की यही

धारणा चरितार्थ होती है। साहित्य क्या है इसका संबंध एकत्व साधना से जोड़ते हुए द्विवेदीजी मानते हैं कि 'साहित्य की साधना निखिल विश्व के साथ एकत्व अनुभव करने की साधना है। आगे उनका कहना है 'साहित्यिक कृतियाँ' हमें सुख-दुख की व्यक्तिगत संकीर्णता और दुनियावाी झगड़ों से ऊपर ले जाती है, और सम्पूर्ण मनुष्य जाति के और भी आगे बढ़कर प्राणीमात्र के दु:ख-शोक, राग-विराग, आह्लाद-आमोद को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देती है।'३५ साहित्य एक ऐसी साधना है जिसके द्वारा मनुष्य संकीर्ण आत्म सीमा से बाहर निकल सम्पूर्ण मानव को अंगीकार करता है अर्थात सामाजिक सत्ता को स्वीकारता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध में लिखा है 'कविता मनुष्य के हृदय को व्यक्तिगत संबंध के संकुचित मण्डल के ऊपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके सौन्दर्य का रूप दिखाई पड़ता है।'३६ शुक्लजी लोकमंगल की साधना से अभिप्रेरित है और कविता को लोक सामान्य से जोड़ कर विश्लेषित करते हैं।

परम्परा और प्रयोग की सापेक्षता में साहित्य का आकलन करें तो हम पाते हैं परम्परा के अर्थ में साहित्य शब्द शास्त्र और काव्य के लिए प्रयुक्त होता था। बाद में साहित्य की विवेचना सौंदर्य, जातीय और सामाजिक प्रेरणा स्रोतों को लेकर भी की गई। कुछ साहित्यकारों ने साहित्य के अंतरंग तत्वों पर भी प्रकाश डाला और शास्त्रीय प्रणाली के रूढ़ अर्थ से उसको मुक्ति दी। साहित्य मनोरंजन और आह्लाद की सामग्री नहीं है। वह मनुष्य के जातीय, सामाजिक और सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज भी है। साहित्य भी कई-कई युगों को एक साथ जोड़कर अपनी परम्परा का नया मूल्यांकन करता है, प्रयोग के माध्यम से। 'साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग से युग को अलग नहीं करता, कई-कई युगों को एक साथ जोड़ देता है।'३७

साहित्य और समाज के स्थायी और गतिमान मानदण्ड भी इस सार्थकता पर बल देते हैं। क्योंकि साहित्य की सृष्टि सामाजिक जीवन के सौन्दर्य से प्रभावित होकर होती है। साहित्य और समाज दोनों के तत्व सतत परिवर्तनशील है। 'साहित्य के सर्वोत्तम अंश के कुछ उपकरण ऐसे हैं जो सदैव उसमें रहते हैं किन्तु कुछ अंश ऐसे भी हैं जो गत्यात्मक है और समय-समय पर आविर्भूत और संचारित होते रहते हैं। इस प्रकार

समाज और सामाजिक जीवन के श्रेष्ठ आदर्श स्थायी भी हैं और परिवर्तनशील भी। कुछ आदर्शों के सम्बन्ध में हमें कभी द्विविधा नहीं होती और कुछ आदर्श नये सामाजिक परिवेशों में नया रूप और आकार ग्रहण करके आते-जाते रहते हैं।'३८ कालजयी कृतियों और कतिपय शाश्वत तत्वों के सन्दर्भ में इन उपकरणों की सार्थकता परिलक्षित होती है।

साहित्य की सत्ता जीवन के साथ असंदिग्ध है। साहित्यकार जीवन के कार्य-व्यापारों से प्रभावित होता है। जीवन के ये कार्य-व्यापार समय-सापेक्ष होते हैं एवं चिंतन के स्तर पर नये अनुभवों का अभिनंदन भी करते हैं।

'साहित्य की मान्यताएं जीवन की मान्यताओं से विच्छिन्न नहीं होती। नयी परिस्थितियों में जब मनुष्य नये अनुभव प्राप्त करता है तो जागतिक व्यापारों और मानवीय आचारों तथा विश्वासों के मूल्य उसके मन में घट या बढ़ जाते हैं। सभी मानों के मूल में कुछ पुराने संस्कार और नये मूल्य होते हैं।'३९ साहित्यकार साहित्य की विकासशील परम्परा का अवलोकन करता है। अवलोकन हेतु नये मूल्यों की आवश्यकता होती है। वह इन नए मूल्यों को पुराने मूल्यों की कसौटी पर परखता है और सारपूर्ण अंशों को अर्जित करता है। यह सारपूर्ण अंश समकालीनता का अपरिहार्य अंग होता है।

साहित्य जीवन और समाज की अन्विति का समाहार कर सौन्दर्य की सर्जना करता है। साहित्य सौन्दर्य का उपासक है। साहित्य में वाह्य जगत् के सौन्दर्य के साथ आन्तरिक जगत के सौन्दर्य को उद्घाटित किया जाना चाहिए 'साहित्य के उपासक अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते। हम सारे वाह्य जगत को असुन्दर छोड़कर सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते। इस वाह्य असुन्दरता के 'ढूह' में खड़े होकर आंतरिक सौन्दर्य की उपासना नहीं हो सकती। हमें उस वाह्य असौन्दर्य को देखना ही पड़ेगा। निरन्न, निवर्सन जनता के बीच खड़े होकर आप परियों के सौन्दर्य की कल्पना नहीं कर सकते।'४० साहित्य मात्र सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं। साहित्यकार सामाजिक वैषम्य के यथार्थ का प्रत्यक्ष द्रष्टा होकर अपनी कलम से अधोमुखी वृत्तियों को भी साहित्य में उतारता है और प्रतिवाद कर परिवर्तन के जरिये नये मूल्यों की अवतारणा करता है ताकि स्वस्थ सौन्दर्य को वाणी मिल पाये।

इस तरह ज्यों-ज्यों जीवन और समाज के मूल्यों में परिवर्तन और विकास होता है त्यों-त्यों साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन और विकास होता है। एक विशेष दृष्टि काल अवधि के भीतर ही उत्पन्न होती है, जीवन और समाज के बदलने से दृष्टि भी बदल जाती है। साहित्य एक व्यापक शब्द है जिसकी चेतना का विस्तार जीवन और समाज के मूलस्रोतों में है। इन स्रोतों की गतिमान अवस्था से साहित्य ने भी परिवर्द्धमान उपकरणों के बीच स्वयं को फैला कर नये प्रयोग से निखारा है।

छायावादोत्तर काव्य

समय के साथ पुरातन प्रवृत्तियाँ रूढ़ पक्षों को शेष कर परिस्थितियों से अभिभूत होकर नवीन रूप ग्रहण करती चलती है। नवीन रूपों के सन्दर्भ में प्राचीन प्रवृत्ति अर्थहीन हो जाती है और नयी प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है।

साहित्य सर्वश्रेष्ठ कला है। साहित्यकार संक्रान्ति युग में ऐतिहासिक और सामाजिक जीवन की विकट स्थिति के बीच जागरूक चिंतन पद्धति के द्वारा परम्परा के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए नए सत्य का अन्वेषण करता है जिससे प्रयोग को प्रेरणा मिलती है।

कोई भी कविताधारा अपने विकास में परम्परा से विच्छिन्न नहीं होती, मौलिक नहीं होती। ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप साहित्य की क्रमागत धारा में गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन विकृतियों को निष्कासित कर एक और पारम्परिक काव्योपलब्धियों को सक्रियता देता है, दूसरी ओर नये-नये प्रयोगों को विकास का अवसर भी प्रदान करता है। छायावादोत्तर काव्य भी इसका अपवाद नहीं है। यह काव्यधारा विविध स्रोतों से गुजरी है। उत्तर छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता इन दोनों स्रोतों ने परम्परा की सार्थकता को विस्तार दिया है तथा परम्परागत मूल्यों के नवसंस्कार ग्रहण की प्रक्रिया को इनकी रचनाओं के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। छायावाद के मूल तत्वों से प्रेरणा का बल लेकर उत्तर छायावाद की धारा अधिक तीव्र और स्पष्ट होकर अभिव्यंजित हुई। साथ-साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता की उत्कट कांक्षा और मुक्ति की कामना जहाँ अतीत के मोह से भी पीछे नहीं हटती वहाँ वर्तमान की त्रासद और दारूण प्रताड़क स्थितियों में भी आगे बढ़ती है, अतीत और

वर्तमान का यह सम्मोहन ही राष्ट्रीय काव्यधारा में परम्परा और प्रयोग को निरन्तर गति देता है।

प्रगतिवाद, प्रयोगवाद नई कविता और समकालीन कविता विच्छेद की प्रक्रिया है। इसका विच्छेद अपनी परम्परा की उन प्रवृत्तियों से है जिनका सन्दर्भ अब व्यर्थ पड़ता जा रहा है। इन रचनाकारों में यत्र-तत्र परम्परा को नकारने, परम्परा के प्रति विरोध करने की चर्चा मिलती है एवं प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती है। प्रगति मानों उनका एकमात्र लक्ष्य हो गई। अपनी साहित्यिक परम्पराओं के प्रति गहरी सूझ के अभाव ने उनकी बौद्धिक और तार्किक प्रणाली को एक नये पथ का चुनाव करने को मजबूर किया।

'प्रगतिवाद कोई कल्ट (Cult) या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रास्ते खोलना, उनके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता का नहीं, परतंत्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम-रोम में भींज गई है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति हो गई है, वह सीमाओं का निर्धारण कर सकता है।'४१ जो साहित्यकार अपनी परम्परा को समझे बिना सिर्फ अपने द्वारा अन्वेषित प्रयोग में ही प्रगति को देखता है स्थापत्य की चेष्टा करता है, सीमाओं का निर्धारण करता है तो यह निर्धारित प्रयोग ही प्रगति नहीं है। क्या सचमुच साहित्यिक परंपरा में प्रगति का अवकाश नहीं होता या परम्परा के गूढ़ अर्थ को सही ढंग से विश्लेषित न कर पाने की कमजोरी प्रयोग का अवलम्बन लेती है। परन्तु सही प्रगति, परम्परा और प्रयोग का तात्विक मिश्रण है। प्रगतिवाद ने युग के नये यथार्थ के संदर्भ में अतीत के मोह को प्रतिगामी अंश समझकर नई काव्य चेतना का स्वागत किया। इस कविता में दो वर्गों का उदय हुआ। एक वर्ग मात्र सिद्धान्त का प्रचारक बन शीघ्र ही दुर्बल साबित हुआ जिसे प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है, दूसरा वर्ग अपनी परम्परा से नैतिक बल प्राप्त कर नई-नई मानवीय संभावनाओं को उजागर करने में संलग्न हुआ जिसे प्रगतिशील काव्य कहा जाता है। परम्परा की प्राणवान अभिव्यक्ति इस दल की सर्जनात्मक क्षमता में परिलक्षित होती है। अपने विकासक्रम में प्रयोगवादी भी जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है सही स्थान नहीं दे पाये हैं। इनके काव्य में भी प्रयोग का विशेष आग्रह है। प्रयोग इनके लिए साधन है। 'प्रत्येक प्रयोग कालान्तर में परम्परा बन जाता है, इसलिए जिस परम्परा में आगे प्रयोग करने की प्रेरणा नहीं, वह उतनी ही निरर्थक होती है जितना कि वह प्रयोग जो नई परम्पराएं स्थापित करने में असमर्थ होता है।'४२ यह वक्तव्य देकर भी प्रयोगवादी

अपनी पिछली परम्पराओं से नहीं जुड़ता, वह नयी समस्याओं, नये परिवेश, नये सत्य को जानने का प्रयत्न करता है प्रयोग द्वारा ही वह इस प्रयत्न को अभिव्यक्त करता है। उनके मतानुसार प्रयोग में विकास की संभावना है। अत: प्रयोग को महत्ता देने के प्रयत्न में वो परम्परा के वास्तविक महत्व का प्रतिपादन नहीं कर सके न ही उसकी सही व्याख्या करने में सफल हुए। 'प्रयोगों' की नींव पर टिका आज का अधिकांश काव्य परम्परा के अस्वीकार का काव्य है।'४३ समकालीन हिन्दी कविता में अन्धाधुन्ध तौर पर प्रयुक्त प्रयोग के विविध स्रोत भी इसी का प्रमाण है। देखा जाय तो हिन्दी काव्य में परम्परा से प्रयोग की ओर यह दिशा परिवर्तन आकस्मिक नहीं या प्रत्युत् इसके पीछे युगीन परिस्थितियाँ और सामयिक सन्दर्भ कार्यरत थे। प्रथमस्तर पर राजनीतिक जीवन में नित्य एक नई भयावह स्थिति, अस्थैर्य और आतंक के कारण सदैव संकट की चुनौती रही दूसरे स्तर पर सामाजिक और नैतिक मूल्यों के खण्डित होते स्वरूप में मनुष्य ने जब अपनी कुरूप छवि के दर्शन किये कि मनुष्य का विघटन हो रहा है। नतीजतन राजनीतिक दृष्टि से एक नये संदर्भ में अपने को विश्वस्तर पर सोचने विचारने को उसे मजबूर होना पड़ा वहीं साहित्यिक दृष्टि से परम्परा को अनास्था के भाव से देखते हुए एक विशेष प्रकार की चिंताधारा की आवश्यकता का बोध हुआ। यह बोध प्रयोग के द्वारा ही समझा जा सकता था। जैसी कि इन साहित्यकारों की मान्यता भी है परन्तु अभिव्यक्ति कभी मौलिक नहीं होती। अपने मूल रूप में वस्तु प्रकृति और समाज के भीतर मौजूद रहती है। परम्परा के रूप को समझे बिना परम्परा की सार्थकता को निरर्थक कहना ठीक नहीं है। परम्परा मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ धरोहर है। यह कभी नष्ट न होने वाली थाती है तथा साहित्यकार अपनी जरूरत के रूप में नवसंस्कार देने की चेष्टा करता है।

छायावादोत्तर काव्य इसी प्रक्रिया की उपज है। उपर्युक्त विश्लेषित व्याख्या के संदर्भ में ही छायावादोत्तर काव्य के आकलन का प्रयास करेंगे कि परम्परा और प्रयोग के सूत्र कहाँ तक सार्थक साबित हो पाये हैं।

मानवतावादी दृष्टि

आधुनिक वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन प्रणाली ने मानवतावादी दृष्टि के उन्मेष में व्यापक स्तर पर योग दिया है। मनुष्य सर्वशक्तिशाली जीव है। उसने अतीत के जड़

नियमों और रूढ़ परिपाटियों की श्रृंखलाओं के विरुद्ध संघर्षबद्ध होकर जय यात्रा की है। उसके विचार और शक्ति के भीतर सजगता और चेतना का समाहार हुआ है एवं अन्य प्राणियों की तुलना में उसने अपने को सर्वश्रेष्ठ साबित भी किया है। साहित्य का विकास साक्षी है कि साहित्य के अध्ययन का मूल केन्द्र मानव है। 'वास्तव में हमारे अध्ययन की सामग्री प्रत्यक्ष मनुष्य है। अपने इतिहास में इसी मनुष्य की धारावाहिक जययात्रा की कहानी पढ़ी है, साहित्य में इसी के आवेगों, उद्वेगों और उल्लासों का स्पंदन देखा है, राजनीति में इसकी लुकाछिपी के खेल का दर्शन किया है, अर्थशास्त्र में इसकी रीढ़ की हड्डी का अध्ययन किया है।'४४ अर्थात पुरातनता की सापेक्षता में ही मनुष्य के विकास को हम सही रूप से परख सकते हैं एवम् मानवतावादी दृष्टि को समझ सकते हैं।

मानवतावाद एक सतत् विकासशील दृष्टि है। इस दृष्टि के अनुसार मानवतावादी दृष्टि का आज जो स्वरूप मिलता है वह परम्परा की कड़ी है। उसके विकास में सहायक होने वाले आचार-विचार, व्यवहार, नैतिक-मूल्य को हर मोड़ पर परम्परा ने एक नए प्रयोग से समन्वित किया है ताकि विशिष्ट मूल्य को समर्थन प्राप्त होता रहे। इस मानवतावादी दृष्टि को परम्परा तथा प्रयोग यों कहें नवीन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निरूपित करते हुए कारलिस ने दस लक्षण गिनाये हैं -

१. मानवतावाद का विश्वास प्रकृतिवादी चिन्तन नेचुरलिस्टिक मेटाफिजिक्स में है, जिसके अनुसार समस्त अति प्राकृतिक तत्व भ्रमात्मक हैं तथा प्रकृति एक निरन्तर परिवर्तनशील भौतिक सत्ता है, जो चेतनाश्रित नहीं है।
२. मानवतावाद विज्ञान के नियमों और मान्यताओं को ग्रहण करते हुए यह मानता है कि मनुष्य प्रकृति के विकास क्रम का एक अंग है और उसके व्यक्तित्व में जड़-चेतन अभिन्न रूप से संग्रथित हैं। फलतः मृत्यु के अनन्तर उसकी कोई सत्ता शेष नहीं रह जाती।
३. मानवतावाद का चरम विश्वास मनुष्य और उसमें सन्निहित उस शक्ति में है जो अपनी समस्याओं के समाधान में साहस, अर्न्तदृष्टि, तर्क और वैज्ञानिक पद्धति के सहारे स्वतः सक्षम दिखाई देती है।
४. मानवतावाद नियतिवाद अथवा भाग्यवाद के विरुद्ध मानव के कर्म और चिन्तन स्वातन्त्रय में आस्था रखता है। अतीत की सीमाओं एवं बन्धनों से परे वह अपनी नियति का स्वयं ही निर्माता है।

५. मानवतावाद राष्ट्र, जाति, धर्म और ऐसी ही अन्य सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए एक ऐसी नैतिक व्यवस्था एवं ऐसे मानव मूल्यों में विश्वास रखता है जो मनुष्य मात्र के इहलौकिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक विकास के लिये अपेक्षित है।

६. मानवतावाद विश्वास करता है कि व्यक्ति उच्चस्तरीय जीवन की उपलब्धि वैयक्तिक परितोषों के सन्तुलन से प्राप्त करता है तथा उसका सतत् आत्म विकास ऐसे कर्म से संयुक्त रहता है जिसमें समाज का भी हित निहित रहता है।

७. मानवतावाद व्यापकतम सौन्दर्यबोध का पक्षपाती है, ऐसा जिसमें प्रकृति का सम्पूर्ण वैभव समाहित हो जाये तथा जिसमें उत्पन्न सौन्दर्यानुभूति मनुष्य जीवन के समग्र यथार्थ का अंग बन जाये।

८. मानवतावाद उस सामाजिक योजना में विश्वास रखता है जो विश्वव्यापी स्तर पर विकसनशील राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति के साथ-साथ प्रजातान्त्रिक पद्धति तथा शान्ति की प्रतिष्ठा करती जाये।

९. मानवतावाद आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है तथा तदनुरूप नागरिक अधिकारों का समर्थन करता है। इनके साथ ही वह वैज्ञानिक प्रणाली से सविवेक कार्य-संचालन पर आस्था व्यक्त करता है।

१०. मानवतावाद वैज्ञानिक प्रणाली के अनुरूप मूल स्थापनाओं पर सतत विचार करने तथा पुनः परीक्षण द्वारा उनकी वास्तविकता सिद्ध करने का पक्षपाती है। वह कोई नयी जड़ीभूत अन्ध आस्था नहीं, वरन उसका स्वरूप नये तथ्यों की खोज और तर्कसिद्ध मान्यताओं के समावेश से निरन्तर विकासमान रहता है। वह अनुभव, चिन्तन, तर्क और परीक्षण के द्वारों को बन्द नहीं मानता।४५

मानवतावादी दृष्टि के सन्दर्भ में जिन सोपानों की चर्चा की जाती है प्रकारान्तर से सभी का समावेश इन लक्षणों में निहित है। समय की प्रवहमान परिवर्तनशील सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए नये विषयों और मान्यताओं के द्वारा भी मानवता का विकास ही उसका लक्ष्य है।

मध्ययुगीन मानवतावादी दृष्टि के केन्द्र में ईश्वर की प्रधानता थी। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापों का संचालनकर्त्ता ईश्वर था। इस अन्ध आस्था ने निजी अस्तित्व को

दुर्बल तथा दैन्य कर दिया था किन्तु भौतिक प्रगति ने मनुष्य को उसकी अगाध शक्ति के उपयोग के तरीकों से पहचान दी। इससे नये मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई। मानवता को विकास का अवसर मिला। 'मनुष्य अभी तक एक देवोन्मुख अकिंचन तत्व था। अब वह सहसा सृष्टि का केन्द्र बन गया। निस्सन्देह सृष्टि का एक अंग होने के नाते भी उसके अधिकार और उत्तरदायित्व निश्चित किये जा सकते थे- धार्मिक आचार और धर्माश्रित नैतिकता में द्विधा या अनिश्चय नहीं था पर प्राकृतिक सृष्टि का केन्द्र होने पर उसके सारे प्रतिमान और मूल्य बदल गये और उसके आचार तथा नैतिकता की कसौटी ईश्वर निष्ठा न रहकर मानव निष्ठा हो गई।'४६ सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी कवियों ने मानव को लोक सेवा, जन सेवा से सम्पृक्त किया। 'वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे' शीर्षक पंक्तियों में गुप्तजी ने इसी भावना को साकार किया है। मानवता की सेवा में स्वर्ग सुख, मानवता के उज्जवल सपने में अमरता, मनुष्य में ईश्वर का वास आदि दृष्टि को प्रोत्साहन मिलता गया। 'द्विवेदी युग में हजारों' वर्षों के बाद मनुष्य की सच्ची प्रतिष्ठा पहली बार इस देश में आंकी गई। मानव ने मानव को समझा। इन्सान-इन्सान के बीच की बनावटी दीवारें ठहने लगी।४७

प्रताड़ित, मानवता पर होने वाले अत्याचारों, अन्यायों की गूंज निराला के काव्य में अधिक मुखर हुई। वह 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा', शीर्षक कविता इसका सुन्दर उदाहरण है। दीन दुर्बल को अनाचार से मुक्त करने के विरुद्ध आवाज उठाना मानवतावादी दृष्टि है। मानवता के प्रति अपना असीम प्रेम प्रकट करते हुए शोषण, दमन के रूपों को उभारते हुए सामाजिक अधोगति का चित्रांकन करते हुए मानवतावादी स्वर की प्रतिष्ठा ही निराला की काव्य संवेदना का मूल है। पन्त की 'मानव' शीर्षक कविता में इसी दृष्टि की गूँज है। यहाँ पन्त ने मनुष्य को 'यौवना-ज्वाला', 'छाया-प्रकाश', मदिरा से मादक रुधिर धार 'दृढ़ बाहु प्रलम्ब प्रेम-बन्धन', 'यौवन की मांसल स्वस्थ गन्ध', 'नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग', 'विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण' प्रभृति प्रवृतियों को वाणी दी है।४८ उनकी धारणा है कि इस दृष्टि का विकास तभी संभव है जब वह जन-सेवा रत रहे सक्रिय जीवन के प्रति नत हो, मानव-मानव के बीच समानता बोध रखता हो, उत्पीड़न, दैन्य, दुर्बल, उपेक्षित जीवन से वंचित हो। नई मानव संस्कृति का निर्माण, नये मानव के द्वारा संभव है।'४९ नवीन के काव्य में इसी आकुलता को वाणी मिली है–

'मानव को नई सुगति देने
मानवता को उन्नत करने
हम आये हैं नर के हिय में
नारायणता की द्युति भरने।'५०

यही प्रवृति उसे युद्धों में होनेवाले भयावह नर-संहार, रक्त-चाप से विकृत पड़ती मानवता की कुरूपता का दर्शन कराती है।

'चारों दिशि ज्वाला सिन्धु घिरा
धूं धूं करती लपटें अपार
बन्दी हम व्याकुल तड़प रहे
जाने किस प्रभुवर को पुकार
मानवता की दुर्गति देखें
कोई सुन ले यह आर्तनाद।'५१

नरसंहार की इस लीला से मानवता का नाश होता है। सांस्कृतिक उत्थान से संबद्ध कविता मानवतावादी है जो मानवजीवन को चोट प्रदान करने वाले तत्वों पर व्यंग्य प्रहार करती है। उसका विरोध परम्परा के उन तत्वों से है जो जीवन को पुरानी रूढ़ियों में आबद्ध करना चाहता है। नलिन विलोचन शर्मा ने एक सुथरी और सुलझी अभिव्यक्ति दी है। 'मानवतावाद किसी प्रकार के अतिवाद (ऍक्सेस) को प्रश्रय नहीं देता। मानवतावाद के अनुसार मनुष्य अपने अतीत के ज्ञान और संस्कार की सहायता से अपने वर्तमान को मर्यादित कर सकता है। संक्षेप में, मनुष्य मनुष्य है, मनुष्य जीवन की अपनी सार्थकता है।'५२ काव्य या साहित्य के विकास में यही मानवतावादी दृष्टि सदैव विकासोन्मुख रहती है।

साहित्य-बोध और प्रयोग

साहित्य बोध और प्रयोग एक ही पहलू के दो रूप है। साहित्य अपने आप में एक नयी गवेषणा नहीं है। साहित्य विकास की एक लम्बी परम्परा रही है एवं परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में उसकी धारणाओं में परिवर्द्धन होता रहा है। यहाँ एक सवाल उठता है किसी

कालविशेष के साहित्य बोध को समझते हुए मुख्य आधार क्या है? क्या हर काल का साहित्य बोध एक दूसरे से अभिन्न होता है या साहित्य बोध में भी नैरन्तर्य सन्निहित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप' शीर्षक पुस्तक में साहित्य बोध की परिचर्चा मिलती है। 'सम्पूर्ण साहित्य बोध को समझने के लिये आवश्यक है हम उन कवियों, ग्रन्थकारों और कृतिकारों की जानकारी प्राप्त करें जो उस कालविशेष के आदर्श, अनुकरणीय और व्याख्येय समझे गये थे।'५३ संसार और समाज वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ जीवन और विचार के क्षेत्र में भी मनुष्य निरन्तर नये का अर्थ ग्रहण कर रहा है। पर वह पारम्परिक मूल्यों को नवसंस्कार प्रदान तभी कर सकता है जब उसे परम्परा का बोध ठीक-ठीक हो। सर्जित तत्वों की सबल प्राण-शक्ति साहित्यबोध में नैरन्तर्य को गति देती है। इससे आगे उनका कहना है 'फिर हमे ंउन लोकप्रिय किंवदन्तियों का विश्लेषण करना भी आवश्यक हो जाता है जो श्रेष्ठ समझे जाने वाले कवियों और साहित्यकारों में प्रचलित हो गई थी।' किंवदन्तियों के वैशिष्ट्य का निदान करते हुए उनका विचार है कि 'क्योंकि इन किंवदन्तियों में लोकप्रिय साहित्यिक मान और उत्तम रचना की कसौटी विद्यमान रहती है। कभी-कभी साहित्य के पीछे अनेक प्रकार की धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियां काम करती है।'५४ साहित्यिक मानब रुग्ण मानों को छोड़कर उत्तम मानों का निर्वाह करते हैं। यह निर्वाह गुणात्मक होता है। यह गुणात्मकता प्रयोग के द्वारा परिवर्तन की सूचना देती है। प्रयोग में एक क्रमबद्धता होती है। जो प्रगति के जरिये बनी रहती है। साहित्यकार अपनी परम्परा की सुविख्यात रचनाओं और रचनाकारों से प्रेरणा ग्रहण नहीं करता, साहित्यबोध के विकास को समझने की कोशिश भी करता है ताकि वह वर्तमान को सही जान सके। साहित्यकार काल को एक अखण्ड साधना का अंग मानता है क्योंकि कवि उससे विषय व्यापकता को प्राप्त करता है। साहित्यिक मानों के साथ वह जीवन को विस्तार देने वाले विषयों का भी आकलन करता है। एक वृहत्तर सांस्कृतिक दृष्टि किसी भी रचनाकार के साहित्यबोध को व्यापक बनाती है।

मध्ययुगीनता और आधुनिकता

मध्ययुगीनता और आधुनिकता दो भिन्न युगों की चेतना है। यद्यपि दोनों में सापेक्षिक सम्बन्ध भी है। मध्ययुगीन जीवन दृष्टि का मूलाधार धर्म है जिसके केन्द्र में ईश्वर को

प्रधानता दी गई है। यहां जीवन प्रक्रिया के समस्त क्रिया-व्यापार आध्यात्मिक अनुचिंतन से प्रेरित होकर एक। निश्चित धुरी पर केन्द्रित रहे। जहाँ किसी नई संभावना के लिए कोई उदारता नहीं थी। जीवन की सार्थकता को जीव और ब्रह्म के ऐक्य में ढूंढा गया। दूसरी ओर आधुनिकता इस निश्चित केन्द्र की धुरी से प्रयाण के पर्याय रूप में अर्जित हुई। आधुनिक जीवन दृष्टि का मूलाधार मनुष्य है जिसके केन्द्र में मनुष्य को प्रधानता दी गई है एवं इसमें समस्त मानवीय क्षमताओं का तार्किक और बौद्धिक विश्लेषण कर परिवर्तित नवीन संभावनाओं के लिए विशेष आग्रह मिलता है। जैसा कि नरेन्द्र मोहन का कहना है 'आस्था केन्द्रित दृष्टि के स्थान पर विज्ञान सम्मत तर्क दृष्टि का महत्व बढ़ जाने से धर्म और अध्यात्म निर्भर मध्यकालीन जीवन दृष्टि और उससे जुड़ा बोध उत्तरोत्तर अप्रासंगिक होता गया।"५५ विज्ञान सम्मत तर्क दृष्टि ने क्रमागत चिंतन-प्रणालियों का एक ओर जीर्णता से उद्धार किया दूसरी ओर नवीन सन्दर्भों को ऐतिहासिकबोध के परिप्रेक्ष्य में प्रगति की ओर उन्मुख किया।

मध्ययुगीनता मात्र एक धर्माश्रित काव्य नहीं है। इसकी चर्चा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसमें भी जीवन्त सूत्रों को परखा है। कबीर, तुलसी, सूरदास का काव्य आज भी हमारी मानसिक अवस्थितियों पर अमिट प्रभाव अंकित किये हैं। यह काल विराट जन आंदोलन का काव्य रहा है। "इस काल को जबदी हुई मनोवृत्ति का काल नहीं कहा जा सकता।"५६ यद्यपि इसमें आदर्श की महत्ता को स्थापित किया गया है। नये साहित्य की सर्जना का यहां अभाव मिलता है। आधुनिकता मनुष्य की सचेत परिवर्तनेच्छा का परिणाम है।

आधुनिकता बदलती परिस्थितियों से अर्जित एक जीवन दृष्टि है जो विभिन्न वातावरणों से होकर गुजरी है तथा गुणात्मक परिवर्तन को प्रश्रय देकर परम्परा को भी आत्मसात् किये हैं।

'आधुनिकता मध्यकालीनता से प्रयाण और औद्योगिक प्रगति के संबंध से जुड़ी हुई एक जीवन दृष्टि है।'५७ आधुनिकता एक ऐसी दृष्टि है जो परम्परा के ऐतिहासिक सापेक्षिक बोध से उत्पन्न होती है। वह नैरन्तर्य की चेतना है। मध्यकालीनता से प्रयाण का कारण मूल्य-दृष्टि में परिवर्तन है। 'मध्यकालीन जीवन दृष्टि से आधुनिक जीवन दृष्टि में रूपांतरण मूल्यदृष्टियों का रूपांतरण है।'५८ यह दृष्टि जब देशकाल की सीमा का

अतिक्रमण करती है, काल को उसके सातत्य में स्वीकार करती है तब मध्ययुगीनता और आधुनिकता में कोई विरोध दृष्टिगोचर नहीं होता। युग की स्थितियां इन दो भिन्न दृष्टि की उपज है, मध्ययुगीनता आधुनिकता का मानदण्ड नहीं हो सकती है न मध्ययुगीनता के आधार पर आधुनिकता का मूल्यांकन संभव है। मनुष्य की विकास-यात्रा में उसकी संवेदनात्मक दृष्टि ने अपने सांस्कृतिक स्रोतों की अवलेहना न कर, गहरी निष्ठा से उसका युगानुकूल मूल्यांकन करते हुए परम्परा और प्रयोग के द्वारा उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की है, विकास को सनातन रखा है। उपर्युक्त विवेचन से यह पार्थक्य स्पष्ट दिखता है मध्ययुगीनता और आधुनिकता दो भिन्न चेतना की मन: स्थिति की उपज हैं। एक के अन्तर्गत दिव्य परम शक्ति सर्वोपरि है दूसरे में मानव सर्वोत्तम है। एक में विशेष संभावना के लिये अवकाश नहीं है दूसरे में नयी संभावनाओं के लिये पर्याप्त उदारता है।

मूल्यांकन के प्राचीन और नवीन निकष

बदलते परिवेश और संदर्भ में युग संवेदना की सापेक्षता में नवीन निकष का संगठन होता है। कोई निकष अकस्मात निर्मित नहीं होता, न ही वह दावा करता है कि वह शाश्वत है। वह प्राचीन और अन्वेषित निकषों की व्याख्या करता है और उसमें परिमार्जन और परिवर्द्धन कर नये निकषों को विकसित भी करता है।

काल सातत्य के समानान्तर व्युत्पन्न कोई भी धारा वस्तु सत्य पर आधृत होती है। जो परिवर्तित काल में अपनी गरिमा और गौरव को अक्षुण्ण नहीं रख पाती। तब नये निकष की आवश्यकता पड़ती है। यह समकालीन समाज और जीवन से आकार पाता है। क्योंकि बिना नये सत्य के प्राचीन का मूल्यांकन भी संभव नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ राम और कृष्ण काव्य की प्राचीन परम्परा को देखें। राम और कृष्ण का मूल्यांकन सदैव परब्रह्म की दृष्टि से स्वीकृत रहा परन्तु मर्यादा और सत्य के आग्रही इन दो सत्यों को नवीन निकष पर परखा गया तब उसे साधारण मनुष्य के रूप देखा गया जो परिस्थितियों से टूटकर क्षुब्ध होते हैं, जीवन की विषमता से जूझते हैं, कटु-तिक्त अनुभव करते हैं। यहाँ प्राचीन सत्य में ही वर्तमान की गतिशीलता का सन्निवेश होता है। चूंकि विकास के साथ-साथ जीवन के मूलभूत मूल्यों में भी विकास होता जाता है, अत:

मूल्यांकन के लिये नयी मान्यताएं जन्म लेती हैं और प्राचीन निकष को नवीन निकष के द्वारा मूल्यांकित कर भविष्य को भी निर्माण का अवसर मिलता है।

युगयथार्थ पर अवलम्बित मूल्यांकन के नये निकष की प्रेरणा और अन्वेषित प्राचीन निकष के मध्य सबसे बड़ा अन्तराल एक लम्बे काल का भी होता है। जो दो विशेष काल के बीच एक विभाजक रेखा खींच देता है। प्राचीन कवि या कलाकार की सीमित सौन्दर्य मंडित दृष्टि तथा विचारों और चिन्तन की संकुचित दृष्टि जिन मान्यताओं से साहित्य की विवेचना करती थी वहीं आज का कवि या कलाकार जिस युग में सांस ले रहा है, वह बहुत ही व्यापक और फैला हुआ है। उसकी दृष्टि विश्वस्तर का विस्तार नहीं है, उसके विचार में नित नये से नये अनछुये सत्यों के वरण की लालसा जागृत है। पुरानी परम्पराएं टूट रही हैं, नयी परम्पराएं बन रही हैं। इस क्रम में नये-नये निकष बनते हैं, पुराने पड़ जाते हैं फिर नये निकष की आवश्यकता महसूस होती है। जहाँ पुराने निकष का मूल्यांकन सौन्दर्यात्मक दृष्टि से विवेचित होता था वहीं क्षण की भी महत्ता ने नवीन साहित्य के मूल्यांकन हेतु नये निकषो की खोज की ताकि इस लम्बे काल के अन्तराल में नैरन्तर्य का समावेश होता रहे। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने प्राचीन और नये प्रतिमान के मूल्यांकन की समस्या पर प्रकाश डालते हुए एक स्थल पर कहा है कि 'तो क्या कोई भी ऐसा प्रतिमान नहीं निकल सकता जिस पर नये और पुराने साहित्य का मूल्यांकन संभव हो। मैं यह समझता हूँ कि यह सम्भव नहीं है क्योंकि जिन वस्तु सत्यों के आधार पर नये मूल्यों का अन्वेषण होता है वही वस्तु सत्य प्राचीन साहित्य के मूल्यों और उनके प्रतिमानों की धारणा में सम्भव नहीं है।'५९ आज साहित्यकार भावुकता और आदर्श का संवहन नहीं करता। यथार्थ पर अवलम्बित उसकी दृष्टि क्षण-क्षण परिवर्तित जीवन की नन्हीं से नन्हीं अनुभूति को भी चरितार्थ करती है। यह परिवर्तन भौतिक उन्नति के लिए अति आवश्यक भी था। इसके द्वारा ही प्रगति भी हुई।

यह परिवर्तन प्राचीन मान्यताओं, अवधारणाओं को कभी-कभी संशोधित भी करता है साथ ही परम्परा को वर्तमान के परिवेश में जीवन तत्व के रूप में ग्रहण भी करता है। उदाहरणार्थ 'एक कंठ विषपायी' या 'अन्धायुग' कृति को लें। इन कृतियों में आधुनिक जीवन मूल्यों की खोज अतीत में की गयी है और अतीत के सबल पक्ष को उद्घाटित करने के लिए वर्तमान का प्रक्षेपण किया गया है। निष्कर्षत: आज साहित्य जिस बहुमुखी प्रतिभा में संयोजित हो रहा है उसकी व्याख्या प्राचीन निकष के द्वारा सम्भव

नहीं हो सकती। उसके लिये नये निकष की खोज करनी होगी। 'आज की संवेदना की जटिलता से ही यह बात निकलती है कि हम यदि आज के नये साहित्य को समझना ही चाहते हैं और नये सत्य का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो हमें अपनी दृष्टि, अपने पुराने निकष को बदलना होगा।'६० आज की संवेदना का व्यापक फलक निश्चित सिद्धान्तों और नियमों की पद्धति में सही आंका नहीं जा सकता। नये प्रयोग की तीव्र उत्कंठा ने बंधी परिपाटी को लांघ नये परिवेश में स्वयं को प्रतिष्ठित भी किया है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ये नये की झोंक में प्राचीन और प्रतिष्ठित निकष को बिल्कुल अमान्य ठहरा दिया गया है। दसअसल जहाँ नये निकष नयी अवधारणाओं से विकसित होते हैं वहाँ प्राचीन निकष संशोधन तथा परिवर्तन से समय की सापेक्षता में उपादेयता निर्धारित करते हैं।

इतिहास दृष्टि में प्रयोग या नवीनता

यहाँ इतिहास दृष्टि से तात्पर्य रचनात्मक प्रक्रिया से है जो साहित्य से अन्तरंग रूप से जुड़ी है। इतिहास दृष्टि में प्रयोग या नवीनता का अर्थ है साहित्य विकास के दौरान घटित परिवर्तन, परिवर्तन के मूल कारण, नये की प्रेरणा के निमित्त पुरातन में संशोधन, परिवर्द्धन की रीति अपनाना। 'इतिहास परम्परा के साथ प्रारम्भ होता है और परम्परा का अर्थ है अतीत की आदतों तथा शिक्षाओं का भविष्य में संक्रमण। इतिहास मनुष्य का अपने प्रयोग द्वारा अपने परिवेश को समझने तथा उसका परिष्कार करने की दिशा में एक दीर्घकालिक संघर्ष है।'६१ इतिहास दृष्टि भी परम्परा का अंध-अनुकरण नहीं है, न सिर्फ वर्तमान की आवृत्ति। यह मनुष्य को न केवल वर्तमान के प्रति जागरूक रखती है अपितु अतीत का भी तटस्थता से निरीक्षण करती है। वह जीवन की सक्रियता को नये सन्दर्भों को अतीत के आधार पर प्रयोगनिष्ठ करती है। प्रयोग में निरन्तरता होती है। इसीलिए वह इतिहास की परंपरा को पुन: विस्थापित नहीं करता वरन प्रयोग में निहित सम्भवाना को ही अवसर देता है। 'आज का इतिहासकार इतिहास को काल-खण्डों में विभाजित करके नहीं देखता वरन् एक अविच्छिन्न गतिशील धारा के रूप में देखता है और उसकी दृष्टि में प्रत्येक महत्वपूर्ण परिवर्तन या क्रान्ति की लहर किसी एक विशिष्ट युग की उपज न होकर अपने पूर्ववर्ती समस्त युगों के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न होती है।'६२ कलाकार की प्रयोगनिष्ठ दृष्टि गतिशील धारा में गुणात्मक परिवर्तन करती है।

वह क्रमागत चेतना से विकसित होकर आगत को भी संभावना देती है। प्रयोग या नवीनता की सजगता कलाकार को नयी संवेदना के प्रति उदारता प्रदान करती है। नयी सुंवेदना में नये अनुभूत यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। इस यथार्थ के पीछे गतिशील प्रक्रिया की अनवरत संघर्ष युक्त चेतना दृष्टि कार्यरत रहती है।

छायावादोत्तर काल एक ऐसे संघर्ष का काल है जहां सामाजिक और राजनीतिक जीवन की शीघ्रता से परिवर्तित स्थितियों में एक नई दिशा का प्रक्षेपण होता है। यह दिशा विविध स्रोतों से सुसज्जित हुई। पश्चिम की प्रभावपूर्ण संस्कृति ने हमारे मानस पर गहरे प्रभाव अंकित किये फलस्वरूप सर्जन के क्षेत्र में नयी दृष्टि के माध्यम से नये प्रयोग को शक्ति मिली। पर प्रयोग की विशिष्टता भी इसी में हैं कि वह उपलब्ध की भी पुन: परीक्षा करे साथ ही नये माध्यमों को भी निर्विकार भाव से अपनाये। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है। 'ज्ञान के क्षेत्र में वही पाने का अधिकारी होता है जो देने का साम्र्थ्य रखता है। हर क्षेत्र में दूसरों का अनुकरण लज्जानक है। वही चल सकता है जो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, वह नहीं जो चलने वालों के चलने की नकल करना चाहता है। हमारा अतीत जो अभिभूत करनेवाला साबित हुआ था अब प्रेरणादायक सिद्ध हुआ है।'६३ वस्तुत: इतिहास दृष्टि में नवीनता या प्रयोग के सामंजस्य के लिए अतीत दृष्टि में निहित प्रगति का भी आकलन करना होगा जिसके द्वारा कोई दृष्टि सार्थकता सिद्ध करने में सक्षम होती है। इतिहास दृष्टि भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होकर ही प्रगति की दायी होती है तथा इतिहास दृष्टि में प्रयोग या नवीनता की आवश्यकता भी तभी पड़ती है जब समाज को नए परिवर्तन के दौर से गुजरना पड़ता है। अज्ञेय ने इस प्रकार बल दिया है, प्रमाणिकता को सिद्ध करने के लिए कि- 'परम्परा के सजीव स्पन्दन की चेतना के लिए निरी जानकारी और पाण्डित्य जरूरी नहीं है और चूंकि जागरूक वर्तमान अतीत की एक नये ढंग की और नये परिणाम में अनुभूति का नाम है जैसी और जितनी अनुभूति उस अतीत को स्वयं नहीं थी। इस प्रकार अतीत और वर्तमान के इस दुहरे अस्तित्व की उनकी पृथक वर्तमानता और उनकी एकसूत्रता की, निरन्तर अनुभूति ही ऐतिहासिक चेतना है।'६४ ऐतिहासिक चेतना की गहरी अनुभूति इतिहास में अतीत की पुरानी व्याख्या प्रस्तुत नहीं करती। वह एक नये ढंग की अनुभूति का चित्रण करती है। ऐसा वह नई अनुभूति के प्रयोग से करती है। फलत: इतिहास भी अतीत की ही निधि न

होकर वर्तमान की निरन्तरता में सम्मिलित हो जाता है। इतिहास में प्रयोग या नवीनता की जिज्ञासा हमें इतिहास में अतीत के रचनात्मक और सांस्कृतिक ग्रहण के विकास क्रम को काल क्रम से अध्ययन करने की शक्ति देती है जिससे इतिहास को भी नैरन्तर्य मिलता रहे।

छायावादोत्तर काल के समाज और साहित्य का संबंध

समाज और साहित्य दोनों का स्वरूप और विकास एक दूसरे में गुत्थमगुथ है, दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य निर्मिति होती है। साहित्यकार चेतनाशील प्राणी है उसका प्रयत्न सामयिक सक्रिय गतिविधियों से उपजी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है ताकि सामाजिक व्यवहार, आचार, विचारों, समस्याओं का यथातथ्य चित्रण स्पष्ट हो सके। 'वृक्ष जिस तरह ऋतु की अभिव्यक्ति बनते हैं उसी तरह साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी समय ऋतु को प्रस्तुत करते हैं।' ६५ जब भी कोई साहित्यकार अपने समाज की अवस्थितियों का यथार्थ आकलन करता है, परवर्ती काल में साहित्य धारा उसमें संशोधन, परिवर्द्धन और परिवर्तन की प्रणाली से नये को संस्थापित करती है तथा वर्तमान को परिमार्जित करने का प्रयास भी। क्योंकि साहित्य का अस्तित्व समाज से पृथक नहीं होता, समाज के विकास से साहित्य भी नई दिशा की ओर उन्मुख होता है।

साहित्य की प्रगति समाज में होने वाले परिवर्तन और नए अनुभवों की अभिव्यक्ति में अनुस्यूत है। प्रगति परंपरा और प्रयोग में निहित होती है। परम्परा अर्थात आज समाज परिवर्तन के जिन मोड़ों से गुजर चुका है, अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठकर नये युग की बदलती हुई परिस्थितियों में वह न केवल सामाजिक अवरोधक मूल्यों के प्रति सतर्क हुआ है वरन इन निषेधों से टूटकर भी उसने उल्लंघन करने की अदम्य शक्ति को प्रदर्शित किया है, जीर्ण, जर्जर मूल्यों के निष्कासन के बदले नवीन चेतना का अंगीकार विकास भी एक प्रक्रिया है एवं इस प्रक्रिया का उद्घाटन प्रयोग के जरिये संभव होता है। समय के बदलते परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार की यही भूमिका रही है। 'साहित्य सामाजिक संघर्षों का प्रतिबिम्ब है। सामाजिक उपयोगिता उसकी शर्त्त है। देश और समाज की पुकार और आवश्यकताओं के अनुसार देशवासियों की कलात्मक कृत्तियों को जागृत करना, समाज विद्रोही और जनता विरोधी रूढ़ियों और कुरीतियों के

प्रति विद्रोह को जन-जीवन का एक आवश्यक अंग बना देना और जन-जन के बीच एक समीपता एक बंधुत्व स्थापित करना साहित्य का ध्येय होता है।' ६६ कभी-कभी सामाजिक विघटन के मूल्यों से उबारने में साहित्य अतीत की सक्रिय कृति या चरित्रों के माध्यम से समाज में क्रान्ति का शंखनाद करता है। युग की आस्था और विचार से प्रभावित साहित्यकार कहीं भी ऐतिहासिक दृष्टि को लादता नहीं, वह ऐतिहासिक दृष्टिकोण के माध्यम से वर्तमान की संगतियों, असंगतियों को चुनौती देता है, अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान को उजागर करता है। यह ऐतिहासिक दृष्टि भी समाज और साहित्य के परस्पर संबद्ध स्वरूप पर प्रकाश डालती है।

यह आवश्यक नहीं कि साहित्य एक कालविशेष की प्रकृति को प्रतिवेष्ठित करे। उसकी प्रवृत्ति समाज के आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाव, विधि-निषेधों से प्राय: आकार ग्रहण करती है साहित्य समाज की अनुभूतियों, भावनाओं, विचारों, सम्वेदनाओं का एकीकृत रूप है जो समाज की प्रतिच्छवि को प्रतिबिम्बित करता है। यह प्रतिबिम्बित रूप समाज को एक ओर प्रभावित करता है वहाँ बदलना भी है।

छायावादोत्तर काल में समाज और साहित्य का संबंध क्या है इसका स्पष्टीकरण करने से पूर्व यह ध्यातव्य है कि यह काल विविध धाराओं से संगठित है एवं इसका विकास एक ऐसे संघर्ष का दौर है जहाँ आकर समस्त प्राचीन मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लग गये। बौद्धिक आग्रह ने युग की यथार्थ सजीव चेतना से बल ग्रहण कर नवीन उद्‌भावनाओं की प्रस्तुति की, परम्परा की गत्यात्मक प्रक्रिया से आत्म साक्षात्कार कर केवल उन्हीं अंशों को स्वीकारा जहाँ उन्हें विकास की संभावना परिलक्षित हुई। अब आदर्श के महल ढह गए, यथार्थ की धरती पर चलनेवाला जीव कटु-कड़वे सत्य से टकराया तब उसकी अनुभूतियों ने अपनी ही भोगी यातना अकड़वाहट को, अपने ही अन्वेषित दृष्टिकोणों का रूपांकन किया। छायावादोत्तर हिन्दी कविता का विकास जिन विभिन्न साहित्य प्रवृत्तियों के नाम से अभिहित किया जाता है उसे क्रमश: उत्तरछायावाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन हिन्दी कविता कहा गया है।

इन तमाम प्रवृत्तियों के मूल कारणों की खोज करें तो इन प्रवृत्तियों के काल के सामाजिक जीवन के विश्लेषण से छायावादोत्तर काल के समाज और साहित्य के संबंध पर प्रकाश डाला जा सकता है। 'साहित्य अगर दर्पण है तो उसे हर सामाजिक परिवर्तन

को प्रतिबिम्बित करना चाहिये और अगर वह जीवन की सूचना है तो भी शायद एक विधायक प्रेरणा के रूप में उसे सामाजिक परिवर्तन का दिशा-निर्देशक बन सकना चाहिए।"६७

उत्तर छायावाद का काव्य छायावाद काव्य का अनुवर्ती विकास है पर भाव एवं व्यंजना की भिन्न दृष्टि के कारण इसे उत्तरछायावाद नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह युग जर्जर नैतिक मूल्यों, अंधमर्यादाओं, मनुष्य की निजी स्वतन्त्रता का दोहन करने वाला था। जिसने उसके जीवन को अस्थिर, वेदना-निराशा से परिपूर्ण, नियति का उपहासक, मृत्योपासना क्षणभंगुरता का बोध दिया। समाज की अतिवादी सीमाओं ने आक्रोश, विद्रोह को उन्मुक्त अभिव्यक्ति का अवकाश दिया। सामाजिक मर्यादाओं और विधि-निषेधों की रूढ़ पड़ती आरक्षण मुद्रा ने व्यक्तिगत सुख–दुःख, आशा, निराशा, आसक्ति-अनासक्ति, प्रेमजन्य सफलता-असफलता को खुलकर बोलने का साहस भी दिया। 'सुमुखि ये अभिसार के पल', 'आज न सोने दूँगी बालम', 'तुम मुझमें, मैं तुममें कपोत', 'मैं नग्न वासना की गीता', 'यह दुनिया है हम दोनों है और वासना ज्वार प्रिये', 'तन का दीया, प्राण की बाती दीपक जलता रहा रात भर' आदि पंक्तियों में उन सामाजिक-समस्याओं का संकेत मिलता है जिनके कारण परिस्थितियों से पराभूत कवि में आदर्शों के खिलाफ एक सशक्त प्रतिकार मिलता है। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल के काव्य में सामाजिक परिवेश से मुक्ति की लालसा है, क्षयशीलता से उबरने का प्रयास है। 'साहित्यकार के व्यक्तित्व का निर्माण और उसकी अनुभूति तथा कल्पना एक सामाजिक देन है। सामाजिक वातावरण में ही व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता और बिगड़ता है। व्यक्ति का विकास समाज में रहकर ही होता है समाज से बाहर नहीं। प्रत्येक युग के समाज के अपने मापदण्ड होते हैं। अपनी संस्कृति तथा मर्यादा होती है। जो मानव-चेतना को प्रभावित करते रहते हैं।'६८ उत्तरछायावाद काल के कवियों का सम्पूर्ण साहित्य अपने सामाजिक वातावरण से विनिर्मित है, प्रभावित है, अनुप्रेरित है।

प्रगतिवाद काल में साहित्य को समाज से पूर्णरूपेण संबद्ध कर विवेचित किया गया है। सामाजिक यथार्थ पर टिकी नयी चेतना ने समाज को दो वर्गों- पूंजीवाद और सर्वहारा में विभाजित कर दूसरे वर्ग का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व किया। किसान, मजदूर और शोषितों के उद्धार का संकल्प इस बात का दृढ़ निश्चय था कि साहित्य सिर्फ उच्च वर्ग की विलासिता की सामग्री नहीं, साहित्य जन-सामान्य की भी निधि है, वह पूरे समाज के

लिए है। स्वयं छायावाद के कीर्ति-स्तम्भ पंत और निराला ने नई सामाजिक चेतना का स्वागत किया। पंत की 'ग्राम्या' कृति में गाँवों की रूढ़ियों, अंध रीतियों के पोषक चरित्रों, विषमताओं का वर्णन मिलता है। निराला के कुकुरमुत्ता, मास्को-डायलाग्स, रानी और कानी, बापू तुम मुर्गी खाते अभी, श्रेष्ठ सामाजिक व्यंग्य है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, आरसी प्रसाद सिंह, भगवती चरण वर्मा में सामाजिक चेतना का स्वर बहुत ही स्पष्ट है। त्रिलोचन की सशक्त वाणी इसका उत्कृष्ट प्रमाण है।

ध्वनिग्राहक हूँ मैं समाज में उठने वाली
ध्वनियां पकड़ लिया करता हूँ इस पर कोई
अगर चिढ़े तो उसकी बुद्धि है कहीं खोई
कहना यही पड़ेगा
लड़ता हुआ समाज नई आशा-अभिलाषा
नए चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।६९

इसके अलावा कुछ ऐसे रचनाकारों की कृतियाँ भी मिलती है जिन्होंने सिद्धान्तों की बनी-बनाई अवधारणाओं के आधार पर समाज को चित्रित करने की कोशिश की एवं इनकी कृतियाँ कोई प्रभावपूर्ण भूमिका अदा करने में समर्थ नहीं बन पाई पर समाज की सापेक्षता में जिन रचनाकारों ने साहित्य का मूल्यांकन किया उनका जन-सामान्य से अतीव निकट का सम्पर्क था, जिन्होंने विषमता को उघारने का माध्यम साहित्य को चुना एवं उनका प्रयास प्रभावपूर्ण साबित भी हुआ। ऐसे कवियों ने सचमुच प्रगतिवाद काव्य में नये बोधों और विचारों से न केवल साहित्य की प्रगति की ओर रुख किया अपितु समाज और साहित्य के सही अन्तर्सम्बंध को भी सर्वप्रथम उद्घाटित किया। जिसे हम किसी भी तरह झूठला नहीं सकते। एक और उदाहरण दर्शनीय है–

सड़े घूर की, गोबर की
बदबू से दब कर
महक जिन्दगी के गुलाब
की मर जाती है
रार, क्रोध, तकरार द्वेष से
दु:ख से कातर

आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराती है।७०

प्रयोगवाद काल में परिस्थितियों की विसंगतियों, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के अन्तर्वाह्य संघर्ष फलस्वरूप साहित्य में नयी काव्य चेतना का समावेश हुआ है जिसने व्यक्ति संवेदनाओं को जटिल और उलझाव विरोधी स्वरूप देकर समाज के अस्तित्व से अलग कर व्यक्ति सत्य को समझने की विवशता दी। अब समाज के स्थान पर व्यक्ति प्रमुख हो गया एवं इस व्यक्ति ने समाज की सामूहिक वृत्ति से खुद को पृथक कर आत्मगोपन में व्यक्ति सत्य को समझने का यत्न किया। 'हम नदी के द्वीप है' वक्तव्य इसी कथन का सार है। पर जहाँ तक साहित्य से आशय होता है 'साहित्य से हमारा आशय उन विशिष्ट और प्रतिनिधि रचनाओं से है जो किसी युग के भावनात्मक जीवन का प्रतिमान होती है जो समाज और सामाजिक जीवन को भली या बुरी दिशा में ले जाने का प्रबल सामर्थ्य रखती है- साहित्य समाज की सर्वाधिक सशक्त और शक्तिशाली चेतना को प्रभावित करने वाला होता है।'७१ समाज का अर्थ भी इस आशय में प्रयुक्त होता है कि जीवन की गत्यात्मकता में अवरोध डालने वाले विभिन्न स्रोत या प्रणालियाँ, जिनका समन्वित रूप समाज की संरचना करते हैं। यह सत्य है प्रयोगवाद काल में चेतनाशील साहित्यकार वृहत सामाजिक संघर्ष को पूरी ईमानदारी के साथ अंकित करने में सफल नहीं हो पाये हैं। समाज का विकासशील संघर्षवाही रूप साहित्यकारों के माध्यम से इसलिए अभिव्यक्त नहीं हो पाया क्योंकि इनकी दृष्टि परिष्कृत और विस्तृत नहीं हो पाई थी। वह अपनी ही धुरी पर केन्द्रित होकर एक वृत्त खींच रही थी जिसमें उसकी आत्मस्थापना, आत्मबोध की आवृत्ति में प्रकट हो रही थी अर्थात व्यक्ति स्वयं ही लक्ष्य था, समाज नहीं।

नयी कविता में एक बार फिर साहित्य और समाज के अंतरंग सम्बन्धों को वाणी मिली। समाज से अनुभूत संवेदन पुनः साहित्य का माध्यम हुआ। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने एक स्थान पर लिखा है 'तथाकथित प्रगतिवाद समूह की संकीर्णता के साथ सम्बद्ध है जिसमें न तो व्यक्ति का महत्व है, न व्यापकता का। इसके विपरीत आज की नयी कविता अथवा नया प्रयोग व्यापक मानवता के प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में विश्वास रखता है- उसकी संवेदना की कोई सीमित परिधि नहीं है। व्यक्ति बनाम समूह, अन्तर्मुखी बनाम समाजिक चेतना की तरह।'७२ अर्थात कवि की व्यक्तिगत अनुभूति ने जीवन के जिन अछूते संवेदनाओं का परिपार्श्व किया वह अपने समाज की अनुभूति से प्रसूत है।

'समाज से साहित्य का सम्बन्ध कुछ-कुछ वही है जो धरती से फूल का है। फूल धरती से उत्पन्न होता है, इसका यह मतलब नहीं है कि उसके डाल-पात, पंखुड़ी, वर्ण, गन्ध और रंग भी मटमैला होता है। धरती का रूप-रस में नया वर्ण, गन्ध उत्पन्न करता है। इसी तरह साहित्य में भी समाज ज्यों का त्यों नहीं झलकता, बल्कि रूपान्तरित रूप में अन्तर्निहित रहता है।'७३

साहित्य का सर्जक मनुष्य है। मनुष्य के जीवनप्रसंगों से प्रेरणा पाकर कोई साहित्य जीवंत होता है। साहित्य व्यापक काल सातत्य के समानान्तर यात्रा करते मनुष्य की सांस्कृतिक जययात्रा का द्रष्टा है साथ ही वह वर्तमान बदलती परिस्थितियों का भी चितेरा है। समकालीन हिन्दी कविता पर एक दृष्टि डालें तो विदित होता है इस युग में आस्था और विश्वास के मूल्य बिल्कुल चरमरा गये थे। अवसरवादिता, राजनैतिक भ्रष्टाचार षड़यन्त्र, रोजगार की समस्या, शिक्षित पढ़े लिखे लोगों की बढ़ती बेगारी, चीन-पाकिस्तान युद्ध, अव्यवस्था, अराजकता, जर्जर होती सामाजिक व्यवस्था प्रभृति विकराल स्थितियों ने मनुष्य की चेतना को भीतर तक प्रताड़ित कर दिया था। फलत: इस युग के साहित्य का प्रमुख स्वर उच्छेदन और विद्रोह से सम्पृक्त था। समकालीन हिन्दी कविता का प्रमुख स्वर भारतीय परिवेश की विघटनात्मक शक्तियों के विरुद्ध उत्पन्न हुआ विद्रोह और आक्रोश है जो उसकी प्रत्येक रुग्ण, सड़ी-गली मान्यताओं का पर्दाफाश कर रहा है क्योंकि वर्तमान की अनैतिक, अमानवीय, असहनीय स्थिति से मुक्ति ही मानवीय अस्तित्व को संकट से उबार सकती है। अन्यायपूर्ण व्यवस्था के समूह विनाश के बिना प्रगति भी संभव नहीं है। अरक्षित अस्तित्व के बुद्धिजीवी का साहित्य कैसे स्वस्थ तथा सबल तथ्यों को ही अपना आधार बना सकता है जब वह एक अन्तर्विरोध के युग में श्वांस ले रहा है।

छायावादोत्तर काल में अनेक रचनाकारों ने अतीत की सबल कालजयी कृतियों के माध्यम से भी अपने काल की समाजिक चेतना को परखा है। यहाँ मूल्यांकन का आधार सदा नयी दृष्टि रहती है। कालजयी कृतियों को वह युग के निकष पर कसता है, तथा युग की सापेक्ष्यता में उसका प्रक्षेपण करता है। इस प्रकार साहित्य की प्राणवत्ता एक विशेष काल की न होकर व्यापक काल में सम्माहित हो जाती है, युग की आवश्यकता के अनुसार वह स्वंय को परिष्कृत करती रहती है। यथा: मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, निराला - तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा, दिनकर- कुरुक्षेत्र

और रश्मिरथी तथा उर्वशी, पंत-लोकायतन, धर्मवीर भारती-अंधा-युग, कनुप्रिया, दुष्यन्तकुमार-एक कंठ विषपायी, नरेश मेहता-संशय की एक रात। अतीत की ओर बाँहें फैलाकर भी ये कवि वर्तमान की जमीं पर ही खड़े हुए हैं। वर्तमान की सामाजिक अवस्था को मूर्तित करते हैं। 'जहाँ यह सत्य है कि वाह्य परिस्थितियों से साहित्य अनेक स्वस्थ और अस्वस्थ प्रभाव ग्रहण करता है, वहाँ यह भी उतना सत्य है कि ये प्रभाव साहित्य की ऐतिहासिक परम्पराओं के माध्यम से अनगिनत सम्बन्धों को ग्रहण करके ही व्यक्त होते हैं तो दूसरी और साहित्य के इतिहास का तारतम्य और सम्बद्धता को पुष्ट करके सामाजिक जीवन और व्यक्ति की चेतना को भी प्रभावित करते और बदलते हैं।'७४

अस्तु साहित्य और समाज का अस्तित्व एक दूसरे से सार्थक होता है। साहित्य समाज से अलग नहीं है, न समाज के बिना साहित्य की सर्जना संभव है। चेतना सम्पन्न साहित्यकार सामाजिक गतिविधियों, उत्कर्ष-अपकर्ष का सूक्ष्मता से अध्ययन करता है, उसकी गत्यात्मक प्रक्रिया से प्रभाव ग्रहण करने के उपरान्त निजी संवेगों को प्रस्तुत करता है। उसका मूल उद्देश्य होता है पूर्व की तमाम अस्वस्थ और अप्रयोजनीय स्थितियों का निष्कासन करना, स्वस्थ और प्रयोजनीय स्थितियों का स्थापन्न ताकि समाज को एक सही मूर्त दिशा मिलती रहे। साहित्य भी समाज में नित घटित होने वाले प्रारूपों से बनता संवरता है। वह भी सर्जक है, गत्यात्मक प्रक्रिया है। वह समय की जीवन्तता का बोध करता है, जड़ता पर भी आक्षेप करता है, सक्रिय अंशों के द्वारा अपनी दिशा परिवर्तित करता है। छायावादोत्तर काल के साहित्य और समाज के अन्तर्बंध भी इसी को सूचित करते हैं कि 'वास्तविक साहित्यकार एक समष्टि पुरुष होता है। वह केवल अपनी जिन्दगी नहीं जीता, अपने समाज और अपने समय की जिन्दगी को भी प्रतिबिम्बित करता है। एक ओर वह समय की मूल ध्वनि को व्यक्त करता है तथा दूसरी ओर अपने समय और परिवेश में से उस तत्व को भी उपलब्ध और अभिव्यक्त करता चलता है जो शाश्वत है।'७५

आधार और अधिरचना

समाज और साहित्य के घनिष्ठ अंतर्बंधों की सर्वप्रथम मार्क्स ने व्याख्या प्रस्तुत की। मार्क्स ने समाज और साहित्य को एक दूसरे से विच्छिन्न न मानकर अविच्छिन्न माना।

सामाजिक सापेक्षता में साहित्य के उद्‌भव को रेखांकित करते हुए मार्क्स का कहना है 'सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में मनुष्य ऐसे सुनिश्चित संबंधों की स्थापना करता है जो अपरिहार्य हैं। इन सम्बन्धों का योग अथवा सम्पूर्णता ही समाज के आर्थिक धरातल का निर्माण करती है– उसका वह सही आधार बनाती है जिस पर एक न्यायायिक तथा राजनीतिक वाह्य संरचना खड़ी होती है और सामाजिक चेतना के सुनिश्चित रूप जिसके साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। सामान्यत: भौतिक जीवन की उत्पादन विधि ही हमारे सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया को अनुकूलित करती है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करता है।'७६

इसी क्रम में आगे चलकर आधार और अधिरचना या बुनियाद और ऊपरी इमारत के संबंध में वे कहते हैं कि 'समाज के आर्थिक आधार में परिवर्तन के साथ सम्पूर्ण विशाल वाह्य संरचना भी कमोबेश उसी तेजी के साथ रूपांतरित हो जाती है। इस प्रकार के रूपांतरों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक स्थितियों, जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान की सूक्ष्मता के साथ निर्धारित किया जा सकता है और न्यायिक, राजनीतिक, धार्मिक, कलात्मक या दार्शनिक रूपों के बीच जिनमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत रहता है और उसमें विजय प्राप्त करना चाहता है फर्क करना आवश्यक है।'७७ अधिरचना आधार के बदलने से एकदम नहीं बदल जाती। वह तो रूपांतरित हो जाती है। अधिरचना के मूलत: बदलने का अर्थ है नई में पुरानी अधिरचना की प्रक्रिया स्वत: परिवर्तित हो जाती है तथा कुछ तत्व युग की मांग के अनुसार स्वत: ही बदल जाते हैं। यह सच है कि जीवन परिवर्तनशील है। साहित्य चूंकि सर्वश्रेष्ठ कला है, प्रक्रिया है। वह संक्रान्ति युग की बदलती परिस्थितियों और संदर्भों में युग की मांग के अनुरूप, पुराने के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए नये को भी आत्मसात करता है। आधार और अधिरचना की धारणा भी इसी प्रकार विकास से सम्बद्ध है। यह साहित्य को समाज की सापेक्षता में स्वीकार करती है तथा समाज में बढ़ते वर्गभेद की भावना को हटाकर शोषितों के प्रति विशेष उदार दृष्टिकोण रखती है। आधार और अधिरचना के मध्य निहित सही दृष्टि की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए एंजेल्स ने एक जगह कहा है 'राजनीति, न्याय, दर्शन, धर्म, साहित्य कला आदि का विकास आर्थिक विकास पर आधारित है। लेकिन ये सब एक दूसरे को तथा आर्थिक आधार को भी प्रभावित करते

हैं। किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि आर्थिक परिस्थिति ही एकमात्र सक्रिय कारण है और बाकी सभी चीजें केवल निष्क्रिय परिणाम है। इसके ठीक विपरीत आर्थिक अनिवार्यता के आधार पर पारस्परिक प्रभाव की प्रक्रिया चलती है लेकिन आर्थिक प्रक्रिया ही अन्ततः प्रभावी होती है।'७८ रामविलास शर्मा 'भाषा और समाज' शीर्षक आलोचनात्मक कृति में आधार और अधिरचना की धारणा से सहमत नहीं है। अपनी असहमति प्रकट करते हुए उनका कहना है 'समस्त संस्कृति अर्थतंत्र के आधार पर बनी हुई ऊपरी इमारत है जो आधार के बदलने पर बदल जाती है।'७९ यानी आर्थिक आधार के बदलने पर अधिरचना भी बदल जाती है। 'ऊपरी इमारत के कुछ तत्व तेजी से बदलते हैं जैसे लोगों का राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ बहुत धीरे या क्रमशः बदलते हैं जैसे मनुष्य का सौंदर्यबोध।'८० यानी राजनीतिक दृष्टिकोण और सौंदर्यबोध बहुत धीरे बदलता है या क्रमशः बदलता है। रामविलास शर्मा का यह प्रतिवाद वैयक्तिक है, किसी ठोस प्रमाण को तर्कसम्मत रूप नहीं दे सकता है।

आधार और अधिरचना की मार्क्सवादी धारणा विकास को समझने में सर्वथा उपयोगी है। आर्थिक प्रक्रिया के आधार से विभिन्न पारस्परिक क्रियाओं के प्रभावी रूप को समझा जा सकता है। अस्तु 'इसमें आर्थिक आधार से कला तथा संस्कृति के बहुआयामी संबंध, मनुष्य की चेतना की क्रांतिकारी शक्ति, विचारधारा की सक्रिय भूमिका और आर्थिक आधार की सीमाओं को पार करके कालजयी बनने की कला की क्षमता की भी स्वीकृति है।'८१

विचारधारा और साहित्य

साहित्य के क्षेत्र में विचारधारा से तात्पर्य विचार से नहीं होता। विचारधारा में विचार, भावना, जीवन मूल्य का समावेश रहता है। विचारधारा भी एक अनवरत प्रक्रिया है जो युग संवेगों से प्रभावित होती है, नये विचारों और अनुभवों को चिंतन की कसौटी पर परखती है, नवीन प्रयोग के माध्यम से परम्परा में निहित सजीवता से तादात्म्य करती है। इस प्रकार विचारधारा साहित्य की सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप उन्नत और प्रगति पथ पर बढ़ती है तथा साहित्य भी स्थितिशील नहीं होता। उसका स्वरूप और प्रकृति भी विचारधाराओं से अनुप्रेरित होती है एवं संशोधन और परिवर्तन के द्वारा विकासोन्मुख रहती है।

साहित्य न तो अतीत की पुनर्व्याख्या है, न वर्तमान का अंतिम शाश्वत सत्य। साहित्य काल की अवधारणा को अखण्ड रूप में ग्रहण करता है, कालातीत होकर अपनी सार्थकता को प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। विचारधारा एक सक्रिय दृष्टि है जो जीवन को द्वन्द्वात्मक मानती है, विकास में जिसकी सार्थकता है। वह अपने विकासमान स्वरूप को समकालीन जीवन मूल्यों में ढूंढती है। सबल और जनहितैषी विचारों को वह आरोपित नहीं करती वरन् परिवेश की आवश्यकता को समझकर स्थिति में बदलाव की दृष्टि से वह नये अनुभवों का प्रक्षेपण करती है। विचारधारा की इस प्रक्रिया से साहित्य भी अनुप्रेरित होता है, परम्परा और प्रयोग में निहित नैरन्तर्य में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता है। जब हम परम्परा और प्रयोग की सापेक्षता में साहित्य के विचारधारात्मक स्वरूप की चर्चा करते हैं तो विचारधारा और साहित्य में एक विस्मयकारी संबंध परिलक्षित होता है। साहित्य और विचारधारा दोनों अपने युग की बदलती प्रतिक्रियाओं से प्रभाव ग्रहण करते हैं और उन्नत होते हैं।

'किसी समय का साहित्य उस समय के संसार के प्रति प्रचलित धारणाओं से अछूता नहीं रहता। साहित्यकार समाज और संसार के प्रति कोई न कोई दृष्टिकोण अपनाए बिना तो रचनाकार रह ही नहीं सकता। समाजविज्ञान के विकास ने उनके सामने समस्या यह खड़ी कर दी है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाए या अवैज्ञानिक।'८२ साहित्य के अनुभव समाज से निरपेक्ष नहीं होते। साहित्यकार समाज में श्वांस ग्रहण करता है, उसकी विचारधारा का मूल स्रोत समाज के जीवनमूल्यों का निरूपण करना होता है। साहित्यकार की प्रत्यक्ष दृष्टि सामाजिकसंघर्षों का तटस्थता से अवलोकन करती है, निष्क्रिय वस्तुओं का प्रतिरोध करती है, सक्रिय की स्थापना के निमित्त नये विचारों को आयात करती है। इस तरह उच्च और सबल विचार से वह अपनी परम्परा के सार्थक अंशों में ही नवीन प्रयोग करती है ताकि विचारधारा की क्रिया में वह साहित्य में भी तदानुरूप परिवर्तन को स्थान देती रहे।

'कविता की रचना के दौरान विचार अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अनुभव के गहरे स्तरों से उठे इन विचारों की तार्किक संगति में बंधकर कवि अपनी रचना दृष्टि विकसित करता है। जीवन के अनुभवों को वस्तुपरक आधार से जोड़ते हुए कवि वह समझ अर्जित करता चलता है जो उसे अपने समय में घट रही महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रति निर्णायक रूख अख्तियार करने के लिये प्रेरित करती हुई उनके रचना कर्म को

एक व्यापक सामाजिक प्रक्रिया का जरूरी हिस्सा बना देती है।'८३ हर एक साहित्यकार सामाजिक अनिवार्यता के अनुरूप साहित्य को भी प्राणवान करता है एवं विचारधारा की इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इस स्वरूप को एक दूसरे से अनुस्यूत करते हैं तो बहुत से प्रश्न स्वत: हल हो जाते हैं।

'विचारधारा एक ऐतिहासिक संदर्भ से निर्मित विशिष्ट चेतना की सम्पूर्ण गतिविधियों को कहा जा सकता है। साहित्य के इतिहास के संदर्भ में साहित्य को विचारधारात्मक रूपों में गिनने का अर्थ है साहित्य की ऐतिहासिकता और सापेक्ष स्वायतत्ता को स्वीकार करना, साहित्य और समाज के द्वन्द्वात्मक संबंध को महत्व देना और सामाजिक विकास तथा परिवर्तन के संदर्भ में साहित्य की अहम् भूमिका को रेखांकित करना।'८४ परम्परा और प्रयोग के संदर्भ में साहित्य के विकास की प्रक्रिया में वह परम्परा और नवीन प्रयोग का सूक्ष्म अध्ययन करती है क्योंकि नवीन प्रयोग सामाजिक संघर्षों से विकसित होते हैं।

परम्परा का मूल्यांकन

सर्जक प्रतिभा काल को अखण्ड रूप में अंगीकार करती है। वह पूर्ववर्ती परम्परा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करती, परम्परा का मंथन करती है सर्जनात्मक अंशों का प्रयोग के द्वारा पुनर्मूल्यांकन करती है। परम्परा जड़ अतीत नहीं, वह सक्रियता से संचालित निरन्तरता का एक ऐसा अविभाजित अंश है जो वर्तमान के लिये उपादेय है। परम्परा का मूल्यांकन भी वही करते हैं जिन्हें अपने अतीत की सही और गहरी समझ होती है। यह सूझ हमें अपनी परम्परा से नहीं बांधती, अपितु व्यतीत से परे हटकर नये बोध से जोड़ती है, इस बोध का कोई आदि या अंत नहीं होता सिर्फ एक बीच की स्थिति होती है, जिसमें प्रवाह निहित रहता है। परम्परा साहित्यकार के अनुभव और दृष्टि को अधिक परिपक्वता और विस्तार देती है। 'जो जाति प्रगतिशील होती है, अपना विकास करना चाहती है, अज्ञान और अपमान का जीवन न बिताकर संगठित रूप में आगे बढ़ना चाहती है, वही अपनी परम्परा के सही मूल्यांकन की ओर ध्यान देती है। यदि हमारे सामने समस्याओं का अस्तित्व है और हम उस अस्तित्व के प्रति सचेत हैं तो यह कैसे हो सकता है कि जिन लोगों ने हमसे पहले इन समस्याओं के निराकरण और समाधान में सारा जीवन खपा दिया, उन्हें हम भूल जाएं। वास्तविकता यह है कि वर्तमान काल में

जितना ही आर्थिक और सांस्कृतिक संकट गहरा होता जाता है उतना ही साहित्य के रूढ़िविरोधी, रीतिवादविरोधी, वैज्ञानिक विचारधारा के समर्थक मानव संस्कृति को उदात्त रूप देने वाले कारणों के प्रति उपेक्षा का व्यवहार करने में ही सुख है, सुविधा है।'८५ जब व्यक्ति परम्परा का प्रगति के कोण से मूल्यांकन करता है तब उसके सकारात्मक और जनहितैषी पहलू ही प्रधान रहते हैं किन्तु जब वह परम्परा का मूल्यांकन विद्रोह के कारण करता है तब परम्परा की सम्पूर्ण अर्थवत्ता ही निष्प्रभ, निष्प्राण हो जाती है। परम्परा के प्रति यह निर्मम दृष्टिकोण ही परम्परा की सही व्याख्या करने में असमर्थ होता है। आज मनुष्य जो कुछ भी है, वह एक दिन की यात्रा सा सुयोग नहीं वह एक दीर्घ मानव विकास यात्रा की उपलब्धि है। इस उपलब्धि में हम अतीत से भी प्रभावित है जितना वर्तमान के लिये सजग हैं। बदलते युग सन्दर्भों में निष्क्रियता और रूढ़ि से विलग होकर परम्परा का उपयोग ही सार्थक प्रयोग होता है। संस्कृति के प्रति जागरूक दिनकर की अवधारणा भी इसी मत पर प्रकाश डालती है। 'जो लोग परम्परा से पूर्ण विच्छिन्न होकर नयेपन को साधने का प्रयास करते हैं वे अपने से एक नयी प्रकार की अनैतिकता का सूत्रपात करते हैं। आज का मनुष्य यदि विकासशील है तो इसलिये नहीं कि वह नया है बल्कि उसने अपना नयापन अतीत के एक-एक कण को जुगाकर अर्जित किया है उसमें एक गहरा इतिहास बोध झिलमिलाता है जिससे उसे वर्तमान को समझने की अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है।'८६ जो लोग नयेपन की झोंक परम्परा से कटकर अस्तित्व को स्थापित करने की कोशिश करते हैं।

उनकी कोशिश निरर्थक और महत्वहीन होती है। प्रगति के लिये अतीत के सकारात्मक अंशों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मूल्यांकन से नवीन परम्परायें जन्म लेती हैं। मूल में परिवर्तन नहीं होता। केवल दृष्टि बदलती है, व्यवहार की प्रणालियाँ बदलती है, जिसमें युगीन मानसिकता की सापेक्षता में रूपान्तरण या परिवर्तन होता है। अतीत और वर्तमान में सही संगति अपनी सम्पूर्णता में हमें विकास के पथ पर मोड़ती है। 'जिस परम्परा को समय का अवशिष्ट, उच्छिष्ट कहा जाता है, दरअसल इतिहास की जलती हुई वह सच्चाई और उपलब्धि है जिसने समय तक को अतिक्रमित किया है, वह प्रगति का स्मारक नहीं उसका प्रेरक और उसकी चुनौती है ८७ परम्परा शाश्वात नहीं होती न ही वह परिवर्तन का निषेध करती है। वह तो समय को लांघ कर हर नये के भीतर से स्वत: प्रशस्त होकर चुनौती बन जाती है। 'कोई भी परिवर्तन और नया विकास परम्परा

का परित्याग और बहिष्कार करके नहीं आता, उसके प्रति नई मानसिकता पैदा करके आता है।'८८ परम्परा वर्तमान की संवेदना के समानान्तर अपनी चेतना का विस्तार कर आगे बढ़ती जाती है। प्राचीन परम्पराओं की पुर्नव्याख्या, पुनर्खोज हमें अतीत से बाहर बाँहें फैलाने की शक्ति देती है। हर प्रतिभावान कलाकार ने सदा अपनी परम्परा का परीक्षण किया है, उसकी बुनावट में कांट-छांट की है, नये सन्दर्भ, नये आकार दिये हैं, प्रयोग में निहित नैरंतर्य की रक्षा भी की है।

परम्परा और आधुनिकता

परम्परा और आधुनिकता दो भिन्न प्रयत्न दिखलाई पड़ते हुए भी एक दूसरे के सम्पूरक हैं। प्रश्न उठता है ऐसा क्यों? दरअसल परम्परा एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। वह जड़ अतीत का पर्याय नहीं होती। वह नवीन प्रयोग के माध्यम से नवीनता का वरण करती है। तथा अपने स्वरूप को परिमार्जित कर एक नये अर्थ में प्रवेश करती है। जिससे इसकी गत्यात्मकता की क्षति नहीं होती एवं नैरन्तर्य भी सुरक्षित रहता है। आधुनिकता के बीज इस गत्यात्मक प्रक्रिया में निहित रहते हैं। समयविशेष की आवश्यकतानुकूल वह अस्तित्व का निर्माण करते हैं। अतएव आधुनिकता एक सक्रिय जागरूक चेतना है जिसका निर्माण समसामयिक युगीन संवेदना के कारण आवश्यक होता है। आधुनिकता को ग्रहण करने के लिए उसे कालगत सातत्य के समानान्तर हुई विकासयात्रा के सन्दर्भ में समझना होगा। यह बात और है कि कुछ लोगों ने परम्परा की पूर्ण उपेक्षा कर आधुनिकता को ही स्वीकार किया। यह स्वीकार परम्परा का सही आकलन न कर पाने के कारण हुआ। दूसरे आधुनिकता को समग्र अवधारणा मानने वालों ने ऐसा केवल विद्रोहात्मक दृष्टिकोण के कारण किया। आधुनिकता एक गतिशील प्रक्रिया होने के कारण अपनी गति के संदर्भ परम्परा से अर्जित करती है। इस प्रकार परम्परा और आधुनिकता एक सक्रिय चेतना के दो प्रारूप है जो ऊपर से भिन्न दिखलाई पड़ते हुए भी एक ही है। परम्परा जड़ता नहीं वह तो काल सातत्य के समानांतर मनुष्य की विराट सांस्कृतिक यात्रा की अमूल्य थाती है। यही कारण है कि परम्परा और आधुनिकता एक दूसरे में गुत्थमगुत्थ है। परम्परा का स्वीकार मनुष्य प्रगति के लिये करता है। काल की अखण्डता में निहित सकारात्मक अवधारणा हमें परम्परा से भिन्न नयी अवधारणा को आत्मसात करने की शक्ति देती है। 'वह अपने से बांधती नहीं वरन अपने से बाहर जाने

का अवकाश देती है 'परम्परा तो 'है' आपके हमारे स्वीकार और अस्वीकार से परे वह 'है' और यह बोध कि वह है जिससे आगे और भिन्न हमें होना है इसका जागरूक प्रयत्न और संवेदना ही नये की पूर्वपीठिका है, अनिवार्य शर्त्त है।'८९ मनुष्य के मूल राग-विराग में कोई तात्विक अन्तर नहीं होता। युगीन संवेदना के अनुसार दृष्टि बोध से फर्क पड़ता है। कवि या कलाकार अपने आत्मबोध को ही महत्ता देते हैं। इससे अनुभूति और अभिव्यक्ति में भी अन्तर हो जाता है। अतएव आधुनिकता की प्रक्रिया रचनात्मक विस्तार के निमित्त परम्परा का मंथन कर सबल अंशों को ग्रहण करती है। 'आधुनिकतावाद का बुनियादहीन प्रयोजन ही अतीत का वर्तमान से साक्षात्कार है।'९० कोई भी सर्जना मौलिक नहीं होती। वह उपलब्ध सत्य को आधार रूप में ग्रहण करती है। वह अपनी रचनात्मकता में लब्ध और मौलिकता का सम्मिश्रण कर एक नये रंग की खोज करती है। 'परम्परा और आधुनिकता एक गतिमान यात्रा के मानिन्द है। परम्परा उस उखड़े हुए पैर के मानिन्द है जिसका खड़ा होना चलने के लिये जरूरी है और आधुनिकता चलने के लिये उठा हुआ चलता हुआ पैर है जिसके बिना विकास नहीं होता, चलना नहीं होता।'९१ आधुनिकता एक ऐसी जागरूकता है जो अतीत वर्तमान और भविष्य की सापेक्षिकता के बोध से व्युत्पन्न होती है 'आधुनिकता केवल समसामयिकता नहीं है वह एक ऐसी जागरूकता और मानसिकता है जो अतीत, वर्तमान और भविष्य की सापेक्षिकता के बोध से उत्पन्न होती है। वह खण्ड चेतना नहीं समग्र और सम्पूर्ण की चेतना है। उसके आगे न केवल कला विधा का समस्त इतिहास वरन उसके साथ-साथ युगपत मानव विकास यात्रा का समस्त इतिहास भी एक जीवित परम्परा के रूप में सदैव वर्तमान रहता है।'९२ निष्कर्षत: आधुनिकता का सम्बन्ध समसामयिक सन्दर्भों से ही नहीं है उसकी जड़ें अपने इतिहास तक फैली हैं। अस्तु अपनी परम्परा, इतिहास और संस्कृति को नकार कर कोई भी अवधारणा लम्बे समय तक पनप नहीं सकती। वह अपनी समग्रता के लिये निश्चय ही परम्परा से सम्पृक्त होकर गत्योन्मुख होगी। इतिहास और संस्कृति से परम्परा से अब तलक की यात्रा के शाश्वत और जीवनोपयोगी सार्थक अंशों का ज्ञान मिलता है। इस ज्ञान से ही हम आधुनिकता की वस्तुपरक व्याख्या करने में सफल हो सकते हैं। 'अतीत, परम्परा और सांस्कृतिक विरासत के प्रति एक अधिक जागरूक और मुक्त दृष्टि की जरूरत है। यही आधुनिकता का तकाजा है। यानि आधुनिकता संस्कृति की जड़ रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों, मिथ्या अंधविश्वासों को हटाकर उसकी मूल संचरणशील प्रकृति को

रेखांकित करती है।'९३ मुक्त दृष्टि जड़ता और रूढ़ियों का परित्याग कर संचरणशील प्रकृति को अपनाती है। मुक्त दृष्टा परम्परा और आधुनिकता में फर्क महसूस नहीं करता।वह परम्परा और आधुनिकता दोनों के प्रति समान दृष्टिकोण को अपनाकर दोनों में सामंजस्य स्थापित कर एक वृहत्तर रचनात्मक दृष्टि को विकसित होने का अवसर देता है। अस्तु परम्परा और आधुनिकता एक दूसरे से जुड़े हैं। विद्यानिवास मिश्र की एक टिप्पणी इस सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक है। 'आधुनिक संवेदना व्यर्थता की चुभन देती रहती है, परम्परा व्यर्थता को महत्तर अर्थ की भूमिका बनाती रहती है। सधती मुझसे दोनों नहीं, न परम्परा, न आधुनिकता, विभक्तात्मा ही बना रहता हूँ। पर दोनों के बीच दोनों के लिए आकुलता सालती रहती है।'९४

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, यथार्थवाद - कलावाद में पारस्परिक स्पर्धामूलक संघर्ष

यहां कलावाद का प्रयोग कला-कला के लिये सिद्धान्त के अर्थ में प्रयुक्त न होकर अभिव्यंजना के रूप में वर्णित है। कला शब्द एक समय विशेष में जुड़ी जनसामान्य की अभिव्यक्ति का द्योतक है तथा प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अन्तर्गत यथार्थवाद का स्वरूप किस प्रकार परिवर्तित हुआ। इस संदर्भ में पारस्परिक संघर्ष को उद्घाटित करने का यहाँ प्रयास है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की भाव चेतना के बीज पश्चिमी चिन्तन पर आधारित है। प्रगतिवाद मार्क्स के सामाजिक यथार्थवाद पर अवलम्बित है। प्रयोगवाद फ्रायड की अंतश्चेतनावादी प्रवृत्ति पर आधृत है। दोनों की कार्य-दृष्टि दो विपरीत जीवन दर्शन से अनुप्रेरित है। दोनों यथार्थ के प्रति आग्रही है। फलत: अभिव्यक्ति की प्रणाली भी विरोधी दिशाओं में सक्रिय होकर स्पर्धामूलक संघर्ष से गुजरती है। इसका मुख्य कारण नई परिस्थिति में नवनिर्माण की कांक्षा है, जो परम्परा के प्रति उपेक्षा का व्यवहार कर सिर्फ वर्तमान को स्वीकारती है। किसी ठोस प्रामाणिक आधार के अभाव में अपनाई गई नवीन दृष्टि ने जटिल और उग्र विरोध को प्रोत्साहन दिया, जिसका प्रमाण स्पर्धामूलक संघर्ष हुआ।

प्रगतिवाद का आविर्भाव सन ३०-३१ के आसपास जागरित नई चेतना, नये भावों, नये संस्कारों से हुआ। छायावाद के प्रणेता कवियों ने अपने खोखले आदर्शों, प्रतिगामी अंशों की नि:शेषता की उद्घोषणा की। युग के नये यथार्थ को स्वीकार किया। छायावाद ने उत्कर्ष की चरमावस्था पर पहुँच कर स्वयं एक नयी राह की खोज की, प्रगतिवाद को समर्थन दिया। प्रेमचन्द के घोषणा पत्र में यह नयी अभिव्यंजना इस रूप में मान्य है- 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'९५ अपनी साहित्यिक परम्परा के निर्जीव अंशों की कटु आलोचना करते हुए वे आगे लिखते हैं– 'जिससे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाय जिनसे हमारे हृदयों में नैराश्य छा जाय।'९६ प्रगतिवादी कलाकार ने परम्परित मान्यताओं के मात्र उपादेय अंशों का प्रतिनिधित्व किया। निर्जीव तत्वों का परित्याग कर एक नये चिंतन को ग्रहण किया। उसने सामाजिकयथार्थ को साहित्य में प्रमुखता दी। यह सामाजिकयथार्थ कैसा हो, इसकी रूपरेखा की व्याख्या करते हुए बतलाया कि वह व्यावहारिक सत्य का उद्घाटक हो, संघर्ष एवं उत्साह का प्रेरक हो, नग्न यथार्थ का समर्थक न हो, जीवन में साहित्य की अभिव्यक्ति यथार्थपरक हो क्योंकि एक ओर जहाँ 'यथार्थ के नाम से ही कवि अथवा कलाकार वस्तुगत सत्य को पकड़ सकता है, जो कला अथवा साहित्य का प्राण है। यदि लेखक साहित्य सृजन करना चाहता है तो उसे जीवन के इस यथार्थ से आँखें मिलानी ही पड़ेगी।'९७ तथा 'यथार्थवाद के सिवा कोई उपाय ही नहीं है जिसके द्वारा कला का सृजन किया जा सके।'९८ प्रगतिवाद का यथार्थ समाजसापेक्ष हैं। 'समाजवादी यथार्थवाद एक ऐसी शक्ति है जो कलाकार को जनजीवन के निकट लाकर उसे जीवन्त और सदा नये विचारों से युक्त कलासृजन की प्रेरणा देती है।'९९

यथार्थसृजन यथावत दृष्टि से समझौता नहीं करता। वह परीक्षण की कसौटी पर परखता है, जीवंत प्रक्रिया का वरण करता है। क्योंकि 'यथार्थ का आग्रह है कि लेखक यथार्थ का सच्चाई और ईमानदारी के साथ चित्रण करें। जिन्दगी में जो असंगतियां अथवा अंतर्विरोध है उन्हें समझे, प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियों के सतत चलने वाले संघर्ष को परखे और अपनी कृत्ति में उसका जीवित चित्र दे। जो नया और टिकनेवाला

है उसका समर्थन करे जो पुराना और ढहने वाला है उसका विरोध करें। यही समाजवादी दृष्टि है।'१०० प्रगतिवादी कवि जन-जीवन से सम्बद्ध चित्रों को अंकित करता है, सामाजिक विषमताओं, कुरूपताओं, विकृतियों का पर्दाफाश करता है, सड़ी-गली अवधारणाओं का विरोध करता है, समाज की वर्गगत धाराओं में शोषित वर्ग का समर्थन करता है। इस प्रकार सामूहिक समाजगत कल्याण के निश्चित उद्देश्य को प्रगतिवादी कवि सामाजिक यथार्थ के धरालत पर प्रतिष्ठित करता है एवं एक नई अभिव्यंजना की सर्जना करता है। प्रयोगवाद ने सामाजिक यथार्थ के विरुद्ध आवाज उठाई तथा व्यक्ति की अन्तश्चेतना को काव्य का आधार घोषित किया। यह व्यंजना सामाजिक जीवन प्रणाली से एकदम पृथक है। यह व्यक्ति की दमित और गर्हित कुंठाओं का यथार्थ अंकन करती है। व्यक्ति को केन्द्र मानकर व्यक्ति से सम्बद्ध जीवनसत्यों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रयोगवाद के तत्व फ्रायड के अंतश्चेतनावाद में निहित है। कवि नयी रागात्मक प्रणाली को अपनाता है, भाषा में नये प्रयोग कर नये बोध को बल देता है। अन्तश्चेतनावादियों का कहना है कि 'कविता हमारे मन पर पड़े हुए सामाजिक प्रतिबन्धों और तज्जन्य विकारों की प्रतिक्रिया है। उसमें किसी आदर्श की स्थिति नहीं होती। आज का लेखक रस या संचार का कोई लक्ष्य नहीं रखता। कविता कला नहीं है वह तो व्यक्ति के अन्तरंग संघर्ष का विस्फोट है।'१०१ व्यक्ति के अन्तरंग संघर्ष की प्रस्तुति प्रयोगवादी कवि का मुख्य प्रतिपाद्य है। व्यक्ति मन के सत्यों को उजागर करना प्रयोगवादी यथार्थ की शर्त्त है। 'उनका यथार्थ अन्तश्चेतना का यथार्थ है।'१०२ और उनकी मान्यता है कि 'काव्य हमारी अन्तश्चेतना में पड़े हुए संस्कारों, और प्रभावों का यथार्थ उन्मेष है अन्तश्चेतना की यथार्थता ही साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है।'१०३ सामाजिक यथार्थ के प्रतिरोध में इन कवियों का प्रमुख स्वर है व्यक्ति का, व्यक्ति के भीतर का, व्यक्ति के अहम का चित्रण करना जो एक संकटग्रस्त स्थिति का आत्म साक्षात्कार करते हुए निजी विशिष्टता के प्रति विशेष सजग है।

कवि युगचेतना से प्रभावित होकर युगानुरूप नयी चुनौतियों का संबल प्राप्त कर आगे की ओर अग्रसर होता है। युग परिवर्तन के साथ कवि की अनुभूतियाँ नये विचारों से अनुप्रेरित होती है पर वह नये विचारों को नैरन्तर्य से विलग कर नहीं देखती। उपर्युक्त विवेचन से दोनों धाराओं का पृथक् चिंतन एकदम स्पष्ट हो जाता है। प्रगतिवाद जहां मार्क्सवादी मत से प्रेरित होकर नई सामाजिक संस्कृति की स्थापना करना चाहता है

प्रयोगवाद वहां फ्रायड के मत से प्रेरणा लेकर व्यक्ति सत्य की। प्रगतिवाद को मार्क्सवादी विचार दृष्टि, उत्पीड़ित जन-समूह, किसान मजदूर आन्दोलन, राष्ट्रीयता के प्रति बढ़ती विद्रोहमूलक क्रान्तिकारी शक्ति से बल मिला वहीं प्रयोगवाद को फ्रायडीय अनुचिंतन, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रखर अनुचेतना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा संकटग्रस्त विश्रृंखलित मानवता से। वाह्य के प्रभाव से आकार ग्रहण करते हुए यह अभिव्यंजना जिन मूल्यों को विस्थापित करने की कोशिश करती है वह सृजन किसी ठोस प्रतिमान को रोप नहीं सका क्योंकि प्रतिस्पर्धा की भावना ने मात्र उच्छेदन में ही विश्वास प्रकट किया। जिन्होंने यह समझने की चेष्टा नहीं की कि काव्य की प्रक्रिया एक गत्यात्मक धारा है। प्रगतिवाद अपनी मान्यताओं के सही मूल्यांकन के अभाव में स्वत: शिथिल पड़ गया और प्रयोगवाद एक आन्दोलन को लेकर प्रस्तुत हुआ किन्तु यह भी कुछ समय पश्चात् एक नई रचना दृष्टि नयी कविता में विसर्जित हो गया। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की यथार्थ अभिव्यंजना में परस्पर स्पर्धामूलक संघर्ष प्रयोगवाद के आविर्भाव के कारण हुआ। रामधारी सिंह दिनकर ने इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए कहा- 'चूँकि प्रगतिवाद कवियों के सामाजिक विचार पर था और प्रयोगवाद 'शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन' था अत: जब प्रगतिवाद के नाम पर कनस्तर बजाये जाने लगे और साहित्यिक मूल्यों का ह्रास होने लगा तब यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी में कला और शैली के हिलते हुए महत्व को फिर से सुस्थिर करने के लिए कोई बड़ा प्रयास किया जाय। वही प्रयास धीरे-धीरे बढ़कर प्रयोगवाद बन गया।'१०४ सन् १९४९ के भिवंडी अधिवेशन के घोषणापत्र में इस शुद्ध साहित्यिकता का पर्दाफाश करते हुए टिप्पणी की गई थी कि सत्ताधारी वर्ग के 'भाड़े के कलम घसीटने वाले' 'कला कला के लिए' नारा देते हैं, साहित्य के अंदर व्यक्तिवादी और पतनशील प्रवृत्तियों को ऊँचे चढ़ाते हैं और कामोत्तेजक, अश्लील और रोमांचकारी और राजनीतिक दृष्टि के हीन साहित्य की रचना करते हैं। वे यह कुत्सित प्रचार करते हैं कि समाजवाद का मतलब यह होगा कि लेखक की आजादी छिन जायेगी और यह कि सोवियत रूस में लेखक को कोई आजादी नहीं है। इस पतनशील साहित्य का अराजनीतिक रूप वास्तव में उसकी प्रगतिविरोधी प्रवृत्ति को छिपाने का एक नकाब है और उसका उद्देश्य लेखक के दिमाग को खराब करना और उसे अफीम खिलाकर सुलाना है।'१०५

इन दोनों धाराओं के पारस्परिक स्पर्धामूलक संघर्ष के मूल में राजनीतिक संघर्ष की चेतना क्रियाशील थी। प्रगतिवाद सामाजिक क्रांति का कांक्षी था जबकि प्रयोगवाद रूपवाद को प्रतिष्ठित करने को बद्ध था। मैनेजर पाण्डेय का तर्क प्रमाण पुष्ट है-

'१९४७ ई० से लेकर १९५१ तक का काल देश की राजनीति और हिन्दी साहित्य में भारी उथलपुथल और गहरे संघर्ष का काल है। राजनीति में आजादी के नाम पर सत्ता हस्तांतरण के बाद सामंती पूंजीवादी शोषक शासन वर्ग से किसानों, मजदूरों का वर्ग-संघर्ष तेज हुआ जिसकी अभिव्यक्ति तेलंगाना की कृषि क्रांति में हुई। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, यथार्थवाद और कलावाद के बीच का संघर्ष तेज हुआ। जिसकी अंतिम परिणति प्रगतिशील आंदोलन के विघटन और व्यक्तिवादी, कलावादी रचनादृष्टि के रूप में प्रयोगवाद और नई कविता की स्थापना में दिखाई देती है।'१०६ हिन्दी साहित्य की प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद की परम्परा जन जीवन से जुड़कर विकसित हुई लेकिन यथार्थ विरोधी प्रयोगवादियों ने कला को प्रतिरोपित करने की चेष्टा की जिसकी परिणति उनके बीच परिव्याप्त पारस्परिक स्पार्धामूलक संघर्ष है।

प्रगतिशील आन्दोलन का विघटन

किसी भी आन्दोलन के विघटन को जानने के पहले उन तत्वों का अन्वेषण आवश्यक होता है जो उस तत्व को संगठित करते हैं तथा संगठन के पीछे निहित उद्देश्य का विश्लेषण भी अनिवार्य होता है, सोद्देश्य आन्दोलन की जड़ें अपनी संस्कृति में होती है। प्रगतिशील आन्दोलन को गत्यात्मक प्रक्रिया के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। प्रगतिशीलता का मतलब उस प्रक्रिया से है जो युगचेतना की सापेक्षता में प्रगति में वृद्धि करती है, जड़ता का विरोध करती है, प्रतिगामी अंशों का परित्याग करती है और विकासोन्मुख तत्वों को ग्रहण करती है क्योंकि कालगत सातत्य के समानान्तर उसके तत्व स्वत: बदल जाते हैं। कालगत सातत्य के समानान्तर जागृत चेतना ही प्रगति को नैरन्तर्य से संयुक्त रखती है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के स्पर्धामूलक कारणों की छानबीन से ज्ञात होता है कि इन आन्दोलन के आपसी टकराव में साहित्यिक परम्पराओं के प्रति उपेक्षा की भावना प्रधान थी। उपेक्षा में भी पूर्ण विद्रोह व्याप्त था। विद्रोह जो अतीत से होता है। विद्रोह भी दो प्रकार का होता है। एक जो परंपरा के सकारात्मक सन्दर्भों का विरोधी नहीं होता, अधोमुखी प्रवृत्तियों को नकारता है। दूसरा वह जो

परमात्मा के सकारात्मक सन्दर्भों का विरोधी होता है, प्रगति को जड़ समझता है, नयी दृष्टि अर्जित कर परम्परा का निषेध करता है। छायावाद के बाद प्रगतिशील लेखक संघ के प्रतिष्ठापकों ने घोषणा पत्र तैयार किया। उसका अनुशीलन करने से विदित होता है कि इसने यद्यपि प्रगति की चर्चा अवश्य की पर अपनी पिछली समस्त परंपरा को अग्राह्य माना। 'सारे पिछले साहित्य के बारे में कहना कि वह रूप और विषय वस्तु की दृष्टि से निस्तेज हो गया है और उसने जड़वाद तथा निर्जीव और रुग्ण विचारधारा अपना ली है– एक प्रकार से परंपराभंजन का निम्नपूंजीवादी भटकाव था।'१०७

प्रगतिवाद काव्यांदोलन अखिल भारतीय प्रगतिशील सांस्कृतिक आंदोलन था जिसमें देश के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कलाकार, विद्वत्गण, कवि, लेखकों ने अति उत्साहपूर्वक भाग लिया। उन्होंने प्रगति को साहित्य का अनिवार्य माध्यम माना क्योंकि उनकी दृष्टि में अब तक का समस्त साहित्य अपनी गरिमा, कलात्मक सौष्ठव से च्युत हो चुका था। मानव विकास यात्रा को मुड़कर देखें तो कालगत सत्य में सदा नये सत्य जुड़कर गत्योन्मुख रहे हैं। नये सत्य ने समस्त अतीत को मिथ्या साबित करने का साहस नहीं किया, न अतीत को रौंदकर आगे बढ़कर कामयाबी हासिल की। उदाहरणार्थ राम या कृष्ण के चरित्र को लें। राम और कृष्ण की विराट और गतिशील चेतना युगों से मानवमानस को आप्लावित करती रही है। आज भी वह जातीय और सामाजिक मूल्यों को नये स्वर के अनुकूल स्वर देने में समर्थ है, नये प्रयोग करती है। मैथिलीशरण गुप्त की साकेत हो या हरिऔध की प्रियप्रवास कृति। धर्मवीर भारती का अंधायुग या कनुप्रिया। नरेश मेहता का संशय की एक रात या दुष्यन्तकुमार का एक कंठ विषपायी पर जीवन के मूलभूत तत्वों में परिवर्तन आने से पूर्व निर्धारित इन धारणाओं में संशोधन किया गया। नयी सम्भावनाओं का उसमें प्रक्षेपण किया गया। इन रचनाकारों ने अध्ययन की गहन सूक्ष्मता का परिचय दिया। परम्परा का मंथन कर नये भावबोध को जन्म दिया। दूसरी ओर इस आंदोलन के प्रस्तावकों ने अपने पिछले साहित्य को निर्जीव और निष्प्राण कहकर परंपरा का भंजन ही किया। यह जानने की कोशिश नहीं कि कि जितनी सहजता, सरलता से उसने उपेक्षा की है, उसकी परिणति भी एक सीमित परिधि में सिमट कर रह जायेगी।

इसमें भी दो धाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। एक धारा अपनी जातीय अस्मिता, जातीय परंपरा, जातीय संस्कृति का मूल्यांकन करने में संलग्न रही जो किसी भी वाद को

अस्वीकार कर मूर्त और अमूर्त तत्वों में अन्तर कर जन संस्कृति के विकास के लिये जीवंत उपादानों को स्वीकार कर रही थी। दूसरी धारा ने अपनी समस्त परम्परा को अग्राह्य माना, बदलते संदर्भ में स्वतः स्फूर्त दृष्टिकोण को महत्ता दी। प्रथम धारा का नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेर प्रतिनिधित्व कर रहे थे। दूसरी धारा का अज्ञेय, शिवदान सिंह चौहान प्रतिनिधित्व करने में जुटे थे। प्रथम धारा के सहयोगियों की व्यापक चेतना का योगदान अतुलनीय है। उनके काव्य में जीवन के वे प्रसंग ही स्थान पाते है जिन्हें उन्होंने संघर्ष के द्वारा उपलब्ध किया है। दूसरी धारा के सहकर्मियों की चेतना का योगदान सिद्धान्तों की देन है। उनके काव्य में अन्वेषण से सम्बद्ध विषय का ही समाहार है जो प्रयोग से प्राप्त होते हैं।

प्रयोगवाद के उन्नायक अज्ञेय ने सर्वप्रथम प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण को राजनीतिक बिल्ला कहा और इस आंदोलन की साहित्यिकता पर भी शंका व्यक्त की। 'अज्ञेय ने प्रगतिवाद को साहित्यिक आन्दोलन मानने से ही इन्कार किया। यह स्वीकार करने के बावजूद कि प्रगतिवाद तो एक राजनीतिक बिल्ला है।'१०८ अज्ञेय के इस प्रगतिवाद विरोधी अभियान को अन्य साहित्यकारों से भी स्फूर्ति मिली। जिसका परिणाम यह निकला कि प्रथम उत्थान के समय ही इन आक्रमणों ने नींव को क्षति पहुंचाई। इधर अज्ञेय के सम्पादकत्व में तारसप्तक नामक कवितासंग्रह का प्रकाशन हुआ जिसे प्रयोग की बहुलता के कारण प्रयोगवाद नाम मिला। इसने प्रगति की बात तो दूर परम्परा की बात करते हुए भी परम्परा के अर्थ से खुद को नहीं जोड़ा। 'जो यह भूल जाते हैं कि परम्परा, कम से कम कवि के लिये, कोई ऐसी पोटली बांध कर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उटा कर सिर पर लाद लें और चल निकले। कुछ आलोचकों के लिये भले ही वैसा हो। परम्परा का कवि के लिये कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोंक बजाकर, तोड़-मरोड़ कर आत्मसात् नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना आवश्यक न हो जाए।'१०९ रचना प्रक्रिया के निकष पर इस तर्क को परखें तो इन संग्रहों में संग्रहीत कवियों ने परम्परा को ठोंक बजाकर देखने का प्रयत्न ही नहीं साधा। इन्होंने अपनी प्रखर ज्ञान प्रतिभा से विदेशी संस्कृति को पढ़ा और अपने देश की परिस्थितियों की सांघातिक अवस्था में उसको आरोपित किया। वाह्य संस्कृति के तत्वों में भला भारतीय संस्कृति कितनी श्वांस ले पाती। फ्रायड की अन्तश्चेतनावादी

प्रवृत्ति में भारतीय मिट्टी की सोंधी महक का निशान कहीं न था। रचना के स्तर पर इसी के समानान्तर नकेनवाद के प्रवर्त्तकों ने प्रपद्यवाद की खोज की। प्रयोगवाद की तरह इसकी काव्य-प्रवृत्तियां भी संदिग्ध थी। इसने भी साहित्यिक परम्परा को नहीं माना। इनकी विशिष्टता वस्तुओं को नई दृष्टि से देखने में मिलती है यानी इन नये आन्दोलनों के नेतृत्व में उभरने वाली काव्य-प्रवृत्ति में कहीं परम्परा के साहित्यिक रूपों की ओर दृष्टिपात नहीं था। उनकी सृष्टि जो अभी है, जो नहीं है दर्शन पर ही टिकी रही। जिसने प्रगतिशीलता के स्वरूप को निस्तेज कर दिया।

प्रगतिशील आन्दोलन के विघटन को अधिक व्यवस्थित रूप परिमल और प्रतीक संस्थाओं से मिला। 'परिमल' के संगठन कर्ताओं ने खुलेआम इसके विरुद्ध लिखना शुरू किया। प्रयोगवाद और नई कविता को ठोस बनाने के हथकंडे अपनाये। प्रयोगवाद ने वस्तु पक्ष के बदले कला पक्ष में अभिनव प्रयोग किये। तीसरा सप्तक के प्रकाशन से प्रगतिशील तत्व अपने ह्रास की अंतिम स्थिति पर पहुँच गया। साहित्यिक परम्परा का अनुशीलन साक्षी है कि छायावाद के तत्वों से एक नये युग के चिन्ह उभरने लगे थे। उत्तर छायावाद के कवियों ने भले ही आत्मनिष्ठता, वेदनावाद और दु:खवाद को अभिव्यक्ति दी परन्तु उसकी चेतना के संस्कार सामाजिक प्रतिबन्धों और दुराग्रहों की प्रतिछवि थे। रूढ़ और कठोर सामाजिक नियमों की अवहेलना कर प्रत्यक्ष और स्पष्ट प्रवक्ता बच्चन, नरेन्द्र और अंचल प्रभृति ने एक नया मार्ग खोला, जहां यथार्थ की सच्चाई विद्यमान थी। प्रगतिवाद ने छायावाद का विरोध नहीं किया। छायावाद के कीर्ति स्तम्भ पंत और निराला की परवर्ती सामाजिक यथार्थपरक वाणी इसका प्रमाण है। पंत और निराला के साथ-साथ दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त की राष्ट्रीय रचनाओं से भी प्रगतिवाद को नयी स्फूर्ति नयी उत्तेजना, नयी शक्ति मिली। प्रगतिवाद ने अपनी साहित्यिक परम्परा के प्रतिगामी तत्वों का निषेध किया। आदर्शवाद, व्यक्तिवाद, वेदनावाद, दु:खवाद, निराशावाद आदि खोखली प्रवृत्तियों का शमन किया। इस प्रकार अपने पूर्ववर्ती साहित्य के मूर्त एवं विकासोन्मुख तत्वों के ग्रहण तथा अधोमुखी तत्वों के परित्याग को उद्देश्य माना। पर अपनी परम्परा के इन सजीव तत्वों को घटक मानने वाले समीक्षकों ने प्रगतिवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया कहा। प्रतिक्रिया के नकार की भावना में यह संकेत स्पष्ट था कि प्रगतिशील आन्दोलन के लिये यह प्रतिक्रिया थी। नामवर सिंह का तर्क है-

'प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं है, बल्कि एक निरंतर विकासशील साहित्य धारा है जिसके लेखकों का विश्वास है कि प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अन्त: प्रेरणा से उद्‌भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है। और उसके सिद्धान्त उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं।'११० सामाजिक और सांस्कृतिक अवचेतना से उर्ध्वमुख यह निरन्तर विकासशील धारा प्रयोगवाद के युग में अवरुद्ध हो गई। फ्रॉयड की अंतश्चेतना वादी धारा, बच्चन का हालावाद आदि प्रवृत्तियाँ वाह्य चेतना पर आधारित थी। अतएव जितना तेजी से इनका उद्भव हुआ था उतनी ही तेजी से तिरोभाव भी हो गया। परन्तु इनके उद्‌भव से प्रगतिशील आंदोलन को क्षति ही पहुंची।

स्वतन्त्रता के पश्चात् अवसरवादी प्रवृत्ति के कवियों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में इस आन्दोलन से खुद को विमुख किया। अवसर पड़ने पर इससे पुन: जुड़े होने पर स्वांग भी रचा। 'एक और शासकवर्ग की ओर से तरह-तरह की सुविधाओं का प्रलोभन था और दूसरी ओर किसानों और मजदूरों से जुड़े रहने पर कठोर दमन और कठिन परिस्थितियों से गुजरने की स्थिति थी। ऐसी हालत में कुछ लोग राष्ट्रवाद के नाम पर और कुछ लोग कलावाद के नाम पर शासकवर्ग से जुड़ गए। जो कभी प्रगतिशील आन्दोलन के नेतृत्व की कोशिश कर रहे थे, वे राजनीति से तटस्थ होने का बहाना बनाते हुए कविता में आध्यात्मिकता और रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करने लगे। शासकवर्ग की ओर से अवसरों की बाढ़ थी तो अवसरवादियों का भी अभाव न था।'१११ कवियों ने सामयिक स्थिति या अवसर के अनुकूल कविता गढ़ी वह खंडित सत्य की उपज थी। इन कवियों की बंद आंखों ने अपनी गौरवशाली परम्परा से अपना रास्ता ही बदल लिया। नामवर सिंह ने आलोचना पत्रिका में एक टिप्पणी दी है– 'सन् १९४७ अनेक अर्थों में भारत के लिए एक गहरी विभाजक रेखा है। इस दिन इतिहास इस अर्थ में व्यक्त हुआ कि स्वाधीनता-आन्दोलन की एक क्रांतिकारी परम्परा खंडित हुई। उस दौर की अनेक जनवादी प्रतिज्ञाएं तोड़कर राजनीतिक नेतृत्व ने भारत के लिये पूंजीवादी विकास का रास्ता चुना। इस प्रकार समझौता और सुविधा का वह रास्ता खुला जिसने अनेक टुटपुंजिया राजनीतिक नेताओं की तरह टुटपुंजिया मध्यवर्ग के लेखकों और बुद्धिजीवियों को भी पूंजीवादी सुविधा के सोपानों का आरोही बना दिया। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान "गरीब हिन्दी के गरीब लेखकों की जो छोटी-मोटी

जनवादी परम्परा बनी थी, वह भी देखते-देखते खंडित हो गई। आजादी क्या मिली कि संचित तन के भोग का खुला अवसर उमड़ पड़ा। औरों की तो बात ही क्या पिछले दौर के अनेक जनवादी लेखक भी देर सबेर एक-एक करके सुविधा की 'क्यू' में जा खड़े हुए। इस प्रकार इन लेखकों ने अपनी ही गौरवशाली परम्परा से नाता तोड़ लिया। विडम्बना यह है कि यह सब राष्ट्र के निर्माण के नाम पर हुआ। मसलन नाम समाजवाद का लिया गया और काम पूंजीवादी रास्ते के लिये हुआ। कथनी और करनी के इस भेद ने उस राष्ट्रीय पाखण्ड को जन्म दिया जिससे लफ्फाजी पैदा होती है और जिसका असर राजनीति में ही नहीं बल्कि साहित्य में भी देखा जा सकता है।'११२

निष्कर्षत: हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन परम्परा के तत्वों का विकास करने को प्रतिबद्ध था समझौता और सुविधा के भोगी कवियों ने परम्परा को ठुकरा कर संकीर्ण मतों का प्रचार का साधन स्वीकार कर लिया। कविता की सहज प्रगति की ओर उन्मुख धारा का प्रवाह स्वत: उसके ही संयोजकों के अपने दायरों की सीमा के कारण गतिहीन हो गया। संक्षेप में प्रगतिशील आन्दोलन के विघटन के तत्व अपनी ही सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत से कटकर, पतनोन्मुख वाह्य प्रवृत्तियों से आकार ग्रहण करते रहे और अनन्तोगत्वा उसका ह्रास हो गया।

व्यक्तिवादी रचनादृष्टि के रूप में प्रयोगवाद और नई कविता

प्रयोगवाद और नई कविता की स्थापना के केन्द्र में व्यक्ति-स्वतन्त्रता, व्यक्ति-सत्ता की चेतना मौजूद है जिसके फलस्वरूप उनकी अभिव्यक्ति व्यक्तिवादी रचना दृष्टि के रूप में हुई है। यह प्रवृत्ति प्रयोग की प्रवृत्ति को लेकर अग्रसर हुई है जो परम्परा की विरोधी है। इस प्रवृत्ति का समर्थक कवि व्यक्तिचेतना को महत्व देता है। छायावाद और उत्तरछायावाद की रचना दृष्टि के मूल में भी वैयक्तिक चेतना की प्रधानता थी। छायावाद की वैयक्तिक भावना अन्तर्मुखी होकर कल्पना के सहारे फूटी वहीं उत्तर छायावाद की यह अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और मुखर रूप में प्रकट हुई किन्तु प्रयोगवाद और नई कविता का चिंतक अतिशय वैयक्तिक दृष्टिकोण को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह सामाजिक यथार्थ के विरुद्ध वैयक्तिक यथार्थ को आत्मसात करके व्यक्ति की उलझी संवेदना, नए व्यक्तित्व की खोज जैसे सिद्धान्तों की तलाश में सन्नद्ध हुई। इस व्यक्तिवादी रचना दृष्टि में न तो छायावादियों की स्वप्निलता और कल्पना का प्राचुर्य था, न उत्तर छायावादियों

की भोग और वासना की आकांक्षा की प्रबलता थी, इसमें तो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा देने का प्रयास है। 'व्यक्ति की निष्ठा, व्यक्ति की अनुभूति तथा व्यक्ति की विशिष्टता जो प्रत्येक कला की चेतन शक्ति है उन सभी भाव स्तरों को अपना निजी स्वर प्रदान करती है। यह स्वर उस आत्मबोध का प्रतिष्ठित स्वर होता है जिसमें वाह्य वातावरण की अपेक्षा आत्मानुभव पर अधिक आस्था व्यक्त की जाती है।'११३ व्यक्तिवादी रचना दृष्टि के मूल में युग की जटिल, विरोधी अन्तर्धारायें व्यक्ति की उलझी और तनावग्रस्त स्थिति में विघटित होती व्यक्ति चेतना के प्रति आस्था का आग्रह है। क्योंकि 'वैयक्तिक अनुभूति पर सामाजिक छाप न होकर सामाजिक प्रतिमानों पर वैयक्तिक छाप नये युग के सत्य के रूप में विकसित हो रही है।'११४ नये युग का सत्य सर्वप्रथम वैयक्तिक सत्य का वरण करता है। वह व्यक्ति के अनुभूत सत्य को प्राथमिकता देता है, व्यक्ति मन के अचेतन जगत के गहन से गहन स्तरों व्यक्ति मन की उलझी संवेदनाओं के सत्य को उद्‌घाटित करना कवि कर्म समझता है जिनके रूपायन में नये-नये प्रयोग हुए। 'व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा प्रयोगवाद का मूल ध्येय रहा है जिसका कारण उसका उत्फुल्ल अहं है, जो सदैव परम्परा और समाज के विरुद्ध उन्हें उकसाता रहा है। कोई भी प्रयोगवादी कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूति की उपेक्षा नहीं कर सका है। इनमें से अधिकांश कवियों की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है और वे अपने मन की निविड़ता में उलझे हुए हैं।'११५

व्यक्ति के आन्तरिक रहस्य को उद्‌घाटित करने के कारण प्रयोगवादी कवियों ने परम्परा के बंधन को अग्राह्य माना। इन्होंने व्यक्ति की निजी अनुभूतियों के प्रकाशनार्थ व्यक्तिवादी रचना दृष्टि पर विशेष बल दिया। नई कविता ने भी व्यक्ति-स्वातन्त्रय अर्थात् वैयक्तिक चेतना के सन्दर्भ में ही अपनी प्रवृत्ति को उभारा। 'नया कवि मानवव्यक्तित्व को नये बोध, नयी आस्था, नयी शक्ति और नयी चेतना से आपूरित करने के निमित्त उसे युगपरिवेशजन्य स्थिति से निकाल कर बड़ी ही प्रमाणिक एवं आनुभूतिक स्तर पर पहुंचा दिया है साथ ही उसने जिये हुए जीवन सत्यों की सहजात अनुभूतियों को अपनी वैयक्तिक चेतना के माध्यम से उद्‌घाटित किया है।'११६ वस्तुत: प्रयोगवाद और नई कविता में व्यक्तिवादी रचना दृष्टि के स्थापना की अनुभूति जातीय, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन से उद्दीप्त होकर आयी है।

छायावाद और प्रयोगवाद कड़ी के रूप में

प्रयोगवाद को छायावाद की कड़ी के रूप में विश्लेषित करने से पूर्व हमारे मन में यह सवाल उठता है कि यदि प्रयोगवाद को छायावाद की कड़ी माना जाये तो उस मान्यता का आधार क्या होगा? उस स्थिति में अर्थात परम्परा की समर्थ और सक्रिय सापेक्षता में यह सवाल और भी महत्वपूर्ण है। छायावाद खड़ी बोली की परिनिष्ठित शब्दावली में हमारे चिंतन को दर्शन विज्ञान और समाज शास्त्र की दृष्टि से एक उन्नत पीठिका प्रदान करता है। यहाँ तक कि हमारे इतिहास बोध को भी विवेकपूर्ण ढंग से जागृत करता है तथा हमारे सोच व दृष्टि को एक सकर्मक दिशा की ओर उन्मुख करता है। छायावाद की काव्य चेतना जीवन जगत की समस्याओं से वैज्ञानिक ढंग से जुड़ी हुई है, परमात्मा और इतिहास बोध की दृष्टि से वह हमारे सांस्कृतिक इतिहास का एक दस्तावेज है। प्रयोगवाद परम्परा और इतिहास बोध के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाता है। नवीन प्रयोग के द्वारा काव्य के क्षेत्र में अनछुए विषय का अन्वेषण करता है। परम्परा के विपरीत प्रयोग को महत्व देकर उसकी प्रक्रिया को अत्यधिक सुसंगठित और शक्तिशाली बनाने की चेष्टा करता है। प्रयोगवादी कवियों ने काव्य की वस्तु और शैलीशिल्प को नवीन प्रयोगों द्वारा आज के जीवन के उपयुक्त बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया। प्रयोगवादी कवियों का संसार अनास्था, निराशा और क्षण से घिरा है, अहं से संबद्ध है, अपनी सत्ता के लिए लड़ रहा है जहाँ हमारी जातीय अस्मिता की कोई भी मुद्रा अपनी पूर्ण प्रश्नाकुलता के साथ मौजूद नहीं हो पाई है। यह अपनी मूलप्रकृति में छायावाद के भाव स्थिति से एकदम अलग है। प्रयोगवादी समीक्षकों ने छायावाद की उत्कर्ष स्थिति को स्नावरी कहकर उसकी उन्नत पीठिका पर प्रहार किया है। यही नहीं वरन भावबोध, शब्दविन्यास, भावस्तर और प्रेषणीयता को अर्थहीन कहकर उसकी अस्मिता को अस्वीकार किया है पर छायावाद के काव्यतत्वों से परवर्ती तत्काल के अनुचिंतकों ने एक नया विकास किया, काव्य की विकासप्रक्रिया को नयी संज्ञा से अभिहित किया। इसे स्वीकारने में कोई अत्योक्ति नहीं है। लक्ष्मीकान्त वर्मा का तर्क निस्संग प्रतीत होता है–

'वह छायावाद तो केवल चमत्कार देखता है, आश्चर्यचकित होना जानता है, विचित्रता का कायल है और साथ ही साथ यह सारा भावबोध आत्महीनता की पंगुता पर आश्रित

है। प्रकृति के अविवेकपूर्ण प्रदर्शनों से भी वह इतना अभिभूत हो जाता है जितना कि उस जड़-प्रक्रिया से होता है और अन्त में जब वह रहस्यवादी सीमा पर पहुंचता है तो उसकी शिशुवत जिज्ञासा इन सबसे पलायन करके निष्क्रिय दिवास्वप्न के कुहासे में आत्मनिर्भर होकर परियों के देश की कहानी बुनने लगती है जिसमें केवल इस पार, उस पार का संकेत है न तो इस पार के जीवन का यथार्थ है और न उस पार की दृष्टि।'११७ छायावाद को अर्थहीन और स्नावरी सिद्ध करने के लिये दिया गया यह आपेक्ष तर्क-सम्मत नहीं है। यदि हम निराला और पंत की कृतियों के आधार पर उपर्युक्त मत की समीक्षा करें तो यह साबित होता है कि इन कवियों ने जीवन की वास्तविकताओं के अनुभव को काव्य में स्थान दिया था। निराला के काव्य में यह बोध जिस उग्र और कटु-व्यंग्य रूप में प्रस्तुत हुआ है वास्तव में वह उस समर्थक दिशा की प्रेरणा भूमि है जिस पर चलकर परवर्ती अनुयायियों ने भी अपनी चेतना को विस्तार दिया। कविता के क्षेत्र में इस पार के जीवन का यथार्थ पन्त, निराला के माध्यम से प्रकट हुआ। नये संकल्प से बद्ध होकर इन कवियों ने जीवन के यथार्थ को, समाज के यथार्थ को, एक नई सुबह की ताजगी, उत्फुल्लता दी परवर्ती काल में यह ताजगी और उत्फुल्लता अपरान्ह की प्रखरता और तेज प्रकाश में परिवर्तित हुई। इन कवियों की काव्य प्रतिभा समय की मन्द और तेज पड़ती परिस्थिति में भी अपने अभियान की ऊंचाइयों की ओर लगी थी। प्रत्येक युग अपने समय की मांग के अनुकूल तत्वों का ग्रहण व परित्याग करता चलता है। छायावाद को प्रयोगवाद की कड़ी के रूप में व्याख्यायित करने पर यह ज्ञात होता है कि छायावाद को हमारे विचारकों ने अपने बने बनाये संस्कार और अध्ययन मनन की सुनिश्चित मन्तव्य के तहत एक वायवीय विश्व का काव्य संसार माना है, स्नाबरी काल कहा है, अर्थहीन कहा है एवं इस अनुरूपता में अपना मत व्यक्त करते हुए छायावादी कवियों को पलायनवादी का हवाला भी दिया है। इसके ठीक विपरीत प्रयोगवाद की प्रयोग बहुला प्रवृत्ति को निराला के काव्य में खोजा जा सकता है।

प्रगतिवाद का स्वरूप विश्लेषण

प्रगतिवाद छायावाद के उपरान्त विकसित हुआ। युगीन स्थितियों के सन्दर्भ में इसकी विवेचना करें तो विदित होता है कि छायावाद ने स्वत: आगे बढ़कर प्रगतिवाद को

सामाजिक यथार्थवाद की सापेक्ष्यता में स्वीकारा जिससे साहित्य का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ सके। देखा जाय तो प्रगतिवाद की यह अवधारणा कोई नूतन तत्वों से विकसित नहीं थी। इससे पूर्व भारतेन्दु युग के कवियों ने सामाजिक समस्याओं का खुलकर चित्रण किया था। मनुष्य की हीनावस्था को भी चित्रित किया। द्विवेदी युग ने भी भारतेन्दुकालीन इस प्रवृत्ति में नये तत्व अनुस्यूत किये। सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं को वाणी दी। परन्तु कालक्रम के विकास के अन्तर्गत दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट दिखलाई पड़ती है पूर्ववर्तीयुग में सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति प्रमुख नहीं थी। जबकि प्रगतिवाद युग की बुनियाद सामाजिक यथार्थ ही प्रमुख प्रवृत्ति थी। यह उस काल की अनिवार्यता थी जिसका होना अवश्यम्भावी था। परम्परा के समानान्तर प्रगतिवाद इस समय अपनी समग्रता के द्वारा प्रादुर्भूत था। प्रगतिवाद को अपने आरम्भिक समय में विरोधों तथा समर्थनों का साहसपूर्वक सामना करना पड़ा जैसा कि हर नई प्रवृत्ति के साथ होता है। फिर भी इन आक्रमणों से गुजरते हुए भी प्रगतिवाद ने नई जीवन दृष्टि सामाजिक यथार्थ को प्रवाह दिया। 'छायावाद युग की समाप्ति और उसके बाद प्रगतिवाद युग के पदार्पण में भी हिन्दी साहित्य ने अपना इसी प्रकार एक स्वाभाविक चरण निक्षेप ही किया है। युग की ऐतिहासिक आवश्यकता तथा युगीन परिस्थितियों की अनिवार्य परिणति के रूप में वह ठीक उसी समय, न केवल हिन्दी के वरन अन्य भारतीय भाषाओं के भी साहित्यिक रंगमंच पर अवतीर्ण हुआ, जिस समय उसे होना चाहिए था।'११९ देश की विकट अवस्थिति से पराभूत भारतीय मनीषीयों को अब साहित्य में एक नई चेतना की अनिवार्यता का बोध हुआ जो जन-जीवन में ऊर्जा फूंक सकें ताकि साहित्य जड़ता से मुक्त हो सके और नयी करवट लेती सक्रियता में मनुष्य को अपनी शक्ति का अनुमान हो वास्तविकता से जूझते हुए वह नये पथ पर प्रशस्त हो सके। क्योंकि छायावाद की अतिशय वायवीयता, काल्पनिक उड़ान, आध्यात्मिक आवरणप्रियता एक सीमा पर पहुँचकर स्वत: कलान्त हो उठी। जब इसमें अधिक विकास की संभावना भी उन्हें दिखलाई नहीं पड़ रही थी दूसरी ओर इसकी अनुवर्ती धारा उत्तर छायावाद को भी भोगवाद, क्षणभंगुरता, निराशा, पराजय, मृत्युपासना में किसी स्वस्थ और गौरवपूर्ण जीवन का दिग्दर्शन नहीं हो रहा था। प्रगतिवाद के छायावाद और उत्तरछायावाद की ढहती अवस्थिति को देखा। क्षीण और जर्जर पड़ती परम्परा का निरीक्षण किया। तात्कालिक शोचनीय अवस्था में भारतीय परम्परा के पूर्वप्रयुक्त तत्वों को नया विस्तार दिया। चूंकि वर्तमान जीवन को यथार्थ की भूमि पर मूर्त करना

अवश्यम्भावी था। अत: साहित्य ने भारतेन्दुयुगीन परम्परा की अनेक प्रवृत्तियों में सम्मिलित सामाजिक-यथार्थ को नये आयाम में प्रतिष्ठित कर व्यापक स्तर पर उसका अनुशीलन किया। 'इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषणसामग्री ग्रहण करने के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। हमारा उद्देश्य उस इमारत में थूनियां लगाने का कदापि नहीं है जिसका कि गिरना अवश्यम्भावी है। हम तो चाहते हैं कि उस नवीन के निर्माण में सहायक होना, जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है।'१२० दरअसल प्रगतिवाद ने साहित्य की परम्परा में गुणात्मक परिवर्तन किया। इससे मनुष्य के जीवनबोध, जीवनचिंतन पर भी प्रभाव पड़ा। मनुष्य अपनी सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक दुस्सहाय अवस्था के प्रति सतर्क हुआ। जीवन की वास्तविकताओं से अब उसने मुंह नहीं मोड़ा। किसी आध्यात्मिक रहस्यवाद की शरण लेकर अपनी दुर्बलता को उबरने नहीं दिया, न ही पलायन किया। दिन-प्रतिदिन उग्र से उग्रतर होती आपत्तियों को उसने खुलकर झेला और साहित्य में इन गतिविधियों को स्थान देने का बीड़ा उठाया। निश्चय ही यह कार्य अतीव कठिन और दुष्कर था। यहां डॉ॰ रामविलास शर्मा का मत उद्धत करना समीचीन होगा। 'प्रगतिवाद सर्वथा नूतन तत्वों को लेकर ही आगे नहीं बढ़ रहा, प्रत्युत् छायावाद में जो सबल और जनहितैषी तत्व थे उनकी विरासत को भी संभालते हुए अपने विकास में प्रयत्नशील है।'१२१ मनुष्य प्रगतिशील प्राणी है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसके विचार और चिन्तन का भी तीव्रता से विकास हुआ है। प्रगति के बढ़ते चरण में मनुष्य ने ऐतिहासिक परम्परा के शाश्वत और जीवंत तत्वों की अवहेलना नहीं की। समय के अनुसार उसमें परिवर्तन के माध्यम से नवीनता का अभिनंदन किया। साहित्य और समाज एक दूसरे की सापेक्ष्यता में आकार ग्रहण करते है। सामाजिक विकास के साथ हमारी अनुभूति और अभिव्यक्ति के तरीके भी नये साँचें में ढलकर प्रकट होते हैं। प्रगतिवाद भी इसी की आवृत्ति है। छायावाद से प्रगतिवाद का विरोध नहीं था। प्रगतिवाद का विरोध निर्बल और जन हितैषी तत्वों से था जिसमें गति नहीं थी।

प्रगतिवाद मार्क्सवाद के सामाजिक यथार्थवाद सिद्धान्त का अनुयायी बना। सामाजिक यथार्थवाद से अभिप्राय है एक ऐसे शस्त्र का उपयोग जिसके द्वारा मनुष्य-मनुष्य के बीच

विभाजन करने वाली शक्ति का उच्छेदन किया जा सके। अर्थ के कारण मनुष्य में वर्गगत भेद होता है। सामाजिक यथार्थवाद यानी समष्टि एकता ही इस भेद को मिटा सकती है। इस सिद्धान्त में सामाजिक विकास का भी प्रतिपादन है। भारतीय भूमि की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं के चित्रण में मार्क्सवाद का यह सिद्धान्त बहुत ही उपयोगी साबित हुआ। भले ही यह चिन्तन प्रणाली पश्चिमी चिंतन की हो परन्तु भारतवर्ष के प्रबुद्ध साहित्यकारों और कलाकारों ने इसके सार तत्व का चिन्तन व मनन किया तथा देश की ज्वलन्त समस्याओं का निष्कर्ष इसे अपनी परम्परा के रंग में मिश्रित करके दिया। साहित्य के माध्यम से उन्होंने इस चेतना का अर्जन किया। 'अतएव प्रगतिवाद को बाहर से ढोई गई विचारधारा नहीं माना जा सकता। मार्क्सवाद समाजवाद से प्रभावित होने के बावजूद वह भारतीय मिट्टी की ही उपज, हिन्दी की गौरवशाली साहित्यिक-सामाजिक परंपरा का ही एक क्रम-विकास है।'१२२ हिन्दी कविता का विकास इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि छायावाद के प्रणेता पन्त और निराला की रचनाओं ने यथार्थ-परक चेतना को सर्वप्रथम स्वीकृति दी। पन्त की 'युगान्त', 'युगवाणी' और ग्राम्या इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। निराला की 'अणिमा', 'बेला', 'नये-पत्ते', 'कुकुरमुत्ता' में भी युग की करूण अवस्था का कटु सत्य के द्वारा प्रदर्शन है। 'निराला तथा पन्त का उक्त काव्य प्रगतिवादी कविता की उस सुदृढ़ आधारभूमि का निर्माण करता है, जिस पर नई पीढ़ी प्रगति की अपनी पताका फहराती है। कविता के क्षेत्र में प्रगति का सार्थक मन्त्रोच्चार इन्हीं के माध्यम से गूंजा, जो शनैः शनैः सघनतर होता हुआ अपनी समूची सामर्थ्य में गूंजा।'१२३ पन्त और निराला ने सामाजिक पक्षों को विशेष आग्रह से उभारा जिससे बुराईयों को रोका जा सके। वैषम्यों का उच्छेदन हो सके। उत्तरछायावाद के संस्थापक बच्चन और नरेन्द्र शर्मा पर भी प्रगतिवाद का प्रभाव पड़ा। नरेन्द्र की 'पलाश-वन' और 'मिट्टी और फूल' में ऐसी रचनाएं है। प्रगतिवाद से प्रभावित होकर प्रगति को सही मार्ग पर प्रशस्त करनेवाले नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध इत्यादि की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है, प्रगतिवाद को एक नयी चेतना में ग्रहण कर प्रसार देने में जिसे प्रगतिशील साहित्य की संज्ञा दी गयी है। नागार्जुन की 'प्यासी पथराई आँखें', 'सतरंगें पांखों वाली', 'तालाब की मछलियां', 'युग-धारा' कृतियां महत्वपूर्ण है। नागार्जुन की कवितायें सामाजिक यथार्थ पर आधृत है। ये कवितायें सामाजिक जीवन के हर प्रसंगों को छूकर यथार्थ को ही वाणी देती है। केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा', 'लोक

और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में सामाजिक जीवन का रेशा-रेशा पूर्ण ईमानदारी से चित्रित है। त्रिलोचन की 'धरती', 'दिगन्त' और 'गुलाब और बुलबुल' भी इसी मान्यता की सजीवता का उद्घाटन है। गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की रचनायें 'तार-सप्तक' और 'चांद का मुंह टेढ़ा है' मे संग्रहीत है। मध्यमवर्गीय जीवन के प्रतिबिम्बों की जीती-जागती तस्वीर खिंचना मुक्तिबोध जैसे कलाकार से संभव है।

प्रगतिवाद की सीमा रेखा कहां तक है इसकी गहराई से हमारा यहां कोई प्रयोजन नहीं है। देखा जाय तो प्रगतिवाद की धारा एक लम्बे काल तक फैली पड़ी है। यहां हमारा उद्देश्य सिर्फ इसके स्वरूप-निर्माण में सहयोगी चिन्तकों से है। जिससे प्रगतिवाद की एक स्पष्ट रूपरेखा बन सके तथा उसके विश्लेषण में कठिनाई न हो। ऊपर प्रगतिवाद के निर्माताओं की रचनाओं का विस्तार विवेचन नहीं है। इसकी यहां आवश्यकता भी नहीं थी। प्रगतिवाद के समर्थक कवियों के कृतित्व का अधिक गहराई से अध्ययन आगे विस्तार से किया गया है। यहां इतना कहना तर्कसंगत है कि प्रगतिवाद की धारा अपनी पूर्ववर्ती धारा का अगला विकास चरण है। इसे वही सही समझ सकता है जिसे भारतीय परम्परा की सही बूझ हो।

सन् १९५१ के बाद छायावादोत्तर छायवादी कविता

यहां ध्यातव्य विषय है कि क्या छायावादी कविता छायावादोत्तर युग में भी सक्रिय रही? यादि हाँ तो वे कौन से नये प्रयोग हैं जिन्हें छायावादी कविता के रूप में पहचाना जा सकता है। जैसा कि आगे भी हम इस बात की विस्तृत विवेचना कर चुके हैं कि साहित्य की परम्परा का विकास सदा ही अतीत और वर्तमान के उचित सामंजस्य से होता है। परम्परा जड़ता का पर्याय नहीं। वह वर्तमान से संवाद की स्थिति है। नन्ददुलारे वाजपेयी का अभिमत यहां उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में 'जिस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न युगों में एक दृष्टिकोण की प्रमुखता होते हुए भी दूसरे दृष्टिकोण अपवादित नहीं होते उसी प्रकार काव्य में भी समयविशेष में किसी शैली और भावधारा की प्रमुखता होते हुए भी दूसरी शैली और भावधाराओं का उच्छेद नहीं किया जा सकता।'१२४ छायावादोत्तर युग में छायावादी कविता भी एक ऐसा ही अपवाद है। छायावादोत्तर युग नये-नये प्रयोग का युग है। यह ठीक भी है कि प्रगति के बढ़ते चरण में वह जीवंत परम्परा निर्वाह के साथ वस्तु सत्य पर आधृत प्रयोग को स्थापित करने

को दृढ़ प्रतिज्ञ परन्तु वह सिर्फ अन्वेषित सत्य को ही चिरन्तन नहीं मान लेता। अन्वेषित सत्य के साथ उनमें पूर्ववर्ती काव्यपरम्परा का प्रभाव भी कहीं न कहीं अवश्य रहता है। छायावादोत्तर काव्यधारा में छायावादी चेतना के तत्व भी सदैव बिखरे मिलते हैं। सर्वप्रथम हम अज्ञेय को लें। अज्ञेय प्रयोगवादी कवि हैं। प्रयोग के प्रति उनका झुकाव अधिक है। पर उनकी रचनाप्रक्रिया भी छायावाद की प्रभाव शक्ति से अछूती न रह सकी। छायावादी तत्वों को अज्ञेय की काव्यप्रक्रिया में ढूंढा जा सकता है। अज्ञेय में भी छायावादी कवियों की प्रेम भावना का प्रसार देखिये।

'भटकी सी मेरी अनामिका
सीमन्त टोहती है तेरा
है जहां किसी एकाकी ने
संयोग लिखा तेरा-मेरा।'१२५

अज्ञेय ने नियतिवादी दृष्टि को भी वाणी दी है-

'शोर से पागल जगत में
घुमड़ती है वेदनाएं
घोंटती है नियति मुट्ठी
वे न बाहर छूट आए।'१२६

या फिर -

'द्वीप हैं हम
यह नहीं है शाप, यह अपनी नियति है।'१२७

शमशेर बहादुर सिंह का भी अभिनव प्रयोग के सर्जकों में अप्रतिम स्थान है। प्रगति के सही द्रष्टा शमशेर का काव्य भी छायावादी चेतना का अनुवर्तक है।

"कौन विहान
बीते जन्म के
आज की संध्या में गतिमान ?

झिलमिल दीप से जल
आज की
सुंदरताओं में लयमान ?
अलस तापस मौन
भर स्वर में
करते
क्षीण निर्झर का - सा करूण आह्वान।"१२८

धर्मवीर भारती में भी प्रणय, रूपासक्ति, निराशा के बीज यत्र-तत्र विद्यमान है। भारती की काव्यचेतना भी छायावाद के गहरे रंगों के छीटों से मुक्त नहीं हो पाई। भावानुभूति और भाषा शैली की दृष्टि से छायावादी परम्परा का प्रभाव बहुत हद तक उनको आकर्षण में बांधे हैं –

"तुम जगी सुबह या जगा तुम्हारी पलकों बीच विहान।
पुलकित पलकों की प्रिय पांखुरियों पर
लो सहसा ढलक गयी शबनमी नजर
अंगड़ाई ली वह चले पवन
गूंजें भंवरों के गान।"१२९

अथवा –

"इन फीरोजी होठों पर
बरबाद मेरी जिंदगी
इन फीरोजी होठों पर
गुलाबी पांखुरी पर एक हलकी सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसात की दुपहर
इन फीरोजी होठों पर।१३०

गिरिजाकुमार माथुर भी इसी धारा के अनुयायी हैं। माथुर जी की रचनाओं में भी प्रेम, निराशा, वेदना की विवृति है। उत्तर-छायावादी कवियों की तरह उनमें भी मांसलता के चित्रण मिलते हैं-

"उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छांहों का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके, वह रूका हुआ चुम्बन अंकित था।"१३१

जगदीश गुप्त यद्यपि नयी कविता के कवि हैं। पर छायावादी भावबोध से वह भी असम्पृक्त नहीं रह सके-

"नभ सर में उठती विभा लहर
जाते मुकुलित दल छहर-छहर
बहता सुगन्ध मधु मुग्ध पवन
खिल उठता निशि का पंकज वन।"१३२

छायावादोत्तर छायावादी संस्कार की कविता तथा छायावादोत्तर काव्य में छायावादी तत्व के स्वरूप पर रोशनी डालें तो एक बात समझ में आती है कि छायावादी कविता अपने देश की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक स्थितियों की सापेक्ष्यता में उपस्थित थी एवं उस काल की स्थितियों के अनुकूल होने के कारण ही वह इतना प्रभावपूर्ण और गौरवशाली हुआ। इसको किसी भी रूप में अस्वीकारा नहीं जा सकता। पन्त, निराला, प्रसाद और महादेवी ने व्यक्तिगत वेदना का पुट देते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों का आश्रय लेकर एक अभिनव व्यंजना का काव्य क्षेत्र में स्वागत किया. परवर्ती काल में भी इसका अनूठा प्रयोग अपनी सबलता से दूसरे कवियों को अपने मोह में खिंचता रहा। पर छायावादोत्तर छायावादी कविता में इसकी प्रभविष्णुता की अमिट छाप थी। युग-यथार्थ के प्रतिकूल होने से इसे वह कीर्ति लब्ध न हो सकी जो छायावाद को अपने युग में उपलब्ध हुई।

'सन् १९४७ के बाद जो नया छायावाद सामने आया उसका यथार्थवाद से जरा भी मेल न था, इसके विपरीत वह यथार्थवाद के विरोध में उससे बच निकलने के प्रयास में आया था। पुराना छायावाद देश की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुकूल था नया छायावाद स्वाधीन भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के प्राय: विपरीत था। यही कारण है कि प्रसार में विराट होते हुए भी पुराने के मुकाबले नया छायावाद इतना उथला है।"१३३ किन्तु इसमें हमें सन्देह नहीं कि भले ही छायावादोत्तर

छायावादी कविता उथली हो। परन्तु वह छायावादी कविता का एक नया प्रसार है। नयी छायावादी कविता युग से उपजा बोध भी नहीं है, एक सतत प्रवहमान चेतना धारा का ग्रहण है। यहां नये कवियों ने छायावाद को अतीत दृष्टि के रूप में नहीं देखा, न ही एक नयी दृष्टि को रूपाकार देने की उन्हें लालसा थी। उन्होंने छायावादी कविता को विस्तार के अर्थ में ही स्वीकार किया।

प्रगतिवादी कविता

छायावाद की अतिशय वायवी कल्पना, सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि, निराशावाद, संस्कृत गर्भित शब्दावली का विरोध परवर्ती युग की माँग थी। प्रगतिवाद के पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों के रूढ़ एवं प्रतिगामी तत्वों का विरोध किया तथा साहित्य के स्वस्थ और विकासोन्मुख तत्वों को आत्मसात किया। परन्तु इस धारा के तत्व सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों में निहित थे। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रस्तोता कार्यकर्त्ताओं ने युग-सापेक्ष परिस्थितियों के तकाजे को महसूस कर प्रथम घोषणा पत्र में लिखा- 'अब साहित्य को अप्रगतिशील अवांछित तत्वों से मुक्ति दी जाए, धरती के ठोस धरातल से जोड़ा जाय, परम्परा के अधोमुखी रूझानों से परे हटकर प्रतिग्राह्य तत्वों को ग्रहण किया जाय पर वह समकालीन स्थितियों-परिस्थितियों से प्रेरित हो। हमारी धारणा है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिये और वह है हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनैतिक पराधीनता का प्रश्न।'१३४ देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी गुणात्मक परिवर्तन किये गये एवं इस परिवर्तन के पीछे भी दो धाराओं का सक्रिय योगदान था। प्रथम में निराशावादी रूग्ण रोमानी दृष्टि का विरोध हुआ तथा सामाजिक यथार्थोन्मुख दृष्टि को महत्ता दी गई जिसमें सामाजिक-पक्ष की प्रबलता थी। द्वितीय में छायावाद के अंतर्गत ही नहीं भारतेन्दु युग से चली आई राष्ट्रीय-भावना को अधिक प्रखरता और प्राणवत्ता मिली। प्रेमचन्द की उक्ति इसी मत की समर्थक है "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो –

स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु

का लक्षण है।"१३५ प्रेमचन्द की वाणी की स्पष्टता हमें उन प्रगतिवादी कवियों के स्वरों में सुनाई पड़ती है जो समसामयिकता के प्रति आस्थाशील होकर कविकर्म में प्रवृत्त हुए। जो किसी वाद की संकुचित परिधि के भीतर ही परिभ्रमण नहीं करते वह जिस पथ पर प्रशस्त है वहाँ से गुजरकर जीवन के यथार्थ- बिम्बों का दर्शन मिलता है, संवेदना का धरातल अधिक प्रभावपूर्ण हो उठता है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और मुक्तिबोध इस धारा में अग्रगण्य हैं। वे कवि प्रगति के संवाहक है, शोषण के खिलाफ है, सामयिक चेतना से संपृक्त है, समाजवादी मान्यताओं का समर्थक है, अपनी परम्परा के प्रभावित होते हुए भी रूढ़ि को तोड़ता है, सम-सामयिक यथार्थ से जुड़ता है और अपनी कवि-कर्म चेतना को प्रगति की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार यह विरोधी प्रवृत्ति और परम्परा अपने परिवेश से नियमित होकर एक विशिष्ट जीवन दर्शन का निर्माण करती है। नीचे इन कवियों के कृतित्व का अवलोकन है। उनमें निहित प्रगति के तत्वों को ढूंढ़ने की कोशिश भी की गई है।

नागार्जुन

नागार्जुन इस धारा में सर्वप्रमुख है। वह एक सशक्त विद्रोही व्यक्तित्व है जिसमें कल्पना का अभाव है, ठोस धरती के चित्रों का प्रतिबिम्ब है, समसामयिक जीवन के विविध पक्षों का तलस्पर्श करती उनकी वाणी यथार्थ को स्वर देती है। नागार्जुन ने प्रगतिशील चेतना को आत्मग्राह्य किया है, सर्वहारा वर्ग की विडम्बनाओं का पर्दाफाश किया है, धार्मिक आडम्बरों पर खुलकर चोटें की है, ग्राम-संस्कृति के सौन्दर्य को कलात्मक रंग दिये हैं एवं इन सबसे आगे एक सफल व्यंग्यकार की भूमिका निभायी है।

जो अपने आप में बेजोड़ है, अनुपम है, सराहनीय है। इसके अलावा उन्होंने प्रणय के गीतों को भी शब्दों में बांधा है पर उसमें वासना नहीं है, न भोगने की उत्कट लालसा है, न रूप पिपासा है, इसके केन्द्र में जीवनसंगिनी के साथ एक सहज, स्वाभाविक बंधन के निर्वाह की आकांक्षा है। शिवकुमार मिश्र के अभिमत में 'कह सकते हैं कि यथार्थ की गहरी चेतना से अनुप्राणित ग्राम्यदर्शन, समार्जैदर्शन तथा प्रकृति दर्शन सब कुछ नागार्जुन की इन कविताओं में है और इन्हीं में कतिपय वे विशिष्ट कविताएं भी है जो नागार्जुन को प्रगतिवाद के साथ हिन्दी कविता के एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में प्रतिष्ठापित करती हैं।'१३६

उसकी रागात्मक संवेदना, प्रणय-प्रसंग और प्रकृति-सौन्दर्य से अभिभूत है। प्रकृति से कवि को आन्तरिक लगाव है, प्रकृति कवि के मानस को भीतर तक सिक्त कर देती है, वह अतीव उत्साह से प्रकृति के मनोहारी रूप उपस्थित करता है। 'वसन्त की अगवानी' में वसन्त आगमन का चित्रण है।

'वृद्ध वनस्पतियों की ठूठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुसकाया।'१३७

वसन्त के आने से प्रकृति का अमित रूप एक नये अन्दाज में प्रस्फुटित हो उठता है, नये रंग का संकेत देने लगता है। पर कविता की अन्तिम पंक्तियों में बुद्धि और वैभव के बीच सामंजस्य में जीवनयान की गति की कल्पना सचमुच अद्भुत है –

'बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगे
जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा।'१३८

'नीम का दो टहनियां'।१३९ जेल के अन्दर कैद कवि को सीखचों के बाहर झाँकती हुई परिलक्षित होती है वहीं 'रजनीगंधा'१४० की भीनी महक कवि को पुलकायमान करती है, जेल की पीड़ा को कम कर देती है।

'झुक आये कजरारें मेघ', 'काली सप्तमी का चांद', 'हिम कुसुमों का चंचरीक', 'कोयल आज बोली है' आदि कवितायें प्रकृति से सम्बन्धित हैं जिसमें नागार्जुन ने प्रकृति के सजीव और सुन्दर चित्र अंकित किये हैं।

प्रकृति के प्रति यह अनूठा अनुराग ग्रामीण परिवेश की देन है। 'मनुष्य के सम्पर्क में, उसकी प्रत्येक क्रियाशीलता में जो भागीदारी निभाती है वही नागार्जुन की प्रकृति है।'१४१

नागार्जुन की रागात्मक वृत्ति प्रणयपरक रचनाओं में भी एक शालीनता और मर्यादा को समेटे हैं। उनके कवि हृदय में अपनी प्रेयसी के प्रति विशेष लगाव है। प्रवासकालीन परिस्थिति में कवि को प्रिया का स्मरण होता है। इस स्मरण में प्राकृतिक उपकरण भी सजीव हो जाते हैं पर चिन्तन के केन्द्र में 'सिन्दूर तिलकित भाल' ही रहता है –

'मैं रहूंगा सामने तस्वीर में पर मूक
सांध्य नभ में पश्चिमांत समान
लालिमा का जब करूण आख्यान
सुना करता हूँ सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूरतिलकित भाल।'१४२

यह प्रेम भावना स्वस्थ दृष्टि से गृहीत है जिसमें दृढ़ता है, एकनिष्ठता है, सहजता है। दाम्पत्य-प्रेम की सहजता संकेतधर्मिता का आश्रय न लेकर स्पष्ट रूप से व्यक्त है सामाजिक मर्यादाओं से प्राप्त दाम्पत्य-प्रेम की आत्माधिकार भावना का वर्णन चित्ताकर्षक है–

"पास ही सोई पड़ी श्लथ शकुन्तला
प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गई तो दिखा कर तारे बचे दो चार
कहा मैंने तब पकड़ हाथ
दो घड़ी का हमारा, इनका रहा है साथ
हो रहे अब विदा, गा दो सुमुखि एक विहाग।"१४३

प्रेयसी का संग प्रेरणापरक स्फूर्ति देता है। वह रात्रि में ताल से अधखिला अरविन्द लाने घुस गया। प्रेम को जीवन की आवश्यकता मान वह जी भर आस्वादन करता है।

"बहुत दिनों के बाद
अब के मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भूपर।"१४४

प्रेम प्रसंगों के चित्रण में छायावाद जहां अन्तर्मुखी होकर आवरण के द्वारा मुखर हुआ है वहीं उत्तर-छायावादी कवि वर्हिमुखी होकर खुलकर भोग की कांक्षा से चालित है पर नागार्जुन की कविताओं में यह चित्रण कहीं भी भीतर की ओर गमन नहीं करता, न ही अपनी सीमा का उल्लंघन करता है। वह एक ऐसा प्रवाह है जिसमें अवगाहन कर उनकी

आत्मा परितोष महसूस करती है, आनन्द लाभ करती है। 'पाषाणी' और 'भिक्षुक' शीर्षक कविताओं में उनके नारी-सम्बन्धित दृष्टिकोण के उद्‌गार प्रकट है। 'पाषाणी' में बलात्कार से पत्थर बन गई अहिल्या का चरित्र है जिसमें परम्परित कथन को आज के परिप्रेक्ष्य में आंका गया है। 'भिक्षुक' कविता में बौद्ध भिक्षुणी की मानसिक-पीड़ा का वर्णन है जो बुद्ध के भव्य रूप को देखकर दबी हुई प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने में असमर्थ हो जाती है। वह आरोपित दीक्षा को दुर्भाग्य का शाप समझती है। धर्म की आडम्बर-युक्त रीति नारी जीवन की अदम्य पिपासा को दबा नहीं पाती।

"कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती
भले ही वह पीटता, भले ही मारता
किन्तु किसी क्षण में प्यार भी करता
जीवन रस उड़ेलता मेरे रिक्त पात्र में
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मैं होती।"१४५

नागार्जुन विशुद्ध समाजिकता के जो बिम्ब प्रस्तुत करते हैं वह स्वस्थ और प्रभावशाली है। 'समूचे भारत के दुख-दर्द, शंका-कुशंका, पीड़ा-छटपटाहट दुःख-दैन्य ग्रामीण व नगरीय जीवन की विषमताओं, मजदूरों की विषमता और अभावों में पल रही जिन्दगी, नगरीय परिवेश में व्याप्त आपाधापी स्वार्थपरता, यांत्रिकता और शोषण तथा पूंजीपतियों के अत्याचार व उत्पीड़न की कथाओं के सहारे विकसित व्यथा प्रसंगों की मुँह बोलती तस्वीर नागार्जुन की कविताओं में कैद है।"१४६

'खुरदुरे पैर' में कवि की दुधिया निगाहें रिक्शा चालक के बिबाई फटे कठोर पैरों में धंस जाती है जिसके कुलिश पैर घंटों के हिसाब से धरती को नापते हैं –

"देर तक टकराये
उस दिन इन आंखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिबाईयां

खूब गई दूधिया निगाहों में
धंस गई कुसुम कोमल मन में।"१४७

'देखन ओ गंगा मइया' मे श्रद्धालु द्वारा फेंके गये पैसे खोजते नंग धड़ंग मल्लाहों का चित्रण है। कवि का करूण हृदय गंगा से विनती करता है वह उन्हें निराश न करे। बड़े होकर ये बच्चे श्रम से गंगा के प्रवाह को पुष्ट करेंगे।

"पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा इनके भी श्रम स्वेद जल से।"१४८

'गीले पांक की दुनिया गई है छोड़' कविता में बाढ़ के पश्चात शेष रह जाने वाले कीचड़ पर मल्लाहों के बच्चों को चलते देख उसका भावुक मन चीख उठता है।

सामाजिक असमानता, अव्यवस्था तथा शोषण की घिनौनी वृत्तियों ने मनुष्य का मनुष्य के प्रति रागात्मक संबंध भी मिटा दिया है। सड़क की ढलान पर बैठा 'अपंग बुड्ढा' इसी का प्रतीक है।

आज कोई भी स्थान खाली नहीं है चाहे वह मकान हो, स्कूल हो, ट्रेन हो। दीन-हीन वर्ग के इस खालीपन को खुद के लिये सुरक्षित कर लिया है– उनके काव्य में पीड़ित वर्ग के प्रति आत्मीय संवेदना व्यक्त है, जिसको अस्वीकारा नहीं जा सकता।

"खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट।"१४९

नागार्जुन एक सशक्त व्यंग्यकार भी है। यह व्यंग्य भी अतिरिक्त और पैना है। जहाँ कहीं भी असमानता, अभद्रता, जालसाजी-धंधे, अनैतिकता, शोषण की कुनीति है वहाँ कवि का आक्रोश तीव्र व्यंग्य के रूप में फूटा है। "प्रेत का बयान" में इस व्यंग्य की तीक्ष्णता परिलक्षित होती है। अन्याय-अत्याचार से पीड़ित मास्टरजी प्राण निकल जाने के पश्चात भी स्वाभिमान से विमुख नहीं होते। उनकी इस अखण्ड निश्चयता के समक्ष नरकेश्वर भी पराभूत हो जाते हैं-

"जहां तक मेरी अपनी बात है
तनिक भी पीर नहीं
दु:ख नहीं, दुविधा नहीं

सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह नहीं सकी आंच जब पेचिश का हमला।”१५०

विश्वम्भर मानव के मत में 'हरिश्चन्द्र युग के साहित्यिकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसी तीखी और सीधी चोट करनेवाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ है।' इनका व्यंग्य क्योंकि व्यंग्यस्थिति को सामने लाता है, अतः प्रभावशाली है।'१५१ सत्ता एवम् व्यवस्था के अंदरूनी खोखलेपन को उन्होंने उजागर किया है। राजनैतिक गतिविधियों से जागरूक यह व्यंग्यकार अतीव साहस के साथ काले कारनामों को खोलकर रख देता है। खद्दरदारी नेताओं के घिनौने हथकण्डों को उघारता है, साम्राज्यवादी भ्रष्टाचारी नेताओं की कर्त्तव्यविमुखता, अनैतिक कार्यप्रणाली की भर्त्सना करता है, अवसरवादी बेईमान नेताओं की स्वार्थपरायण नीति से अवगत कराता है। नेताओं द्वारा प्रचारित जाल-साजी, जुल्म, अनाचार, अत्याचार, बर्बरता, रूक्षता आतंकवादी नीति, आगत के स्वागतार्थ जन-धन का फिजूल अपव्यय, सिण्डिकेट, शिवसेना, नक्सलवादियों की हिंसक वृत्ति, चीनी घुसपैठ प्रभृति सभी विषयों का उल्लेख सपाट बयानी भाषा में प्रस्तुत किया है। राजनीतिज्ञों की दृष्टि में साम्राज्यवाद क्या है? इस विषय में उनका कहना है कि दरअसल यह तो चुनाव जीतकर अपनी सुख सुविधा के उपकरणों को जुटाने की विधि है जिसके द्वारा एक ओर अपार विलासिता के वैभव को भोगा जाता है दूसरी ओर साधारण जन के पराभव के कारणों को देखा जाता है।

“अधभूखे, अधनंगे डोले हरिजन गिरिजन वन में
खुद तो चिकनी रेशम डांटे उड़ती फिरो गगन में
महंगाई की सूर्पनखा को कैसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के मत्थे डाल रही हो।”१५२

'आओ रानी हम ढोएंगें पालकी' एवं टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा कविताओं में रानी एलिजाबेथ के भारत आगमन पर और भारतीय सरकार द्वारा स्वागतार्थ किये गये अपव्यय पर क्षोभ है।

“जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की
आओ रानी हम ढोएंगें पालकी

रफू करेंगे फटे पुराने जाल की।"१५३

समसामयिक स्थितियों की ओर वह विशेष जागरुक है। यह जागरूकता उनकी मौलिकता है जो उसके समसामयिक रचनाकारों में भी उतनी सक्रिय रूप में उभर नहीं सकी।

उन्होंने उद्‌बोधनात्मक कवितायें भी लिखी है यथा रवि ठाकुर, चौधरी राजमकल, लुमुम्बा, भारती सिर पिटती है आदि। अज्ञेय की उक्ति नागार्जुन के काव्य रचना संसार पर जो कही गई है तर्क सम्मत है।' नागार्जुन में प्रतिभा है। जिन कविताओं में उन्होंने रूप-विधान को स्वीकार किया है वे सुन्दर भी हैं, प्रभावशाली भी। इससे भी इन्कार नहीं कि वे प्रगतिवादी हैं। असल में लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि अगर काव्य को या साहित्य को हथियार की तरह बरतना है तो भी आखिर उसकी शक्ति को ही बरतना है न? और रोचकता, सुन्दरता उसकी एक बड़ी शक्ति है।१५४ नागार्जुन की कविताओं में विषय पक्ष के समक्ष कलापक्ष एकदम फीका और कमजोर है। परन्तु अभिव्यक्ति को पुष्ट बनाने के लिये उनके द्वारा किये गये प्रयोग अनुपम है। कवि की भाषा भावों के अनुकूल है। वह कहीं सरल है, कहीं संस्कृतनिष्ठ है, कहीं व्यंग्यप्रधान है। भाषा में उन्होंने शब्दों के नये-नये प्रयोग किये हैं। लोकभाषा का भी प्रयोग किया है। इसके साथ बंगला और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है जो काव्यप्रवाह में बाधा नहीं डालते उसकी भाषा को विपुलता, समृद्धि से पूर्ण करते हैं। मुक्तछन्द और छन्दबद्ध दोनों का समन्वय है। बिम्बों के प्रयोग दृष्टि से भी वह सफल रहे हैं।

हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन का अन्यतम स्थान है। वे सामयिकबोध से जुड़े हैं। उनकी काव्य-यात्रा सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत सभी स्थलों से होकर गुजरी है, यथार्थ का संवहन करती हुई वह निरन्तर आगे की ओर प्रशस्त रही है। उसमें अदम्य साहस और ताकत है बुराईयों को जड़ से मूलोच्छेद करने का उसमें मानवीय जीवन को प्रताड़ित करने वाले हिंसक अस्त्रों के प्रयोगकर्त्ताओं के खिलाफ बुलन्द स्वर में बोलने की शक्ति है। वह एक ऐसे समाज और देश की संरचना को उद्यत है जिसमें समानता हो, सुसंगठित व्यवस्था हो। प्रगतिशील चेतना के संवाहक कवि नागार्जुन भारतीय मिट्टी के निराले फूल है जिसकी महक निराली है।

केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्य के एक प्रमुख आलोक स्तम्भ है। उनका कवि नव्यता का पुजारी है, जन-जीवन का द्रष्टा है, प्रकृति का प्रेमी है, साथ ही रोमानी भावनाओं का चितेरा है। वह परम्परा को समसामयिक युगीन जीवन के प्रतिकूल पाता है, अत: परम्परा के सांचे को तोड़कर अपने चिन्तन में नवीनता को प्रतिष्ठित करता है। 'परम्परा मैंने तोड़ी है, नये को पाने के लिये। नये को मैंने जीवन से जोड़ा है। मेरे नये से जिया हुआ जीवन बोला है। भले ही वह पूर्णांश में कला की चरम उपलब्धि न हो। मैंने बने बनाये सांचे तोड़े हैं।'१५५ किन्तु केदारनाथ का समस्त साहित्य परम्परा से असम्पृक्त नहीं है। कवि की निजी उक्ति इस सत्य को चरितार्थ करती है। 'परम्परा ने आदमी को जीने का नैतिक बल भी प्रदान किया है, उसने लोककल्याण के लिये भी आदमियों को रास्ता दिखाया है, उसने प्रकृति के प्रति और अपने परिवेश के प्रति आदमी में प्रेम पैदा किया है। परम्परा की यही विशिष्टतायें अब भी अपना स्थान रखती है। इन्हीं से आदमी निराश और पौरूषेय हुआ है।'१५६ उसने समय और परिस्थिति के आरोह-अवरोह का अनुभव कर जीवन से सम्पृक्त हो काव्य की सर्जना की है फलत: उसमें स्निग्धता, ताजगी, जीवन की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार केदार ने काव्य की धारणाओं और मान्यताओं में युगस्पन्दन को मिश्रित कर अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। वह निरन्तर प्रगतिगामी है उसमें आस्था और शक्ति है।

इनकी कविताओं का प्रमुख-विषय प्रणय, प्रकृति, सामाजिक-उत्पीड़न, युगीन सामाजिक सत्य से सम्बद्ध है। मूर्त जगत के अन्दर श्वांस ग्रहण करती उसकी आत्मा अन्याय के खिलाफ, मानव जीवन को आहत करने वाली बुराईयों के विरुद्ध सबलता से पेश आती है जिसका एक अपना इतिहास है, एक आन्दोलन है 'उनकी रचनाएं मात्र कागज का पन्ना नहीं। वह एक इतिहास है, एक आन्दोलन है, समाज का उत्थान है।'१५७ 'नींद के बादल' प्रथम काव्य कृति है। इसमें कवि ने पार्थिव जगत् के प्रणय और प्रकृति के चित्र खींचे है जो उसकी रूमानी प्रवृत्ति के द्योतक हैं। छायावादी कवियों की तरह यहाँ उसकी कोई प्रेयसी नहीं है, न उत्तरछायावादी कवियों की तरह उसका प्रेमीमन बाधारहित और भोगेच्छा का कामी है। सामाजिक जीवन की पृष्ठिभूमि पर अधिष्ठित उसका प्रेमी मन एक स्वस्थ दिशा में विचरण करता है। इसमें कोई दुराव-

छिपाव नहीं है, उच्छ्शृंखलता नहीं है, विकृति नहीं है। प्रेम उसकी प्रेरणाशक्ति है, आत्मसंबल है जो उसको ताजगी देता है, सुकून देता है। श्री विश्वम्भरमानव के शब्दों में। इस संग्रह में प्रणय सम्बन्धी रचनाओं की अधिकता है। काव्य की प्रारम्भिक प्रेरणा उन्हें प्रेम से मिली। प्रेरणा के अतिरिक्त प्रेम उनके काव्य की शोभा भी रहा है। प्रेम के कारण उनके काव्य में नई दीप्ति आई है।'१५८ यह प्रेम प्रणय गठबन्धन से उपजा है, जहाँ न संकेतधर्मिता है न सूक्ष्मता। एकमात्र प्रिय की स्मृति स्वप्नों को सुसज्जित करती है। यह प्रेम उसके जीवन की अनुपम उपलब्धि है।

"एक तुम्हारी ही स्मृति ने तो चिर जीवन स्वप्न सजाया
एक तुम्हीं को पाया मैंने एक तुम्हीं को पाया।"१५९

प्रेम एक अथाह सागर है प्रेमी मन उसमें डूबकर विह्वल हो जाता है। उनकी दृष्टि में आत्मदान में ही प्रेम की पूर्णता है –

"नियम है सीमा का द्योतक
प्रेम सागर है अगम अथाह
नियम अपनेपन से भूषित
प्रेम में आत्मदान की साध।"१६०

अस्तु 'कविता में उसने प्रेम के व्यापक आयाम को संतुलित एवं सधी हुई रेखाओं के द्वारा व्यक्त किया और उसे विराट जीवन के एक अंग के रूप में ही प्रस्तुत कर अपने स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय भी दिया है।'१६१ प्रेम का यह व्यापक आयाम कवि को अधिक मोह-बंधन में जकड़ नहीं पाता। जादुई बादल सबेरे की रक्तिम आभा में गायब हो जाते हैं। 'नींद के बादल रात के जादू के बाद दिन के लाल सबेरे के साथ प्रेम के इस संग्रह की कविताओं की इति हो जाती है।'१६२

लेकिन प्यारे नींद के बादल
लाल सबेरा होते-होते,
सब होने लगते हैं ओझल।
जाने कैसे और कहां से
बंद आँख को बंद छोड़ कर

मुझे चकित कर-
चुपके-चुपके चल देते हैं
जैसे कभी नहीं आये थे।१ ६ ३

प्रकृति सम्बन्धी चित्रण भी अत्यन्त मनोहारी और आकर्षक है। कहीं कवि प्रकृति के चिर सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाता है-

"देखता हूं पल्लव पुलकित
बसन-बासंती-युत प्रमुदित
लता लज्जित, यौवन-छवि-भार
भेंटती तरु को पहना हार
विहग कूजन नूपुर रब-सा
बहाता है प्रेमासव सा।"१ ६ ४

कहीं-कहीं प्रकृति को देखकर उनके अन्तःकरण की कोमल भावना उद्वेलित हो उठती है–

"सतरंगी किरनों का दल भी
मुकुलों पर चलकर आता है
रंग, लास, उल्लास, हास बरसा जाता है।
मेरी मूर्छित असित कल्पना
फिर चिर जीवित हो उठती है।"१ ६ ५

प्रणय और प्रकृति उसकी चिन्तन की प्रेरणाभूमि है। यह प्रेरणाभूमि नये सबेरे के उदय के साथ युग की गंगा में अवगाहन करती है। वह विगत को विस्मृत कर नवयुग के निर्माण का कांक्षी हो जाता है। यहाँ प्रगतिवाद की सामाजिक यथार्थवादी प्रवृत्ति का आकर्षण उसमें पाया जाता है –

"युग की गंगा
सब प्राचीन डुबोयेगी ही
नयी बस्तियां
शांति-निकेतन

नव-संसार बसायेगी ही।”१६६

‘नवसंसार में समानता और परस्पर सद्भाव की कामना उसका अभीष्ट है। भूमिका में कवि ने लिखा है कि– इन कविताओं में पलायनवादिता नहीं हैं, देश की जागृत शक्ति का उबाल है। आगे उसकी दृढ़ सहमति है- ‘युग की गंगा’ के माध्यम से नवीन संस्कृति का जन्म होगा। परस्पर मतभेद और अवरोध हो जायेंगे और भूखी-प्यासी, दुर्बल-निर्बल धरती हरी-भरी हो जायेगी।’१६७

ग्रामीण प्रकृति का सौन्दर्य सचमुच लुभावनीय होता है। एक बीते के बराबर हरा ठिंगना चना कवि मन को अनुरंजित कर देता है-

“यह बीते के बराबर
यह हरा ठिंगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का, सज
सज कर खड़ा है।”१६८

शहर हो या गाँव। हर जगह मतभेद, वैषम्य कुटिल प्रवृत्तियाँ पनप रही है जिसने मनुष्य जीवन को कुरूप बना दिया है ग्राम्यजीवन में इस विकृति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“सड़े घूर की, गोबर की
बदबू से दब कर
महक जिन्दगी के गुलाब
की मर जाती है
रार, क्रोध, तकरार द्वेष से
दु:ख से कातर
आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराती है।”१६९

शहरी परिवेश में इस कुरूपता का सर्वाधिक घिनौना रूप परिलक्षित होता है। शहर मूलगंज गांव से भी अधिक बदतर है। व्यभिचारियों की कामुकता से पूर्ण छिछली एवं

निकृष्ट हरकतों का खुला प्रदर्शन कवि को व्यथित कर देता है। सत्य, ज्ञान, उच्च-आदर्श गन्दी नालियों में तिरोहित हो गये हैं -

"अंध वासना में नर
खूब पिये
रंडियों के साथ खोया
नर्क में डूबा
रात है
सत्य, ज्ञान
उच्चादर्श
गंदी मलमूत्र की नलियों में बहते हैं।"१७०

कवि केदार की अन्तर्दृष्टि में सचमुच वह रोशनी है जो कहीं न पहुँच पाने वाली जगह भी पहुँच जाती है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह प्रगतिवादी हैं। उन्होंने जिन विषयों को भी छुआ है, सत्य को ही उद्घाटित करने की कोशिश की है। युगीन सत्य साहित्यकार की कलम से उभरकर परिचित होते हुए भी अपरिचित रहने की कलई को खोल देता है। उनकी कला में यथार्थपरक सच्चाई तक पहुँच जाने की अद्भुत क्षमता है।

केदार ईश्वर एवं धर्म के आडम्बरों की भर्त्सना करते हैं। यहाँ व्यंग्य के द्वारा आक्रमण किया गया है पर इनकी व्यंग्य वाणी में नागार्जुन सी तल्खी और कचोट नहीं मिलती। 'वरदान', 'सोने का देवता', 'देवमूर्ति', 'देवताओं की आत्महत्या' आदि इसी प्रकार की रचनायें हैं। उन्होंने सर्वहारा जीवन की दीन-हीन अवस्था का चित्रण भी किया है। वह सर्वहारा वर्ग में क्रांति का आह्वान करता है। मनुष्य अपरिमित शक्ति के बल पर अमानुषिक स्थिति से छुटकारा पा सकता है। सर्वहारा में नयी उमंग, नये विचार के बीज बोकर कवि चाहता है –

'नयी उमंग से उभर
नए विचार से विचार
उथल-पुथल के कामकर

न डर, न डर, न डर, न डर।’१७१

केदारनाथ अग्रवाल की सम्मति है– ‘इनमें ईश्वर का मखौल है, उसमें समाज की अर्थनीति के विरूद्ध प्रहार है, इनमें कटु जीवन का व्यंग्य है साथ ही साथ प्रकृति का किसानी चित्रण भी है और देश की जागृत शक्ति का उबाल है। पलायनवादी परम्परा की न तो रचनाएं हैं और न हो सकती हैं। ‘जिन्दगी की भीड़ की इन कविताओं में जनता के मोर्चे की प्रतिध्वनि है।’१७२ वास्तव में ‘युग की गंगा’ में युग-बोध और यथार्थ बोध की सम्पृक्ति कवि की दूरदर्शी प्रतिभा की परिचायक है।

‘लोक और आलोक’ में कवि के प्रगतिवादी जीवन दर्शन का निरूपण है। लोक जीवन से अनुस्यूत होकर ही उसकी कविता धरती की सोंधी गमक को विकीर्ण करती है। नवीन जनसंस्कृति और समष्टि कल्याण की भावना से कवि एक निश्चित उद्देश्य लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरता है। उसका प्रतिपाद्य होता है– शोषित वर्ग के प्रति यथार्थपरक मानवीय दृष्टि का विकास, समता युक्त समाज की स्थापना। लोक और आलोक की रचनायें इसी प्रवृत्ति की द्योतक है। किसान और मजदूर की विपन्नावस्था से आलोक ग्रहण करता हुआ वह लोक-जीवन के चित्र खींचता है। उसका जनवादी प्रयोजन जन-आग्रही जीवन संघर्ष को चुनौती देता है–

‘ऐ दधीचों, शक्ति का डंका बजाओं
लेखनी के लोक में आलोक लाओ।’१७३

किन्तु ‘फूल नहीं रंग बोलते हैं’ तक पहुँचते-पहुँचते वह नूतन का आलोक, पुरातन की बांहों में नहीं बंधेगा’ का गायक हो जाता है। वह रंगों का कवि है। रंगों में परिवर्तित नयापन उसे मोहासक्त करता है, रंगों का ऐन्द्रिय संवेद उसके अभिव्यक्ति कौशल को परिवर्द्धित करता है। सौन्दर्य कल्पना के नये क्षितिजों से प्रकृति के बदलते रूप का वह आस्वादन करता है प्रकृति के अमित सौन्दर्य को वह जीवन में उतारने को इच्छुक है। ‘फूल नहीं रंग बोलते हैं की आत्मा करूणा है, और यह करूणा उनके हृदय की वेदना है, उनके जीवन की तड़प और विचारों तथा भावों की झाँकी है।’१७४

'आग का आईना' की भूमिका में कवि का कहना है कि आग का आईना के अन्तर्गत ऐसे सत्य की तलाश है जिसमें युगीन विचारों का पूर्ण प्रवाह उपलब्ध हो। क्रांति और शांति के माध्यम से अक्षांश और देशांतर में बदलाव की आवश्यकता समकालीन युग की माँग है। समय का दर्शन यह प्रमाणित करता है कि वह यथार्थ से बदला है।'१७५ केदार के भीतर एक आग है क्रांति और शान्ति की। इस आग से वह बदलते युगीन सत्यों के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन लाने को व्यग्र है।

इस प्रकार नींद के बादल से काव्ययात्रा प्रारम्भ करने वाला रोमानी कवि युग की गंगा में जनकवि हो जाता है, लोक में आलोक विकीर्ण करते हुए फूलों के बदले रंगों से साक्षात्कार कर उस आग के आईने की तलाश करता है जिसमें युगीन यथार्थ बोध प्रतिबिम्बित हो उठे। 'परम्परा से चली आई काव्य की धारणाओं और मान्यताओं को तोड़कर केदार ने शक्ति, विश्वास, साहस के साथ अपनी कविताओं में काव्येतर विषयों को चुनकर उनके माध्यम से क्रान्ति की यथार्थता को सबल बनाने के प्रयत्न किये हैं।'१७६ केदार अपनी व्यापक काव्यचेतना में अद्वितीय है। काव्येतर विषय की प्रस्तुति कवि की प्रयोग प्रवृत्ति की सूचक है। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण और व्यवहारिक है। छन्द में मुक्त छन्द उन्हें प्रिय है। शब्दों का गठन छोटी-छोटी कविताओं में चित्र को पूर्णता से उतारता है। केदार सचमुच प्रगतिवाद के अन्यतम कवि है। सामाजिक उन्नयन की कामना से पोषित उनकी रचनायें समाज के सड़े-गले, विकृत अंशों को तोड़कर एक ऐसी समाज की स्थापना चाहती है जहाँ समानता हो, बंधुत्व हो, शान्ति हो, मानव-मानव की तरह जीवन भोगे। 'वस्तुत: वास्तविक रूप की तलाश और छटपटाहट ही उनकी कृत्तियों के मूल में निहित है। रचनाओं में मानव जीवन की गहरी से गहरी समस्या से जूझते हुए भी अपने स्थूल अर्थ में उन्होंने समस्यामूलक रचनाओं की रचना नहीं की। उनकी रचना अनुभवों की गहराई पाकर अभिव्यक्त हुई है।'१७७

त्रिलोचन शास्त्री

त्रिलोचन धरती के कवि हैं। जन-जन की शक्ति को ललकारने वाले कवि त्रिलोचन ने मार्क्सवाद के व्यावहारिक पक्ष को अपनाकर काव्य के क्षेत्र में सही प्रगतिवादी चेतना का सृजन किया है। वह एक ऐसे प्रगतिशील विचारक हैं जो प्राचीन की जड़ता को तोड़कर नये का प्रयोग करना चाहते हैं। उनमें सामाजिकता काव्य से सम्पृक्त होकर

बोली है, प्रेम का भी समाजीकरण हुआ है। परिवर्तन की अतुल शक्ति पर प्रकाश डालते हुए वह परिवर्तन की गति की ओर संकेत करते हैं–

'परिवर्तन होते रहते हैं
उन्हें न रोक सका है कोई
परिवर्तन की शक्ति अतुल है
उसे न बांध सका है कोई
तुम परिवर्तन की गति समझो
तुम परिवर्तन को पहचानो।'१७८

क्योंकि साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों ने मानव की विकासात्मक चेतना पर अंकुश लगा कर शोषण को प्रश्रय दिया है। जीवन की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाली शक्तियाँ ही मनुष्य को निर्बल करती है, कर्मणाशक्ति की आंच को भी ठण्डा कर देती है ऐसी स्थिति में मनुष्य-मनुष्य नहीं रह पाता। इस निष्क्रियता का अंत सामाजिकस्वतंत्रता ही कर सकती है–

"साम्राज्यवाद
सामन्तवाद
और व्यक्तिवाद
जो बांध रहे गति जीवन की कर उन्हें नष्ट
तुम सामाजिक स्वातन्त्रय साम्य को करो स्पष्ट।"१७९

पुरातनता की जीर्णता में अब प्रवाह का अवकाश नहीं है। यह जानकर वह मानव को अपरिमेय पौरूष के बल पर नवनिर्माण के लिये प्रोत्साहित करता है–

"कर नूतन निर्माण, दिखा कुछ
तू अपने पौरूष का करतब
पराधीनता विविध तोड़ कर दिखा
नयी गति का उपक्रम अब।"१८०

वह पूंजीवाद का घोर विरोधी है। पूंजीवाद जहरीले सांप का पर्याय है जिसके विष से आतंकित होकर व्यक्ति उसके समीप नहीं जाता। पूंजीवादी व्यवस्था में न मानव मूल्यों

का विघटन हुआ अपितु अस्मिता की पहचान भी धुंध में विलीन हो गयी। स्वस्थ जीवन मूल्यों के निर्माण की प्रथम शर्त्त है पूंजीवादी सत्ता का विघटन किया जाये –

"बिना पूंजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता
ज्ञान विज्ञान से किसी प्रकार
कोई कल्याण नहीं हो सकता।"१८१

परिस्थितियों में मनोबल के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उनका कथन है मनः शक्ति का मूल-मन्त्र सिद्धि की सफलता है। मन की हार के समक्ष घुटने न टेकना, आत्मसमर्पण न करना ही असली जीत है। अर्थात त्रिलोचन हर तरह से सांघातिक परिस्थितियों से उबारने के नानाविध उपायों पर रोशनी डालते हैं। यह कवि के वैशिष्ट्य को उपस्थित करता है।

"सिद्धि सफलता, मनः शक्ति के उद्बोधन का मूल मन्त्र है
तुम मन को निर्बल न बनाओ, हारो तो उसे हराओ।"१८२

'भोरई केवट के घर'१८३ कविता में समाज के निम्न-वर्गीय जीवन की अवस्था का चित्रण है तथा 'चम्पा काले अक्षर नहीं चीन्हती'१८४ में निम्न वर्ग जीवन में शिक्षा के अभाव की त्रासदी का वर्णन है जो अपने जीवन में किसी प्रकार के परिवर्तन की प्रबल इच्छा शक्ति ही नहीं रखते।

त्रिलोचन ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों की तरह प्रिया से सम्बन्धित कवितायें लिखी जिसमें न कल्पना की उड़ान है, न वियोग मिश्रित भाव हैं। इन्होंने प्रेमपरक कविताओं में अत्यन्त सहजता से मन के उद्गारों को अभिव्यक्ति दी है।

"अपनी परिणीता का फोटो दिखा रहे थे
दिखा रहे थे, बता रहे थे
आज तुम्हारी याद मुझे आई है
देख गया इतिहास की जब से एक सूत्र में हम दोनों हैं।"१८५

'दिगन्त' दूसरी काव्य कृति है। त्रिलोचन ने संकेत के नये-नये रूपों का प्रयोग किया है, नये-नये रूपों में उसे प्रस्तुत किया है। सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर कवि की

दृष्टि जहां ठहरती है वह एक ऐसी जलती सच्चाई है जिसकी गर्माहट को नजदीकी से जाकर परख पाना त्रिलोचन जैसे कवि के लिये ही संभव हो सकता है। वह समष्टि की ध्वनियों का ग्राहक है–

ध्वनिग्राहक हूँ मैं, समाज में उठनेवाली
ध्वनियां पकड़ लिया करता हूँ
लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ, नई देता हूँ भाषा।१८६

नये स्वप्नों का दर्शी कवि उन तमाम कारणों से भिज्ञ है जो किसी भी व्यक्ति को ऊँचा उठने देने की शक्ति को रक्तिले बाणों से बींध देते हैं। सामाजिक व्यवस्था के चयनकर्ता ही इस निकृष्ट अवस्था के परिणाम है। 'भिखारिया'१८७ और 'अतवरिया'१८८ रचनायें इसीका प्रमाण है।

"'खीझ' में एकसम जिंदगी में निहित उबाऊपन का चित्रण है।"
"यह भी क्या जिन्दगी, वही दिन, वही सबेरा
वही रात, तेली के बैल- सरीखा फेरा।"१८९

'मूर्ति-पूजा' में प्रणति भक्ति पर व्यंग्य है,

"मैंने देखा प्रणति-भक्ति दोनों हैं छूछी
इनमें भाव कहां जो मूर्तिकार में जागे।"१९०

'अपघात' में मनुष्य की पाश्विक वृत्ति की शिकार लता की मौन मृत्यु पर क्षोभ प्रकट है–

"टूट चुकी थी, धीरे-धीरे गर्दन फंस ली
फांसी में, रस्सी की, इस नागिन ने डंस ली
उसकी अन्तिम हंसी, आप हम किसपर मांखें।"१९१

सामाजिक विडम्बनाओं को चित्रित करने वाले कवि त्रिलोचन सचमुच मुक्ति के गायक हैं। वह अपने संगीत से ऐसी शक्ति फूंक देना चाहता है जो मानवता को मुक्ति दे, सबमें

अन्याय के विरुद्ध मोर्चा सम्भालने का साहस भरे, समाज को प्रदूषण से दूर रखने की हिम्मत दे, दारूण अत्याचार को रोकें।

“किसी देश में मानवता को मुक्ति यदि मिली
तो मैंने जीवन पाया, जी की कली खिली।”१९२

‘शब्द’ त्रिलोचन का अगला काव्य– संग्रह है जो उनकी विराट सजगता का द्योतक है। कवि शब्द से जीवन की तलाश करता है, धरती से आकाश पर्यन्त विचरण करता है क्योंकि शब्द में जीवित अर्थ की धारा प्रवाहित है ‘त्रिलोचन की कविता शब्दों का स्थापत्य है। त्रिलोचन के शब्द मानव आकृतियों का स्मृति पथ है। मनुष्य की तरह त्रिलोचन की कविता के शब्द पथ पर बे-रोक टोक आते हैं। परिहास करते हैं। जीवन का मर्म समझा जाते हैं।’१९३ शब्द जड़ता का पर्याय नहीं होते। उनमें चेतना होती है, हाड़-मांस वाले प्राणी सी। जिनसे आत्मसंवाद की स्थिति बनी रहती है। अर्थात् शब्द भी मनुष्य की भाँति विचरण करते हैं, बातें करते हैं। वास्तव में त्रिलोचन के शब्द जीवन से परिपूर्ण हैं।

“शब्दों में भी हाड़-मांस है, जीवन धर कर
वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र संभाले
स्फुट, अस्फुट दो धाराओं में प्रवहमान है
रात और दिन - धावापृथिवी में विचरण कर
झलकाते हैं दुनिया के सब खेल निराले
और मनोहर काल स्रोत के सन्निधान है।”१९४

त्रिलोचन शब्दों के द्वारा ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के बीच परिभ्रमण करते हैं। शब्द से आत्मसंवाद करते हैं। आखिर शब्द कैसे अदम्य प्रकाश को विकीर्ण करते हैं इसकी सत्यता को उजागर करते हुए उनका कहना है–

“बोले मुझ से शब्द-यहाँ से वहाँ, वहां से
और वहां तक मौन तरंगित हम चलते हैं
यह अपार आकाश हमारा अपना घर है
हम जीवन के शूल फूल सब कहाँ कहाँ से

कहाँ कहाँ चुपचाप डोलते हैं, जलते हैं
तभी अदम्य प्रकाश विश्वजीवन का वर है।"१९५

निष्कर्षत: 'त्रिलोचन की कविता व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र के बीच में शब्द और शब्द के अन्तर्गत अर्थों की यात्रा है।'१९६ उनकी कविता सांस्कृतिक पुरातन निष्क्रिय जड़ता को तोड़ते हुए परिवर्तन की आग्रही है। जीवनसंघर्ष से साक्षात्कार करती हुई उनकी दृष्टि सामाजिक असंगतियों पर प्रहार करती है। समष्टि कल्याण उनका एक निश्चित जीवन लक्ष्य है। वह असीमित धाराओं में बँटकर सदैव आगे की ओर प्रशस्त है। प्रगति उनकी साधना है जो समय की आँच में पककर अधिक संयम और एकनिष्ठ हुई है। उनकी कविता में विरोधाभास है एक ओर साम्राज्यवाद, पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ाई जारी है, दूसरी ओर ध्वनि ग्राहक कवि 'भिखारिया' और 'अतवरिया' को ऊँचा उठाने के लिये कलपते हैं। प्रकृति से भी उसे लगाव है तो आत्मपरक कवितायें भी वे लिखते हैं। वस्तुत: वह समग्रता के कवि हैं।

कवि की भाषा सहज और सरल है। भाषा के प्रति सजग कवि ने दुरूहता, अस्पष्टता से स्वयं को सुरक्षित रखा है। उसमें एक प्रवाह है, एक गति है। सॉनेट प्रयोग त्रिलोचन की विलक्षण प्रतिभा के परिचायक हैं। सॉनेट के प्रयोग हिन्दी कविता को एक नयी देन है।

कवि त्रिलोचन ने प्रगति पथ को अपनाकर अपनी परम्परा से नाता नहीं तोड़ा। परम्परा के जीवंतसत्यों वरण कर इनकी काव्य कौशल क्षमता परम्परा को गतिशील किये हैं। 'त्रिलोचन ने अपनी लम्बी जीवनयात्रा में प्रकृति से गन्ध और मानव जीवन से आत्मविश्वास अर्जित किया है। कबीर, तुलसीदास और निराला की जीवन्त परम्परा का ही विराट छायापुंज त्रिलोचन की कविता है। वही हमारा आज का आभ्यान्तर सत्य है।'१९७ त्रिलोचन विराट सामाजिक सत्य के आलोकपुंज है जो धरती पर रोशनी बिखेर कर अंधेरे को भगा देने को कटिबद्ध है। वह नये-समाज का सर्जक है एक नई दुनिया को स्थापित करने का अभिलाषी है, अपने लक्ष्य में वह हार को असमर्पित है, जीत उनकी प्रगति का एकमात्र रहस्य है। मूलत: वह सही प्रगति द्रष्टा है, परम्परा का अन्वेषण कर्त्ता है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

गजानन माधव मुक्तिबोध प्रगतिशील धारा के एक सशक्त और बहुमुखी सृजनात्मक प्रतिभा के चिन्तक कवि हैं। मुक्तिबोध ने अपनी दृष्टि विशेष से परम्परा और प्रयोग दोनों का सही आकलन किया तथा प्रगति का समर्थन किया। उसने अपनी परम्परा का खंडन भी नहीं किया क्योंकि 'पुरानी परम्परा बिल्कुल छूटती नहीं है पर वह परम्परा है मेरी ही और उसका प्रसार अवश्य होना चाहिए।'१९८ छायावाद से लेकर नई कविता तक की लम्बी विकासयात्रा में मुक्तिबोध का सर्जनात्मक साहित्य साक्षी है समय और परिस्थिति के आरोह-अवरोह में परम्परा के श्रेष्ठ अंशों से सम्पृक्त रहकर, समकालीन मूल्यों के अनुकूल प्रयोग से प्रभावित होकर परम्परागत अर्थों का निषेध कर, नवीनता का प्रयोग के द्वारा ग्रहण उसकी मौलिक विशेषता है। मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रयोग का अर्थ है 'वैसे काव्य में जीवन के चित्र की यथा वैज्ञानिक 'टाइप' की- उद्भावना की, अथवा तीव्र विचार की अथवा शुद्ध शब्द-चित्रात्मक कविता हो सकती है। इन्हीं का प्रयोग मैं करना चाहता हूँ।'१९९ चूंकि कवि की कविता 'स्व' से 'पर' की यात्रा है। अत: उसने जीवन के वैविध्यमय विकास स्रोत को समझने के निमित्त नये शब्द और बिम्ब का प्रयोग किया है। इससे विकास को सही ढंग से समझा जा सकता है। यह सही ढंग परम्परा की सार्थक पहचान का परिणाम है। मुक्तिबोध वास्तव में ऐसे प्रयोगधर्मी कवि थे जिन्होंने जीवंत अतीत को नयी पहचान दी। प्रयोग को जड़ता के घेरे से विमुक्त कर जीवन के वैविध्यमय विकास स्रोत को प्रायोगिक स्तर पर उपस्थित किया। उनका प्रयोग समसामयिक जीवन और काव्य में एकात्म्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास है। इनकी रचनाओं के उद्धरणों से इस मत की पुष्टि की जा सकती है। मुक्तिबोध की कुछ रचनाएं 'तार-सप्तक' में संगृहीत हैं। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' स्वतन्त्र काव्यसंकलन है। इन दोनों काव्यसंकलनों के द्वारा रचनाकार की प्रगतिशील दृष्टि को देखा और समझा जा सकता है।

'तारसप्तक' में मुक्तिबोध के जीवन के वैविध्यमय पक्षों का तलस्पर्श करती संवेदना का उद्घाटन है। 'अशक्त' में उसके अर्थखोजी प्राण के भीतर एक छटपटाहट है। जो शंकाकुल होकर जलस्रोत की तलाश में निबद्ध है 'अर्थ-क्या' यह प्रश्न उसके मन को आहत कर देता है–

'अर्थ खोजी प्राण ये उद्दाम है,
अर्थ क्या? यह प्रश्न जीवन का अमर
क्या तृषा मेरी बुझेगी इस तरह?
अर्थ क्या ललकार मेरी प्रखर।' २००

निराशा कवि के मर्म को पराभूत अवश्य करती है पर वह हताश नहीं होती। विद्रोही होकर सतत् अन्वेषण का पथ चुनता है ताकि उसके भीतर आलोड़ित प्रखर ललकार को अर्थ की प्राप्ति हो सके। 'नाश-देवता' में नूतन सर्जन की लालसा बलवती है। अत: नाश-देवता का आह्वान किया गया है जिससे काली अमा हट जाये।

"हे रहस्यमय, ध्वंस महाप्रभु
जो जीवन के तेज सनातन,
तेरे अग्निकणों से जीवन,
तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन।
हम घुटने पर नाश - देवता
बैठ तुझे करते हैं बन्दन
मेरे सिरपर एक पैर रख
नाप तीन जग तू असीम बन।" २०१

सर्जन का अर्थ है गति और प्रवाह। यह तभी संभव है जब रचनाकार को प्रगति की सही पहचान हो। मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रगति का तात्पर्य नूतन सर्जना से है।

"क्षण-क्षण नूतन को करता है शीघ्र पुरातन
यों नूतन की विजय चिरन्तन।" २०२

नूतन के द्वारा ही परम्परा में परिवर्तन होता है। परिवर्तन में प्रगति होती है। 'आत्म-संवाद' इसका उत्कृष्ट नमूना है। इसमें मुक्तिबोध ने नाटकीय संवाद शैली का प्रयोग किया है। यह कवि की मौलिक विशिष्टता है। जिसके माध्यम से वे मन की यथार्थ अवस्था का विश्लेषण करते हैं–

"प्राण है, औ बुद्धि का भी कार्य चलता जा रहा है
वक्ष है, बल है, हृदय में ओज भी तो कम नहीं है

(किन्तु उरमें अश्रु हैं अति म्लान भी
विवशता का है सहज अनुमान भी)।" २०३

'व्यक्तित्व और खण्डहर' में विकेन्द्रित व्यक्तित्व की तुलना खण्डहर से कर गत वैभव का स्मरण है। इसमें भी आत्मसंवाद की शैली का प्रयोग है। व्यक्तित्व के अवचेतन पक्ष को चेतन करने की शैली में सचमुच मुक्तिबोध दक्ष रचनाकार हैं–

"खण्डहरों के मूक ओ निस्पन्द से
उमड़े अकेले गीत।
ये भूत से निर्देह भयकर
बेचैन काले व्यथित आतुर
तिमिर नूपुर के अकेले स्वर
उमड़े अकेले गीत।" २०४

उसी कल्पनात्मक चित्रण की एक झांकी और द्रष्टव्य है –

"आज चढ़ बैठी अचनाक, भूत सी इस कांपते नर पर
विक्षुब्ध कंपन बन चढ़ी जाती सरल स्वर पर
प्रश्न लेकर, कठिन उत्तर साथ लेकर
रात के सिरपर चढ़ी है, नाश का यह गीत बनकर
हंस पड़ेगी कब सहज प्रकाश का यह गीत बनकर।" २०५

'तारसप्तक' में संगृहीत मुक्तिबोध की रचनाओं के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया निरन्तर नूतन सर्जना की ओर अभिमुख हुई है। जीवित अतीतबोध को स्वीकार कर नये-नये प्रयोग की ओर झुकाव साक्षी है कि मुक्तिबोध की रचनायें प्रारम्भ से परवर्ती काल की ओर उन्मुख होते हुए कवि की वैज्ञानिक दृष्टि को नये शैल्पिक प्रयोग से जोड़ती है। 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' शीर्षक कृति इस शक्ति को सार्थक करती है।

'चाँद का मुंह टेढ़ा हैं' शीर्षक संग्रह में मुक्तिबोध की दो प्रकार की रचनााएं संकलित है। पहली वर्ग की रचनाओं में आत्मसंघर्ष की प्रधानता है दूसरी वर्ग की रचनाओं में

वाह्य संघर्ष की प्रमुखता है। 'ब्रह्मराक्षस' में कवि का आत्मसंघर्ष अंकित है। परम्परागत ज्ञान की अपार राशि का धर्ता मनुष्य के व्यक्तित्व का 'आत्मसंघर्ष' यहां उपस्थित है जो अपनी परम्परा से उपलब्ध ज्ञान की सही तात्विक विवेचना न कर पाने के कारण भीतरी और बाहरी दोहरे संघर्षों के बीच पिस गया है।

"और, तब दुगुने भयानक ओज से
पहचान वाला मन
सुमेरी - बेबिलोनी जन - कथाओं से
मधुर वैदिक ऋचाओं तक
व तब से आज तक के सूत्र
छन्दस्, मन्त्र, थियोरम्,
सब प्रमेयों तक
कि मार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टांएन्बी
कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गान्धी भी
सभी के सिद्ध - अन्तों का
नयी व्याख्या करता वह
नहाता ब्रह्मराक्षस, श्याम
प्राक्तन बाबड़ी की
उन धनी गहराइयों में शून्य।" २०६

मुक्तिबोध के लिए परम्परा में स्थिरता नहीं। परम्परा एक ऐसा यथार्थ है जो काल की सापेक्षता में गतिशील है। यदि परम्परा को वर्तमान की सापेक्षता में सर्जित किया जाय तब तो वह अनुकूल है अन्यथा वह प्रतिकूल होकर संघर्ष को जन्म देती है–

"पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रेजिडी है नीच।" २०७

'दिमागी गुहान्धकार का औरांगउटांग' में कवि ने 'औरांगउटांग' प्रतीक का प्रयोग आत्मचेतना के लिए किया है। वह आत्मचेतना से साक्षात्कार करते हुए नग्न और

असत्य शक्तियों से जूझता है और पराजित होकर पुनः वाद-विवाद में शामिल हो जाता है। अहम को ही महत्ता दी जाती है। एक उदाहरण देखिये–

"पाता हूँ अकस्मात्
स्वयं के स्वर में
औरांगउटांग की बौखलाती हुंकृति ध्वनियां
एकाएक भयभीत
पाता हूँ पसीने से सिंचित
अपना यह नग्न मन
हाय हाय और न जान ले
कि नग्न और विद्रूप
असत्य शक्ति का प्रतिरूप
प्राकृत औरांग-उटांग यह
मुझमें छिपा हुआ है।" २०८

'मुझे नहीं मालूम' में भी 'आत्म-साक्षात्कार' का सजीव अवलोकन है। इसमें वैज्ञानिकबोध को जीवन के साथ सम्पृक्त कर मुक्तिबोध ने एक अनोखा प्रयोग किया है। विज्ञान भी गतिशीलता में आस्था रखता है। मुक्तिबोध की कविता में विकास परम्परा के भीतर से गुजरकर होता है अलग से नहीं। कवि ने विज्ञान सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग आत्मसंघर्ष को सही रूप से निरूपित करने के लिये किया है। इसमें वह सफल भी रहा है।

"हमें तो डर है कि
खतरा उठाया तो
मानसिक यन्त्र - सी बनी हुई आत्मा
आदतन बने हुए अऋतन भाव-चित्र
विचार चरित्र ही
टूट फूट जायेंगे
फ्रेमें सब टूटेगी व टण्टा होगा निज से
इसीलिये, सत्य हमारे हैं सतही

पहले से बनी राहों पर घूमते हैं
यन्त्र - बद्ध गति से।"२०९

'एक स्वप्न कथा' में भी 'आत्मपीड़ा' का उद्‌घाटन मूर्तित है। व्यक्तित्व से साक्षात्कार करती मुक्तिबोध की चेतना में निश्चय ही एक नयापन है। आत्मद्वन्द्व की स्थिति मे सर्वत्र एक गति मिलती है जो नये-नये रूपों में संवरकर प्रतिभासित होती है और कवि को विकास की ओर अग्रसर करती है।

"इसीलिए मेरी ये कविताएं
भयानक हिडिम्बा है,
वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएं
विकृताकृति - बिम्बा है।"२१०

'इस चौड़े ऊंचे टीले पर' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध की 'अस्मिता' की खोज नये-नये बिम्बों का प्रयोग प्रयुक्त हैं –

"मैं वहीं ठूंठ, यह निर्विवाद!!
यदि यह सच तो
उद्दण्ड अहं
यानी कि पेड़ ने दिया तोड़
वह नीड़ स्वयं !!
घोसला तोड़ने का अपराधी कौन?
पेड़ ही खुद !!
तूफानों का न उसमें दोष
क्योंकि वे अचेतन, अन्ध, प्रजड़ !
वह उग्र प्रभंजन - मात्र निमित्त हेतु कारण
अपराधी में स्वयं असाधारण।"२११

ठूंठ से तुलना करने के तदुपरान्त ही सक्रियता उसके हृदय को मथती है एवं वह निष्क्रियता से सक्रियता की ओर जाता है-

"पर मेरे सम्मुख प्रश्न नाच उठता

यदि मूलों मे ंपानी न पहुँच पाये
यदि शाखाएं पूरी शक्ति न खींचे
तो मुझ जैसे निर्बल का
जितना भी दायित्व
कहां तक अनन्त है।"२१२

'अंधेरे' में शीर्षक कविता मुक्तिबोध की अत्यन्त सशक्त रचना है। 'निष्कर्षत: मुक्तिबोध की कविता में व्यक्ति के अस्तित्व संघर्ष के विविध आयाम हैं जिनमें वह गहराते पुरातन आदर्शों और आत्म निर्वासन की त्रासजनक भूमिकाओं में स्वयं को तलाश रहा है लेकिन उसकी परिणति कर्मपक्ष से शून्य मात्र बौद्धिक जुगाली में नहीं है। इस तलाश में मुक्तिबोध व्यक्ति परिष्करण के लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो जाते हैं क्योंकि 'अंधेरे' में कविता के अन्त में उन्होंने आत्म खोज के साथ अभिन्न रूप में जुड़े हुए अपने जन-जन सम्पृक्ति के उद्देश्य को पा लिया है।'२१३ मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष स्व से पर के संघर्ष को जोड़कर समस्या का निदान ढूंढ़ता है।

"विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति
खोजता हूँ पठार....पहाड़....समुन्दर
जहां मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भवा।"२१४

दूसरे वर्ग की कवितओं में मुक्तिबोध ने वाह्य अर्थात समष्टि से सम्पृक्त कर शोषण, अन्याय का प्रतिकार किया है। रूढ़ता और जड़ता का प्रतिरोध भी किया है 'लकड़ी का बना रावण' शोषक वर्ग का प्रतीक है जिसके विरुद्ध आवाज उठाने का दुस्साहस साधारण जनसमुदाय नहीं कर सकता। 'जन चेतना कभी भी इस पारम्परिक शक्तिशाली व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकी। जन चेतना की इस असहायता के पीछे तथाकथित भारतीय संस्कृति की धार्मिक रूढ़ियाँ, वर्ग व्यवस्था की बेड़ियां तथा नियतिवादी दार्शनिक मान्यताएं रही हैं। पारम्परिक व्यवस्था के स्वरूप चित्रण के लिये मुक्तिबोध ने उन्हीं शब्दों, प्रतीकों और दार्शनिक मुहावरों का प्रयोग समुचित वातावरण

निर्माण करने के लिए किया है जिसमें उसकी तथाकथित भव्यता तथा स्वरूप को आभासित कराया जा सके।'२१५

मुक्तिबोध ने परम्परायुक्त विषय को आधुनिक सांचे में रूपायित किया है। कालप्रवाह में शाश्वत तथ्य समय के अनुकूल दिशा-परिवर्तन कर एक नये प्रसंग की अवतारणा करते हैं। परम्पराबोध को कवि ने सकारात्मक रूप में अर्जित किया है उसे रूढ़िवादी अर्थ में ग्रहण नहीं किया है। वह प्रगति का उपासक है। वह प्रगति का अनुयायी है। वह प्रगति के लिये ही है।

"समय का कण-कण
गगन की कालिमा से
बूंद बूंद चू रहा
तड़ित उजाला बन।"२१६

'डूबता चाँद कब डूबेगा' में प्रयोगधर्मी मुक्तिबोध का कलात्मक अंकन सफलता का आगार है। चाँद यहाँ पूंजीवादी सभ्यता का प्रतीक है। इसमें कवि ने अपने मन्तव्य को सपष्ट करने हेतु पौराणिक प्रसंगों का भी प्रक्षेपण किया है।

वह पौराणिक कथनों का अवलम्बन लेकर वर्तमान जीवन की समस्या को ही केन्द्र में रखता है। कवि की समस्या है कुप्रवृत्तियों पर सद्वृत्तियों की विजय। वह केवल पूंजीवादी सभ्यता के खिलाफ आवाज नहीं उठाता। उसकी आंखें नारी शोषण के भक्षकों को भी उतनी सख्त आवाज में दुत्कारती है-

"खूबसूरत कमरों में कई बार,
हमारी आंखों के सामने,
हमारे विद्रोह के बावजूद,
बलात्कार किये गये
नक्षीदार कक्षों में।
बोले निर्व्याज नयन हिरनी से
मासूम चेहरे
निर्दोष तन-बदन

दैत्यों की बांहों के शिकंजों में
इतने अधिक
इतने अधिक जकड़ गये
कि जकड़े ही जाने के
सिकुड़ते हुए घेरे में वे तन-मन
दबते-पिघलते हुए एक भाप बन गये।"२१७

शून्य से शून्यता की महत्ता का प्रतिपादन है। शून्य का स्वरूप टिकाऊ और उपजाऊ होता है। इसमें अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले शस्त्र करवत, कटार और दर्रात की शक्ति निहित है। इस शक्ति को देख शोषक दुनिया हाथ मलती है। कवि के यहां शब्द प्रयोग सच ही अद्‌भुत है।

"बहुत टिकाऊ है
शून्य उपजाऊ है
जगह - जगह करवत, कटार और दर्रात,
उगाता - बढ़ाता है
मांस काट खाने के दांत।
इसीलिए जहां देखो वहां
खूब मच रही है, खूब ठन रही है,
मौत अब नये - नये बच्चे जन रही है।
जगह - जगह दांतदार भूल,
हथियार - बन्द गलती है,
जिन्हें देख, दुनिया हाथ मलती हुई चलती है।"२१८

संक्षेप में मुक्तिबोध में अतीत और वर्तमान दोनों ही परिलक्षित होता है। ये दोनों बोध मुक्तिबोध की रचनाओं को प्रगति से ओत-प्रोत करते हैं। आन्तरिकसत्य की छटपटाहट वाह्य सत्य की छटपटाहट को एकरूप कर प्रस्तुत करती है। वे वर्तमान की कटुता को देख अपनी परम्परा से विमुख नहीं होते। मुक्तिबोध की काव्यभाषा अत्यन्त गठी हुई और नव्य है। 'अभिव्यक्ति के समस्त खतरों को झेलकर उन्होंने परम्परागत भाषाशैली (शब्दनिर्माण) के 'मठ और दुर्ग' तोड़ डाले और अपने अरूण कमल रूपी लक्ष्यार्थ को

भाषा के स्तर पर भी उसकी सफलता और सार्थकता के रूप में प्राप्त कर ही लिया।'२१९ मुक्तिबोध ने भाषा शैली में नाटकीयशैली का प्रयोग किया है। शब्दों के प्रयोग में वे बेजोड़ हैं। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में रचित बिम्बों और प्रतीकों के लिए भी मुक्तिबोध ने वैज्ञानिक शब्दों का अनूठा प्रयोग किया है- मूल उद्जन, ज्योतिशास्त्र, चुम्बकीय शक्ति। व्यंग्य शैली का प्रयोग भी इनकी मौलिक प्रतिभा है। इन सबसे अलग हटकर मुक्तिबोध ने शैल्पिक प्रयोग किये हैं। लम्बी कविता और फैंटेसी इसके अनुपम उदाहरण हैं। इस प्रकार मुक्तिबोध द्वारा अपनाये गये शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग उसे नयी अर्थवत्ता से संयुक्त करते हैं और एक सही प्रयोक्ता भी ठहराते हैं।

तार-सप्तक का मूल्यांकन

अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार-सप्तक' हिन्दी कविता की विकासात्मक प्रक्रिया को परम्परा से विलग कर, नये प्रयोग में निहित प्रगति के स्वर को ले काव्य क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। इसका प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ। वस्तु और व्यंजना दोनों ही क्षेत्रों में नये कवि नये प्रयोग को महत्ता दे रहे थे। इनका दृष्टिकोण अन्वेषी का था और वे मानते थे कि विगत के समस्त प्रतिमान या मूल्य आज के सत्य के पक्ष में अधूरे प्रतीत हो रहे हैं, पुरानी उपलब्धियाँ अब निष्क्रियता का निर्वाह है, नयी अन्वेषण दृष्टि नये प्रयोग की माँग करती है और इससे ही काव्य का नया सत्य, नया यथार्थ प्राप्त किया जा सकता है। तार-सप्तक की आयोजना के मूल में प्रमुख सिद्धान्त यह भी था 'संगृहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं- जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।'२२० यानी तार-सप्तक में संगृहीत सभी कवि कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं और ये सभी काव्य का सत्य पा लेने को सचेष्ट तो हैं पर यह चेष्टा मात्र एक अन्वेषण ही है जो अन्वेषण के लिये अन्वेषण है। इन संग्रहीत कवियों की रचनाओं से ज्ञात होता है कि इन कवियों ने वस्तु एवं व्यंजना दोनों क्षेत्रों में नये प्रयोग करने की कोशिश की है किन्तु कोई स्थिर प्रतिमान का निर्माण करने की कांक्षा नहीं है जो ठोस और सजीव तत्वों को निर्मित कर पाये, किसी परम्परा को प्रवाह दे सके। यहाँ अज्ञेय का मन्तव्य ध्यातव्य है कि 'प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया

है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुआ है उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिये जिन्हें अभी नहीं छुआ गया था जिनको अभेद्य मान लिया गया है।२२१'

अज्ञेय अभेद्यक्षेत्रों के अन्वेषण की अनिवार्यता पर बल देते हैं और यह अनुभव करते हैं कि साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियाँ नये युग के प्रतिकूल है, उसमें नये प्राण-संचार को ग्रहण करने की क्षमता नहीं है। आज साधारणीकरण की नवीन प्रणालियाँ, अभिव्यक्ति की नवीन शैलियाँ, नये प्रयोग के माध्यम से प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। इस अनिवार्यता के मूल कारण की चर्चा करते हुए तार-सप्तक में दिये अपने वक्तव्य मे ंउनकी मान्यता है कि 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक रूढ़ि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ विकसित नहीं हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ रूढ़ि का विकास असम्भव है।'२२२ किन्तु रूढ़ियां तो स्वत: काल की गत्यात्मक प्रक्रिया में सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है। हमेशा परिवर्तन की सापेक्षता में कवि दृष्टि नये का आवर्तन करती है फिर अज्ञेय का यह तर्क न्याय संगत प्रतीत नहीं होता कि सामाजिक रूढ़ियों और स्थिति में परिवर्तन की तीव्र गति के कारण आधुनिक युग का व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है। अस्तु अज्ञेय के अलावा संग्रह के सभी कवियों ने वक्तव्य में काव्य सम्बन्धी धारणाओं को भी व्यक्त किया है, जिसका परीक्षण यहाँ उचित होगा।

तार-सप्तक में सात कवि एकत्रित हैं– गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा और अज्ञेय।

गजानन माधव मुक्तिबोध मार्क्सवाद के प्रबल समर्थक हैं। मार्क्सवाद जीवन को विकसित करने के लिए अधिक मूर्त और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करता है एवं कवि अपनी कविताओं को अपना पथ ढूंढ़ने वाली बेचैन मन की अभिव्यक्ति मानता है, जिसका सत्य और मूल्य जीवनस्थिति में सन्निहित है। इनकी कविताओं में कहीं पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति तीव्र असंतोष प्रकट है. कहीं व्यक्तिवादी मनोभूमि का वर्णन है, कहीं सौन्दर्यानुभूति का उद्घाटन है।

नेमिचन्द्र जैन भी मार्क्सवाद के पक्षधर हैं। वह अपनी कविताओं को संस्कार और विवेक की चेतना का प्रतिफल स्वीकारते हैं। कविता में सौन्दर्यवादी चेतना के आग्रही हैं। उनकी धारणा है कि आज की कविताओं में व्यक्त अन्तर संघर्ष वर्तमान युग के संघर्षों की ही देन है। इन संघर्षों के निवारणार्थ सामूहिक एकता को महत्ता देनी होगी। इनकी काव्य प्रवृत्ति में आत्मरति की व्यंजना है, कहीं संक्रान्ति काल के कवियों पर व्यंग्य मिलता है।

भारतभूषण अग्रवाल भी मार्क्सवाद से अनुप्रेरित हैं। कविता की प्रगतिशील चेतना पर विचार प्रकट करते हुए वह मानते हैं कि कविता को समाज की शोषण सत्ता के खिलाफ विद्रोह कर समानता के लिए प्रयत्न करना चाहिये। कल्पना और स्वप्न का आधार छोड़कर यथार्थ की संवाहक प्राणशक्ति से इस शोषण से मुक्ति संभव है। मानव मुक्ति के उद्धार के लिये तब कविता एक शस्त्र की भांति उपयोगी होगी।

गिरिजाकुमार माथुर विषय की अपेक्षा भाषा में नये प्रयोग को महत्व देते हैं। नवीन छंद विशेषकर मुक्त छंद का प्रयोग इन्हें अभीष्ट है। ध्वनि विधान में स्वर ध्वनि का मुख्य प्रयोग इन्होंने किया है। इनकी रचनाओं में प्रेम का चित्रण है जो रोमांस की भावनाओं से परिप्लुत है।

प्रभाकर माचवे ने छायावाद और प्रगतिवाद की आत्म रति, मृत्यु प्रेम और संकेतों से स्वप्नपूर्ति, राजनीतिक पक्ष की प्रस्तुति प्रचार प्रवणता से अलग हटकर कविता को एक नई दिशा की ओर उन्मुख करने की चेष्टा की है। उनके शब्दों में 'वस्तु की दृष्टि से, हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग का तीक्ष्ण और सुरूचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन जीवन के निकटतम जा जाकर ग्रामगीत, लोकगाथा और बाजारु वाली कहकर हेय मानी जानेवाली बहुत सशक्त और कल्पना चित्रों को ग्रहण और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिये।'१ इन्होंने भी छन्द और भाषा में नये प्रयोग को नितान्त अनिवार्य माना है।

रामविलास शर्मा भी संकलित कवियों में से हैं। जो कविता को अथक परिश्रम की उपज स्वीकारते हैं और उनकी यह अवधारणा भी है कि अब वे अधिक कविता नहीं लिखेंगे। किन्तु वह भी लोक संस्कृति को कविता की प्रेरणा मानने के पक्ष में है।

अज्ञेय परिवर्तित परिस्थितियों में प्रयोग को एक ऐसा अस्त्र मानते हैं जिनके द्वारा सही विकास संभव है। अज्ञेय द्वारा मान्य सिद्धान्तों की चर्चा आगे की जा चुकी है उसका पुनः यहां निर्वाह आवश्यक नहीं। अज्ञेय की रचनाओं में व्यक्ति चेतना ही विशेष रूप से मुखरित है।

तार सप्तक में संकलित कवियों की रचनाओं के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि इन कवियों की प्रवृत्ति किसी एक विशेष क्षेत्र में रमी नहीं है, उसमें जितनी विविधता, जितना वैभिन्न्य है वह सचमुच उनकी बौद्धिक क्षमता के विस्तार का ही परिणाम है। कहीं युगीन संघर्षों का चित्रण है, कहीं व्यक्तिवादी मनोभूमि का उद्घाटन है, कहीं प्रेम के वियोग पक्ष से सम्बन्धित भावनाओं का अंकन है, कहीं सौन्दर्यबोध का प्रकाशन है, कहीं अनास्था, निराशा के भाव दर्शनीय है। इनकी काव्य चेतना वस्तु तत्व की अपेक्षा रूपतत्व में अभिनव प्रयोग की ओर विशेष लगी रही। नये उपमान, नये प्रतीक का यहां संगुम्फन है। जीवन के लिए अश्वत्थ, रूढ़ियों के लिये सघन बर्फ की कड़ी पर्तें, बिजली के जलते हुए बल्वों के लिए लहू की बूंदें, रबड़ के छन्दों के लिए शैतान की आतें ये सभी उपामान नये प्रयोग के सूचक हैं। छन्द विधान में भी नए प्रयोग किये हैं। मुक्तछंद, रूबाई की शैली के प्रयोग दर्शनीय है। सॉनेट और बैलेड, एकालाप की योजनाओं का भी निर्वाह हैं। इस प्रकार तार सप्तक संग्रह में वक्तव्य एवं अभिव्यंजना में नवीनता के प्रति ही मोह अधिक है। सामान्यतया सभी कवियों में अपनी परम्परा के प्रति कहीं भी आस्था और विश्वास का स्वर नहीं मिलता। क्या सचमुच नवीन दिशा के इन नये राहियों को अपनी परम्परा में कहीं भी जीवंतता दृष्टिगोचर नहीं हुई, परम्परा की प्रवाहयुक्त गति कभी भी जड़ता का पर्याय नहीं होती। परम्परा ने सदैव ही मानव को संबल दिया है, एक नयी राह का राही बनाया है फिर तार-सप्तक के इन कवियों ने नये प्रयोग को ही आधार क्यों चुना। यह प्रश्न सचमुच विचारणीय है। नवीनता का रूप प्रकट कर अपने अहं का विस्फोट करने वाली ये रचनायें सचमुच कोई एक ऐसा स्थिर प्रतिमान निर्मित नहीं कर पाई जो काल के सनातन प्रवाह का हिस्सा बन सके। हालांकि वस्तु और रूप क्षेत्रों में किये गये नये प्रयोग की महत्ता को झुठलाया भी नहीं जा सकता।

दूसरा सप्तक

दूसरा सप्तक का प्रकाशन सन् १९५१ में हुआ जिसके सम्पादक अज्ञेय ही थे। अज्ञेय ने दूसरा सप्तक की भूमिका में आलोचकों द्वारा उछाले गये विरोधी प्रयोग शब्द को लेकर की गई छींटाकशी के प्रत्युत्तर दिये हैं। अज्ञेय के मतानुसार प्रयोग सत्य को जानने का साधन है, प्रेषण की क्रिया को समझने का सही माध्यम है 'अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।'२२३

परिस्थितियों के बदलते मोड़ में अज्ञेय वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्रों में प्रयोग के समर्थक हैं। प्रयोग की सार्थकता इस बात में निहित है कि वस्तु में युग के जीवंत सत्य का उद्घाटन हो और शिल्प भी सत्य के अनुकूल हों। प्रयोग की आवश्यकता केवल तार सप्तक के समर्थकों को हुई हो। ऐसा नहीं है। प्रयोग निरन्तर होते आए हैं। प्रयोग में प्रगति निहित होती है एवं कविता का आज जो वर्तमान स्वरूप है वह प्रयोगों की देन है। प्रयोग की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उनका मत है 'हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय के लिए कोई महत्व नहीं है, महत्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हमें प्राप्त हो। 'हमने सैकड़ों प्रयोग किये हैं' यह दावा लेकर हम पाठक के सामने नहीं जा सकते, जब तक हम यह नहीं कह सकते हैं कि 'देखिये, हमने प्रयोग द्वारा यह पाया है।' प्रयोग का महत्व कर्ता के लिये चाहे जितना हो सत्य की खोज, लगन उसमें चाहें जितनी उत्कट हो, सहृदय के निकट वह सब अप्रासंगिक है। पारखी मोती परखता है, गोताखोर से असफल उद्योग नहीं। गोताखोर का परिश्रम व प्रयोग अगर प्रासंगिक हो सकता है तो मोती को सामने रखकर ही- इस मोती को पाने में इतना परिश्रम लगा-बिना मोती पाये उसका कोई महत्व नहीं है।'२२४

अज्ञेय ने प्रयोग और परम्परा के अन्तर्सम्बन्धों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। परम्परा के विषय में अपनी सहमति अवश्य उन्होंने प्रकट की है। अज्ञेय उस परम्परा का कोई महत्व नहीं समझते जो कवि के संस्कार को प्रभावित नहीं करती। कवि के संस्कार को प्रभावित न करने वाली परम्परा को वे इतिहास, शास्त्र, ज्ञानभंडार मानते हैं और वे यह मानते हैं कि कवि परम्परा से अपरिचित रहकर भी काव्य की सर्जना कर

सकता है। परम्परा के प्रति असहमति प्रकट करते हुए उनकी मान्यता है कि 'जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिये परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिये कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे उठाकर सिर पर लाद लें और चल निकले' कुछ आलोचकों के लिये भले ही वैसा हो परम्परा का कवि के लिये कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोंक बजा कर, तोड़-मरोड़ कर आत्मसात् नहीं कर लेता। जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना अनावश्यक न हो जाय।'२२५ परम्परा का यहां स्पष्ट प्रतिवाद है, प्रयोग से विकास करने को सभी उद्यत हैं। यानी संग्रह के कवि एक ऐसे पथ पर आरूढ़ है, जो प्रशस्ति पथ है, इस पथ से गुजरकर कविता या कला सही विकास की दिशा में उन्मुख होंगी। परम्परा से अलग हट कर प्रयोग क्योंकर हुआ, इसकी सार्थकता पर बल देते हुए उनकी दृष्टि है 'प्रयोग के लिये प्रयोग' इनमें से किसी ने नहीं किया है, पर नई समस्याओं और नये दायित्वों का तकाजा सबने अनुभव किया है और उससे प्रेरणा सभी को मिली है।'२२६

निष्कर्षत: अज्ञेय ने प्रयोगवाद के विरोध में उठी आवाजों की सफाई के रूप में यह कहा कि प्रयोग एक आवश्यकता है, साधन है। इन कवियों ने परम्परा की चर्चा अवश्य की पर उसके सार गर्भित अंशों की ओर दृष्टिपात भी नहीं किया।

दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि हैं- भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

भवानी प्रसाद मिश्र कविता को परम्परागत शैली से बाहर लोक भाषा और मुहावरों के प्रयोग से संयुक्त करते हैं। "जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख, और उसके बाद हमसे बड़ा तू दिख"- यह उनकी भाषा-विषयक दृष्टि है। बोलचाल की भाषा में कवि के अपने मन के उद्गारों की अभिव्यक्ति अतीव सुन्दर है।

शकुन्तला माथुर कविता को स्वान्त: सुखाय मानती है। उनकी रचनायें किसी विशेष दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व नहीं करती, न नियमों का बंधन ग्राह्य मानती है। उनके मतानुसार उनकी रचनाएं कविता द्वारा अपने को व्यक्त करने का एक लम्बा प्रयोग है। यह लम्बा प्रयोग स्वान्त: सुखाय रचना को जन-हिताय की ओर अग्रसर करता है। उन्हीं के शब्दों में 'कवि की आकांक्षाएं, भावनाएं इतनी विस्तृत हों कि उनकी सीमा में जन-

जन की भावनाएं आ सकें, यह तभी संभव है जब वे भावनाएं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की आवाज बनकर निकलें, खोखले प्रचार का आधार लेकर नहीं। वर्ना ऐसी कविता फूहड़ होगी, उससे तो पैम्पफलेटों का गद्य ही बेहतर है।' एवं 'कविता जीवित हो अर्थात वह जीवन के वास्तविक वातावरण और परिस्थितियों की जमीन पर जन्म ले।'२२७

हरिनारायण व्यास वैयक्तिक चेतना से प्रभावित हैं। पुरानी मान्यताओं के प्रतिरोध में नये को प्रोत्साहित करते हुए उनका कथन है- 'पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दों, पुरानी कहावतों को नये अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।'२२८ वह वैयक्तिकता के साथ सामाजिक विकास के भी पक्षधर हैं। सामाजिक विकास वैयक्तिकता को प्रोत्साहन देता है। यह प्रोत्साहन सत्य के उद्घाटनार्थ नव्यता का आधार लेता है। हर नया शब्द, नये छन्द, नयी अभिव्यक्ति के नये प्रयोग साहित्यकार की विवशता नहीं, सामाजिक विकास की मांग होते हैं।

"जल रही प्राचीनताएं बांध छाती पर मरण का एक क्षण
इस अंधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेध कर
आ रही अमर नये युग की किरण।"२२९

उपर्युक्त पंक्तियों में हरिनारायण व्यास की नये युग की जागरुक चेतना झलकती है अर्थात अतीत की भित्ति पर नवयुग की प्राणप्रतिष्ठा नहीं की जा सकती।

कविता के सतत् गतिशील स्वरूप के लिये परम्परा से प्रतिबद्ध नहीं रहा जा सकता, वहाँ नये को स्वीकारना ही होगा।

शमशेर बहादुर सिंह जन आन्दोलनों से प्रभावित हैं। वे प्रेम और सौन्दर्य के भी कवि हैं एवं सौन्दर्य भी यहँ उपभोग की वस्तु है। उनकी शैली पर लारेंस, इलियट, पाउंड, किमंग्ज, हापकिन्स आदि का प्रभाव पड़ा है, निराला से भी वे प्रभावित हैं। इनकी प्रवृत्ति में विविधता है रूबाई, शेर, ग़ज़ल, गीत सभी विधाओं में इनकी वृत्ति रमी है।

नरेशकुमार मेहता की कविता में प्रयोगों की आवश्यकता पर बल देते हैं। कवि नवयुग के अभ्युदय की कांक्षा से जीर्णता से उद्धार के लिये, नूतनता का वरण स्वीकारता है–

"भूमि का भोगों सुख, नदियों का सोम पियो

त्यागो सब जीर्ण वसन, नूतन के संग-संग चलते चलो।" २३०

नरेश मेहता ने नये अभ्युदय की कामना से संरचित कविताओं की भाषा में भी नये प्रयोग किये हैं।

रघुबीर सहाय यथार्थ के प्रतिनिधि कलाकार हैं। जीवन की छोटी सी छोटी घटना को अपनाकर इन्होंने आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति दिखाई है। कविता में विचार की प्रधानता पर बल देते हुए उनका कहना है- 'विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हो।' २३१

धर्मवीर भारती उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीतों के गायक हैं। इन गीतों में भी कुंठा का भाव नहीं मिलता, अपनी अन्तर की सशक्त अनुभूतियों को साहसतापूर्वक खोलकर रख देने की शक्ति मिलती है।

भारती परम्परा को तोड़कर नए प्रयोग करते हैं। 'इसीलए जब कभी भारती परम्परा तोड़कर कोई नयी चीज लिखता है तो वह आनेवाली पीढ़ी के ज्ञान-संचय के लिए, नये आकलन के लिये एक नई आधार भूमि के गठन में अपना भी छोटा सा देय सम्मिलत कर रहा है।' २३२

'दूसरा सप्तक' में एकत्र कवियों के वक्तव्य और रचनाओं का आकलन करें तो इन कवियों की कुछ निजी विशेषताओं का पता चलता है। ये विशेषताएं हैं– आत्मविश्वास के साथ अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करना, प्रेमनिवेदन में उत्तरछायावादी कवियों की तरह अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप को अपनाना, भाषा को लोकभाषा के सन्निकट लाने का प्रयास करना, प्रयोग के लिए अतिरिक्त उत्साह दिखाना। इन कवियों ने इन समस्त प्रवृत्तियों का विवेचन तो किया है किन्तु उन्होंने परम्परा के लिये उदासीनता का ही रूख अपनाया, भाषा को लोकभाषा के सन्निकट लाने का प्रयास करना, प्रयोग के लिए अतिरिक्त उत्साह दिखाना। इन कवियों ने इन समस्त प्रवृत्तियों का विवेचन तो किया है किन्तु उन्होंने परम्परा के लिये उदासीनता का ही रूख अपनाया है। क्योंकि वे मानते हैं कि परम्परा को तोड़कर ही कवि वर्तमान बोध के लिये नये प्रयोग कर सकता है। ये कवि परम्परा और प्रयोग का समन्वय भी नहीं चाहते हैं। वे जगत के यथार्थ सत्य के

अन्वेषण के लिये प्रयोग को साधन मानते हैं। इनके दिये गये वक्तव्यों में भी प्रयोग का पक्ष सर्वाधिक प्रबल है।

तीसरा सप्तक

तीसरा सप्तक भी अज्ञेय के सम्पादकत्व में सन् १९५९ में प्रकाशित हुआ। अन्य सप्तकों की भाँति इसमें भी सात कवि लिये गये हैं– प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। तीसरा सप्तक के प्रकाशन से नई कविता का स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आया। इन सभी कवियों की प्रबुद्ध चेतना अधिक परिष्कृत और मंजकर प्रकट हुई एवं अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में अज्ञेय ने भाषा, सम्प्रेषण और शिल्प की प्रयोगशीलता की ओर प्रयोक्ता का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा भी की है। कवि को भाषा के अन्तर्गत प्रयोग के द्वारा शब्द को नया संस्कार देना चाहिए। जो शब्द को नयापन देते हैं वह वास्तविक उपलब्धि है। सम्प्रेषण की समस्या का समाधान तभी संभव है जब कवि की मौलिकता का सम्बन्ध वस्तु से होता है। विषय भले ही पुराना हो, उस वस्तु को सम्प्रेष्य बनाने में कवि कहां तक सक्षम है, यही कविता की वस्तु है। शिल्प सम्बन्धी प्रयोग के सम्बन्ध अधिक उदारतावादी होते हुए उनका कहना है कि इस वर्ग ने नई काव्यप्रवृत्ति को केवल शिल्प का रूपविधान का आन्दोलन, निरा फार्मेलिज्म कह कर, उसे उड़ा देना चाहा है। वास्तविकता यह है कि 'नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है क्योंकि वह उसे प्रेषण से काट कर अलग नहीं करता है। नयी शिल्प दृष्टि उसे मिली है, यह दूसरी बात है कि वह सबमें एक सी गहरी न हो, या सब देखे पथ पर एक सी समगति से न चल सकें हो।'२३३ इस प्रकार शिल्प सम्बन्धी नये-नये प्रयोग भी इन समस्त कवियों ने बहुलता से किये हैं। जिसको नकारा नहीं जा सकता। इस महत्व को स्वीकारना ही पड़ेगा।

तीसरे सप्तक के कवियों ने भी अपने वक्तव्यों में काव्यविषयक मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। जो इस प्रकार है।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी मुक्तछन्द के प्रयोग के समर्थक हैं। कवि ने आत्मसत्य को महत्ता दी है। उसकी चेतना अपने ही अन्तर्मन में विचरण करती दिखलाई पड़ती है, बाहर के लोक में वह प्रसार नहीं पाती है। उसकी प्रेमभावना भी यहां फूटी है किन्तु वह याचना और भोग की परिधि से बाहर की वस्तु है। कुल मिलाकर चिन्तन की प्रबलता ने उनको एक गम्भीर और मर्यादित व्यक्तित्व दिया है जो अपने आप में बेजोड़ हैं।

कीर्ति चौधरी की दृष्टि में कविता और मेरा जीवनदर्शन से सम्बद्ध है। नयी कविता को वे परस्पर विरोधी या विरोधी जान पड़ने वाले गुणों और विशेषताओं का एक अनोखा संगम मानती है। उनकी अनुभूतियां भी सहज और सरल है। आत्मपरक अभिव्यंजनाओं से परिप्लुत रचनाओं में सामाजिकता के प्रतिबिंब को ढूंढ़ना निरर्थक है। प्रेमपरक कविताओं में विरह प्रतिपादित है जो मर्मस्पर्शी है, वेदना से पूर्ण है।

मदन वात्स्यायन नई कविता के कवि हैं। इन्होंने नई कविता को मायावादी और कायावादी दो कोटियों में विभाजित किया है। इसके साथ ही कविता को आवेगप्रधान और लययुक्त होना भी वे आवश्यक मानते हैं। उनकी शृंगारपरक रचनाओं में कल्पना के नये-नये प्रयोग मिलते हैं जो सटीक और मनोहर है।

"आकाश-गंगा में न बहते दीप होते हैं
न उषा की पहली किरण से कोई रंग
प्रिये दोनों और तेरे काले बालों के
बीच में तेरी मांग है।" २३४

दूसरी रचनायें यन्त्र से सम्बद्ध हैं एवं जीवन के यथार्थ पर अवलम्बित है। नई कल्पना, नये उपमान, लय की नवीनता कवि को नये कवियों की कोटि में एक भिन्न स्थान देती है।

केदारनाथ सिंह बिम्ब विधान के आग्रही हैं। बिम्ब कविता को मूर्त एवं ग्राह्य बनाता है ऐसी उनकी उक्ति है। 'मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं और अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने के लिये लोक साहित्य, धर्म, पुराण तथा इतिहास के खण्डहरों में बहुत से ऐसे अज्ञात प्रतीक और अदृष्ट बिम्ब पड़े हुए हैं जिनकी खोज के द्वारा नई कविता की सम्भावना का पथ और भी प्रशस्त किया जा सकता है।' २३५

संगृहीत कविताओं में केदारनाथ सिंह की कवितायें तीन वर्गों में रखी जा सकती है– प्रकृति सम्बन्धी प्रेम विषयक तथा नवयुग के प्रति आस्थापरक रचनायें। परन्तु कविताओं की कलात्मक विशिष्टता है मूर्त बिम्ब विधान का चित्रण।

कुंवर नारायण सिंह कविता में वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को अनिवार्य मानते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनका तात्पर्य 'उस सहिष्णु और उदार मनोवृत्ति से है जो जीवन को किसी पूर्वग्रह से पंगु करके नहीं देखती, बल्कि उसके प्रति एक बहुमुखी सतर्कता बरतती है।'२३६ मनोविज्ञान भी उनकी कविताओं में तीन प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है– विचार पक्ष की प्रधानता, कविता का संगठन, और प्रयोग। कुंवरनारायण ने भाषाशास्त्र और सौन्दर्य के आधार पर प्रयोग किये हैं। इनकी कवितायें भी व्यक्तिगत अनुभूतियों से आप्लावित हैं जिसमें अकेलापन है, आत्मविवशता है, आत्मनिरीक्षण है।

विजयदेवनारायण साही कविता का आधार आस्था बताते हैं। तथा इस आस्था के पच्चीस शीलों की चर्चा भी इन्होंने की है। जिसका उल्लेख यहां हमारा अभिष्ट नहीं है। सार्त्र से अनुप्रेरित साही अस्तित्व के लिये सतर्क हैं। वह एक प्रकार की वेदना से पीड़ित है जो कवि में विवशता, छटपटाहट को जन्म देती है। 'उन्होंने अपनी कविताओं में दर्द को दर्शन की सीमान्त रेखा तक पहुंचा दिया है, यही नहीं, दर्द कर्म का स्थानापन्न बन गया है। कल्पना उनकी व्योम विहारिणी है, सपने उनके मधुर तथा मधुभासी हैं, संकल्पों की अग्नि शीतल एवं 'तम में कांपते, धुंधले, मौन कुहासे' के समान सांस लेती प्रतीत होती है।'२३७ साही वस्तुत: दर्द और वेदना के कवि हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भी मूलत: नयी कविता के कवि हैं। उन्होंने भी परम्परा का प्रतिरोध किया है। वे जर्जर रूढ़ विघटित ध्वंस परम्परा के अधोमुखी मूल्यों का निष्कासन करते हैं एवं कविता में सदैव नये रूपविधान के वरण के लिये सचेष्ट रहते हैं। सर्वेश्वरदयाल भी साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं।

तीसरा सप्तक के कवियों ने जिन प्रवृत्तियों को अर्जित किया है वह कोई नयी प्रवृत्ति नहीं है। कहीं आत्मसत्य के उद्गार व्यंजित है, कहीं प्रेम-विषयक भावनाओं का निरूपण है, कहीं नवयुग के परिवेश का यथार्थ चित्रण है, कहीं आत्मसंघर्ष का प्रकाशन है, कहीं नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों का अंकन है, कहीं वेदना का स्रोत फूटा है। कुल मिलाकर इन समस्त कवियों की काव्य चेतना अन्तरजगत की उपज है जो

अनुभूत सत्य को वैयक्तिक रंग में रंग कर प्रस्तुत करती है। उनका शिल्प सम्बन्धी दृष्टिकोण भी नितान्त भिन्न है, जिसमें एकात्मकता का पूर्ण अभाव है। शिल्प के नये-नये प्रयोग इन कवियों के व्यक्तित्व को वैशिट्य देते हैं।

अज्ञेय की दृष्टि इन कवियों के सन्दर्भ में परीक्षणीय है– 'कहना यह है कि नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है, क्योंकि वह उसे प्रेषण से काट कर अलग नहीं करता है। नयी शिल्प दृष्टि उसे मिली है, यह दूसरी बात है कि वह सब में एक सी गहरी न हों, या सब पथ पर एक सी समगति से न चल सके हों।' २३८

तार सप्तकों का मूल्यांकन करने से विदित होता है कि इन संग्रहों में एकत्रित सभी कवि प्रयोग से अनुप्रेरित हैं। प्रयोग को साधना मानकर इन्होंने नयी संवेदना, नयी अनुभूति, नयी टेकनीक को कविता के विकासक्रम में प्रतिष्ठापित करने की कोशिश की है। सही प्रयोग वह होता है जो कविता की विकसनशील निरन्तरता को परम्परा और प्रयोग के धरातल पर समझ कर गति दे सके। तार सप्तक, दूसरा सप्तक तथा तीसरा सप्तक के सभी कवि अपनी परम्परा से उपेक्षा का बर्ताव करते हैं। परम्परा में उन्हें किसी प्रभाव की छाया भी दिखलाई नहीं पड़ती फलस्वरूप युग-धर्म की अनिवार्यता को समझते हुए नितांत वैयक्तिकता की ओट में प्रयोग के द्वारा नयी चिंतना के प्राणप्रतिष्ठा का कार्य किया। उसकी अन्वेषण दृष्टि ने किसी शाश्वत मूल्य की स्थापना का प्रयास भी नहीं किया, न ही वस्तु या शिल्प के पथ पर समगति से चलने का अभ्यास किया। हरेक की जीवन को देखने की दृष्टि अलग है जिसके कारण शिल्प भी एकदम परिवर्तित हो गये हैं। विवेच्य कवियों और कवियित्रियों की प्रकृति में प्रयोग की ही प्रधानता है, परम्परा जड़ता का पर्याय है, सभी नये हैं अतएव नव्यता के प्रति उनका विशेष लगाव है जो एक नयी दृष्टि का अन्वेषण करने के लिए इनमें प्रयोग के लिए रूझान पैदा करती है, आकर्षण शक्ति को जागृत करती है ताकि उसकी प्रस्तुति परम्परा से भिन्न, प्रयोग के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग की दायी बन सके।

प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय

प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक अज्ञेय छायावादोत्तर काल के शीर्षस्थ कवि हैं। अज्ञेय का आविर्भाव सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अज्ञेय परम्परा के समर्थक होकर भी नये-नये प्रयोगों को विशेष महत्व देते हैं। नये प्रयोगों के द्वारा उन्होंने हिन्दी कविता को एक नई दृष्टि दी है। अज्ञेय ने भावना के साथ विचार को सृजनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठा दी है। सम्भवतः इसलिए डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं 'अज्ञेय की कविता गैर रोमाण्टिक है, यह कहना शायद बहुत ठीक न हो। पर अज्ञेय में गैररोमाण्टिक कविता की सम्भावना विवृत होती अवश्य दिखलाई पड़ती है।' २३९

प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय छायावाद युग में भी रचनारत रहे। 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' इसी समय की रचनाएं हैं जिनमें छायावादी संस्कार विद्यमान है। वस्तुतः अज्ञेय की काव्य चेतना का छायावादोत्तर काल में ही विकास हुआ जिसके चरम उत्कर्ष को उनकी काव्य-कृतियों में ढूंढ़ा जा सकता है।

'इत्यलम' (१९४६) अज्ञेय का प्रथम प्रयोगवादी काव्य-संकलन है। 'इत्यलम' के दुर्ग और मिट्टी की ईंहा, 'बन्दी-स्वप्न' में कवि का आत्म रुदन प्रतिध्वनित है। वह व्यक्ति की सीमाओं में आबद्ध है, समाज की विपरीत स्थितियों से अकेले लोहा लेता है, असफल भी होता है। यही कारण है कि 'हिय-हारिल' में निराश प्रेम की मार्मिक अनुभूतियाँ अधिक तीव्रता से उभर कर आईं। अज्ञेय यहाँ 'हारिल पक्षी' के प्रतीक से अपनी प्रेमानुभूति को व्यक्त करते हैं। 'वंचना के दुर्ग' में उनका प्रयोगवादी रूप अभिव्यक्त है। वे एक प्रयोक्ता कवि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से कवि अपनी प्रेमानुभूति को उद्घाटित करता है। 'मिट्टी की ईहा' में उनकी रहस्यवादी और प्रणयानुभूति सम्बन्धित रचनाएँ संकलित हैं। 'वंचना के दुर्ग' के बाद इस खण्ड में कवि की प्रयोगधर्मी दृष्टि को विस्तार मिला है।

'हरी घास पर क्षण भर' अज्ञेय की दूसरी कृति है। प्रणयानुभूति की प्रधानता के साथ अज्ञेय ने अहम को भी महत्ता दी है। इस कृति में कुण्ठित प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। यह कुण्ठा व्यक्ति विशेष की न होकर पूरे युग का प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु इस प्रेम की अवधारणा अहम के द्वारा व्यक्त है। वह कहता है–

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर
स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
द्वीप हैं हम, यह नहीं है शाप
यह अपनी नियति है।२४०

अहम की अभिव्यक्ति में गर्वोक्ति है। कवि यह बतलाता है कि अहम् भावना से ही युग की राह सुगम और प्रशस्त बन सकती है। कवि ने परम्परागत प्रतिमान के स्थान पर नए प्रतिमान गढ़े हैं। अत: वह अपने प्रेयसी को 'बिछली-घास' और 'बाजरे की कली' कहता है।

"अगर मैं यह कहूँ
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की।
आज हम शहरात्रियों को
पालतू मालंच पर संकरी जूही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का, ऐश्वर्य का
औदार्य का-
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है।"२४१

'बावरा-अहेरी' में भी समान प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। कवि अपने गर्व पूर्ण अहम को त्याग देता है तथा सामाजिकता का समर्थक हो जाता है। अज्ञेय यहाँ नये प्रतीकों का बहुलता से प्रयोग करते हैं।

'इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे' अज्ञेय की कविता का अगला विकास चरण हैं। इसमें भी प्रतीक प्रयोग की दृष्टि से वे सफल रहे हैं। सीपी मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों का प्रतीक है। सागर तट पर टूटी सीपियों को देखकर कवि इन्हें रौंदे हुए इन्द्रधनुष कहता है। कहीं कवि की रहस्यात्मक अनुभूति प्रकट है और कहीं व्यंग्य। अब वह खुद को एक सेतु मानता है

एक ऐसा सेतु जो वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है और अपने अस्तित्व को समष्टि में विलीन कर देता है।

'मैं सेतु हूँ
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है
जो मानव को एक करता है
समूह का अनुभव जिसकी मेहराबे हैं
और जनजीवन की अजस्र प्रवाहमयी नदी।
जिसके नीचे से बहती है
चिर परिवर्तनशीलता सागर की ओर जाती है, जाती जाती बहती है।'२४२

'अरी हो करूणा प्रभामय' इसके बाद की कृति है। इस संग्रह में अज्ञेय की रहस्यानुभूति को प्रगाढ़ता मिली है। कवि ने 'मछली' प्रतीक का एक नये अर्थ में प्रयोग किया है। इसमें अज्ञेय की एक टिप्पणी उद्धृत है– 'जीवन स्वप्नों और आकारों का एक रंगीन और विस्मय भरा पुंज। हम चाहे तो उस पुंज में ही उलझे रह सकते हैं। पर रूप का यह आकर्षण भी वास्तव में जीवन के प्रति हमारे आकर्षण का प्रतिबिम्ब है। जीवन को सीधे न देखकर हम एक काँच में से देखते हैं तो हम उन रूपों में ही अटक जाते हैं जिनके द्वारा जीवन अभिव्यक्त है।'२४३ सोन मछली कविता इसी का संकेत देती है।

हम निहारते रूप
काँच के पीछे हाँफ रही है
रूप-तृषा भी
(और काँच के पीछे) है जिजीविषा।२४४

अज्ञेय की कवि प्रतिभा की विशिष्टता है कि वे रूढ़ अर्थों को बड़ी सहजता से अस्वीकार देते हैं और उसके माध्यम से वे नयी उद्भावना का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के प्रतीकों के द्वारा ज्ञान की खोज को एक कौतूहलपूर्ण विषय बनाते हैं। इसमें कुछ जापानी हायकू के अनुवाद भी हैं और कुछ नये कवियों और कविता पर उपदेशात्मक और आवेगात्मक उद्गार भी।

'आंगन के पार द्वार' कविता संग्रह में रहस्यवादी चिन्तन प्रमुख है। इस संग्रह में तीन भाग है– 'अन्त: सलिला', 'चक्रान्तशिला' और 'असाध्य-वीणा'। 'अन्त:सलिला' में अज्ञेय पूर्ववर्ती रचना में प्रयुक्त मछली प्रतीक को एक नयी व्यंजना देते हैं। मछली प्रतीक का प्रयोग यहाँ जिजीविषा के अर्थ में प्रयुक्त है। 'चक्रांत-शिला' में बौद्ध दर्शन के प्रति कवि की प्रणति निवेदित है।

'असाध्य-वीणा' एक लंबी कविता है। इसमें कवि ने सृष्टि के रहस्य की आत्मदान के रूप में व्याख्या की है।

"श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था
सुना आपने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी।"२४५

'कितनी नावों में कितनी बार' शीर्षक में अज्ञेय ने पुन: आत्मकथ्यात्मकता और रहस्यात्मकता को उजागर किया है। कवि ने अपनी काव्ययात्रा के बढ़ते चरण में हर जगह एक नई जीवन दृष्टि का परिचय दिया है। इस कृति में उसकी पूर्णता परिलक्षित होती है। इसके फ्लैप पर लिखा है– अज्ञेय' की 'आत्मनिष्ठ', 'अन्तर्मुखी', 'अहंवादी' चेतना का सस्ता अस्वीकार इतनी बार और इतने दिनों से किया जाता रहा है कि एक सम्पूर्ण आलोचनावृत इन नामों के मोह में न पड़कर न केवल अज्ञेय की बल्कि उस वृत्त के अन्य कृतित्व की भी मौलिक आकांक्षा पहचानने से कतरा गया है, अपने माध्यम से भीड़ को, समाज को, व्यक्ति को, जो भी ममेतर है उसको जानने की आकांक्षा बहुधा व्यक्तिवादी कहलायी जाकर तिरस्कृत हुई है और एक ऐसी समाजोन्मुखता का आह्वान हुआ है जिसमें व्यक्तित्व की खोज न हो। आलोचना के इस वृत्त ने एक बहुत बड़ा अनुभव खो दिया। यह कि व्यक्तित्व की खोज सदैव अपने से बाहर ले जाती है और तभी तक निरन्तर रह सकती है, जब तक ले जाती रहती है- निरन्तरता ही उसका कवि धर्म है।"२४६ यहाँ अज्ञेय का चिन्तन आस्था से संचालित है। इस यात्रा में यात्रा

अन्तहीन है। वह नंगे अँधेरों से साक्षात्कार करता है। एक ही तथ्य की दिव्यानुभूति उसे मिलती है 'जो मेरा है वही ममेतर है।'

"और कितनी बार कितने जगमग जहाज
मुझे खींच कर ले गये हैं कितनी दूर
किन पराये देशों की बेदर्द हवाओं में
जहाँ नंगे अँधेरों को
और भी उघाड़ता रहता है
एक नंगा, तीखा, निर्मम प्रकाश
जिसमें कोई प्रभा मण्डल नहीं बनते
केवल चौंधियाते हैं तथ्य, तथ्य, तथ्य....
सत्य नहीं, अन्तहीन सच्चाईयाँ
कितनी बार मुझे
खिन्न, विकल संत्रस्त" २४७

इसमें व्यंजित अनुभूति कवि की गहन आत्मानुभूति है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कवि का आत्म वैशिष्ट्य यहाँ उभरा है।

'क्योंकि उसे मैं जानता हूँ' भी अज्ञेय की काव्य यात्रा का अगला पड़ाव है। इसमें कवि का बहुमुखी व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। इन रचनाओं के दो वर्ग है– 'गूंजेगी आवाज' और 'प्रार्थना का एक प्रकार'। इस कृति की विशेषता है अज्ञेय की शैली में परिवर्तन। वह परिवर्तन है लय और छन्द मुक्ति का।

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' का रचना-काल १९७०-७३ तक है।

इसमें भी तीन खंड है– सन्नाटा बुनता हूँ, हरा अन्धकार और सागर मुद्रा। इसमें सन्नाटा मौन का प्रतीक है और सागर मुद्रा में सागर जीवनानुभूति का प्रतीक। अज्ञेय में परम्परा का समर्थन होते हुए भी परम्परा के निषेध का संकेत नहीं है। उन्होंने अपनी काव्य सम्पदा को समृद्ध करने के लिए परम्परा से अपेक्षित पोषण स्वीकार किया है। परम्परा अंधी प्रतिबद्धता नहीं है। वह एक गतिशील प्रक्रिया है और प्रयोग उसकी विधायिका शक्ति। अपने प्रयोग के द्वारा अज्ञेय ने सर्जनात्मकता को महत्व दिया। नये बिम्ब, नये

प्रतीक, नये शब्द प्रयोग, नयी रचनात्मक भाषा से उन्होंने अपनी यात्रा का आरम्भ किया। 'काव्य-भाषा' के प्रसंग में अज्ञेय की जागरूकता वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर दिखाई देती हैं।'२४८ देखा जाय तो अज्ञेय की तीव्र संवेदना से भाषा मंजी है, परिष्कृत हुई है। उन्होंने प्रत्येक शब्द के साथ अपनी अभिव्यंजना के संयोग को पूर्ण विश्वास के साथ अपनी कविता में व्यक्त किया है जिसके कारण अज्ञेय का शिल्प पक्ष अधिक उन्नत और समृद्ध हुआ है। जैसा कि डॉ. रघुवंश की मान्यता है 'आज के कवि के सामने महत्वपूर्ण और अभिव्यक्ति की सारी प्रक्रिया आत्मोलब्धि के रूप में स्वीकृत है। समग्र यथार्थ को ग्रहण करने में कवि के व्यक्तित्व की सीमा सामने आती है, क्योंकि अनुभूत सत्य विराट है।'२४९

अज्ञेय के कविव्यक्तित्व पर यह उक्ति पूर्ण सार्थक है जो कवि को प्रयोग के ज्येष्ठ पुरस्कर्ता के रूप में ख्याति देती है।

——————

१.रमेशचन्द्र शाह - समांतर - पृ० ४६,४७

२.बी० एस० आप्टे - संस्कृति हिन्दी कोश पृ० ५७७

३.बी० एस० आप्टे - संस्कृति हिन्दी कोश पृ० ५७७-७८

4. Encyclopedia of Religion and Ethics Vol, XII P. 411 "The word Tradition means etymologically 'handing over' The conception of tradition therefore, implies (a) a deposit which is handed over and (b) depositaries persons who are in possession of the deposit and are commissioned to preserve it and transmit it to successors."

5.Encyclopedia of Social Sciences Vol. 15 P.62 But only, some of the inherited or transmitted customs, institutions, speech, dress, laws, songs and tales are traditions.

6.Encyclopedia of Britanica Vol. X P. 84 The aggregate of customs, beliefs and practices that give continuity to a culture, civilization or social group and thus shape its views.

७. नलिन विलोचन शर्मा - साहित्य का इतिहास दर्शन – पृ॰ २७६

८. विद्यानिवास मिश्र - परम्परा बंधन नहीं - पृ॰ १२

९. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान - पृ॰ १९४

१०.गिरिजा कुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं पृ॰ ११९-१२०

११.अमृतराय - सहचिन्तन - पृ॰ ५०

१२. अज्ञेय - त्रिशंकु - पृ॰ ३४-३५

13. Sipley - Dictionary of World Literature P. 585 "The essential line of development coming to us out of the past."

१४. श्याम परमार - अकविता और कला सन्दर्भ पृ. ४४

१५. विद्या निवास मिश्र - परम्परा बंधन नहीं पृ॰ १५

१६.लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान पृ॰ १८५

१७.लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान पृ॰ १९१

१८.अमृतराय - सहचिन्तन - पृ॰ ५५

१९. डॉ. शम्भुनाथ सिंह - प्रयोगवाद और नयी कविता पृ॰ २७

२०. लक्ष्मीकान्त वर्मा - हिन्दी साहित्य कोष पृ॰ ५२८

२१.अज्ञेय - तारसप्तक - पृ॰ ८

२२. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान पृ॰ १८५

२३.लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान पृ॰ १९२

२४. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ॰ ६

२५. डॉ. गोपालदत्त सारस्वत - आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और प्रयोग पृ. १८ में उद्धृत

२६. सम्मेलन पत्रिका - लोक संस्कृति अंक - पृ॰ ५

२७. सम्मेलन पत्रिका - लोक संस्कृति अंक - भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति - महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज - पृ॰ १७१

२८. Mathew Arnold - Advancement of learning - Page No. १४२

२९. A. L. Kroeber and Clyde Cluckob - Culture - Page No. १

३०. डॉ. नगेन्द्र वसु - हिन्दी विश्वकोष त्रयोविंश भाग - पृ. ४४४

३१. डॉ. बलदेव मिश्र - भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान - पृ॰ ९

३२. सरनाम सिंह - साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा - पृ. १९

३३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल - पृ॰ १३

३४. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य सहचर - पृ॰ ६

३५. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य सहचर - पृ॰ २

३६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - चिंतामणि भाग-१ - पृ॰ ४६

३७. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस - पृ॰ १०

३८. आलोचना - संपादक : नन्ददुलारे वाजपेयी वर्ष। ६ अंक अप्रैल १९५७ समाज और साहित्य - पृ. ३

३९. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- विचार वितर्क - पृ॰ १०१

४०. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल - पृ॰ १८४

४१. राहुल सांस्कृत्यायन का भाषण - 'हंस मासिक' अक्टूबर १९४७

४२. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ॰ ६

४३- नरेश सव्याख्या - नई कविता अंक - ३

४४- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल - १८०

४५. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और सीमाएं में उद्धृत- पृ० २८

४६. सच्चिदानन्द वात्स्यायन - आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ॰ ४६

४७. डॉ. रामसकल राय - द्विवेदी युग का काव्य - पृ॰ ३९७

४८. पन्त - युगपथ - पृ॰८१

४९. पन्त - युगवाणी - पृ॰ ८३

५०. नवीन - हम विषपायी जन्म के - पृ॰ ४२९

५१. वही - पृ॰ ४२९

५२. श्री नलिन विलोचन शर्मा - साहित्य का इतिहास दर्शन - पृ॰ २७८

५३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन बोध का स्वरूप - पृ॰ ११

५४. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन बोध का स्वरूप - पृ॰ ११

५५. डॉ. नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता और समकालीन रचना - संदर्भ पृ॰ १८

५६. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दर्शन से उद्धत - पृ॰ १४४

५७. गंगाप्रसाद विमल - आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में पृ॰ ११

५८. वही - पृ॰ १३

५९. लक्ष्मीकान्त वर्मा- नये प्रतिमान : पुराने निकष - पृ॰ १०

६०. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नये प्रतिमान : पुराने निकष - पृ॰ २१

६१. गोविन्दचन्द्र पाण्डे - इतिहास स्वरूप और सिद्धान्त - पृ॰ १५६

६२. डॉ. गोविन्द - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग - पृ॰ ८

६३. हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य की भूमिका - पृ॰ १७२

६४. नामवर सिंह - इतिहास और आलोचना में उद्धत - पृ० १६०

६५. सच्चिदानन्द वात्स्यायन - साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया - पृ,.८४

६६. रामेश्वर शुक्ल अंचल- समाज और साहित्य - पृ० १२०

६७. सम्पादक - सच्चिदानन्द हीरामन्द वात्स्यायन - साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया - पृ० ११६

६८. क्षेमचन्द्र सुमन - साहित्य विवेचन - पृ० १०

६९. त्रिलोचन शास्त्री - दिगन्त - पृ० २२

७०. केदारनाथ अग्रवालं - युग की गंगा - पृ० ३१

७१. आलोचना - सम्पादक नन्ददुलारे वाजपेयी वर्ष ६ अंक २ अप्रैल १०५७

७२. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद - पृ० ३१

७३. नामवर सिंह - इतिहास और आलोचना - पृ० १४६

७४. शिवदानसिंह चौहान - साहित्यानुशीलन - पृ० १४

७५. सम्पादक - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया - पृ० ८४

७६. In the social production which men carry on, they enter into deginite relations that are indespensable and independent of their will; These relations of production correspond to a deginite stage of development of their material forces of production, The sum total of these relations of production constitutes the economic structure of society the real foundation on which a legal and political super structure and to which correspond deginite formes of social consciousness. The mode of production in material life process in general. It is not consciousness of men that determines their being but on the contrary, their social being, that determines their consciousness. Literature and Art - Karl Marx and F. Engels - Page No. 1 शिवकुमार मिश्र- मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त में उद्धृत - पृ० १

७७. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि- पृ० १८१

७८. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि में उद्धृत - पृ० १८४

७९. रामविलास शर्मा - भाषा और समाज - पृ० ४०७

८०. वही - पृ० ४०७

८१. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि - पृ० १८४

८२. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि में उद्धृत, रामविलास शर्मा की मान्यता - पृ० १८८

८३. बलदेव वंशी - समकालीन कविता विचार कविता - पृ० ६५

८४. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास - दृष्टि - पृ० २०७

८५. रामविलास शर्मा - "महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण पृ० ३८०

८६. जयसिंह नीरज - दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता - पृ० ८०-८१

८७. धनंजय वर्मा - आस्वाद के धरातल - पृ० २३

८८. वही - पृ० २५

८९. धनंजय वर्मा - आस्वाद के धरातल - पृ० २५

९०. धनंजय वर्मा - हस्तक्षेप - पृ० २१६

९१. वही - पृ० २१७

९२. धनंजय वर्मा - आश्वाद के धरातल - पृ० २६

९३. गंगाप्रसाद बिमल - आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में - पृ० ४५

९४. विद्यानिवास मिश्र- धर्मयुग १२ नवम्बर १९७७, हम कितने आधुनिक बने, लेख - पृ० ३३

९५. प्रेमचन्द - प्रेमचन्द कुछ विचार - पृ० २१

९६. वही - पृ० १३

९७. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य में उद्धृत - पृ,.१५९

९८. वही - पृ० १५८

९९. वही - पृ० १५९

१००. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य में उद्धृत - पृ० १५९

१०१. नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न - पृ० ३

१०२. वही - पृ० २

१०३. वही - पृ० २

१०४. रामधारी सिंह दिनकर - काव्य की भूमिका - पृ० ६५

१०५. नया साहित्य, जुलाई १९४९

१०६. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास - दृष्टि — २१५

१०७. रेखा अवस्थी - प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य - पृ० ७८

१०८. अज्ञेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० १५३

१०९. सम्पादक अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ० ६-७

११०. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास दृष्टि- पृ. २१७

१११. मैनेजर पाण्डेय- साहित्य और इतिहास दृष्टि - पृ० २१७

११२. नामवर सिंह - आलोचना अप्रैल-जून १९७०

११३. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान - पृ० ४०

११४. वही - पृ० ५१

११५. अवधनारायण त्रिपाठी - नयी कविता में वैयक्तिक चेतना - पृ० १०२

११६. वही - पृ० २४९

११७. लक्ष्मीकान्त वर्मा- नयी कविता के प्रतिमान - पृ० ७९

११९. शिवकुमार मिश्र - प्रगतिवाद - पृ० ११

१२०. रूपाभ वर्ष १ संख्या १ - जुलाई १९३८

१२१. शिवकुमार मिश्र - प्रगतिवाद - पृ० २०

१२२. शिवकुमार मिश्र - प्रगतिवाद - पृ० २२

१२३. शिवकुमार मिश्र - पृ० २९

१२४. धर्मयुग ६ अगस्त १९६७ में प्रकाशित आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का निबन्ध- नयी कविता भूमिका और प्रमुख हस्ताक्षर

१२५. अज्ञेय - चिन्ता- पृ० ९३

१२६. वही - पृ० ४०

१२७. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ० ६५

१२८. शमशेर बहादुर सिंह - चुका भी हूं नहीं मैं - पृ० १५

१२९. धर्मवीर भारती - ठण्डा लोहा - पृ० २९

१३०. धर्मवीर भारती - ठण्डा लोहा - पृ० १८

१३१. धर्मवीर भारती - ठंण्डा लोहा - पृ० १८

१३२. तार-सप्तक - पृ० १३१

१३३. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद - पृ० ६९

१३४. हंसराज रहबर - प्रगितवाद पुनर्मूल्यांकन - पृ० १९

१३५. कृष्णलाल हंस - प्रगतिवादी काव्य साहित्य - पृ० १८

१३६. शिवकुमार मिश्र - प्रगतिवाद - पृ० ३२

१३७. सतरंगें पांखोवाली - पृ० ३१

१३८. वही - पृ० ३२

१३९. सतरंगे पांखोवाली - पृ० ३३

१४०. युगधारा - पृ० ११८

१४१. सम्पादक - सुरेशचन्द्र त्यागी - नागार्जुन - पृ० १०६

१४२. सतरंगे पांखोवाली - सिन्दूर तिलकित भाल - पृ० ४८

१४३. तालाब की मछलियां – तुम जगी, संसार जाये जाग – पृ. २६-२७

१४४. सतरंगे पांखोवाली - बहुत दिनों बाद - पृ० २४

१४५. युगधारा – भिक्षुणी – पृ. १९

१४६. हरिचरण शर्मा - नये प्रतिनिधि कवि - पृ० २१

१४७. सतरंगे पांखोंवाली - खुरदुरे पैर - पृ० २१

१४८. वही - देखन ओ गंगा मैया - पृ० २०

१४९. युगधारा - खाली नहीं और खाली - पृ,.४७

१५०. युगधारा - प्रेत का बयान - पृ० ८९

१५१. विश्वम्भर मानव - नयी कविता नये कवि- पृ० ३०

१५२. अब तो बन्द करो हे देवि, चुनाव का यह प्रहसन – पृ. ६

१५३. प्यासी पथराई आंखें - पृ० ५९

१५४. सम्पादक सुरेशचन्द्र त्यागी - नागार्जुन - पृ०ेग से उद्धत

१५५. केदारनाथ अग्रवाल - विचार बोध - पृ० १३-१४

१५६. वही - पृ० ९७

१५७. डॉ. रामचन्द्र मालवीय - समीक्षाएं एवं मूल्यांकन - पृ॰ ३८

१५८. वही - पृ॰ ४२

१५९. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल - पृ॰ ८

१६०. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल - पृ॰ १०

१६१. डॉ. रामचन्द्र मालवीय - समीक्षाएं एवं मूल्यांकन - पृ॰ ४४

१६२. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल - भूमिका - कवि के शब्दों में

१६३. वही - पृ॰ ३१

१६४. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल - पृ॰ ९

१६५. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल - पृ॰ ३०

१६६. केदारनाथ अग्रवाल - युग की गंगा - पृ॰ ८

१६७. केदारनाथ अग्रवाल- युग की गंगा- पृ॰ ९ भूमिका से

१६८. वही - पृ॰ ९

१६९. वही - पृ॰ ३१

१७०. केदारनाथ अग्रवाल - युग की गंगा - पृ॰ ५०

१७१. केदारनाथ अग्रवाल - युग की गंगा - पृ॰ ५५

१७२. युग की गंगा भूमिका से

१७३. हंस पत्रिका - जनवरी १९५१

१७४. सम्पादक - डॉ. रामचन्द्र मालवीय - समीक्षाएं एवं मूल्यांकन - पृ॰ ७३

१७५. केदारनाथ अग्रवाल - आग का आईना भूमिका से - पृ॰ ६

१७६. सम्पादक श्री प्रकाश - केदार व्यक्तित्व एवं कृतित्व - पृ० ७५

१७७. डॉ. रामचन्द्र मालवीय - समीक्षाएं एवं मूल्यांकन - पृ० ४०

१७८. त्रिलोचन शास्त्री – धरती – पृ. ४

१७९. वही - पृ० ७

१८०. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ० १७

१८१. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ० ८४

१८२. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ० ८९

१८३. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ. ८२

१८४. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ. ७५

१८५. त्रिलोचन शास्त्री - धरती - पृ. ४१

१८६. दिगन्त - पृ० २२

१८७. त्रिलोचन शास्त्री - दिगन्त - पृ० २४

१८८. वही - पृ० २५

१८९. वही - पृ० २७

१९०. वही - पृ० ३३

१९१. वही - पृ० ४८

१९२. वही - पृ० ६१

१९३. त्रिलोचन शास्त्री - शब्द - मुख्य पृष्ठ से उद्धृत

१९४. वही - पृ० ३२

१९५. वही - पृ० ६६

१९६. त्रिलोचन शास्त्री - शब्द अन्तिम फ्लैप से

१९७. शब्द - वही

१९८. तारसप्तक - पृ० ११

१९९. वही - पृ० ११

२००. तारसप्तक - पृ० १४

२०१. तारसप्तक - पृ० १७

२०२. तारसप्तक - पृ० १७

२०३. वही - पृ० १९

२०४. वही - पृ० १९

२०५. वही - पृ० २०

२०६. चांद का मुंह टेढ़ा - पृ० १३

२०७. चांद का मुंह टेढ़ा - पृ० १७

२०८. चाँद का मुंह टेढ़ा है - पृ० १९

२०९. चाँद का मुंह टेढ़ा है - पृ० ८७

२१०. चाँद का मुंह टेढ़ा है - पृ० १९०

२११. चाँद का मुंह टेढ़ा है - पृ० २३१

२१२. चाँद का मुंह टेढ़ा है - पृ० २३२

२१३. डॉ. शशि शर्मा - मुक्तिबोध साहित्य : एक अनुशीलन - पृ. १८९

२१४. चांद का मुंह टेढ़ा है - पृ० ३०९-३१०

२१५. डॉ. शशि शर्मा - मुक्तिबोध साहित्य : एक अनुशीलन - पृ. १७८

२१६. चाँद का मुँह टेढ़ा है - पृ॰ ४६

२१७.चांद का मुंह टेढ़ा है - पृ॰६२

२१८.चांद का मुंह टेढ़ा है - पृ॰ १६६

२१९. डॉ. शशि शर्मा - मुक्तिबोध का साहित्य- एक अनुशीलन-पृ॰ २०२

२२०. सम्पादक अज्ञेय - तार सप्तक भूमिका - पृ॰ ५

२२१. वही - पृ॰ ७५

२२२. सम्पादक अज्ञेय तार सप्तक- पृ॰ ७६

२२३. तार-सप्तक - पृ॰ ५१

२२४. दूसरा सप्तक - पृ॰ ८

२२५. दूसरा सप्तक - पृ॰ ७

२२६. दूसरा सप्तक - पृ॰ १३

२२७. दूसरा - सप्तक - पृ॰ ३५-३६

२२८. दूसरा - सप्तक - पृ॰ ६१

२२९. दूसरा -सप्तक - पृ॰ ६३

२३०. दूसरा सप्तक - पृ॰ १३०

२३१. वही - पृ॰ १५१

२३२. दूसरा सप्तक - पृ॰ १७९

२३३. तीसरा सप्तक - पृ॰ ९

२३४. तीसरा सप्तक - पृ॰ १३६

२३५. तीसरा सप्तक - पृ॰ १८३

२३६. वही - पृ० १४७

२३७. वही - पृ० २२३

२३८. तीसरा सप्तक - पृ० ९

२३९. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ० १

२४०. हरी घास पर क्षण भर - पृ० ६६

२४१. हरी घास पर क्षण भर - पृ० ४८

२४२. इन्द्रधनु रौंदे हुए - पृ० २२

२४३. अरी ओ करूणा प्रभामय - पृ० ४६ में उद्धृत

२४४. वही - पृ० ४६

२४५. आँगन के पार द्वार - पृ० ८७

२४६. कितनी नावों में कितनी बार फ्लैप पर उद्धृत

२४७. वही पृ० २०

२४८. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या पृ० ३८

२४९. डॉ. रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य पृ० १९२-१९३

अध्याय - ३

"क"

छायावादोत्तर हिन्दी कविता मूल्यांकन के आधार और इतिहास

छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा

छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा के निर्माण में कोई नया दल सक्रिय नहीं हुआ। द्विवेदी युग से सहयोगी कवियों ने राष्ट्रीय काव्यधारा को अभिनव स्वरूप दिया जहाँ एक ओर गौरवशाली अतीत की पुनर्व्याख्या हुई दूसरी ओर वर्तमान को भी उतनी निष्ठा से आत्म ग्राह्य माना गया। भारतेन्दु काल से उद्भूत यह सकर्मक क्रिया काल के बदलते मोड़ों का संस्पर्श करती हुई ऊर्ध्वमुखी हुई। इसकी चेतना को व्यापकता देने वाले कवियों ने एक स्वस्थ और पुष्ट परम्परा को जन्म दिया ताकि राष्ट्रीय भावों को यह परम्परा सदैव नया उत्साह, नयी उमंग, नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति देती रहे। राष्ट्रीय काव्यधारा को विस्तार देने वाले कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन तथा दिनकर का सहयोग विशेष उल्लेखनीय है। यह धारा दो पृथक वर्गों का अनुसरण कर कार्यरत हुई। इनकी अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा शैली का तरीका भी एक दूसरे से अलग था। इसका प्रमुख कारण कांग्रेस की सत्ता का आपस में दो विरोधी दलों के नेतृत्व की भावना में था। प्रथम वर्ग 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के उद्घोषक तिलक के पथ का अनुयायी हुआ जो स्वतन्त्रता, विप्लव, सर्वनाश और आक्रोश से छीन लेने को कटिबद्ध थे। दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने इसी मार्ग का अवलम्बन किया। दूसरा वर्ग 'अहिंसा परमोधर्म' के जनक महात्मा गांधी के दर्शन का पक्षधर था। मानवता का उद्धार मनुष्य की प्रथम शर्त्त होनी चाहिये, सत्य-अहिंसा और प्रेम के पथ पर चलकर स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है इन उद्गारों को साक्षी मानकर देश की स्वतन्त्रता के लिये युद्धरत हुआ। परन्तु सभी एक ही भावना परतन्त्रता के बन्धन से मुक्ति की कामना से बंधे थे। सभी में देश के प्रति प्रेम है फिर भी जहाँ तक युग की संवेदना का प्रश्न है उन्हें परिणति देनेवाला कवि का स्वर निजी वैशिष्ट्य से अभिमंडित है एवं इनका समस्त चिंतन तथा क्रिया भारत को दासता के शिकंजों से

मुक्त कराने की चेष्टा के बीच भटकती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का स्वरूप भी बिल्कुल बदल गया। यह काल जीवन के विविध परिवेश में एकदम परिवर्तनीय रहा है। परिणामस्वरूप इस धारा का स्वर भी कालगत सापेक्षता में उभरा। कवि ने समय की नाजुक संवेदना को ललकारा, नई स्फूर्ति दी, बड़ी ईमानदारी से समकालीन चेतना को विकृत किया, अभिनव प्रयोग किये।

प्रस्तुत कालावधि में रचित कृतियों का आकलन करें तो यह देखा जाता है कि राष्ट्रीयता का स्वरूप कहीं संश्लिष्ट, कहीं श्लिष्ट रूप में विद्यमान है। राष्ट्रीयता का प्रमुख प्रतिपाद्य है विदेशी शासन के अनाचार, दमन, अनाचार का विरोध करना, मातृभूमि के प्रति समर्पण करना, जनता में जागृति पैदा करना, कर्त्तव्य के प्रति सचेत करना, दायित्व बोध से अवगत कराना, क्रांति के लिये ललकारना, एकबद्ध होकर स्वतन्त्रताप्राप्ति की नीतियों में भाग लेना आदि। इस काल के कवियों ने आगे बढ़कर राजनीतिक आन्दोलन में भाग लिया, जेल गये, शारीरिक और मानसिक पीड़ा को झेला, रक्त में खौलते क्रोध को साहसपूर्वक दासता के विनाश के लिये प्रयोग किया, उनके उठे हुए कदम कष्टकारक अनीतियों के समक्ष कहीं भी नहीं रूके, आगे ही उठते रहे, जब तक देश परतन्त्रता के कड़े बंधनों से आजाद नहीं हुआ। इसमें समाविष्ट कवियों की काव्य कृतियां कवि व्यक्तित्व पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। माखनलाल जी की राष्ट्रीय भावना में समर्पण का प्राधान्य है, नवीन में विप्लव फुत्कार है, दिनकर में आक्रोश और हुंकार का शंखनाद है, मैथिलीशरण गुप्तजी में अतीत से वर्तमान हेतु सांस्कृतिक दृष्टि का अर्जन है, सियारामशरण गुप्त में भावनात्मक क्रान्ति का बोलबाला है। परन्तु इन कवियों की दृष्टि वर्तमान के प्रति पूर्ण सजग है, अतीत के प्रति भी वफादार है, अतीत और वर्तमान की सही दृष्टि परम्परा और प्रयोग की भूमि पर छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा का सम्यक निर्वाह करती है।

माखनलाल चतुर्वेदी - राष्ट्रीय और स्वछन्दतावादी रचना

'एक भारतीय आत्मा' की उपाधि से विभूषित माखनलाल चतुर्वेदी युगधर्मी कलाकार हैं। जहां राष्ट्रीयता माखनलालजी की काव्य-चेतना के विकास की एक अपरिहार्य कड़ी है वहीं स्वच्छन्द अनुभूतियों के प्रति भी उनमें सम्मोहक आकर्षण निहित है। यह दोनों प्रवृत्तियाँ समानान्तर ही कवि मानस को आलोकित करती रही हैं। वह भावुकता का

स्रोत है। सांघातिक परिस्थिति से उत्तेजित होकर वह विदेशी सत्ता के समूह उन्मूलन हेतु राष्ट्रीय संवेदना से बद्ध गीतों की संरचना नहीं करता। वह स्वयं स्वतन्त्रता सेनानी है, समय का प्रत्यक्ष द्रष्टा है, भोक्ता है, उसके सम्पूर्ण गीत आपद् स्थितियों को झेलते हुए दर्द से फूटे हैं। 'राष्ट्रीयता चतुर्वेदी जी के काव्य शरीर की रीढ़ है उनकी विचारधारा की धुरी है– यह उनकी काव्यसाधना की चरम सिद्धि है, जहाँ कवि प्रेम, अध्यात्म, प्रकृतिप्रेम और राजनीति आदि के विभिन्न मार्गों से होता हुआ पहुंचता है।'१ उन्होंने अपने काव्य में सामयिक जीवन की भुक्त चुनौतियों को विस्तार दिया है।

'हिमकिरीटिनी' कवितासंग्रह कवि की व्यापक राष्ट्रीयचेतना से परिपूर्ण है। 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में एक ओर कारावास के कठोर एवं असहनीय यातनापूर्ण जीवन का चित्रण है दूसरी ओर क्रूर ब्रिटिश शासकों की हिंसक नीति का वर्णन है। कैदी विवश है आधा पेट खाना खाकर जीवित है।

उसके जीवन पर विदेशी शासकों का कड़ा पहरा है। अन्धकारमय वातावरण में कोयल का स्वर कवि के निराश मन को उद्वेलित कर देता है। कोकिल के माध्यम से वह नव जागरण की क्रान्ति का आह्वान करता है। कोकिल का स्वर मानों शंखनाद है जो अपनी गूंज से देशवासियों का आह्वान कर रही है–

"क्या घुस जायेगा रूदन
तुम्हारा निश्वासों के द्वारा
कोकिल बोलो तो
और सबेरे हो जायेगा
उलट-पुलट जग सारा
कोकिल बोलो तो।"२

'कैदी और कोकिला' वास्तव में उत्कृष्ट कविता है, जो जागरण का शंखनाद कर सुषुप्त देशवासियों को जागृति का संकेत देती है।

'सौदा', 'मरण-त्यौहार', 'जवानी', 'तिलक', 'बलिपंथी से', अमर राष्ट्र आदि रचनाएं भी राष्ट्रीयभावनाओं से सम्पृक्त है। इन कविताओं में कवि ने उत्कट भावनाओं को वाणी दी है। स्वतन्त्रता संग्राम की आन, देश के संरक्षक सिपाही को देखकर कवि हृदय

पिघल जाता है। सिपाही देश की जातीय अस्मिता और मातृभूमि के गौरव हैं जिनकी एकमात्र साधना है राष्ट्र की पूजा, राष्ट्र के लिये आत्मोत्सर्ग। तीर कमान एकमात्र उसकी पूंजी है, श्रम सीकर प्रहारों पर जीना उसकी नियति है, प्रलय से साक्षात्कार उसकी कार्यधर्मिता है। ऐसे सिपाही सचमुच देश की शान हैं।

"सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती
मुट्ठी में मन चाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है
मैं हूँ एक सिपाही।" ३

माखनलाल जी के काव्य आन्दोलन को तिलक और गांधी की क्रांति युक्त विचार सरणियों ने विशेष प्रभावित किया है। तिलक की सजा, रोलट ऐक्ट, रिफॉर्म एक्ट, अमृतसर का अधिवेशन, पूर्ण स्वराज्य की मांग आदि विषयों का 'तिलक' कविता में वर्णन है। तिलक की क्रांतिकारी राष्ट्रीय भावना को आत्मसात कर अडिग निश्चय तथा कठोर निर्णय की ध्वजा को हाथ में लेकर वह आगे की ओर प्रशस्त है–

"तुझको अब कष्ट नहीं देंगे
हाथों में झंडा ले लेंगे
मंडाले के, क्या, शूली के
कष्टों को सादर झेलेंगे।"४

युग के चरण कवि अप्रतिम कलाकार है। 'सचमुच वे युग के चरण ही है जो अपने परिवेश तथा दायित्व के प्रति हमेशा सजग रहे। उनकी लेखनी ने हिमकिरीटिनी का वैभव गाया है, समर्पण का संगीत सुनाया है अपने वेणुनाद से धरा को गुंजाया है और उसके हाथों बीजुरी की आंखों में काजल भी हल्का आंजा है।'५

'पुष्प की चाह' में आत्म-बलिदान की आकांक्षा का उद्घाटन है। सांसारिक सुख-वैभव की शोभा कवि मन को नहीं बांधती। मातृभूमि की रक्षा के लिए जिस पथ से सिपाही गुजरते हुए हंसते-हंसते शहीद हो जाते हैं उस पथ का सौन्दर्य कवि मन को आकर्षित करता है –

"मुझे तोड़ लेना बनमाली

उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जावें वीर अनेक।"६

अस्तु उनकी रचनायें समय का प्रमाणिक दस्तावेज है। समसामयिक घटनाओं से आबद्ध होकर उनकी कविता जिस सत्य को विस्थापित करने का प्रयत्न करती है वह है देश के प्राणियों में राष्ट्रीय भावना की चेतना को जागृत करना ताकि परतन्त्र भारत गुलामी की जंजीरों से मुक्त होकर खुली श्वांस ले सकें। यह राष्ट्रीय भावना एक निश्चित धुरी में नहीं घूमती बल्कि मूलकेन्द्र राष्ट्रीय होते हुए भी वह कई स्त्रोतों में बंटकर चलती है। यह चेतना सदैव उर्ध्वमुखी रही है नित्य नये-नये रूपों में संवरकर अधिक प्रखर और उज्जवल बनी है। इसके अलावा युगचरण में दो प्रकार की रचनाओं का समावेश है। प्रथम कोटि की रचना में स्वतन्त्रता प्राप्ति से उपलब्ध हर्षोल्लास, राष्ट्रीय उद्गारों का भावनात्मक चित्रण है। दूसरी कोटि में स्वतन्त्रता के पश्चात् व्युत्पन्न विषम स्थितियों का वर्णन है जहाँ कवि का व्यथित मन ही मुखर है। संक्षेप में– 'चतुर्वेदीजी के राष्ट्रीय गीतों में बलिदान की भावनाएं, गांधीजी के तप-त्याग और अहिंसामयी आत्मा तथा सामयिक राजनीति के सर्प का फुंकरण, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आदि विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण, उद्बोधन, जेलयातनाएं, संस्मरण, श्रद्धांजलिया आदि प्रमुख रूप से मिलती है।'७ 'विजय की स्मरण बेला, प्राण का श्रृंगार, बीन और संगीन, सत्याग्रही, क्रन्दन, कवितायें अतीव सुन्दर बन पड़ी हैं।'

'समर्पण' माखनलालजी का अगला काव्य-संग्रह है। इसमें उद्बोधनात्मक तथा युग के यथार्थ अंकन को महत्ता मिली है। विषय वस्तु की दृष्टि से इन राष्ट्रीय कविताओं में कहीं तो तरूणाई को अपने प्रणय के शव को प्रलय रथ के तले रखने के लिये ललकारता है, तो कहीं क्षुधित पुतलियों को नचाकर रोटियों के राग गाने के लिये, कहीं ठिठक कर तमाशा देखने वाले तरूणों को निष्क्रियता के लिये वह उनकी भर्त्सना करता है। विद्रोहों की मस्ती, बलि पंथ और 'मरण पंथ की टोली के गीत भी गाये गये हैं।'८

'मरण-ज्वार' जैसा कि नाम से ज्ञात होता है कि इसमें कवि की प्रबल राष्ट्रीय चेतना ही प्रकटित है। मरणज्वार की सम्पादकीय भूमिका में कवि की इस अकाट्य भावना का

उल्लेख करते हुए सम्पादक का मत है– 'पिछले दिनों' देश की उत्तरी सीमा पर भी आक्रामक जघन्ताएं हुईं हैं। उन्होंने एक बार फिर शरीर से टूटते हुए और वर्षों से अस्वस्थ चले आते हुए ७५ वर्षीय माखनलालजी को झकझोर दिया।'९ इस प्रकार उनकी सम्पूर्ण राष्ट्रीय-यात्रा के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी राष्ट्रीय चेतना एक व्यापक धरातल पर फैली हुई है। कवि की निष्ठा परतन्त्र देश की घातक परिस्थितियों, दमन अत्याचार से आयुक्त अन्यायपूर्ण अनाचारों दहशत जगा देने वाली यन्त्रणाओं के बीच से गुजर कर भी आत्मविश्वास के बल पर युद्धरत रही है, आत्मसमर्पण के लिये प्रस्तुत रही है। राष्ट्रीयता का व्यापक क्षेत्र नये प्रयोग से संवरता रहा है। दिनकर ने कवि की विराट शक्ति का मूल्यांकन करते हुए कहा है– 'माखनलाल जी की कुछ कविताओं को मैं विस्मय की दृष्टि से देखता हूँ कि भारत की यह आत्मा यज्ञ की वह शिखा है जो जलते जलते गाती और गाते गाते जला करती है। वे शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारों से क्रान्तिकारी हैं किन्तु साहित्य में उनके व्यक्तित्व के ये चार गुण अलग अलग प्रतिबिम्बि नहीं होते। साधना की आग में पिघलकर सभी एकाकार हो जाते हैं। उनकी कविता इन चार रूपों की मिश्रित व्यंजना है।'१०

उनकी कविता का योगदान राष्ट्रीय कविता के क्षेत्र में अविस्मरणीय है क्योंकि 'चतुर्वेदीजी ने मानव जीवन की उस अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है जिसके कारण सोया राष्ट्र जाग उठता है, पर्वत चिंघाड़ने लगते हैं, महासागर तटबन्ध तोड़ डालने को मचल उठते हैं और परतन्त्र की गहन निशा को शहीदों के रक्त से निर्मल आलोक सूर्य की प्रथम किरण के साथ स्वतन्त्रता देवी को मुस्कारते बन्धनमुक्त करने में गौरव का अनुभव करता है।'११ यह सच है कि चतुर्वेदीजी ने अतीत का गान नहीं किया है पर इसका अर्थ यह भी नहीं कि उन्होंने परम्परा को अस्वीकार किया। उनकी राष्ट्रीय काव्य चेतना द्विवेदीयुगीन राष्ट्रपरम्परा का एक नया प्रयोग है जो समसामयिक चेतना से अनुस्यूत है, परवर्ती राष्ट्रीय भावना को जो एक नयी उमंग, नया उत्साह प्रदत्त करती है।

राष्ट्रीय चेतना के समानान्तर स्वच्छंद वृत्ति में भी कवि मन उतनी ही प्रगाढ़ता से निर्लिप्त रहता है। वह उतनी तन्मयता, उतनी उदारता के साथ प्रेम के संयोग की अपेक्षा वियोग के क्षणों की सार्थक अभिव्यक्ति करता है। यह प्रणय परक प्रेम भौतिक जगत की निधि है। इसमें आवरण नहीं है, न उच्छशृंखलता है, निजी सीमा में उत्पन्न इस प्रेम का अपना

एक भिन्न सौन्दर्य है, वह खिलता है, मुर्झा जाता है, अपनी निशानी प्रेमी हृदय पर स्मृति के रूप में छोड़ देता है। प्रेम में समर्पण की भावना विद्यमान है। प्रिय के बिछोह से उसकी आत्मा नितांत अकेलेपन में डूब जाती है। एकांत क्षणों में प्रिय का स्मरण कवि को असामान्य दशा में पहुंचा देता है।

"बह गयी न यह क्यों आंसू में
उड़ गयी न यह क्यों सांसों में
क्यों हुई न जी में चूर-चूर
यह कसक रही है इधर-उधर
विधि हुआ बाबला मेरे घर।"१२

प्रेम के इन असहाय क्षणों में भी कवि ने न जगत से आँखें मूंद ली, न कुंठा घुटन को ही ओढ़ा। प्रेम तो उसके लिए एक उपलब्धि है, एक सुखद अनुभूति। रूठना या मनाना, मान-अवमानना को वह प्रणय उन्माद से अधिक कुछ नहीं मानता।

इस प्रेम यात्रा में वह मील का पत्थर है।

"तुम अपना प्रभु पूजो रानी
मैं पथिकों को आमन्त्रित कर
रोका करूँ, अमर हो जाऊँ
तोड़ो नहीं मील का पत्थर।"१३

चतुर्वेदीजी का वियोगचित्रण भी स्वच्छन्दतावादी प्रकृति का है। इस वियोगचित्रण में परम्परा के रूढ़ अर्थ का निर्वाह नहीं है। यह वर्णन सामान्य अनुभूतियों से जगकर, स्वप्न के टूट जाने पर अन्तर के तल से फूटता है।

"वे तुम्हारे बोल
प्राण बोलो वे तुम्हारे बोल
कल्पना पर चढ़
उतर जी पर
कसक में घोल
एक बिरिया

एक बिरिया
फिर कहो वे बोल।"१४

यह मार्मिक व्यथा तीव्र वेदना की उस स्थिति की ओर संकेत करती है जहां न होने की स्थिति में उसे होने का भान होता है। चतुर्वेदीजी ने प्रेम में कल्पना की उड़ानें नहीं भरी, न सैद्धान्तिक विवेचना का सहारा लिया। 'भाई छोड़ो नहीं मुझे खुलकर रोने दो' गीत में उनकी मनोव्यथा का अंकन अत्यन्त हृदयस्पर्शी और करुण है। करूणा मिश्रित वेदना में चेतना तिरोहित हो जाती है, आँसू का अविरल स्रोत निष्प्रयोजनीय दिखता है, जीवन की सारता निस्सारित हो जाती है–

"हरि खोया है नहीं
हृदय का धन खोया है
और न जाने वहीं
दूरात्मा मन खोया है
किन्तु आजतक नहीं
हाय इस तन को खोया
अरे बचा क्या शेष
पूर्ण जीवन खोया है।"१५

इसमें सन्देह नहीं कि इनके जीवन में संयोग की अवधि क्षणिक है, वियोग ही प्रखर है। कहीं उसका आर्त्तस्वर चित्रित है, कहीं मृत्युक्षणों में भी प्रियसूरत दर्शन की अभिलाषा व्यक्त है, कहीं नयन के बंगले में संकेत पाहुने को देख बेसुध अवस्था वर्णित है, कहीं उपालम्भ की भावना प्रस्तुत है, तो कहीं पुराने क्षणों को फिर से जीने की लालसा उपस्थित है। 'चतुर्वेदीजी के वेदना गीतों में पूर्व प्रसंगों संयोग के क्षणों का स्मृति परक चित्रण प्राय: मिलता है। अतीत के नाना व्यापार कवि की स्मृति में कौंध उठते हैं और उनके साथ ही वह फिर से उन्हें अनुभूत करने के लिये व्याकुल हो उठता है।'१६ इस प्रकार हम पाते हैं कि चतुर्वेदी जी में स्वच्छन्द प्रेम सहज स्वाभाविक उद्गारों की अन्विति है। यह अपनी मर्यादा में निखरता है, प्राण रस ग्रहण करता है, यह मांसल नहीं है, न आदर्श मंडित है, सतही है, समर्पण से परिपूर्ण है। पर वैयक्तिकता की यह प्रणय भावना ही कवि का जीवन नहीं हैं। वह व्यष्टि की इस धारा के साथ समष्टि की धारा को

भी अपने भीतर समाये हैं। राष्ट्रीयता और स्वच्छन्दता दो छोर हैं जिसके बीच कवि की सक्रिय चेतना अवगाहन करती है। इन दोनों प्रवृत्तियों का सुन्दर संगुम्फन उनमें परिलक्षित होता है। दोनों प्रवृत्तियां समान रूप से कवि जीवन में बहती रही हैं।

राष्ट्रीयता का स्वर जितनी तीव्रता, प्रखरता और उज्ज्वलता से व्यंजित हुआ है, प्रणय की भावना भी समान रूप से उपस्थित है- इसको अस्वीकारा नहीं जा सकता।

चतुर्वेदी जी की भाषा भावों के अनुकूल सदैव ओजस्वी रही है। उनकी अनूठी शैली में व्यक्ति प्रेम और देश प्रेम दोनों का अनुभूतिपरक वर्णन मिलता है। उर्दू शब्दों का प्रयोग भी है। छंद का प्रयोग भी मिलता है। चतुर्वेदी जी सचमुच एक भारतीय आत्मा हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी रचना

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी राष्ट्रीय - सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि कवि ही नहीं अपितु स्वच्छन्दतावादी कवि भी हैं। उनका समूचा कृत्तित्व राष्ट्रीयता और स्वच्छन्दतावादी काव्यधाराओं का संगम है। जहां ओज गुण में कठोर और दहशत पैदा करने वाला आक्रोश है वहां माधुर्य गुण में वेदना और व्यथा को जन्म देनेवाली कसक है। 'उनमें एक ओर जहां क्रुद्ध भैरवनाथ की क्रान्तिमयी गर्जना है वहीं दूसरी ओर प्रेम की अत्यधिक कोमल भावना भी, जहां प्रकृति का रौद्र रूप है वहां शान्त और प्रिय रूप भी। जहां सर्वनाशवादी स्वर है वहां मानवता का सामगान भी, जहां जगती की असमानता से उत्पन्न खिन्न अवसादग्रस्त मन का क्रोध जगत्पत्ति का टेंटुआ घोंट देना चाहता है वहां दूसरी ओर उसकी अशरण शरण की गोद में सायुज्य मुक्ति पा लेने की चाह करता है।'१७

युगचेता द्रष्टा कवि युगीन आक्रामक हिंसक कार्यव्यापारों से विक्षुब्ध हो जाता है। वह कलम का सिपाही ही नहीं, युद्ध भूमि का सेनानी भी है अतएव प्रत्येक दुर्नीति के प्रतिरोध में वह लड़ता है। राष्ट्र को आजादी दिलाने के लिए नवीन ने जिस मार्ग को चुना वह सीधा या सपाट नहीं है, आड़ा-तिरछा, टेढ़ा-मेढ़ा, संकीर्ण-व्यापक, उबड़-खाबड़ है चूंकि इस मार्ग के पथिक को पौरूषवान, क्षमावान और अदम्य साहस तथा ओज की आवश्यकता है यह समस्त गुण नवीन की विशेषता है। क्रांति और विद्रोह की उग्रनीति का संचालक कवि आत्म बलिदान में विश्वास नहीं करता। विनाश उसका धर्म है।

नवीन की राष्ट्रीय -भावना का स्तर भी फैला हुआ है। अतीत उन्हें प्रिय है, वर्तमान से भी उन्हें लगाव है। नाना सन्दर्भों में व्यक्त उनकी राष्ट्रीय भावना नया-नया प्रयोग ही है।

पराधीन मनुष्य अपनी जातीय अस्मिता के गौरव को भूल जाता है। दीन होकर वह एक निरीह प्राणी मात्र बन जाता है। मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी है, शक्ति का आगार है। आत्मदीनता, अकर्मण्यता सदैव विनाश की ओर धकेलती है। मनुष्य चाहे तो शक्ति की ऊर्जा के बल पर हर असंभव को संभव में परिणीत कर दें। ऐसे ओजस्वी भाव नवीन की लेखनी ने दिये हैं–

"शोलों के फूलों से सज्जित सुख-शय्या हो जाने दे,
भर ले अंगारे करवट में, हूक-लूक उठ आने दे,
अरे अकर्मण्यता शिथिलता भस्मजात हो जाने दे,
अग्नि चिता में विजित भाव को तू अब तो सो जाने दे,
त्राहि त्राहि रे त्राण कौन सा आज प्राण की होली है
तेरी दाहक स्वर लपटों में स्वयं त्राण की होली है।"१८

'पराजय-गीत' में सन् १९२० के सत्याग्रह आन्दोलन की असफलता से मिली पराजय का उल्लेख है। इस असफलता ने भारतवासियों को कहीं भीतर तक तोड़ डाला किन्तु कवि की प्रलयंकारी प्रवृत्ति हार स्वीकार नहीं करती। वह मस्तक ऊंचा उठाकर विजयी की भांति चलना जानता है। उसके भीतर एक ऐसा प्रकाश-पुंज है जिसकी किरणें रोशनी विकीर्ण कर पथ को दीप्त रखती है।

"वर्दी फटी, हृदय - घायल, कारिख मुख भर, क्या वेश बना
आंखें सकुच रही, कायरता के पंकिल से देश सना
अरे पराजित, ओ रणचण्डी के कुपूत हट जा हट जा
अभी समय है, कह दे मां मेदिनी जरा फट जा फट जा
हन्त पराजय - गीत आज क्या द्रुपद - सुता का चीर हुआ
खिंचता ही आता है जब से खाली यह तूणीर हुआ।"१९

पराजित जनता जनार्दन की हताश घायल अवस्थिति को देख कवि का मन खिन्न हो जाता है–

'आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।' २०

निश्चय ही 'नवीन जी स्वतन्त्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उनका व्यक्तित्व निर्भीक शौर्य का प्रतीक है। उनकी वाणी तेज के स्फुलिंग उगलती है। आत्मा की वाणी होने के कारण इन कवियों की देशभक्ति की कविताओं में अपूर्व प्रभावक्षमता है।' २१

गांधीजी की अहिंसावादी नीति का नवीन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। 'विपल्व-गायन' कविता इसकी साक्षी है। इस कविता की विशेषता यह है कि इसका हर एक शब्द क्रान्ति का संदेश सुनाता है। सत्य और अहिंसा के शस्त्रों से गुलामी की जंजीरें कट नहीं सकती। समय हिंसक क्रान्ति का है। इसके बिगुल के स्वर भारत की शत कोटि जनता में जोश व ताकत का स्फुरण करेंगे वरन - शत्रु भी कांप उठेंगे। हालांकि प्रस्तुत कविता में नवीन जी ने हिंसा का मार्ग चुना है पर स्वयं नवीनजी के शब्दों में इसके प्रेरणा-स्रोत स्वयं गांधीजी ही थे–

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये।' २२

अन्तर के तल से उठने वाली इस रुद्र तान की क्या प्रक्रिया होगी नवीन के शब्दों में–

"कण्ठ रुका जाता है महानाश का गीत रुद्ध होता है
आग लगेगी क्षण में, हृदतल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त है इस ज्वलन्त गायन के स्वर से
रुद्ध गीत की क्षुब्ध तान निकली है मेरे अन्तर तर से।" २३

'अनल-गान', 'विद्रोही', 'अरी धधक उठ', आदि कवितायें भी जागरण-गीत की प्रेरणा से भरी हुई है। उन्होंने दासता के बन्धनों से मुक्ति दिलाने के लिये ऐसी ओजस्वी, हुंकारपूर्ण कवितायें लिखी। ये उग्रता के कवि हैं। छल-प्रपंचों, कुत्सित आचारों से परिपूर्ण, रणनीतिज्ञों की चुनौतियों का मुकाबला सिंह की गर्जना या महारुद्र के तांडव नृत्य से करना उनका धर्म है।

श्री ठाकुर प्रसाद सिंह ने नवीन के इस विलक्षण व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है 'वे जिस पीढ़ी में जीवित थे। उसकी रगों में खून की जगह पिघला हुआ रोष प्रवाहित होता था, सांसों की जगह उद्वेग तपता था, आंखों में पुतलियों की जगह सपने लगे हुए थे। इस

पीढ़ी के सच्चे प्रतिनिधि 'नवीन' जी थे। यदि 'नवीन' जी को देखा है तो आन्दोलनों के उस युग को न देखने की कोई शिकायत नहीं।'२४ क्योंकि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलन में नवीन जी की सक्रिय भूमिका रही है। क्रान्तिकारी विप्लवी को अपनी जीत पर अगाध विश्वास, अटूट आस्था है। वह क्रान्ति वज्र का घन प्रहार है, विद्रोही है, विप्लवी है। –

'उस दिन हम विस्मित देखेंगे
यह निविड़ तिमिर होते विलीन
उस दिन हम सस्मित देखेंगे
हम है अदीन, हम शक्ति-पीन।'२५

इस प्रकार नवीन जी की राष्ट्रीयता की भावना नाना आयामों में प्रस्तुत हुई है। विदेशी शासन की क्रूर हिंसक दमन नीति का मुकाबला आक्रोश व उत्तेजना के बल पर वह चाहता है। स्वर्णिम अतीत से संबल लेकर वर्तमान को संदेसा देता है। वह वर्तमान दशा से क्षुब्ध होकर ओजस्वी गीतों की संरचना करता है जो निरीह, दीन, कातर में प्राण फूंक दे।

राष्ट्रीय चेतना से उन्होंने हर एक भारतवासी को आत्मशक्ति का रहस्य बताया। उनकी यह चेतना अपने पूर्ववर्ती युगों के कवियों से उष्मा लेकर युगधर्म से प्रतिबद्ध है। 'राष्ट्रीय काव्यधारा का नवीन के प्रवेश से जहां वेग बढ़ा, गति तीव्र हुई, वहां उसमें एक ऐसा भीषण ज्वार आया जिससे युवकों के हृदय बांध आक्रोश, उत्तेजना और विप्लव की भावना के कारण टूटने लगे।'२६ जिस राष्ट्रीय काव्यधारा का उन्मेष भारतेन्दु की जमीं पर हुआ, द्विवेदी युग में रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त ने इसे एक नया गौरव दिया, बालकृष्ण शर्मा नवीन ने तो इससे अलग एक प्रखर, लावा उगलती गूंज दी जिसकी अनुगूंज से रोएं खड़े हो जायें। नवीन केवल लावा उगलनेवाला ज्वालमुखी ही नहीं है, प्रेम की सुकोमल भावनाओं के भी रसमय कवि हैं। नवीन ने प्रेम की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को 'अपलक' और 'हम विषपायी जन्म के' में प्रमुखता दी है।

नवीन का प्रेम स्थूल जगत की देन है। यहाँ भी संयोग की अपेक्षा वियोग की प्रधानता है। किन्तु वेदना ग्रस्त भावुक मन पलायन की ओट नहीं लेता, टूट कर अकेलापन का आश्रय नहीं लेता।

राजनीति का कार्यकर्ता कवि जब कारागार में बंदी होता है, प्रिय स्मरण से व्यथित हो जाता है, रिक्तता और खालीपन से मथित अन्तःकरण ऋतु-ज्ञान की संज्ञा से शून्य हो जाता है। हठात प्रिय के अंगों की गंध से सहज अवस्था में लौट आता है–

"शब्द स्पर्श रूप गन्ध रस वश है क्या जीवन
संवेदन पुन्ज रूप है क्या हम सब जग जन
अमल अतीन्द्रियता है क्या केवल भ्रम, साजन
अपनी सेन्द्रियता क्या मनुज सकेगा न त्याग
प्रियतम तब अंग-राग।" २७

प्रेम में एकनिष्ठता है, समर्पण का आग्रह है, सर्वत्र इसका आभास उपस्थित है। उसकी प्रियतमा की मृदु बाँहें कहीं ग्रीवा में स्मरण कंटक बनती है, कहीं सावन के काले मेघों में प्रिया का बिम्ब उभरता है। कहीं साधिकार भावना की प्रतिध्वनि है।

"मत ठुकराओ मुझे सलोनी, मैं हूं प्रथम प्यार का चुम्बन
मुझे न हंस हंस टालो, मैं हूं मधुर स्मृतियों का अवलम्बन।" २८

व्यक्तिगत मन की व्यथा दुर्बलता को प्रस्फुटित नहीं करती, न ही आहत करती है। क्षोभ या ग्लानि या तो मृत्योन्मुखी करते हैं अथवा अन्तर्मुखी बना डालते हैं। अलभ्य की कामना मात्र छलावा होती है। आत्मपीड़ा का आलाप भी सांसारिक उपहास की वस्तु है।

"क्या बतलाऊं क्या होता है
पागल दुखिया क्यों रोता है
यह भी विडम्बना है, सजनी
जग हंसता जब वह रोता है।
है इस दुनिया का यही फेर, टुक रो लेने दो तनिक देर।" २९

उसका समर्पण असाधारण है जहां देय ही प्रमुख है। दर्द की कसक का आलिंगन करनेवाला हृदय अपनी पीड़ा बाँटता नहीं। इसी के द्वारा विकास पाता है, खिलता है।

"सिसकने में ही मजा मिलता रहा
कसक की उस वेदना की चाह से
हम विपन्नों का कमल खिलता रहा

दर्द को दिल से लगाया चाह से।" ३ ०

वस्तुत: नवीन प्रेम को छायावादियों की तरह आदर्शमूलक और इन्द्रियों से परे नहीं मानते। उत्तर-छायावादियों की तरह एकमात्र अवलम्बन स्वीकार करते हैं।

वे जीवन की सच्चाई और आदर्श समन्वित रूप लेकर अवतीर्ण हुए। 'स्वछन्द मनोवृत्ति से आपूर्ण जीवन न तो द्विवेदी युगीन मान्यताओं और बन्धनों को अपना सका और न छायावादी धारणाओं को। अपनी प्रकृति में एकदम स्वच्छन्द रूप धारण किये इनकी कवितायें इन प्रमुख काव्यधाराओं से अपना अलग मार्ग बनाती रही। निजी अनुभव, स्वानुभूति और नितान्त वैयक्तिक दृष्टिकोण जो जीवन में किसी भी प्रकार के बन्धनों को स्वीकार न करें और अपनी प्राचीन रूढ़िबद्धता से विर्निमुक्त होने का सदप्रयास करे ऐसा ही स्वच्छन्दतावादी काव्य नवीन जी का है।' ३ १ स्वच्छन्द मनोवृत्ति के प्रतिनिधि कवि किसी भी प्रतिबन्ध को खुलकर स्पष्ट रूप से अस्वीकार करते हैं जैसा कि हमें कहीं-कहीं रामेश्वर शुक्ल अंचल के काव्य में कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है- मानो प्रेम की अभिव्यक्ति के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों पर वह प्रहार करते हैं, बन्धन की मुक्ति की कांक्षा करते हैं। ऐसा खुलापन, प्रत्यक्ष वर्णन निर्भयता का परिणाम हैं–

"यूं भुज भर कर हिये लगाना है क्या कोई पाप
या अधखिले दृगों का चुम्बन है क्या कोई कलाप
कुन्तल से क्रीड़ा करना भी है क्या कोई दोष
देवि बताओ तो इसमें है कहां पाप-सन्ताप।" ३ २

यहां स्वच्छन्दता के मूल में विद्रोह और नवीनता का समन्वय है, विद्रोह परंपरा की रूढ़ियों से है। परिवर्तन के क्रम में भी जो शिथिल नहीं पड़ी। लचीली नहीं बनी।

प्रेम मनुष्य के हृदय में विद्यमान एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें बंधकर मनुष्य उससे उबर नहीं पाता। कवि नवीन प्रत्यक्ष प्रेम को सीधी, सरल भाषा में व्यक्त करता है-

"कूजे दो कूजे में बुझने वाली मेरी प्यास नहीं
बार-बार "ला-ला" कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं।" ३ ३

उपर्युक्त पंक्तियां प्रकट करती है कि वे निश्चित रूप से रोमांटिक बोध के कवि हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि रूढ़ियों का अतिक्रमण कर प्रेम को निजी धरोहर मानता है। प्रेम

उसके लिये प्यास नहीं, पाप नहीं। उन्होंने प्रेम के मूल में निहित आकर्षण को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। प्रेम की प्रवृत्ति शाश्वत है। नवीन ने इस प्रवृत्ति को आत्म सत्य के रूप में पहचाना है जो परम्परा के सतत क्रम की नवीन कड़ी ही है।

नवीन के राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी काव्य की भाषा में विविधता है। भाषा में ओज की प्रधानता है। नवीन ने काव्यभाषा के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए माना है "जहां तक छन्दशास्त्र का ताल्लुक है मैंने उसे बिल्कुल ही नहीं पढ़ा। न मुझे रसों का नाम मालूम है, न मैं यगण-भगण जानता हूँ परन्तु मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छन्द ढीले नहीं होते। दूसरे जीवन एक प्रकार से उखड़ा-उखड़ा सा रहा है। मेरे पास न शब्द है, न कला कौशल है, न अध्ययन गांभीर्य है और न स्वेद सामर्थ्य। एक मैं हूं जो स्वर ध्वनिमय शब्दों का ताना-बाना पूरने का नाटक रचता हूं पर तन्तुवायु को ध्यान केन्द्रीयता की साधना नहीं कर सका हूं।' ३४

यहां हमारी मान्यता है कि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने परम्परा का विरोध न करते हुए भी युग-धर्म को महत्ता दी है। प्रयोग के द्वारा अपनी राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रक्रिया को उन्होंने नवीनता का संचरण दिया है। इन दोनों प्रवृत्तियों की अपनी निजी विशेषतायें हैं जो कवि को विशिष्ट महत्ता प्रदत्त करती है।

सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीयता के पोषक हैं। कवि गांधीवादी विचारधारा से अनुप्रेरित है। उन्होंने प्राचीन भारत के गौरव को वर्तमान के सन्दर्भ में रूपायित किया है। इनकी काव्य रचनाएं हैं- 'भैरवी', 'पूजागीत', 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'चित्रा', 'प्रभाती'। भैरवी में कवि में समर्पण का भाव ही प्रधान है।

"वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला दो।
तब कभी माँ को न भूलो,
राग में जब मस्त
अर्चना के रत्नकण में, एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बंध खोले,

हो जहां बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।"३५

स्वाधीनता प्राप्ति के लिए यदि खुद को बलिदान करना पड़े तो भी इसमें मनुष्य को गौरव महसूस होना चाहिए। 'राणा प्रताप के प्रति' में जातीय परम्परा के स्मरण से वर्तमान को जागरूक बनाने की प्रेरणा मिलती है। वह भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाने को आतुर है श्रमिकों और कृषकों में जन जागृति लाने के लिए कवि प्रतिबद्ध है। 'किसान' शीर्षक कविता इसी भावना को पुष्ट करती है–

"तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारे बल पर चलते हैं शासन
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारे धन पर निर्भर सिंहासन
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारे श्रम पर सब वैभव साधन
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात तुम्हारी बलि पर है सब विजय वरण।३६

अस्तु कवि अतीत और वर्तमान के प्रति समान रूप से सचेत है। 'चित्रा', 'प्रभाती', 'पूजागीत', कृतियाँ भी राष्ट्रीयता के उद्‌बोधन स्वरों से सम्पृक्त है। शेष कृतियों में सामयिक घटनाओं का चित्रण है, क्रान्ति द्रष्टा कवियों में सोहनलाल द्विवेदी का अन्यतम स्थान है।

मैथिलीशरण गुप्त

द्विवेदी युग के एक विशिष्ट काव्य पुरुष मैथिलीशरण गुप्त जातीय चेतना को समृद्ध करने और उसकी परम्परा को विकासशील दृष्टि से जोड़ने वाले एक युग द्रष्टा कवि हैं। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारत की सांस्कृतिक परम्परा युगधर्म से समन्वित है। भारतीय संस्कृति के पुराने और नये मूल्यों के समीकरण का सामर्थ्य भी गुप्तजी में है। परम्परा से काव्य यात्रा आरम्भ कर कवि वर्तमान से प्रतिबद्ध होता है। क्योंकि परम्परा से गृहीत काव्य चेतना में प्रयोग सिद्धता होती है। गुप्तजी की काव्य प्रक्रिया में नये उपकरणों का प्रयोग परम्परा से निसृत है और जो परम्पराउब्पलब्ध है वह भी नये प्रयोग की संवाहिका है। इस समन्वित दृष्टिकोण के द्वारा भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के पुनरुद्धार की चेष्टा हुई।

किसी युग में किसी देश का सर्वाधिक लोकप्रिय कवि वही होता है जो देश की जनता की तत्कालीन चित्तवृत्तियों, आकांक्षाओं, आशाओं, समस्याओं, आदर्शों, जीवनधाराओं को सहज, सरल भाषा में काव्यात्मक अनुभूति के माध्यम से चित्रित करता है। गुप्तजी वर्तमान काल के ऐसे कवि हैं जिन्होंने देश की तत्कालीन समस्याओं को अपने काव्य में स्थान दिया है। 'भारत-भारती' कवि की बहुचर्चित कृति है जिसमें अतीत व वर्तमान की सम्पृक्ति है। उन्होंने अपनी कविता को युग की विकासोन्मुख भूमिका पर प्रतिष्ठित किया एवं प्राचीन कथाओं का अनुशीलन जीवन के नये निर्माण के लिए किया। अतः द्विवेदी युग की सृष्टि होकर भी वे उसकी सीमा के पार छायावादोत्तर काल में भी अपना विकास करते गए और विकास प्रक्रिया में नवीनता का समावेश करते रहे। यही वह संधिस्थल है जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त परम्पराप्रिय होते हुए भी नयी संचेतना के प्रति भी सहज ईमानदार बन सके। उन्होंने प्रगतिशील शक्तियों को आत्मसात कर अपने काव्य के भीतर युग की समग्र धारणा, राष्ट्रीयता और सामाजिकता को विश्लेषित करने की कोशिश की। कवि की काव्य प्रक्रिया का उत्कृष्ट स्वरूप हमें छायावादोत्तर काल में प्राप्त होता है। छायावादोत्तर काल की प्रमुख कृतियाँ हैं - नहुष, कुणालगीत, आर्जन और विसर्जन, विश्ववेदना, काबा और कर्बला, विजित, प्रदक्षिणा, पृथ्वीपुत्र, जयभारत, विष्णुप्रिया, रत्नावली।

'नहुष' कृति छायावादोत्तर काल की देन है। इसकी कथावस्तु महाभारतीय आख्यान से जुड़ी है। यद्यपि इस कृति के मूल आख्यान से इन्द्रत्व प्राप्ति से लेकर स्वर्ग से पतित होने तक के आख्यान का निरूपण है। किन्तु कवि ने उसकी वस्तु कल्पना को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। उसकी अवधारणा है कि सत और असत प्रवृत्तियों में सदैव संघर्ष विद्यमान रहता है। सत प्रवृत्तियों के विकास से जहाँ देवत्व की उपलब्धि होती है वहीं असत प्रवृत्तियों से मनुष्य का पतन होता है। यदि असत प्रवृत्तियां बढ़ जाए तब भी आत्मविश्वास के बल पर मनुष्य का उत्थान हो सकता है। गुप्तजी ने निवेदन में लिखा है- व्यासदेव के वर्णित इस आख्यान से स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलतायें बार-बार उसे नीचे ले जाती है। मनुष्य को उस पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर-फिर उठ खड़ा होना पड़ेगा। तब तक जब तक वह पूर्णता प्राप्त न कर ले।' ३७ गुप्तजी के कहने

का अभिप्राय यह है कि मानव निरन्तर गतिशील है। अतएव विकास ही उसका उद्देश्य होना चाहिए।

'कुणाल-गीत' इस काल की दूसरी कृति है। इसमें अतीत गौरव वर्तमान दुर्दशा से फूटा है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यहाँ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आदर्श को युगधर्म के साथ समन्वित किया गया है। ऐतिहासिक घटना से प्रभावित इस कृति में मानवता के शाश्वत् आदर्श का कवि ने उद्घाटन किया। इन आदर्शों से मनुष्य में सात्विकता का जन्म होता है तथा मैत्री और करूणा से समाज में लोक मंगल की भावना प्रश्रय पाती है। इस प्रकार कवि ने ऐतिहासिक आख्यान से कथा का संचयन कर परिवर्धन के साथ प्रयोग किया है।

'अर्जन और विसर्जन' का विषय भी ऐतिहासिक घटना से प्रसूत है। अर्जन में सीरिया की सातवीं शताब्दी की ऐतिहासिक घटना का चित्रांकन है। धर्म और प्रेम के पारस्परिक द्वन्द में कवि ने त्याग के महत्व को दिखलाया है। साथ ही यह बतलाने की कोशिश की है अधर्म का अर्जन कभी भी फलता नहीं।

'विसर्जन' में आठवीं शताब्दी के उत्तरी अफ्रीका के इतिहास की घटना को काव्यबद्ध किया गया है। इस संग्रह में गुप्तजी का काव्य वैशिष्ट्य यह है कि सन् १९४२ के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन को इसकी पृष्ठभूमि में रखा गया है जिसकी व्यंजना है स्वतन्त्रता के लिए त्याग ही श्रेयस्कर होता है।

गुप्तजी युगकवि थे। सामयिक परिस्थितियों से अनुप्रेरित उनकी काव्य कला में तात्कालिकता के प्रति आग्रह है। 'विश्व-वेदना' इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इसमें युद्धजन्य विषमताओं के संत्रास की वस्तुन्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इसमे विश्व की समस्या की चिन्ता करते हुए कवि की आकांक्षा है 'आज के योग्य एक अविभाज्य विश्व को मिले एक रामराज्य'३८ गुप्तजी ने उन विषयों की कटु आलोचना की है जिनके कारण युद्ध की संक्रामक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और मानवता की प्रगति रुक जाती है। उनका मुख्य उद्देश्य है जन चेतना का प्रचार प्रसार। वैज्ञानिक उन्नति और भौतिक प्रगति से संसार के निर्माण के स्थान पर उसका ध्वंस ही होता है।

"मानकर इसे भाग्य का भोग

छोड़ बैठें हम क्या उद्योग
यही तो आशा हमें निदान
शेष है अब भी अनुसंधान।" ३९

यहाँ युद्ध के विरोध में मानवतावादी दृष्टि का विकास ही कवि चिन्ता का उद्देश्य है।

'काबा और कर्बला' सांप्रदायिक दंगे से अनुप्रेरित है। इसमें पैगम्बर मुहम्मद साहब तथा उनके नाती इमाम हुसैन के जीवन, उनके उपदेश तथा उनके त्याग और बलिदान का वर्णन है। इस काव्य में कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि सभी धर्मों का एक ही मन्तव्य है। प्रेम धर्म की भीति है। धर्म से द्वेषभावना एवं संकीर्णता का उदय नहीं होता। एक दूसरे की धार्मिक चेतना को समझने और जानने की उदार दृष्टि से ही सांप्रदायिककता का अन्त सम्भव है।

"यह सारा संसार है उस प्रभु का परिवार।
सबसे रखना चाहिए प्रेमपूर्ण व्यवहार।
यही शिखरोपासना, यही धर्म का मर्म।
एक दूसरे के लिये करें यहां सब कर्म।
मनुज मात्र के अर्थ जो करते हैं उपयोग।
सच्चे जन भगवान के हैं बस वे ही लोग।"४०

स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय नवयुवकों को कष्टप्रद स्थितियों को झेलना पड़ा था। जेल जीवन की कठोर यातना भी उन्होंने भोगी। 'अजित' शीर्षक कृति में गुप्तजी ने राजनीतिक जीवन की यथार्थ सच्चाइयों को प्रस्तुत किया है। उनका कथन है 'जेलों में अपराधियों का सुधार नहीं होता, असमाजिक प्रवृत्तियों को ही प्रबलता मिलती है।' यहाँ यथार्थ चित्रण उनकी काव्य चेतना का मूल है और सुधारवाद उनकी राष्ट्रीय चेतना की विशेषता है। देखा जाय तो प्रयोग की दृष्टि से 'अजित' आत्मकथ्यात्मक शैली में रचित काव्य रचना है।

'प्रदक्षिणा' सन १९५० में लिखित एक वर्णनात्मक काव्य है। यह संकलनात्मक शैली में लिखा गया काव्य है जिसमें रसात्मक भाषा शैली का प्रयोग है। साथ ही लोकवादी चिन्तन की प्रधानता। कवि का मूल उद्देश्य रामभक्ति का निरूपण है। कवि ने राम के

जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की घटनाओं की परिष्कृत पदावली में संयोजना की है।

'पृथ्वीपुत्र' एक अंक प्रधान पद्यनाट्य कृति है। इसमें गुप्तजी ने विश्व मानवता के नवीनतम अनुभवों की अभिव्यंजना की है। इसमें एक देश की ही नहीं सम्पूर्ण मानव जाति की समस्या का उल्लेख है। "पृथ्वी अपने नवजात शिशु को विश्व मानव के रूप में देखने को लालायित है–"

"तुझको बड़े से बड़ा देखना चाहता हूँ मैं
मेरे जात! सारे तन्तुओं में मुख्य तू ही है
किन्तु छोटा होकर ही कोई बड़ा होता है
मिथ्या दर्प छोड़ने का साहस हो तुझमें
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू
देश, कुल, जाति, किंवा वर्ग भेद भूल कर
जा तू विश्व–मान हो सेवा कर सबकी।
भीति नहीं प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो
उठ बढ़ ऊंचा चढ़ संग लिये सबको
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हो।"४१

'जयभारत' में गुप्तजी पुनः अतीत की ओर मुड़े हैं पर इसका प्रयोग नवीन जीवन के लिये है। इसका प्रसंग भी महाभारत से सम्बन्धित है। युगधर्म के सन्दर्भ में गुप्तजी भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं उदात्त मूल्यों की ओर उन्मुख हैं। यहाँ भारतवर्ष के तत्कालीन संघर्ष का यथार्थ की भूमि पर सजीव वर्णन है। कवि युगादर्श, युगधर्म की सही प्रस्तुति में सफल है। गुप्तजी की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि धर्म की प्रतिष्ठा भगवान के प्रयत्न से न होकर मानव 'युधिष्ठिर' के प्रयत्न से है। 'विष्णुप्रिया' सामान्य सामाजिक परिवार की लोक कल्याण प्रियता की प्रतीक काव्य कृति है। कवि ने एक ओर चैतन्य महाप्रभु और उनकी पत्नी के प्रसंग से लेकर चैतन्य के संन्यास तक के घटना-तन्तु को सूत्रबद्ध किया है। दूसरी ओर विष्णुप्रिया के त्यागमय प्रेम की व्यंजना के लिये ही कवि ने गृह प्रवेश के समय पादागुंष्ठ के जीवन के प्रसंगों को उजागर किया है। गुप्तजी ने परम्परा के रूढ़ आदर्शों का खण्डन कर यह दिखाने की चेष्टा की है कि वेदना

एवं व्यथा सहन करने वाली नारी का उद्धार निरन्तर जागरूकता और नवीन चेतना में है।

'रत्नावली' की रचना तुलसीदास की पत्नी रत्नावली के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए की गई है। यह काव्य काल्पनिक अधिक है और किंवदन्ती पर आधारित है। किन्तु यह कृति भी सांस्कृतिक परम्परा से अनुमोदित होकर वर्तमान से सम्पृक्त है।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि गुप्त जी की रचनाएं भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों से प्रेरित है। काव्य पुरुष के रूप में उन्होंने सुदीर्घ कालव्यापी प्रयोगसिद्ध आदर्शों को युग के अनुसार प्रतिष्ठित किया है। प्रतिनिधि कवि के रूप में उन्होंने राष्ट्र की सम्पूर्ण भावनाओं तथा विचारधाराओं का चित्रण किया है।

'मैथिलीशरण जी परम्परानिष्ठ संस्कारी हृदय भक्त हैं। भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण अंगों में उनकी प्रगाढ़ आस्था है किन्तु युग धर्म की भी वे उपेक्षा नहीं करते। इसीलिए पारम्परिक मूल्यों एवं रूढ़ियों को दृढ़ता से ग्रहण करने पर भी उनका साहित्य आधुनिकता के प्रभाव से मुक्त नहीं है। उनकी यह मानसिक ग्राहकता और स्थिति स्थापकता विलक्षण है।'४२

गुप्तजी की कविता युग की विकासोन्मुख भूमिका पर प्रतिष्ठित है साथ भी यह परम्परा से ही सम्पृक्त है। यद्यपि प्राय: कृतियों में काव्यादर्श प्राचीन संस्कृति से गृहीत है तथापि मौलिक चिन्तन के कारण उसमें प्रयोग विद्यमान है। राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक उत्थान की भावना इस काल में बहुलता से प्राप्त होती है। राष्ट्रीय परिस्थितियों से उत्पन्न गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना नये-नये विषयों को वाणी देती है, किन्तु अपनी पुरानी भूमि पर ही उन सारी विशेषताओं को लेकर जो उसकी परम्परा की धरोहर हैं। वास्तव में उनके काव्य में हमें राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के विविध स्वर और रंग परिलक्षित होते हैं जो अनुपम है। राष्ट्रकवि के रूप में उनकी ख्याति ही इस महत्ता का प्रमाण है। इस प्रकार वे सचमुच भारतीय अस्मिता, सांस्कृतिक उदात्तता, और सामाजिक सजगता के प्रतीक पुरूष हैं।

सियाराम शरण गुप्त - राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी रचनायें

कवि सियाराम शरण गुप्त गांधी दर्शन के समर्थक है। गांधी के आदर्शवादी सिद्धान्तों के अनुयायी गुप्तजी की काव्य रचना में गांधी दर्शन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने इस दर्शन के सैद्धान्तिक पक्ष का अवलम्बन न लेकर व्यावहारिक पक्ष का आधार लिया है। समसामयिक घटनाओं को देखकर वह युगधर्म के प्रति दायित्व को समझता है। वह अतीत के कथानकों का आधार लेकर वर्तमान दशा का मूल्यांकन करता है। वह पम्परा से प्रतिबद्ध नहीं होता बल्कि वर्तमान को परम्परा की कसौटी पर कसता है, निदान प्रस्तुत करता है। गांधी से प्रभावित कवि सत्य और अहिंसा के पथ पर चलता है आक्रोश और हुंकार से परे शान्ति और प्रेम के बल पर आजादी पाने का प्रयत्न करता है। वह करूण और संवेदनशील भी है। उसकी चेतना राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी दो धाराओं का संगम है। इनकी छायावादोत्तर काल की रचनायें हैं- मौर्य-विजय, आत्मोत्सर्ग, बापू, दैनिकी, नोआखाली में, उन्मुक्त, नकुल तथा विषाद।

'मौर्य-विजय' में कवि ने ऐतिहासिक कथानक का आश्रय लिया है इस कृति में कवि के चिन्तन पर परम्परा की स्पष्ट छाप झलकती है। भारत के गौरवशाली अतीत का स्मरण करके वह वर्तमान की दुर्दशा को प्रकट करता है। यहां 'गावेंगे ऐसे गीत हम क्या फिर और किसी समय' कहने का अर्थ आत्मविश्वास को जागृत करना है। गुप्तजी केवल अतीत से शक्ति अर्जित नहीं करते। वर्तमान दशा से भी उतनी गहराई से प्रतिबद्ध है। 'आत्मोत्सर्ग' कृति इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'आत्मोत्सर्ग' में अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्मबलिदान की घटना का वर्णन है। साम्प्रदायिक दंगों का परिणाम कितना कटु और विनाशकारी है यहाँ बताना कवि का प्रतिपाद्य है। साम्प्रदायिक दंगे देश की अखण्डता को खण्डित करते हैं। एकता शक्ति का मूल मंत्र है।

हिन्दू-मुस्लिम के बीच एकता स्थापित करने के लिये गणेश-शंकर विद्यार्थी का यह वक्तव्य –

"हाजिर मेरा खून तुम्हारा
फूले फले अगर इस्लाम
अब न मांगो अपने हाथ

अरे बहुत तुमने मांगा
हिन्दू मुसलमान दोनों का
यह संयुक्त राष्ट्र होगा।"४३

गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्मबलिदान द्वारा एकता की रक्षा करने का प्रयत्न है। 'बापू' में महात्मा गांधी को गुप्तजी ने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। गांधी मानवता के उद्धारक है। 'बापू एक मुक्तक काव्य है जिसमें गुप्तजी ने अपने भावोच्छ्वासों को सच्चे रूप में अभिव्यक्त किया है। यह राष्ट्रीयता के आधार पर चित्रित काव्यात्मक झांकी है। इसमें राष्ट्रीयता और देशभक्ति के स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं।'४४ गुप्तजी की राष्ट्रीय कविताएं सामायिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है। उसकी उत्कट देशभक्ति का प्रमाण है।

'नोआखाली' में गांधी की नोआखाली यात्रा का वर्णन है। हिन्दू-मुसलमान के परस्पर वैमनस्य, अनैतिक कार्यों के शमन के लिये गांधी ने सर्वप्रथम अहिंसा का प्रयोग किया था। गुप्तजी केवल प्राचीन परम्परा का प्रयोग नहीं करते, वर्तमान से सम्पृक्त है। इसका आदर्श दृष्टान्त 'नोआखाली' कृति से स्पष्ट है। दैनिकी में भी वह सामयिक घटना, समस्या को उद्धत करता है। उसके अपने शब्दों में 'जनरूचि को आज के संग्राम की विकट परिस्थिति ने सस्ती और साधारण वस्तुओं की ओर उन्मुख कर दिया है।" 'दैनिकी' का रचनाकाल यही है।'४५

'जयहिन्द' स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में रचित भारतवंदना है। वह अपने भावप्रसूनों से स्वतन्त्रता के अरूणोदय काल की अर्चना करता है–

"आज के स्वतन्त्र अरूणोदय में
उद्धत धरित्री के अभय में
कोटि-कोटि सन्तति का कोटि-कोटि नमस्कार
आज आत्मगौरव को हानि नहीं
अन्तस में दासता की ग्लानि नहीं।"४६

'उन्मुक्त' गीति नाट्य है। इसमें युद्ध की आवश्यकता, बलिदान, युद्ध की विभीषिका आदि का चित्रांकन है। 'उनका अधिकांश काव्य राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण है। देश में

उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन के समय गुप्तजी ने इस प्रकार की रचनाओं का सृजन किया।'४७ उन्मुक्त एक यथार्थपरक कृति है। 'नकुल' एक ऐतिहासिक रचना है जिसमें वर्तमानकालिक अवस्था का प्रतिपादन है। इनकी रचनाओं में परम्परा के प्रति आस्था और वर्तमान के प्रति तीव्र सजगता मिलती है। परम्परा के सूत्रों को कहीं भी गुप्तजी ने दोहराया नहीं है वरन् एक सशक्त स्वर में इसका प्रयोग किया है। प्राचीन और वर्तमान का सार्थक मूल्यांकन उनकी अद्वितीय चेतना का परिचायक है। भगीरथ मिश्र के भी मत में 'सियारामशरण जी आधुनिक युग के उस सन्धिकाल के कवि थे जहां पर प्राचीन मर्यादा, नैतिकता और आदर्श के साथ प्रगतिशील चेतना का मेल हुआ है।'४८ इस प्रकार कवि शोषण, अत्याचार, साम्प्रदायिकता अन्याय का शमन चाहता है, मानवता का कल्याण उसका अभीष्ट है। समूचे देश का उद्धारक कवि सिर्फ राष्ट्रीयप्रेम में लिप्त नहीं है। वह व्यष्टि अर्थात स्वच्छन्द प्रवृत्ति से भी प्रभावित है।

'विषाद' में उसकी यह प्रवृत्ति उभरी है। यह एक भावात्मक कृति है। यह वेदनाजन्य अनुभूतियों से आप्लावित है। विरह के एकान्त क्षणों में स्मरण

एकमात्र सहारा होता है। प्रेम कोई आदर्श नहीं, न एकाकी वस्तु है जिसके समक्ष वह घुटने टेक दे या आंचल में मुंह छिपाकर बिफर पड़े। प्रेम तो अनाद्यन्त है, चिरकालिक है।

"अनाद्यन्त वह प्रेम कहां से तुझे हुआ था प्राप्त
तेरा पता नहीं पर वह है चिरकालिक असमाप्त
गुम्फित किये हुए हैं कब के उसे काव्यइतिहास
कर देते जागृत तुरन्त जो तेरी स्मृति सौच्छ्वास।"४९

निराशा उसकी सहज प्रक्रिया को अनुशासित नहीं करती न उसे असहाय या दुर्बल बनाती है। ऐसे क्षणों में करूणा से आर्द्र हो उठता हैं–

"अश्रु गिराना मात्र रहा है अब तो तेरे अर्थ
उनमें से भी तुझ तक कोई पहुंच न सकते आह
जाने कितने गिरि वन सागर रोक रहे हैं राह।"५०

अस्तु यह करूणा व्यष्टि से समष्टि की यात्रा है। “विषाद की करुणा का धरातल जैसा कि मैंने अभी संकेत किया, शुद्ध व्यक्तिगत है। उसमें स्वर्गता पति के वियोग में कवि ने अत्यन्त मार्मिक किन्तु संयत कविताएं लिखी है। मृत्यु के समक्ष मानव कितना असहाय है उसका प्रेम, उसकी कल्पना, उसका बुद्धि वैभव सभी कुछ अपने प्रियजन को मृत्यु के पाश से मुक्त कराने में असमर्थ रहते हैं। यह बेचारा स्मृति, स्वप्न, कल्पना आदि की सहायता से भी तो अपने वियुक्त प्राप्त नहीं कर सका।”५१ छायावादियों की भांति न कल्पना को इन्होंने ग्रहण किया, न उत्तरछायावादी रोमांटिक कवि की तरह स्वप्न में भोगने का प्रयत्न किया। यह प्रेम तो जगत वस्तु होकर भी यथार्थ भित्ति पर टिका है। सियारामशरण गुप्त भी चतुर्वेदी और नवीन की भांति दोनों ही प्रवृत्तियों से अनुप्रेरित रहे हैं। प्राचीन और नवीन दोनों के लिये आस्थाशील सियारामशरण गुप्त प्रगति के उन्नायक हैं।

दिनकर राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी रचना

राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावदी रचना की पृष्ठभूमि में चिन्तन और मनन का विकास करने वाले कवि दिनकर छायावादोत्तर युग के ओज और कोमल उद्‌गारों के प्रतिनिधि कवि हैं। भारतीय संस्कृति के चिन्तक दिनकर के काव्य में प्राचीन और नवीन का अद्‌भुत समन्वय परिलक्षित होता है। अतीत की ओर बाँहें फैलाकर भी उसके पैर वर्तमान की जमीन पर टिके हैं। परम्परा और प्रयोग का उत्कृष्ट स्वरूप इनकी काव्यप्रक्रिया की देन है। राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी दो धाराओं में संतरण करने वाली बहुमुखी सक्रिय कर्मशीलता उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की ओर गत्योन्मुख है। राष्ट्रीयता की संश्लिष्ट भावना परतन्त्रता से त्रस्त होकर हुंकार करती है, व्यष्टि की कोमलभावना मन को आह्लादित। यद्यपि दोनों प्रवृत्तियों को परम्परा से कवि ने लिया है पर परम्परा के गलित अंशों को नयेपन से संवारकर जीवन्तता प्रदत्त की गयी है। एक ओर दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन की राष्ट्रीय भावना को नूतन विस्तार देते हैं दूसरी ओर छायावाद की स्वच्छन्द प्रेमभावना को नयी अर्थवत्ता में संस्थापित करते हैं। उन्होंने प्रेम को शाश्वत सौन्दर्य वस्तु मानकर आदर्श और यथार्थ दोनों का समन्वय किया है। राष्ट्रीयता को जागरित करने के पीछे दासता से मुक्ति की प्रबल कामना कार्यरत थी, प्रणय के पीछे प्रेम की सही व्याख्या को प्रस्तुत करना था। किन्तु हम यह

देखते हैं कि दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता का जो भाव रूप परिलक्षित होता है वह स्वच्छन्दतावादी काव्य में व्यक्त नहीं हो सका। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है 'सुयश तो मुझे हुंकार से मिला किन्तु आत्मा मेरी अब भी रसवन्ती में बसती है।'५२ अतएव वह एक सांस्कृतिक चेतना का कवि है। उसने अतीत के रोमांचक और उदात्त विषयों को चुनकर प्रयोग से एक नई दिशा का अन्वेषण किया है।

'अस्तु दिनकर में रोमांस और राष्ट्रीय चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियाँ मिलती है और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर तथा दूसरे को सांस्कृतिक दिशा देकर दोनों के सम्मिलन से उन्होंने आज तक की काव्ययात्रा पूरी की है।'५३

दिनकर की काव्यकृत्तियां हैं– रेणुका, हुंकार, सामधेनी, इतिहास के आंसू, बापू, नीम के पत्ते, परशुराम की प्रतीक्षा, कुरूक्षेत्र और रश्मिरथी पौराणिक कथानकों पर आश्रित है। 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' में प्रेम सौन्दर्यपरक श्रृंगारिकता की प्रधानता है। दिनकर ने परम्परा का वस्तुपरक आकलन कहीं भी नहीं किया है। अतीत की विध्वंसक पीठिका पर नवीनता का निर्माण करने का दिनकर का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

'रेणुका' उसकी प्रथम कृति है जिसमें वह अतीतोन्मुख है। वर्तमान से क्षुब्ध मन अतीत का स्मरण करता है। उसकी दृष्टि यहां संकुचित है, आत्मविश्वास का अभाव है, विकराल परिस्थितियों से संघर्ष की क्षमता भी नहीं। अत: अतीत में जीना श्रेयस्कर मानता है–

"देवि दुखद है वर्तमान की
यह असीम पीड़ा सहना
कहीं सुखद इससे संसृति में
है अतीत में रत रहना।"५४

'तांडव', 'बोधिसत्व', 'हिमालय', कविता के प्रसंग ओज और पौरुष से भरे हैं। निर्भरणी और गीतवासिनी में प्रणय के सरल और मधुर रूपों का निर्वाह है। रेणुका वह उत्स है जिसमें परवर्ती काव्य-कृतियों को सघनता और व्यापकता मिली है। 'रेणुका' में स्पष्ट रुप से आभासित होता है कि दिनकर चिन्तन या विवेक से तो यथार्थत: उग्र

राष्ट्रवादी है किन्तु भावना या प्रकृति से शृंगारपुष्ट सौन्दर्यवादी। उनकी सम्पूर्ण काव्ययात्रा इन्हीं दो चेतनाओं के मध्य पथ से चलते तय हुई है।'५५

'हुंकार' में समय की पुकार को सुनकर वह क्रान्ति के लिये हुंकार करता है। 'एक राग मेरी भी रण में बन्दी की जंजीर बनें' में कवि दिनकर प्रत्यक्ष संघर्ष हेतु प्रस्तुत होता है क्योंकि परतन्त्रता से प्रताड़ित जनता का उद्धार अतीत में जीकर नहीं वर्तमान में ही ढूंढ़ना होगा।

"स्वर को कराल हुंकार बना देता हूँ मैं
यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूं मैं।"५६

अब अतीत चित्त को आकर्षित नहीं करता। रण की घड़ी में गीतों का स्वर अनुकूल हो उठता है–

"समय ढूह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये
आज खोजते उन्हें बुलाने वर्तमान के पल आये।"५७

'दिगम्बरि' और 'विपथगा' में दुर्गा और भवानी से दयनीय दशा से उबारने का आह्वान करता है। 'हुंकार' के स्पन्दन में दिगम्बरि और विपथगा क्रांतिकारी दुर्गा और भवानी के वे दो मान हैं जिनका स्वरूप सिंह के समान ओज और तेज को संजोये हुए हैं। क्रान्ति की यह ऊंची से ऊंची कल्पना विश्व साहित्य में बेजोड़ हैं।'५८ सचमुच आलोच्यकाल में क्रान्ति की जिस परम्परा का उदय हुआ उसमें निश्चित संकल्प से प्रतिबद्ध कवियों ने कठोर से कठोर आपदाओं के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया, हथियार नहीं डाले। मृतक शवों में भी उफनता खून उड़ेला जिससे दुश्मन की सत्ता का सिंहासन डोल जाये। कवि की लेखनी तलवार से अधिक तीक्ष्ण और घातक बनी। दिनकर की लेखनी भी इसकी साक्षी है। क्रान्ति का यह उफान बरसाती नदी का रूप धारण कर प्रकट हुआ जिसके उफान से ध्वनित स्वर से आतंक और सहम की गूंज प्रतिध्वनित होती है। जो अपने प्रबल वेग में सब कुछ बहाकर ले जाती है। हुंकार की काव्यकृतियां इसी को प्रतिपादित करती है।

'सामधेनी' में एक बार फिर देश की आक्रामक स्थितियां कवि को दुविधाग्रस्त करती है, सही निर्णय का साहस जुटा नहीं पाती। हुंकार की कविताओं में जो तीव्रता दिखलाई

देती है सामधेनी में यह तेज मन्दा पड़ जाता है। युग की समस्याओं के प्रत्यक्षदर्शी दिनकर तटस्थ निर्णय लेने में असमर्थ हो जाते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव कहीं कम नहीं हो पाया है।

१९४७ में देश स्वतन्त्र होता है। बापू के अकस्मात् निधन से वे द्रवित हो जाते हैं। जैसे कि अन्य कवियों ने भी बापू पर रचना लिखकर अपनी आस्था को प्रकट किया। उन्होंने भी 'बापू' कृति में गांधीजी के महान कृत्यों का स्मरण कर अंगारों से वन्दना की है। अंगार की ज्वाला इतिहास में परिवर्तन का समावेश करती है –

"संसार पूजता जिन्हें तिलक
रोली फूलों के हारों से
मैं उन्हें पूजता आया हूँ
बापू अब तक अंगारों से।"५९

'इतिहास के आंसू' ऐतिहासिक घटनाओं पर आधृत है। मगध महिमा नाटक और कलिंग विजय में वर्तमानकालिक बोध का उद्घाटन है। 'धूप और धुंआ' में स्वराज्य से फूटनेवाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्मे हुए असंतोष को धुआं कहकर व्याख्यायित करते हैं। सर्वत्र असंतोष का स्वर अधिक फूटा है। 'दिल्ली' में रोष और व्यंग्य का प्रदर्शन है दिल्ली के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट है। 'नीम के पत्ते' में यह व्यंग्य अधिक तीखा है। स्वतन्त्रता के पूर्व देखे गये स्वप्न का मोहभंग का कितना यथार्थ चित्रण दिनकर ने किया है।

"कुछ से कुछ होने को तो आजादी न मिली
वह मिली गुलामी की ही नकल बढ़ाने को।"६०

१९६२ में चीन के आक्रमण से आजाद भारत की राष्ट्रीय चेतना को विशेष रूप से ठेस पहुंची। इस अविश्वसनीय आक्रमण ने भारतीय संस्कृति और जातीय गौरव को एक नये सिरे से युद्ध के प्रति सजगता दी।

'परशुराम की प्रतीक्षा' में परशुराम का आह्वान किया गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि– दिनकर के काव्यों में व्याप्त राष्ट्रीयता की सरिता बड़ी ही प्रचंड प्रवाहिनी रही है जिसके कल-काल ताण्डव में वर्तमान के कुरूपों को दूर करने के लिये ध्वंस के स्वर

सुनाई देते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात यह सरिता जैसे विशाल मैदान पाकर सौन्दर्य के हिलोरे में झूल रही थी। चीनी आक्रमण के पश्चात् उसमे ज्वार आ गया।'६१ वह 'परशुराम की प्रतीक्षा' में पौरुष का और कर्मठता के आगार व्यक्तित्व की परिकल्पना करता है जो सांघातिक चुनौतियों के सामने अडिगता से खड़ा रह सके।

दिनकर के पौराणिक ऐतिहासिक काव्यों पर आधृत रचनाओं में परम्परा का सशक्त रूप मिलता है। पर वे परम्परावादी नहीं है वे आज के युग का प्रतिनिधित्व करते हैं और ज्वलन्त समस्याओं में मानव को कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ करना चाहते हैं। कुरूक्षेत्र एक विचारप्रधान कृति है जिसमें कवि का शंकाकुल हृदय ही मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर प्रस्तुत हुआ है। कथानक उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना युद्ध सम्बन्धी समस्या युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य का प्रश्न। अहिंसा के प्रतीक युधिष्ठिर युद्ध को उचित नहीं मानते जबकि न्याय के प्रतीक भीष्म युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। 'युधिष्ठिर के द्वारा शंकाएं उठवाई हैं,

भीष्म के द्वारा उनका समाधान कराया है युधिष्ठिर के द्वारा शान्ति और त्याग-तप की बातें सामने रखी हैं भीष्म द्वारा 'शूर-धर्म', 'प्राकृतिक नियम', 'अन्याय', अत्याचार, शोषण आदि के नाश के एकमात्र उपाय के आवरण में युद्ध की अनिवार्यता का और इस प्रकार अपनी आतंकवादिता का गहरा प्रतिपादन करवाया है।"६२

"और जो अनिवार्य है उसके लिए, खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है
तू नहीं लड़ता, न लड़ता आग यह फूटती निश्चय किसी भी व्याज से
त्याग-तप, भिक्षा ? बहुत हूं जानता मैं भी, मगर,
त्याग-तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं;
या कि उसकी नीति जिसके हाथ में सायक नहीं
या मृषा पाखंड यह क पुरुष बलहीन का।"६३

सूक्ष्म रूप से अवलोकन किया जाये तो रचनाकार ने हृदय का समर्पण तो युधिष्ठिर को किया व मस्तिष्क का समर्पण भीष्म को। हृदय का झुकाव युधिष्ठिर की ओर होते हुए भी बौद्धिकता उस पर हावी है। इस प्रकार कुरूक्षेत्र में महाभारत कालीन प्रसंग परम्परा से गृहीत होकर भी अपने युग को चित्रित करने के लिए एक नया प्रयोग किया है। प्रयोग से परम्परा के जीवंत अंश को नयेपन से भरकर उसे सजीवता दी है।

'रश्मिरथी' भी पौराणिक कथा-चरित्र पर अवलम्बित है। यह भी कवि के परम्परा के प्रति मोह की प्रस्तुति है। रश्मिरथी में दलित और उपेक्षित वर्ण अपने वर्ण के लोगों की समस्या का निदान प्रस्तुत करता है। कवि के शब्दों में यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। अतएव बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्रभारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा है।'६४ कर्ण के चरित्र से नयी मानवता की स्थापना कवि का धर्म है।

"मैं उनका आदर्श, किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे,
निज चरित्रबल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा
धर्म हेतु धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।"६५

निष्कर्षत: दिनकर की सम्पूर्ण काव्य यात्रा में परम्परा और आधुनिकता, प्राचीन और नवीन का उचित मेल हुआ है। परम्परा से प्रभावित कवि वर्तमान की समस्याओं का सूक्ष्मता से अध्ययन करता है, युग सत्य का अन्वेषण करता है, प्रयोग से विकास करता है, नये सत्य को संस्थापित करता है। राष्ट्रीय चेतना को अतीत की पृष्ठभूमि पर रचकर उसने उसकी सीमा को विस्तार ही दिया है। राष्ट्रीय काव्य में दिनकर की मूलप्रवृत्ति सांस्कृतिक ऐतिहासिक गौरव को उन्नत व समृद्ध करने की रही है।

दिनकर ने केवल राष्ट्रीय काव्य नहीं लिखा। उसने 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' में प्रेम का वर्णन किया है। दिनकर प्रेम को कहीं भी अतीन्द्रिय और अतृप्ति का विषय नहीं स्वीकारते। आदर्श और यथार्थ का सही समन्वय उनके काव्य की मूलभूत विशेषता है। उसमें कल्पना की ऊंची उड़ानें नहीं है, विफल प्रेमी की असफलता का आलाप भी नहीं है, उसमें शाश्वत सौन्दर्य की वस्तु प्रेम का चित्रांकन है। जहाँ छायावादी कवि अमूर्त चित्रण कर पलायन करता है, उत्तरछायावादी कवि मूर्त चित्रण कर स्थूल भोग में प्रवृत्त होता है दिनकर का आत्मप्रेरित काव्य आन्तरिक सौन्दर्य को परम्परा की सुदृढ़ भित्ति पर नयी रसवत्ता का मिश्रण करता है। वह स्वयं स्वीकारता है– संस्कार से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था किन्तु मन मेरा तब भी चाहता था कि गर्जन-तर्जन से दूर और केवल ऐसी ही कवितायें लिखूं जिनमें कोमलता और कल्पना

का उभार हो। यही कारण था कि जिन दिनों हुंकार की कवितायें लिखी जा रही थी उन्हीं दिनों मैं 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्वगीत' की भी रचना कर रहा था और अजब संयोग की बात थी कि सन् १९३६-४० में ही ये तीनों पुस्तकें एक वर्ष के भीतर-भीतर प्रकाशित हो गयी और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवन्ती' में बसती हैं।'६६

'रसवन्ती' में कवि हृदय के कोमल पक्ष को प्रमुखता देता है। प्रेम को वह शाश्वत सौन्दर्य की वस्तु मानता है। प्रेम दूज के चांद की तरह सदा बढ़ता है। प्रेम मनुष्य के हृदय में स्थिर कोमल भावना है जो किसी भी प्रतिबन्ध को अस्वीकार करती है –

"बन्धनों से होकर भयभीत
किन्तु क्या हार सका अनुराग
मानकर किस बन्धन का दर्प
छोड़ सकती ज्वाला को आग।"६७

'दाह की कोयल' में वियोग का वर्णन परम्परा से भिन्न अर्थ में हुआ है। इसमें सात्विक और साहित्यिक दोनों भावनायें अनुस्यूत है।

"मुंद गई पलकें जब कान, सज गया हरियालियों का ध्यान
मुंद गई पलकें कि जागी पीर, पीर बिछुड़ी चीज की तस्वीर।"६८

सावित्री सिन्हा के मत में 'वैयक्तिक सुख-दुख, मधुमास का पराग, यौवनकाल की उष्णता, प्रेम की शीतलता और रूप की चकाचौंध में कुछ दिनों के लिए उनकी 'रसवन्ती' में उनकी कलाचेतना का यही मधुर कोमल रूप, प्रधान रूप से व्यक्त हुआ है।'६९ 'रसवन्ती' की प्रेम कविताओं में व्यष्टिगत भावनायें ही व्यक्त है।

"बाकी अभी रसनाद हो
पिछली कथा कुछ याद हो
तो कूक पंचम तान में
संजीवनी भर गान में
सूखे विटप की डार को
कर दे हरी करुणामयी

पढ़ दे ऋचा पीयूष की
उग जाय फिर कोंपल नयी
जीवन गगन के दाह में
उड़ चल सजल नीहारिके
सूखे विटप की सारिके।"७०

प्रेम की व्यापकता को वह एक विशिष्ट भावना मानता है जो सिर्फ हृदय की निधि है जिसकी कोई सीमा नहीं है, जो अबन्ध है –

"मन की बात न श्रुति से कह सखि
बोले प्रेम विकल होता है
अनबोले सारा दुख सह सखी!
कितना प्यार? जान मत सखि।
सीमा, बन्ध, मृत्यु से आगे
बसती कहीं प्रीति अहरह सखि।"७१

'रसवन्ती' को मैं कुरूप पर्वत की बांसुरी कहना चाहता था लेकिन यह 'दाह की कोयल' और 'धूप में उड़नेवाली धूप शबनम।'७२

इस तरह रसवन्ती में पूर्ववर्ती स्वच्छन्द कवियों की अनुवर्ती चेतना तो मिलती है पर नैतिक मर्यादाओं के खिलाफ प्रतिरोध नहीं है, सामाजिकता का उल्लंघन करने का साहस भी दिनकर में नहीं है। 'रसवन्ती का शृंगार तो पर्वत के भीतर बहती हुई उस स्निग्ध जलधारा के समान है जो उसके उपलमय व्यक्तित्व और वातावरण को आर्द्र रखकर उसको सरस बनाये रखती है।'७३

'उर्वशी' में भी कवि ने काम अर्थात प्रेम को विश्लेषित करने की चेष्टा की है। उर्वशी और पुरुरवा के द्वारा चित्रित काम में प्रेम की प्रगाढ़ अनुभूतियां व्यंजित है। "प्रेम का जन्म काम से होता है किन्तु उसकी परिणति काम के अतिक्रमण में होनी चाहिये। यही नहीं प्रत्युत प्रेमिका के सौन्दर्य पर चकित रहने वाले चिंतनशील प्रेमी के मन में भी यही भावना उठा करती है कि वह सौन्दर्य कहां है जो इससे भी अधिक महान् होगा। प्रेम में पवित्रता धर्म के भय से नहीं लाई जाती है, पवित्रता प्रेम का गुण है।'७४ उर्वशी में

अतीन्द्रियप्रेम, सहजप्रेम, समर्पितप्रेम की अलग-अलग व्याख्या यह निष्कर्ष देती है कि उसके स्रोत परम्परा से गृहीत होकर भी प्रयोग में निहित गति से आधुनिक है। दिनकर प्रेम की सार्थकता काम का अतिक्रमण करने में मानते हैं। "दिनकर ने कहीं प्रेम और सौन्दर्य का स्वतन्त्र और सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया किन्तु उन्होंने यह माना कि शारीरिक सम्बन्ध प्रेम का आधार होते हुए भी उनकी सार्थकता शारीरिक सम्बन्धों के अतिक्रमण में ही है। दिनकर द्वारा उर्वशी में व्यक्त कामाध्यात्म इसी मान्यता की परिणति है।'७५

कला के क्षेत्र में भी कवि बहुत ही सफल रहा है। भाषा में ओज और पौरूष के संवहन के साथ कोमल अनुभूतियों का प्रकाशन है। छंद-योजना में भी नूतनता समाविष्ट है। दिनकर ने परम्परा का सार्थक निर्वाह किया है परन्तु वर्तमान के सामयिक आह्वान को परम्परा से अनुस्यूत कर उसे सर्जनात्मकता दी है।

राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी दोनों प्रवृत्तियां उनके व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग है जिसका विकास स्वस्थ भूमि पर निर्मित है। दिनकर की सम्पूर्ण यात्रा परम्परा के प्रयोग की ओर अग्रसर है।

श्याम नारायण पाण्डेय

श्याम नारायण पाण्डेय भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक विचारधारा के एक समर्थ कवि हैं। इनकी रचनाओं में वीर रस की प्रधानता है। इन्होंने मध्ययुगीन इतिहास का अपने काव्य में निरूपण तो किया ही, साथ ही वर्तमान के प्रति भी वे सजग रहे। इसी कारण राष्ट्रीय सांस्कृतिक विचारधारा उनकी काव्यात्मक रचनाओं से और पुष्ट हुई। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं– हल्दीघाटी और जोहर। रस का एक प्राणवंत चित्र युद्ध के वर्णन में कवि ने उपस्थित किया है। मध्ययुग का एक चित्रण द्रश्टव्य है–

"पर उसकी तलवारें, दो तड़ितों सी तड़प रही थीं।
मत्त मतंगों पर गिर-गिर कर, प्राण बराबर हड़प रही थीं।
शुण्ड काटकर तुण्ड उड़ाया, पुंछ काट कर मुण्ड उड़ाया।
अपनी खरतर तलवारों से छपछप विकल वितुण्ड उड़ाया।"७६

इसमें सरलता है, उत्साह है। कवि ने पराधीन भारतवासियों को उनके कर्त्तव्य के लिये जागरूक किया इसीलिए उनकी रचनाएं उद्बोधन प्रधान भी हैं। उनकी औजस्वी वाणी भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उन्हें एक विशिष्टता प्रदान करती है। उनकी कविता में ओजस्वी भावना यत्र-तत्र मिलती है–

"निकली बोटी-बोटी से ध्वनि, मिटो जवानों सती मान पर
वीर, मर मिटो आन-बान पर, मर मिटो स्वाभिमान पर।"७७

सचमुच वे वीर रस के अप्रतिम कवि हैं। उनके काव्य में देशधर्म पर उत्सर्ग हो जाने की भावना पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। कवि ने अपनी सच्ची राष्ट्रभक्ति का प्रमाण अपनी रचनाओं में दिया भी है।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' छायावादीत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा के सशक्त हस्ताक्षर है। राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं भारतीय संस्कृति उनकी रचनाओं का केन्द्रीय विन्दु रही। "केकई" उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसमें प्रभात जी ने 'केकई' के चरित्र को आधुनिक सन्दर्भ में व्याख्यायित किया है। केकई में राष्ट्रभक्ति है, राष्ट्र की सुख समृद्धि के लिए वह वैधव्य तक स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाती।

"वैधव्य मुझे स्वीकार, राष्ट्र की जय हो
दासत्व न अंगीकार, राष्ट्र की जय हो।"७८

"केकई" छायावादोत्तर हिन्दी कविता की अनुपम उपलब्धि है। 'तप्त-गृह' में भी प्रभात जी ने राष्ट्रीय संस्कृति को आधार बनाया है। अजातशत्रु, बिम्बसार के इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के माध्यम से उन्होंने ऐतिहासिक और जातीय अर्न्तद्वन्दों को उद्घाटित किया है। कवि की भाषा परिष्कृत एवं भावों के अनुरूप बनती चली गयी है। इस प्रकार 'प्रभात' जी अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीयता के प्रचार प्रसार में सदैव अग्रणी भूमिका निभाते रहे। मानवीय और राष्ट्रीय मूल्यों की पक्षधरता उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। अतः केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का छायावादोत्तर राष्ट्रीय काव्यधारा में अविस्मरणीय अवदान है।

"ख"

उत्तर छायावाद - रोमांटिक भावबोध के कवि

बच्चन

बच्चन उत्तर छायावाद रोमांटिक भावबोध के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। यदि उनके सम्पूर्ण कृतित्व का अनुशीलन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका काव्य जड़ता और रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह की स्थापना है। बच्चन में छायावाद की सूक्ष्म प्रेम भावना, स्वप्निलता, जड़ता, आदर्शप्रियता के प्रतिकूल स्थूल, साकार और यथार्थ के प्रति आग्रह है। 'तत्कालीन छायावादी अभिव्यंजना का प्रभाव मुझ पर नहीं था यह कहना तो मेरी कृतघ्नता होगी। मैंने छायावादी शिल्प को आत्मसात् करके लिखा पर छायावादी शिल्प से ऊपर भी उसमें हैं, कुछ नयापन।'७९ बच्चन ने कालसापेक्ष प्रत्येक स्थिति को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति दी है। फलस्वरूप वेदना, निराशा, स्थूलप्रेम, नियतिवाद, क्षणभंगुरता आदि भाव छायावादी तत्वों का प्रभाव होने के उपरान्त भी कथ्य और शिल्प में बिल्कुल पृथक और अलग है जो परम्परा की आवृत्ति नहीं है अपितु प्रयोग वर्धक है। प्रयोग में निरन्तरता विद्यमान है।

प्रारम्भिक रचनायें भाग-१ तथा भाग-२ बच्चन की कविताओं का पहला संग्रह है। जिसमें वैयक्ति संवेदनशीलता को प्रतिस्थापित करने का आत्मसंघर्ष है। इसमें नैराश्य, वेदना, नियति, मृत्योपासना स्थूल ऐन्द्रिय प्रेम का जो चित्रण है परवर्ती कृतियों में अधिक मुखर और व्यापकता लिये है। छायावाद की दुरूहता ने हालावाद की ओर मोड़ा जिसका प्रमाण 'मधुशाला' और 'मधुबाला' आदि कृतियाँ हैं। नश्वर और क्षयी जीवन में भोग और विलास का वरण ही मनुष्य का उद्देश्य होना चाहिए। यहाँ बुद्धिवादिता के प्रति विद्रोह है। प्रयोग का सम्बन्ध निरन्तर से होता है। मृत्युबोध की प्रतीति में आस्था और विश्वास प्राप्त करने की बलवती प्रेरणा इन रचनाओं की रचनाप्रक्रिया में पूर्णतया विद्यमान है। वेदना और निराशा से ऊपर उठना हालावाद का अभीष्ट है। प्रस्तुत कृतियों में प्रयुक्त प्रतीक परम्परा से अनुगृहीत है परन्तु बच्चन द्वारा किया गया उनका प्रयोग उसकी तात्कालिक परिस्थितियों में सन्निहित है। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' किसी विलासी का राग आलाप नहीं था। उनमें तो युग-युग से दबी

दुखी पर अपराजित मानवता ही बोली थी। सारे बन्धनों को तोड़कर सारी जड़ सीमाओं से जूझकर।'८० जड़ता का बहिष्कार कर, जीवन्तता का आत्म स्वीकार उनकी कविता का प्रमुख स्वर है।

नियति के समक्ष आत्म-समर्पण की जीत है। सबलता बाधाओं के आमंत्रण से टकराकर ऊर्जास्वित होती है। दूसरों शब्दों में जब अतीत को चुनौती देकर नवता का आरम्भ होता है उस समय सही को आकार देने के लिए कवि दृढ़-प्रतिज्ञ होता है–

"तीर पर कैसे रूकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण।"८१

कठोर यथार्थ के प्रति निष्ठा बच्चन में साहस का संचार करती है–

"नाव नाविक फेर ले जा है नहीं कुछ काम इसका
आज लहरों से उलझने को फड़कती है भुजाएं।"८२

सचमुच 'मधुशाला' और 'मधुबाला' तथा 'मधुकलश' में मस्ती का जो प्रवाह था वह 'निशा-निमंत्रण', 'एकांत-संगीत', 'आकुल अंतर' तक पहुँछ कर साकार वेदना और आत्मापीड़ा में पर्यवसित हो गया है। आत्मपीड़ित कवि की रिक्त वेदना का स्रोत है– पत्नी श्यामा की मृत्यु, भाग्य की प्रताड़ना से व्युत्पन्न कटु तिक्त अनुभव, जड़ता, मृत्युआभास प्रभृति। कवि की वेदना, निराशा, जड़ता आदि भावनाओं में व्याप्त तरलता, गहराई काव्य परम्परा के विकास में प्रशंसनीय है। उसकी कैसी असहाय स्थिति है–

"स्वप्न भी छल, जागरण भी।"८३

वह जड़ 'शव' का पर्याय मात्र है–

"आज पड़ा हूं मैं बनकर शव
जीवन में जड़ता का अनुभव।"८४

किन्तु कथ्य की भंगिमा, भावों का प्रस्तुतीकरण निजी वैशिष्टय से अभिमंडित है। 'निशा-निमंत्रण' के अन्त में कवि अपने कल्पित साथी से विदा ले लेता है। 'एकांत-संगीत' में अकेला होकर भी वह अपनी प्रणयसंवेदना से अन्तर्मन्थित होता रहता है।

"जब करूँ मैं प्यार
हो न मुझ पर कोई नियन्त्रण
कुछ न सीमा, कुछ न बन्धन
तब रूकूँ जब प्राण, प्राणों से करे अभिसार।"८५

इस युग में न तो द्विवेदीयुगीन नैतिकता को प्रश्रय मिला, न छायावाद की स्वप्निल वायवी, अशरीरी प्रेम की प्रवृत्ति अपनाई गई, अपितु प्रेमतत्व के लौकिक व शरीरी पक्ष को उद्‌घाटित किया गया। कवि अपनी तुष्टि को किसी आवरण या नियन्त्रण की वस्तु रहने नहीं देता चाहता। वह किसी भी प्रकार के बंधन को अग्राह्य मानता है। प्रेम प्राकृतिक प्यास है, भोग की वस्तु है, जग का उपहास भी उद्दाम धारा में अवगाहन से रोकने में असमर्थ है –

"मेरे पूजन आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा
तब रोक न पाया मैं आंसू।"८६

नियति कवि की हर कोशिश को व्यर्थता में परिणत करती है। यह गूढ़ रहस्य मात्र रहस्य है जो कवि को 'मिट्टी दीन कितनी हाय' सोचने को विवश करती है जिसमें संघर्षरत होकर जीने की प्रेरणा भी निहित है। हीनता के साथ वे जीवन को एक नये सिरे से प्रारम्भ करने को प्रयत्नवान भी है. अतएव बच्चन की नियतिवादी धारणा में कहीं भी पराजयबोध नहीं है, आत्मसमर्पण नहीं है, अदम्य साहस और शक्ति से इसके विरुद्ध खड़े होने का बल संचित है।

'एकांत संगीत' का एकाकीपन, अन्तर्संघर्ष, नियति की अकाट्य यन्त्रणाओं से बाहर निकलने को प्रतिबद्ध है। यह वह स्थल है जहां संघर्षशील अन्तस अवसादों के दंश से टूट तो जाता है पर टूटन की अन्तिम स्थिति में पहुंच कर यही धारा उसके जीवन को प्रकाश की प्रथम किरण यानी गति के नये आलोक में भी विश्राम देती है–

"तू अपने में हुआ लीन,
बस इसीलिए तू दृष्टिहीन,

इससे ही एकाकी मलिन
इससे ही जीवनज्योति क्षीण
अपने से बाहर निकल देख है खड़ा विश्व बाँहें पसार।
तू एकाकी तो गुनहगार।"८७

बर्हिमुखी कवि की अन्तश्चेतना ने प्रथम बार विश्व के अपरिमित सौन्दर्य के दर्शन किये, नीड़ का निर्माण फिर-फिर, नेह का आह्वान फिर-फिर की भावना इस सौन्दर्य की प्रेरणा है। एक बार पुनः बच्चन की प्रणय संवेदना का एक नया स्वरूप दिखायी देता है। विषाद, प्रेमसंवेगों की टूट, भोग और अतृप्ति उल्लास तथा निर्माण में प्रवृत्त होती है–

"कल सुधारूंगा हुई संसार में जो भूल
कल उठाऊँगा भुजा अन्याय के प्रतिकूल
आज तो कह दो मेरा बन्द शयनागर
सुमुखि ये अभिसार के पल, चल करें अभिसार।"८८

सम्पूर्ण संसार प्रेयसी में केन्द्रित है–

"स्वप्न में तुम हो, तुम्हीं हो जागरण में।"८९

किन्तु तृषित अन्त:करण परितुष्ट नहीं होता, प्यास सिर्फ प्यास है, कहीं-कहीं बन्धन की अभिव्यक्ति में शीलता का अतिक्रमण है–

"तृप्ति क्या होगी अधर के रस वर्णों से
खींच लो तुम प्राण ही इन चुम्बनों से
प्यार के क्षण में मरण भी तो मधुर है
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।"९०

वस्तुत: "बच्चन की प्रणयानुभूमि मे किसी भक्ति और अध्यात्म की संयत संकोचशीलता व मर्यादा भीरूता नहीं है, न रीति कवि की शृंगारिक नग्नता है और न ही उस पर किसी नीले झीले आंचल का छायावादी आवरण है उनकी प्रणयानुभूति अपनी जी भोगी है, उनके जीवन के साथ बढ़ी विकसी है, उन्मुक्त, निर्द्वन्द्व और नियंत्रणहीन है। उसमें तन की तड़प भी है, मन की मनुहार भी।" ९१ सचमुच छायावादोत्तर काल के पूर्व प्रेम की इतनी स्पष्ट और मूर्त अभिव्यक्ति किसीने भी नहीं की–

"बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में और कहो क्या बन्धन मानूं।"९२

"मिलन - यामिनी" में व्यक्त "जानता हूं प्यार, उसकी पीर को भी" विरह वेदना "प्रणय - पत्रिका" में साकार हो उठी है। यह कवि के प्रवास काल की कृति है, दाम्पत्य प्रणय सम्बन्ध इस संग्रह की आधार भूमि है–

"अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।"९३

अस्तु बच्चन की प्रणयभावना में न तो दुराव या छिपाव है, न कृत्रिमता है, न आवरण, न संकोच या मर्यादा। प्रेम कवि के लिये भोग है, प्राकृतिक प्यास, निर्बन्धता से पूर्ण, उन्मुक्त। पूर्ववर्ती कवियों से प्रेम के प्रति कवि का यह दृष्टिकोण सर्वथा अलग और नूतन है। कवि के अभिमत में 'जीवन मेरे लिये प्रयोग है। यह और बात है कि अपने प्रयोग से भी परम्परा सिद्ध परिणाम पर पहुँचा हूँ।'९४ जीवन के उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया ने समय-समय पर निराशा और आशा के क्षणों में निकट से जीवन को परखने की तटस्थता दी और इस तटस्थता ने जीवन के प्रयोग से एक नई परम्परा का आवर्तन किया जहाँ कवि का स्वच्छन्द हृदय ही मुखरित है।

'हलाहल' में पुनः संसार की नश्वरता पर दृष्टिपात है। अस्थायी जगत में सब कुछ सारहीन है। मनुष्य इस अकाट्य सत्य से बाहर निकलने का उपक्रम नहीं करता। हलाहल जीवन का कटु सत्य है पर एकमात्र सत्य नहीं है जिसमें आबद्ध होकर मनुष्य इतर पक्षों से विमुख हो जाये।

'मिलन यामिनी' में बर्हिमुखी जगत में विचरण करने वाला कवि मन अर्न्तमुखी जगत में संचरण करता है। वह अपनी पुरानी वृत्ति और चर्चा में सन्नद्ध होता है, गगन में फैली चांदनी को देखकर वह कह उठता है।

"गोद में तुम हो, गगन में चांदनी है
काल को यह भी निशा तो नापनी है
मधु सुधा की धार में दो याम बह लें
है रुपहली रात, है सपने सुनहले।"९५

अपनी मन वीणा को कसकर वह नये अध्याय का आरम्भ करता है। संयोग शृंगार के स्थूल और मांसल चित्रण भी यहाँ मिलते हैं–

या

"रात आधी खींचकर मेरी हथेली पर एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।"९६ प्रस्तुत कृति की पंक्ति-पंक्ति व्यक्तिगत संबंधों को लेकर अधिरचित है। कहीं विवशता का उद्रेक है –

"तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।"९७

'प्रणय-पत्रिका' में प्रणय शृंगार वियोग मिश्रित भाव है। इसमें जो बीत गई सो बात गई की संवेदनशीलता से ऊपर उठने का द्वन्द्व है। प्रवासकालीन समय की विशिष्ट मन:स्थिति की उपज इस पत्रिका में समर्पण भाव की प्रमुखता है-

"एक यही अरमान गीत बन, प्रिय, तुमको अर्पित हो जाऊं
जड़ जग के उपहार सभी हैं,
धार आंसुओं की बिन वाणी,
शब्द नहीं कह पाते तुमसे
मेरे मन की मर्म कहानी
उर की आग, ही केवल
कंठस्थल में लेकर चलता,
एक यही अरमान गीत बन, प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ।"९८

बच्चन ने इस पत्रिका में अपने स्व की संवेदनशीलता को आवृत्त कर उदात्तीकरण की चेष्टा की है। इसमें अपने अहं को प्रतिस्थापित करने का आत्म संघर्ष है–

"चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
कब किसी से भी कहा मैंने कि उसके रूप मधु की
एक नन्हीं बूंद से भी आंख अपनी सार आया,
कब किसीसे भी कहा मैंने कि उसके पंथ रज का
एक लघु कण भी उठाकर शीश पर मैंने चढ़ाया
कम नहीं जाना अगर जाना कि इसका देखने को
स्वप्न भी क्या मूल्य पड़ता है चुकाना जिंदगी को।"९९

तुम्हारे नील झील से नैन, नीर निर्झर से लहरें केश में कवि प्रिया का नख-शिख वर्णन करता है। प्रियतमा का नख-शिख वर्णन की यह परम्परा बहुत ही पुरानी है पर इसमें कवि की स्वच्छन्द कल्पना का नियोजन है जो आधुनिक है। अभिव्यक्ति और संवेदना का अनूठा प्रयोग छायावादी परम्परा की पीठिका पर नयी प्राणप्रतिष्ठा करता है –

"मेरी दुर्बलता के पल को
याद तुम्हीं करूणाकर आते
अपनी करूणा के क्षण में तुम
मेरी दुर्बलता बिसराते।"१ ० ०

प्रयोग की दृष्टि से 'बुद्ध और नाचघर' तथा 'त्रिभंगिमा' काव्य संग्रह अवलोकनीय है। कवि ने 'बुद्ध और नाचघर' में बुद्ध के परम्परित आदर्श रूप को तथा युगीन विकृतियों के मध्य बुद्ध की दुरावस्था पर क्षोभ प्रकटित है। समय के प्रवाह में बुद्ध के आदर्श सिद्धान्त की परिभाषा ही परिवर्तित है। व्यंग्य की प्रधानता है–

"मद्यं शरणं गच्छामि
मासं शरणं गच्छामि
डांसं शरणं गच्छामि।"१ ० १

'त्रिभंगिमा' में लोकगीतों का काव्यात्मक प्रयोग हुआ है जिससे कविता के लिये नूतन दिशाओं का मार्ग प्रशस्त होता है। 'युग की समस्त परिवर्तनशीलता और विविधता के साथ शाश्वत का एक अंश अभिन्न रूप से जुड़ा होता है। इसी से परम्परा की शृंखला बनती है, एक युग की रचना दूसरे युग में आकर्षक लगती है।'१ ० २ 'सोन-मछरी', 'गंगा की लहर' और 'पगला मल्लाह' दर्शनीय है।

वस्तुत: बच्चन के समग्र काव्यकृतियों के विश्लेषण से यह विदित होता है कि बच्चन की प्रणय भावना ही उनकी समस्त कविता का आधार है। चूंकि प्रेम लौकिक है, स्वप्न और कल्पना से परे जागरण और यथार्थ से सम्पृक्त है अतएव मौन और अशरीरी के विपरीत मुखर है, ऐंद्रियता का समर्थक है। 'प्रेम की मस्ती का गीत गाने वाले कवियों में कवित्व की दृष्टि से बच्चन का विशिष्ट स्थान है।'१ ० ३ यही बात उनके वेदना रंजित काव्य के सम्बन्ध में सटीक है। यह वेदना जीवन की अतल गहराईयों से नि:सृत है

अत: मन पर मार्मिक और करुण प्रभाव अंकित करती है। कवि कल्पना लोक में विचरण करके संवेदनों को एकत्रित नहीं करता, यथार्थ के लोक में परिभ्रमण कर कटु सत्यों से साक्षात्कार करता है, विविध भयावह आपदाओं में घिरकर, निराशा, विषाद के भंवर में फँसकर भी अन्तत: वह बाहर निकल जाता है। इस प्रकार बच्चन छायावाद के अनुवर्ती होकर भी अनुगामी नहीं बनें, इसलिये नहीं कि वे रोमांटिक नहीं थे बल्कि इस कारण कि उनकी सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि अपने छायावादी सहकर्मियों से प्रकृत्या भिन्न थी।'१०४ यह सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि ही परम्परा की जड़ता का अंश छोड़कर परिवर्तनशील सजीवता को अपनाकर उन्मुख हुई है। बच्चन ने किसी भी वस्तु के सौन्दर्य को ज्यों का त्यों उद्धृत किया है। कहीं भी छद्म आवरण डालने का प्रयास नहीं है, दुराग्रह नहीं है। तभी तो वे धूलि, सुरभि, मधु, रस, हिमकण के उस वातावरण में भी तकिया, ककड़ी के खेत, मिट्टी के घरौदें, श्वान, काक, सुराही, प्याला और कंकड़-पत्थर आदि का नि:संकोच प्रयोग कर सके।'१०५

परम्परा और प्रयोग के सन्दर्भ में बच्चन की लोकप्रियता का प्रमुख कारण भाषा शैली है। जीवन के जिस प्रसंग को उसने छुआ है उसका प्रस्तुतीकरण प्रत्यक्ष और सरल है। अनुभूति की अभिव्यक्ति के अनुकूल भाषा का प्रयोग कवि को परम्परा से पृथक करता है, प्रयोग के लिये बल देता है। उनकी भाषा-शैली, मुक्त छंद, प्रतीक, उपमान, शिल्प के नये आयामों का अनूठा उदाहरण है। स्वयं कवि के शब्दों में 'भाषा दो तरह से प्राप्त होती है परम्परा से और समाज से। परंपरा की भाषा अर्जित की जाती है। तत्कालीन समाज से वह सहज में ही प्राप्त होती है। किन्तु भाषा का नव निर्माण वैयक्तिकता से होता है। अपनी वैयक्तिकता "इनडिविज्वैलेटी" से मैंने भाषा को अन्वेषित किया है। कबीर ने लिखा है– कबिरा खड़ा बाजार में लिये लुकाठी हाथ– यह भाषा रोजमर्रा की भाषा है, लेकिन इसे कबीर ने अन्वेषित किया है। मैंने जो कुछ जिया है जो कुछ रिएक्ट किया है, उसको अभिव्यक्त किया है। इसके लिए भाषा को अन्वेषित करना जरूरी था। मैंने मध्यकालीनता 'मेडिविलिज्म' के विरुद्ध विद्रोह किया है। यह विद्रोह नई भाषा में व्यक्त हो सकता था।'१०६ छंद विधान के क्षेत्र में भी कविवर बच्चन ने विविध प्रयोग किये हैं। मुक्त छंद का प्रयोग विशेष सराहनीय है। उनके स्वरविधान और लयविधान में जीवन के अनुभूत सत्यों के अनुरूप ही सादगी निहित है। 'उनके स्वर और लय का सम्बन्ध भी, जैसा कि अनुभूति और अभिव्यक्ति का है, आधुनिक मध्यवर्ग के

व्यवहारगत जीवन से है, और उसी के अनुरूप उसमें समृद्धि और बारीक लोच का अभाव तथा एक प्रकार की रूखाई और व्यवहार जगत की शक्ति मिलती है।'१०७ बच्चन ने सांस्कृतिक अप्रस्तुत और नवीन अप्रस्तुतों का भी सुंदर प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक हमारी सांस्कृतिक और जातीय परम्परा का उत्कृष्ट नमूना है। गीतों में लोकगीत धुनों का प्रयोग अभिनव है, प्रशंसनीय है।

निश्चित रूप से बच्चन उत्तर-छायावाद के युगचेता प्रवर्तक कवि है। जिन्होंने पूर्ववर्ती युग की काव्य परम्परा को एक नई काव्य पीठिका प्रदत्त कर आगत के लिये मार्ग प्रशस्त किया है। परम्परा और प्रयोग का अद्भुत सम्मिश्रण उनके काव्य की मूल विशेषता है।

नरेन्द्र शर्मा

नरेन्द्र शर्मा भी उत्तरछायावाद के दूसरे प्रमुख कवि हैं। उनकी काव्यप्रक्रिया का उत्स बिन्दु छायावाद की प्रेरणा है। पंत जी की 'वीणा' तथा महादेवी के 'नीहार' ने मन में संवेदना कल्पित की।'१०८ कवि या कलाकार नया सृजन करके परम्परा में परिवर्तन करता है। परम्परा और वैयक्तिक अनुभूति के मिश्रण से उत्पन्न प्रयोग में एक प्रकार की निरंतरता होती है। नरेन्द्र शर्मा को आत्मपरक सघन भावनाओं ने नये प्रयोग अपनाने की क्षमता दी। नरेन्द्र शर्मा का काव्य विविध सरणियों में विभक्त है– एक ओर वह उत्तर-छायावाद की काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, दूसरी ओर प्रगतिवाद से भी प्रभावित है पर इन दोनों से अलग दर्शन की भूमि पर भी वह संतरण करता है। किन्तु यहाँ हमारा मुख्य अभीष्ट उत्तर-छायावाद के सन्दर्भ में काव्य-विवेचना से हैं। नरेन्द्र शर्मा की आत्मपरक भूमि में ही उन्हें ख्याति उपलब्ध हुई। उन्होंने छायावादी काव्य की परम्परा के तत्व को लेकर युवा मन के रंगीन स्वप्न और यौवन के सौन्दर्य, प्रेम को अपने व्यक्तित्व के अनुरूप रूपायित किया है। 'नरेन्द्र शर्मा पहले कवि हैं जिनकी रचना में हमारे साधारण जीवन के दैनिक कार्यकलाप भी महत्वपूर्ण स्थान पा जाते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में कच्चे सपनों की ताजगी और रंगीनी तो है, यौवन के सौन्दर्य और प्रणय की लगन का मर्मस्पर्शी चित्र तो है, पर उस प्रकार की छद्म अथवा आयातित मस्ती अथवा मादकता नहीं है जो उनके पूर्ववर्तियों में मिलती है।'१०९ उनके काव्य के विषय है– प्रेम, प्रेमी तथा प्रेमिका, वेदना, मिलन-विरह,

नियति, निराशा आदि। उनकी रचनाओं के आधार पर आत्मपरक भावभूमि पर प्रतिष्ठित काव्य के स्वरूप का विश्लेषण करना अपेक्षित होगा।

'प्रभात फेरी' नरेन्द्र शर्मा की प्रथम काव्यकृति है। उसने सामाजिक पाषाण शिलाओं से निर्मित रूढ़ियों पर कुठाराघात करते हुए यौवन सम्पृक्त भावनाओं की निश्छल अभिव्यक्ति की है–

"खोलो अवगुंठन खोलो
प्यासे नयन भ्रमर से आकुल
कमलनयनि दर्शन को व्याकुल
अधर अधीर मधुर चुम्बन को
श्रवन तृषित कोकिल कूजन को।"११०

कवि की चिर आकांक्षित सौन्दर्य पान की आकांक्षा ने लज्जा और संयम को अनावृत्त किया है। अनन्त तृष्णा छदमता के आवरण से बाहर प्रकट होती है–

"पियें अभी मधुराधर चुम्बन
गात-गात गूंथें आलिंगन
सुनें अभी अभिलाषी अन्तर
मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन।"१११

प्रेम ही उसका जीवन है। सर्वस्व है। प्राकृतिक आवश्यकता है। प्रेमी और प्रेयसी के आलम्बन पर आधृत प्रेम का स्वरूप सूक्ष्मता, सप्निलता से हट कर यथार्थ के धरातल पर टिका है। अपनी आन्तरिक प्यास का उदघाटन करने का साहस ही उसे पूर्ववर्ती धारा से आगे की ओर अभिमुख करता है–

"प्राण तुम्हारे प्रिय अधरों से
जो ये तृषित अधर मिल जाते
अपनी प्यास ज्वार के पल में
मौनालापों में कह पाते।"११२

प्रेमी की प्यास अतृप्त नहीं है, भोगेच्छुक नहीं है। प्रेमी की अपेक्षा प्रेयसी के उदगारों में अधिक मादकता और मांसलता है।

"आज न सोने दूंगी बालम
आज विश्व से छीन तुम्हें प्रिय
निज वक्षस्थल में भर दूंगी
मृदुल गोल गोरी बांहों में
कम्पित अंगों में कस लूंगी।"११३

'प्रवासी के गीत' में उत्तरछायावाद की समस्त काव्य प्रवृत्तियों का ही उद्भावन हुआ है। 'प्रवासी के गीत' एक क्षयग्रस्त युवक के चित्र है।'११४ जिसमें प्रवासी के विरह का स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ता है–

"सांझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी
क्या किसी की याद आई ओ विरह व्याकुल प्रवासी।"११५

विरहकालीन स्थिति में मिलन के मधुर और सुखद क्षण सिर्फ कवि जीवन की चिंतन की थाती है। चिर वियोग का स्मरण उसकी समस्त इयत्ता को नैराश्य से परिप्लुत कर देता है एवं वह अपना अस्तित्व मरघट का पीपल तरू जैसा समझता है–

"कभी न देखी आती उषा
देखी जब, जाती संध्याएं
देखी है सब दिन विनाश ही
और धधकती हुई चिताएं
चिर-विनाश का पहरी हूँ मैं
मैं मरघट का पीपल तरू हूँ।"११६

'हम देखते हैं कि उत्तरार्द्ध का निराशावाद बराबर अधिक भीषण होता जाता है। इसका प्रधान कारण यही था कि बाहर-भीतर के असंतोष के कारण कवि की प्रवृत्तियाँ उसके भीतर केन्द्रीभूत होती गई, आहत अहंकार' ने उग्र रूप धारण कर लिया और कवि निराशा से चीत्कार कर उठा।"११७ निराशा की भीषण सघन जालों में आबद्ध कवि को यही अति मृत्यु मुखापेक्षी भी करती है–

"अनचाहे प्राण मेरे, जाओ न निकल जाते क्यों।"११८

किन्तु कवि का प्रेम एक ऐसा आधार है जो उसे मृत्यु का वरण करने से चाहते हुए भी प्रेम के प्रति आसक्ति प्रदत्त करता है-

"बस गई नीड़ में निखिल सृष्टि
तुम ग्रीव झुका, देही समेट,
बैठी हो अब मेरे समेत
गुप - चुप बातों में सुधा वृष्टि
तुम मुझमें, मैं तुममें कपोत।"११९

'पलाशवन' मे ंकवि क्षयी रोमांस से आदर्श प्रेम की ओर उन्मुख होता है। पर भाग्यवाद, नियतिवाद, विषाद आदि भावनाओं से वह अब भी संगस्त है। उसके भीतर मिलन की आशा प्रदीप्त है, संघर्षरत व्यथित मन नियति की सत्ता और भाग्य की विडम्बना को देखकर हताश हो उठता है–

"भाग्य भरे प्याले सा कर में
फूट गया सो फूट गया।"१२०

पर नियति की शाश्वतता में भी उसे गति का संकेत मिलता है–

"जहां कर्म कारण का बंधन
देर सही अबेर नहीं है
शाश्वत नियत नियति की गति में
बंधु, अबेर सबेर नहीं है।"१२१

इस संकेत के बल पर प्रतिकूल के विरुद्ध वह आवाज उठाता है। वह व्यक्तिगत जीवन की घातक विडम्बनाओं, भाग्यवाद व नियतिवाद को ही शाश्वत सत्य नहीं मानता है। हृदय की कायरता और मन की छलना से बाहर निकलने का सद्प्रयास ही 'मिट्टी और फूल' है। अपने को मन की दुर्बलताओं का कवि स्वीकार करते हुए उनका अभिमत है कि 'मैं मन की दुर्बलताओं का कवि हूँ। बालू की भीत खड़ी करके हवाई किले बनाने वाले अर्द्धशिक्षित मध्यवर्ग का एक सामान्य युवक है भी कितना दुर्बल प्राणी। इन नये कवियों ने अपनी सरल भाषा, स्पष्ट शैली और यथार्थ ग्राहकता के द्वारा हिन्दी कविता

की परम्परा को आगे बढ़ाया है। अपनी सक्रिय शक्ति से प्रतिकूल वस्तुस्थिति को बदलने अर्थात उसे सामाजिक प्रगति के अधिक अनुकूल बनाने की लगन और जर्जर संस्कारों से अपनी मुक्ति को नव-निर्माण में सार्थक बनाने से ही कवि प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर करता है।'१२२ अर्थात वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत की सार्थकता की व्याख्या करके ही वह परम्परा को गति देता है। अब वह अकाट्य यथार्थ से समझौता करता है, प्रेम की असफलता में निर्भयता का संबल ग्रहण करता है–

"सुनो तुम्हारे श्रीपदतल - नत कोई भी मस्तक गौरवमय
तुम मेरे न हो सके, फिर भी आज तुम्हारे बल पर निर्भय
मैं जीवन पथ पर बढ़ता, शत बाधाएं स्वीकार करूं।"१२३

भाग्यवाद के प्रति अनास्था कवि को टूटन से उबारती है। दु:ख कभी दु:ख नहीं रहता, हर वस्तु का अंत ही शाश्वत सत्य है–

"बहुत कुछ भोगा, कभी तो अन्त भी होगा
यान प्राण सांस मृग वाहन बने, मेरे हृदय।"१२४

पर मानसिक दुर्बलता से कवि यहां भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सका है। जर्जर स्वप्न से विफल हृदय को जड़ता का ही आभास मिलता है–

"जल चुका है स्नेह मेरा, बुझ गया है दीप"१२५

जड़ता को चुनौती देकर इस शून्य से निकलने की चेष्टा फिर भी कहीं न कहीं आत्मविश्वास में साहस का संचार करती है–

'हां' कस-कस कर प्रहार, मैं हंस हंस बारम्बर सहूं।१२६

'हंसमाला' के कवि के भीतर की पीड़ा का दर्द याचक के रूप में फूटता है। प्रणयी मन कहीं भी अपने प्रेमी पात्र से अलग नहीं हो पाता–

"मुझे भूला देने वाले, ओ निष्ठुर तुझे भुलाऊँ कैसे
कह तेरी भोली बातों से अपना मन समझाऊं कैसे।"१२७

'कदलीवन' में भी निराशावादी, प्रणय सम्बन्धी और क्षणवादी गतिविधियों को ही स्थान मिला है-

"जाने किस अरण्य रोदन की
है अनुगूंज समाई मन में
किस अज्ञात व्यथा की छाया
रही सदा मेरे जीवन में।"१२८

'नियति' के महत्व को उनकी कवितायात्रा में आद्योपांत महत्ता दी गई है। नियति की अडिग सत्ता मनुष्य को संघर्षरत करती है, प्रतिकूल को अनुकूल की ओर परिवर्तित करने की क्षमता देती है ताकि मनुष्य वर्जनाओं से ऊपर उठ सके।

"करती है प्रहार
बार-बार वह कुठार से
कटता ही नहीं पेड़
नियति लकड़हारिन है
काल की कुठार कठिन
जीवन का वृक्ष।"१२९

नरेन्द्र शर्मा का काव्य यद्यपि समसामयिक चेतना से अनुस्यूत है। वह परम्परा के प्रति भी आस्थाशील है। जैसा कि स्वयं उनका कथन है- 'मुझे आज भौतिक चिन्तन एकांगी लगता है। हमें अपने जीवनदर्शन को अधि मानवी और व्यापक बनाना होगा, जिसमें भौतिक प्रसार तथा चेतना की गहराई दोनों ही तत्व विद्यमान हो जिसमें प्रगति पक्ष की ओर से नवीन के निर्माण हित तत्परता हो और परम्पराओं को समझने और अपनाने की शक्ति भी।'१३० कवि की भावुकता क्रमिक विकास में उत्तरोत्तर प्रौढ़ हुई है। वह विविध आयामों का संस्पर्श अवश्य करती है पर छुअन की पूर्णता उत्तर छायावाद में परिलक्षित होती है।

भावपक्ष की भांति शैलीपक्ष में भी सदैव परिवर्तन की भावना सर्वोपरि है। भाषा के अनुकूल शब्दों का चयन है पर भाषा भावों की अनुगामिनी है। ज्यों-ज्यों कवि की भावना उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हुई शिल्प की दृष्टि से भी वह समृद्ध होती गई। "मेरी

काव्यधारा ज्यों-ज्यों लोहित से नीलाम होती गई, त्यों-त्यों मेरी शब्दावली, शिल्पशैली और भावसामग्री में भी परिवर्तन आता गया। काव्यधारा के समतल तट की हरियाली छाया की जगह ऊपर के आकाश की सुनील छाया ने ले ली, जिसे मेरे कुछ सुहृदों ने अकाल वार्द्धक्य का ही द्योतक माना है।"१३१ पर यह आकाश की सुनील छाया, अकाल वार्द्धक्य का नहीं नवीनता का बोध है। कहीं-कहीं पंत और महादेवी के प्रभावस्वरूप छायावादी अभिव्यंजना शैली के प्रयोग को भी त्याग मिला है। कवि के द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों का प्रयोग दर्शनीय है। लक्ष्मीनारायण शर्मा ने इन प्रयोगों के उदाहरण देते हुए कहा है– 'इन प्रयोगों से उनके भाषा सम्बन्धी प्रयोगों के स्वरूप से संश्लिष्ट चित्र उपस्थित हो जाते हैं। उदाहरण के लिये– चौबारे पर नौबत बजाना, माटी के खाट-खटोले, बांसी का वन (बांसों का बन), मुरल की सोख, चितवन की चालक (भू-विलास), प्रतीक्षा की विकलता में पागल बन नाचना, चेतना की कीच, सहबाला यौवन, नवयुग की दुल्हन का हथेली में खण्डहर बनकर बैठना, अन्तर में धुएँ का सोना, चेतना की मदालस अंगड़ाई, सोरठ का सुरीला राग आदि।'१३२ छन्द के निर्वाह में परम्परागत और नूतन दोनों छन्दों का समंजन है। नई आवश्यकता के अनुरूप इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किया है। नरेन्द्र शर्मा ने भी मुक्तछन्द को अपनाया है तथा उसने अप्रस्तुत और ऐंद्रिय बिंबों का परम्परा और प्रयोग के रूप में समायोजन किया है।

नरेन्द्र शर्मा छायावाद के प्रभाव से अवश्य प्रेरित है पर उत्तर छायावाद के कवियों में ही उनका विशिष्ट स्थान है। यह विशिष्टता उन्हें इसलिये मिली क्योंकि उनकी काव्य चेतना सर्वथा वैयक्तिक एवं स्वतंत्र चिंतन की प्रसूति है एवं वैयक्तिक चेतना से सम्बद्ध परिवेश की, प्रभाव की अभिव्यक्ति है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

उत्तर-छायावाद के प्रवर्तन में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का योगदान भी विशेष प्रभावशाली रहा है। वैयक्तिक सत्य की प्रतीति ने अशरीरी, अमूर्त, प्रकृति के माध्यम से प्रकट होने वाले सौन्दर्यबोध से शरीरी, मूर्त, प्रत्यक्षसौन्दर्य की ओर प्रत्यावर्तित किया किन्तु इस सीमा तक उल्लंघन किया, जहाँ आकर काव्य-धारा अवरुद्ध हो रही थी। अंचल की मान्यता है कि 'परम्परा और प्रयोग का सामंजस्य, रूपायित स्वरूप ही प्रगति

है। परम्परा जीवित इकाई मात्र नहीं, वह हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व की आन्तरिक दीप्ति है, हमारी रचना प्रेरणा की सहज सुखद चारूता है।'१३३ यानी पुराना भावबोध और कथ्य नये प्रभावों के आयामों से गुजरकर गतिशील होता है। अंचल का प्रयास इसी की अनुकृति है। 'क्रान्ति उसने की है, छायावाद की मानवीय किन्तु अधिकांश अशरीरी सौन्दर्य कल्पना के स्थान पर अपनी मांसल कृतियों द्वारा, छायावाद की सूक्षम उज्जवल मर्मस्पर्शिता के बदले अपनी जीवंत रंगीनी द्वारा। इस क्रान्तिदूत का संदेश है तृष्णा, लालसा और प्यास। तृष्णा सौन्दर्य की, लालसा रूप की, प्यास प्रेम की।'१३४ उनके काव्य में आन्तरिक भावनानुभव और सौन्दर्य-बोध की ही प्रधानता है जो काव्य को सजीवता, सप्राणता प्रदान करती है। अंचल के काव्य में अन्तर्भूत परम्परा और प्रयोग के सामंजस्य को काव्ययात्रा के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है।

'मधूलिका' अंचल का प्रथम काव्य संग्रह है। कवि का अन्तस किसी अज्ञात रससौन्दर्य के आकर्षण से उत्पीड़ित है। यह सौन्दर्य चिर प्यास की ओर प्रेरित करता है-

"प्यार किया कब मैंने उसको
स्वयं नहीं यह जाना
जलता रहा अनल सा
अपने में न उसे पहचाना..."१३५

इस सौन्दर्य की चिर अतृप्त आकांक्षा की सशक्त अभिव्यक्ति नये कथ्य के प्रयोग को बल देती है। निर्बन्ध प्यास का उद्दाम आवेग तट की सीमा का उल्लंघन कर खुले मैदान की ओर दौड़ता है–

"कहां छिपाऊँ अर्धरात्रि सी
यह निर्बन्ध पिपासा
गन्ध अन्ध उन्मत दृगों की
हिल्लोलित अभिलाषा।"१३६

निर्बन्धता स्त्रोत वासना से व्युत्पन्न है। वासना एक ऐसी दाह है, जिसकी प्रखरता अनियंत्रित है, समाज की शीलता भी जिसके हेतु वर्जनीय है, उन्मुक्त अभिव्यक्ति ही जिसका अवलम्बन है।

"वासना - बस कुछ न पूछो, है विरस निष्फल जवानी
प्रखर अनियंत्रित महाविच्छेद की जलती निशानी।"१ ३ ७

प्रकृति का अमित बिखरा रूप उसमें कामासक्ति की भावना उद्दीप्त करता है। वह प्रकृति के माध्यम से अपनी चेष्टाओं को उजागर नहीं करता। प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर अपनी अदम्य काम आसक्ति को प्रकट करता है।

"आज सोहाग हरूं मैं किसका
लूटूं किसका यौवन
किस परदेशी को बंदी कर
सफल करूं यह वेदन।"१ ३ ८

परन्तु प्रेम एक ऐसा शाप है जिसमें स्वप्न, इच्छाएं, उत्साह का वेग निरन्तर कवि की अन्तर्ज्वाला को न केवल द्विगुणित करते हैं वरन वह इस 'मौनचिंता' में भीतर ही भीतर दहकता है–

"प्रेम एक अभिशाप - एक
चीत्कार भरा सपना है
मौन - मौन इस पूत चिता में
तिल तिलकर तपना है।"१ ३ ९

अज्ञात पिपासा का प्रज्जवलन, यौवन का द्रोह, नग्न वासना की उच्छश्रृंखलता, अबाधित उष्णता, स्वप्न की प्रबलता इत्यादि भावों का चित्रण यत्र-तत्र दिखलाई पड़ता है जो विद्रोह का परिचायक है।

'अपराजिता' के निर्माण में 'मधूलिका' के महाविच्छेद की पीड़ा अन्तर्भूत है। इसमें विरह की दग्ध घनीभूत पीड़ा का संगुम्फन है। विरह काव्य की परम्परा में यह काव्य एक श्रेणी आगे ही है। प्रत्येक कविता आत्मरोदन के द्रव से सिक्त है। भग्न टूटे हुए हृदय की उदभ्रान्त अनुभूति का अंकन अतीव मार्मिक है–

"अरे मौन है यही अतल के अगणित उल्कापात
नित काले काजल से उड़नेवाले झंझावात।"१ ४ ०

उनके जीवन पर आच्छादित कोहरा सघन है। अवसाद के विषम क्षणों में भी उसकी तृष्णा, लालसा और प्यास का उन्माद कहीं भी क्षीण नहीं पड़ता, विकल होकर तीव्र हो जाता है–

"प्यास क्यों बढ़ती विरह की वक्ष पर जब नील अम्बर
है तरंगों से भरी जलराशि - क्यों अवरुद्ध सागर..."१४१

अंचल को यह वैयक्तिक प्यास विद्रोह की ओर मोड़ती है। विरह की अशेष अग्नि ही उसका अवलम्बन है। 'अंचल की विरह साधना में बड़ी ही एकनिष्ठ सजग विह्वलताकारी तथा जीवनमय अनुभूतियों का संग्रह है। कवि के वास्तविक विद्रोह का यहीं से आरम्भ होता है। 'अरमानों और साधों की अशेष आहुतियां' डालकर उसने विरह वह्नि को जगा रखा है। नैराश्य की तमिस्रा में जीवन पर एक दृष्टि डालने के लिए उसे इस आग का ही सहारा है।'१४२

उनकी काव्य की यह मर्मान्तक दशा परवर्ती कृतियों में अधिक प्रौढ़ और गहन है। विकल उदभ्रान्त कवि का अकेलापन इस स्थिति के लिए दूसरों पर दोषारोपण नहीं करता। आत्मलीन कवि की प्रवृत्ति का बर्हिमुखी न होना ही मूल कारण है। उनकी संवेदना का यथार्थ वर्णन अत्यन्त प्रभावयुक्त है।

'किरण बेला' में प्रगतिवाद की गतिविधियों से संचालित कवि की अन्तरभावना 'मधूलिका' और 'अपराजिता' की स्थिति से एकदम अपने को उबारने में असमर्थ है। प्रणय पिपासु उसका हृदय अब भी प्रखर है, यौवन और पिपासा जागृत करने वाले प्रेम हेतु आकांक्षित रहता है–

"आह, बैहोशी न पूछो मैं अवश कब से अचेतन
है अमर मेरी पिपासा, है क्षणिक मेरा न यौवन।"१४३

अंचल की अदम्य तृष्णा और कामासक्ति भावना में निरन्तर अभिवृद्धि हुई है। 'करील' में परितप्त अंगों, दमित आदिम आवेगों की परिपूर्ति के प्रणय उदगार मिलते हैं–

"आज हाहाख मुखर अवदान सी ज्वाला लगा दो
प्रज्ज्वलित है प्यास,प्यारे में मरण-वैभव जगा दो।"१४४

इन प्रणय उदगारों में आसक्ति की प्रबलता है, भोग की लालसा है, प्रणय की बहुत स्पष्ट और मुखर वाणी इस कृति में चित्रित है–

"किन्नरियों सा रूप, लिये मदिरा की बूंदें लाल
टूट रहे कितने मेरे चुम्बन के तारे लाल।"१४५

'लाल-चूनर' अंचल की कविताओं का अगला काव्यसंग्रह है। रोमांस और सौन्दर्यासक्ति के गायक कवि की उन्मादक प्रवृत्तियों की बारम्बार आवृत्ति हुई है–

"मेरा वश चलता मैं
बन जाता कौमार्य तुम्हारा।"१४६

कवि के लिये प्रेम एक शाश्वत सत्य है। प्रेम की गहराई को नापने वाला व्यक्ति जब इस सत्य से साक्षात्कार करता है तो उसके लिए इतर वस्तुएं गौण हो जाती है। रूप लालसा तृष्णा प्रेम के ही अंग हैं। रोमांटिक कवियों में अंचल एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी रूप, रस, गन्ध समंज्जित भावना आद्योपांत एक नैरन्तर्य रूप में व्याप्त है, जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसका हृदय अधिक समय तक घुल-मिल नहीं पाता और वह पुनः अपनी नैसर्गिक प्यास की खोज में रत हो जाता है। 'वर्षान्त के बादल' में कई स्थल पर यह वर्णन मिलता है-

"स्वप्न में भी जो न होती शान्त वह मेरी जलन है।"१४७

'विराम-चिन्ह' में अंचल की प्रणय चेतना एक याचक, एक आस्था से अपनी भावनाओं को प्रकट करती है–

"मेरे स्नेह-हीन दीपक में ज्योति तुम्हारी ही तो जलती
इन रेतीली आंखों में जल बूंद तुम्हारी ही जलती।"१४८

कहीं-कहीं दृढ़ आत्मविश्वास को प्रश्रय मिला है–

"दूर कहीं भी हो तुम मेरी आत्मा का अधिवास हो।
रोम रोम कहता तुम मेरी बड़ी पुरानी प्यास हो।"१४९

किन्तु यौवन का आराधक अपनी काव्ययात्रा के उत्तरार्द्ध पर पहुंच कर जब यथार्थ से टकराता है तो उसकी अनुभूति का कथ्य भी उतना प्रांजल स्वस्थ होकर प्रकट होता है

हालांकि प्रणय भावना को लेकर ही वह उपस्थित है। 'निर्भीकता, ईमानदारी तथा साहस ने कवि को सिसक का नहीं, स्वप्न का नहीं अपितु सत्य का व्याख्याता बना दिया है। यद्यपि रूप के सरोवर में चंदन देही प्रिय के प्रति मन की मादकता कम नहीं हुई है पर तब भी कुण्ठाओं के वर्जनाओं के प्रदेश में कवि मात्र मानसिक रूग्णता या क्षयी रोमांस के गीत नहीं गाता। वह इन वर्जनाओं के, कुण्ठाओ के धुएं से मुक्त होने के लिए अनवरत रूप से छटपटाता है। प्रणय के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण इस संकलन को इतर संकलनों से अलग कर देता है।'१५०

उनके काव्य में भीतर की टूटन अंततोगत्वा समझौते से जुड़ जाती है।

"भूल जाने दे अस्वीकृत आस्था के शिल्प से
रच गई जो रसवती अन्तर्शिखा प्रतिगान में।"१५१

अस्तु अंचल का काव्य अपनी यथार्थ ऐन्द्रिक अनुभूतियों की निष्कपट अभिव्यक्ति हेतु बिल्कुल ईमानदार है। तथा उसके उद्दाम मांसल और श्रृंगार निरूपण की दृष्टि से एक पृथक दृष्टि का क्षेत्र है। वह छायावाद की उपलब्धियों से ऊर्जा ग्रहण कर, छायावाद से भिन्न उत्तरछायावाद से सम्पृक्त परम्परा के भीतर से अस्तित्व अर्जित करती है।

भाषा की दृष्टि से अंचल ने उत्तर-छायावाद धारा को नवीन अभिव्यंजनाशक्ति और भाव ग्रहण की क्षमता प्रदान की है। उसके काव्य में संस्कृत गर्भित भाषा का रूपायन है एवं भावों के अनुकूल भाषा भी उतनी उत्तेजक और आवेश से पूर्ण है। 'अतृप्ति, तृष्णा और उन्माद जन्य भावों के वहन के लिये जिस आवेशमयी, रस से सिक्त, कसमसाती भाषा शैली की आवश्यकता होती है लगभग वैसी ही भाषाशैली अंचल की सारी कविताओं में दीख पड़ती है।'१५२ यद्यपि अंचल ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु मुक्त छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त है। अनुभूति की निर्बन्धता परम्परागत और नवीन प्रतीक का उचित प्रयोग है। बिम्ब योजना में भी छायावादी शैली के साथ मौलिक बिम्बों का संयोजन है। वस्तुत: 'काव्यशिल्प को मैं कोई ऊपर से ओढ़ी हुई वस्तु या कौशल द्वारा ऊपर से पहनायी गयी विशेषता नहीं मानता। कथ्य में नये बिम्बों से संवहन की जैसी जितनी क्षमता होती है वैसा वह बनता और रूपायित होता है। भाव की अपनी निजी ताकत ही अपने दृश्यगत उपकरणों को पीछे छोड़कर अपने संवेग और गत्यात्मकता में

अपना रूप बन जाती है।'१५३ यह उक्ति अंचल की काव्य-शिल्प विषयक प्रयोग रूपी धारणा के समीचीन है।

निष्कर्षत: ऐन्द्रिक संवेदना के कवि अंचल का अनूठा योगदान उत्तरछायावाद के रूप में ही सराहनीय नहीं है वरन कवि की मौलिक प्रतिभा परम्परा के सार्थक उपयोग का सुन्दर आकर्षण है।

आरसी प्रसाद सिंह

आरसी प्रसाद सिंह का भी उत्तर-छायावाद के कवियों में अन्यतम स्थान है। इनकी काव्य-चेतना बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि की भांति स्थूल-असफल प्रेम एवं निराशा का ही आख्यान है। कवि आरसी में भी चुम्बन, आलिंगन के चित्रों की प्रधानता है–

"किसी किशोरी का चुम्बन
भर दो मेरे रन्ध्र-रन्ध्र में
मोती का फेनिल चुम्बन।"१५४

उनका हृदय भी मन में स्फुरित वासना के उद्दाम आवेग को बांधने में असमर्थ है। लज्जा और मर्यादा का आवरण भेद कर यह ज्वार उठता है–

"यह दुनिया है, हम दोनों हैं
और वासना ज्वार प्रिये
रोके कौन जगी अन्तर में
जब इच्छा दुर्वार प्रिये।"१५५

प्रणय की संयोग और वियोगजन्य अनुभूतियां भी समरूप है। इन अनुभूतियों से उपजी निराशा नियति का वर्णन भी यथावत है। प्रणयप्रसंगों में अतृप्ति, तृष्णा एवं भोगेच्छा की प्रबलता का चित्रण है–

"फिराओ आज न कान्त कपोल
फुल्ल पाटल सा चंचल हास
छुड़ाओ मत इन्दीवर वक्ष
कलित कुन्तल आकुल भुजपाश

मुग्धतनु, कम्पित, इन्द्रिय बन्ध
तुम्हारे यौवन मद की गन्ध।"१५६

रूपासक्ति एवं कामासक्ति के चित्रण में कवि आरसी अंचल से भी एक श्रेणी आगे निकल जाते हैं जहां आकर उनका काव्य नग्नता की कोटि में पहुंच जाता है–

"अधर से अधर, ओष्ठ से ओष्ठ, रोम से रोम खिल जाने दे
कटि से कटि सखि।"१५७

उसकी वेदना चिरन्तन है जिसका कोई अंत नहीं। वह सदानीरा है–
"वेदना मेरी चिरन्तन निर्झरी यह सदा नीरा है।"१५८

क्षणभंगुर जगत की नश्वरता में विच्छेद सम्माहित है। अत: वह हर क्षण को जीने का अभिलाषी है–

"दो दिनों का अचिर यौवन
विश्व की मधुवीथिका में
भ्रमर, कर ले प्रणय गुंजन
आज की मुस्कान, कल के
अश्रु की अनुगामिनी।"१५९

आरसी प्रसाद सिंह की कविताओं की मूल संवेदना रोमानी है और विषय भी प्रणय, अतृप्ति, भोग, विषाद, क्षणभंगुरता आदि से सम्बन्धित है। उत्तरछायावाद की काव्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से उनके काव्य का निश्चय ही महत्व है।

जानकी बल्लभ शास्त्री

उत्तरछायावाद धारा में पण्डित जानकी बल्लभ शास्त्री विशेष स्मरणीय है जिनकी रचनाशैली पर महाकवि निराला की स्पष्ट छाप अंकित है पर वह नयी दृष्टि, नयी व्यंजनाशक्ति को लेकर अवतरित हुए हैं। उनके रूप-अरूप और तीर तरंग कवितासंग्रह इस रूप में उल्लेखनीय है। कवि भी मूलत: व्यक्तिनिष्ठ है, विरह और निराशा से संत्रस्त है। अतएव उनका काव्य भी निजी सुख-दुख, मिलन-विरह, निराशा,

मृत्यु आदि तत्वों का उचित समाहार है। 'रूप-अरूप' में भी प्रेम संवेग की प्रधानता है। तीर तरंग में यह अधिक गहन और व्यापक है।

"छुएं नहीं मुस्कान कभी भी, होंठ रहे नित सूखे
आंखें रहें उदासी, प्यासी, प्राण रहें नित भूखे।"१६०

प्रणयकांक्षा के उदगार यहां सहज रूप में प्रस्तुत है। इसमें न तो भोग की आकांक्षा है, न निर्बाध तृष्णा। 'इसमें ज्वालामुखी का असंतोष है, जो भीतर ही भीतर तपता है पर बाहर धुआं नहीं आने देता।'१६१ कवि विषम परिस्थितियों से आबद्ध है, निराधार है उदासी निराशा से घिरा है फिर भी युवा हृदय अपने प्रेम के आवेग को छिपाने के स्थान पर व्यक्त कर बैठता है–

"जग विलग हुआ, मैं एक विभाग बना हूं
जिसमें जीवन जलता वह आग बना हूं
खो दिया हाय जब से अपने को तुझ में
उस नुपूर का हूं मन्द, बन्द गुंजन भर।"१६२

शास्त्री जी के काव्य में विरह की प्रधानता भी है। बच्चन की भांति वह स्वयं को अकेला और निरूपाय समझता है–

"हूं खड़ा सूनी डगर में
आत्म विस्मृत हो रहा हूं।"१६३

'तीर तरंग' में कहीं-कहीं प्रेयसी के आत्मनिवेदन का भाव भी है–

"जीत मांगते, हार मांगते
प्रीत मांगते, प्यार मांगते।"१६४

निराशा, विषाद और अवसाद मृत्यु का वरण स्वीकार करते हैं–

"फिर भी छोड़ मुझे न भागते
मेरे प्राण बड़े अभिमानी।"१६५

इनकी भाषा सहज सरल और माधुर्य भाव से सिक्त है। शास्त्रीजी परम्परा से प्रभावित हैं पर संगीतात्मक रूचि ने इन्हें नये रूझानों की ओर आकर्षित किया है। परम्परा के जीवंत स्वरूप को छायावादोत्तर काल में पुन: स्थापित करने वाले व्यक्तियों में जानकी बल्लभ शास्त्री का स्थान विशिष्ट है।

गोपाल सिंह नेपाली

गोपाल सिंह नेपाली का कृतित्व भी उत्तरछायावाद प्रवृत्ति का द्योतक है। समवर्ती कवियों की भांति इनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति अत्यन्त आत्मीय और प्रत्यक्ष है। नेपाली की कविता भी प्रेम और सौन्दर्य के क्षणों में रोमांटिक भाव का प्रयोग करती है। प्रेम में विरह और मिलन दोनों पक्षों का सजीव अंकन कवि की निश्छलता का परिणाम है। प्रकृति के रंगों को कहीं-कहीं जीवन में उतारने का प्रयास है–

"अयि मधुऋतु, मधुमास यही है
आ मेरे मधुवन में
तन में, मन में, इस जीवन में
आ मेरे यौवन में।"१६६

नेपाली के प्रणय उदगारों में भी निर्भीकता है। उसमें न संकोच है, न दुराव, एक खुलापन है। प्रणय के आवेग में मन की पीड़ा विनयी रूप में प्रकट होती है-

"तन का दिया, प्राण की बाती
दीपक जलता रहा रात भर।"१६७

हालांकि उनके काव्य में यौवन की आकांक्षा और वेग आद्यन्त परिलक्षित होता है पर वह कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता न ही वासनात्मक स्वरूप को उद्घाटित करना उनका अभिप्रेत है–

"मेरे प्राण मिलन के भूखे
ये आंखें दर्शन की प्यासी।"१६८

वह प्रेम को जीवन का स्वाभाविक अंग मानते हैं क्योंकि कवि की सार्थकता इसीका कारण है। वियोग जन्य अनुभूति में इस स्वस्थ भावना का उदघाटन है–

"हम तुम्हारे प्यार में फूले-फले
हम तुम्हारे नाम पर मरते चले
कौन सी फिर ऐसी रह गई कमी
जो अंधेरा है बना दीपक चले
प्रेम में या प्रेम के व्यापार में।"१६९

वस्तुत: नेपाली जी का स्वर छायावादोत्तर काल में बहुत अल्पकालिक रहा परन्तु उनके देय को नकारा नहीं जा सकता। उनका काव्य अतीव सरल और सौन्दर्य से मंडित है एवं काल की सतत प्रवाहमान धारा में प्रेम सौन्दर्य की चेतना को ग्रहण कर उन्होंने अपनी परम्परा को एक नयी दिशा दी है। उनका यह सहयोग प्रशंसनीय है।

शम्भुनाथ सिंह

शम्भुनाथ सिंह की गणना उत्तर छायावाद के अन्तर्गत की जाती है। उनकी काव्य प्रतिभा कई धाराओं में बंटी हुई है यथा उत्तर छायावादी आत्मभिव्यंजना सिक्त प्रणाली, समष्टि परक प्रगतिवादी रचना एवं नयी कविता से नवगीत। परन्तु कवि की आरम्भिक कृतियों में रूपासक्ति, सौन्दर्य मज्जित राग उद्वेलन का प्राचुर्य है जिससे उसे उत्तरछायावाद का प्रतिनिधि ही माना जा सकता है। शम्भुनाथ सिंह ने परम्परा का ध्यान रखते हुए निजी सौन्दर्य को महत्ता दी है जिससे परम्परा और प्रयोग का सुन्दर समन्वय उनके काव्य में दर्शनीय है।

'रूपरश्मि' उसकी प्रथम कृति है जहां आशा-निराशा, प्रणयजन्य उदगार वेदना नियति आदि की चर्चा की गई है। युवाहृदय के प्रेम संवेग में रूप के प्रति आसक्ति है, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है पर कहीं भी उच्छृंखलता नहीं है, उन्मुक्तता नहीं है, विरह जन्य दर्द की तड़प है जो सबसे अलग है। 'रूपरश्मि' कवि के किशोर चित्त की अभिव्यक्ति है जिसमें रूपासक्ति ही अनेक स्वरों में प्रस्फुटित होती है।'१७०

"तीव्रतम बनकर स्वयं

ही बुझ गई है प्यास
स्निग्ध यौवन का अरे
यह करुणतम इतिहास
हाय, पग-पग पर बिछी है
प्यार-मग में हार
यौवन का करूण श्रृंगार।"१७१

'रूपरश्मि' की रूपासक्ति छायालोक में पहुंचकर ऐन्द्रिय भूख और मांसल चित्रण में रम जाती है। उसकी अवधारणा है–

"समय की शिला पर मधुर चित्र कितने
किसी ने बनाये, किसी ने मिटाये।"१७२

इन चित्रों में प्रेमानुभूति विविध आयामों के भीतर से गुजरती हुई सघन और प्रगाढ़ स्थिति में पहुंच जाती है। 'रूप-रश्मि' में गीतकार ने रूप-सौन्दर्य के आलोक के कल्पना की चूड़ाओं पर नाचते और उड़ते छवि चित्रों को दूरी से ही विह्वल होकर पुकारा था, पर 'छायालोक' में कवि ने रूप और प्रेम को जीवन की धारा में प्रतिबिम्बित देखा है।'१७३ जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण उसकी किसी के 'रूप के बादल' शीर्षक कविता है-

"किसी के रूप के बादल
मुझे सोने नहीं देते
मुझे रोने नहीं देते
कभी क्षण एक भी अपना
मुझे होने नहीं देते।"१७४

कवि के हृदय की विरह जन्य अनुभूतियां यहां भी बड़ी निर्भीकता और साहस के द्वारा प्रस्तुत है–

"तुम्हारे प्यार के ये क्षण
मधुर जिनसे बना बन्धन
जलन भी बन गयी चन्दन

बिना मांगे शरण पाकर
मरण भी बन गया जीवन।"१७५

प्रेम के स्वीकार में एकनिष्ठता व आत्मस्वीकार का बल वियोग के क्षणों में भी मन को दुर्बल नहीं होने देता, न प्रिय के अभाव को चिर दु:ख का कारण मान लेता है–

"शिथिल होंगे न ये बन्धन
तुम्हें मन में पुकारूंगा
तुम्हें वन में पुकारूंगा
गान बन कर मैं गगन का
तुम्हें घन में पुकारूंगा।"१७६

उनके काव्य में पलायन नहीं है, अभाव, निराशा और वेदना है जिससे शक्ति अर्जित कर वह उनसे ऊपर उठने को प्रयत्नवान है। इनकी भाषा मधुर और सरल है। छायावादी प्रभाव कहीं भी कवि के निजी सौन्दर्य को मौलिकता से परे नहीं करता। वरन व्यक्तिगत अनुभूतियों से उपजी स्थितियों को प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में वाणी देता है। इस अर्थ में उत्तर छायवादी व्यक्तिपरक संवेदना के कवि रूप में उसकी गणना होती है।

——————

१. सम्पादक - प्रेमनारायण टंडन - माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व - पृ० १०८

२. माखनलाल चतुर्वेदी "हिमकिरीटिनी" कैदी और कोकिला - पृ० २०

३. वही - सिपाही - पृ० ५०

४. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटिनी "तिलक" - पृ० ८३

५. सम्पादक - श्रीकान्त जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी - यात्रा पुरुष - पृ० ३९०

६. माखनलाल चतुर्वेदी - युगचरण 'पुष्प की अभिलाषा' - पृ० ३१

७. डॉ. गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य - पृ० ३१२

८. डॉ. कृष्णदेव शर्मा- माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व -पृ० ११०-१११

९. श्री माखनलाल चतुर्वेदी - 'मरण-ज्वार' सम्पादकीय - पृ० ३

१०. दिनकर - मिट्टी की ओर - पृ० १७९

११. डॉ. देवराज शर्मा पथिक - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन - पृ० २२४-२५

१२. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटिनी - पृ० ६८

१३. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटिनी - पृ० १२९

१४. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी - पृ० १९

१५. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमरंगिनी - पृ० २२

१६. डॉ. कृष्णदेव शर्मा - माखनलाल चतुर्वेदी - व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० १६१

१७. डॉ० देवीशरण रस्तोगी - आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन - पृ० ४

१८. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्रलंयकर 'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर' - पृ० ४१४

१९. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्रलंयकर 'पराजय - गीत' - पृ० ४२५

२०. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - प्रलयंकर 'पराजय-गीत' - पृ० ४२३

२१. डॉ० नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां - पृ० २४

२२. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - प्रलयंकर 'विप्लव-गायन' - पृ० ४२९

२३. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - प्रलयंकर 'विप्लव-गायन' - पृ० ४३०

२४. ग्राम्या - २४ जुलाई १९६०

२५. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - प्रलयंकर 'विद्रोही' - पृ० ४८८

२६. देवराज शर्मा 'पथिक' - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन - पृ० २४३

२७. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - रश्मिरेखा - पृ० ११

२८. बालकृष्ण शर्मा नवीन - 'रश्मिरेखा' पृ० ४८

२९. बालकृष्ण शर्मा नवीन - 'अपलक' पृ० ७६

३०. बालकृष्ण शर्मा नवीन - 'हम विषपायी जन्म के' पृ० २४८

३१. डॉ० देवीशरण रस्तोगी - आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन - पृ० ६

३२. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - हम विषपायी जन्म के - पृ० ३८५

३३. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' रश्मि-रेखा - पृ० १७

३४. डॉ. देवीशरण रस्तोगी - आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन - पृ० ५

३५. सोहनलाल द्विवेदी - भैरवी पृ० १

३६. डॉ. भोलानाथ - हिन्दी साहित्य '१९२६-१९४६' ई. पृ० ५ ३७४-३७५

३७. मैथिलीशरण गुप्त - नहुष 'निवेदन' पृ० २

३८. मैथिलीशरण गुप्त - विश्व वेदना - सूचना कवि लिखित - पृ० १०

३९. विश्व वेदना - पृ० - ९

४०. काबा और कर्बला - पृ० १४

४१. सम्पादक - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - श्री मैथिलीशरण गुप्त - पृ० ९४ में उद्धृत।

४२. डॉ० उमाकान्त – मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता - पृ० ४८६

४३. सियारामशरण गुप्त - आत्मोत्सर्ग - पृ० ६९

४४. देवराज शर्मा 'पथिक' - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन - पृ० ३००

४५. सियारामशरण गुप्त 'दैनिकी' प्रारम्भिक

४६. सियारामशरण गुप्त - जयहिन्द - पृ० ५

४७. देवराज शर्मा पथिक 'हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन' - पृ॰ - २९९

४८. राकेश एम. एम. - बापू का काव्य सौन्दर्य - पृ॰ ७

४९. सियारामशरण गुप्त - विषाद - पृ॰ २४

५०. सियारामशरण गुप्त - विषाद - पृ॰ २६

५१. डॉ. नगेन्द्र - आस्था के चरण - पृ॰ ३८१

५२. दिनकर - चक्रवाल भूमिका - पृ॰ ३३

५३. डॉ॰ प्रेमशंकर - हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ॰ ३५८

५४. दिनकर - रेणुका - पृ॰ ३३

५५. सम्पादक - डॉ. गोपाल राय - दिनकर की काव्य-यात्रा का प्रारूप - पृ॰ ८६

५६. दिनकर - 'हुंकार' - पृ॰ १५

५७. वही - पृ॰ १

५८. सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - पृ॰ १३३

५९. दिनकर - बापू - पृ॰ १

६०. दिनकर - नीम के पत्ते - पृ॰ १७

६१. शेखरचन्द्र पन्नालाल जैन - राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला - पृ॰ ४५

६२. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰ ५६

६३. दिनकर - कुरूक्षेत्र - पृ॰ २२ तथा २४

६४. दिनकर - रश्मिरथी - पृ॰ भूमिका - ग

६५. दिनकर - रश्मिरथी - पृ॰ ५७

६६. दिनकर - 'रसवन्ती' भूमिका - पृ० १

६७. वही - पृ० १०

६८. वही - पृ० १३

६९. शेखरचन्द्र पन्नालाल जैन - राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला - पृ० ६८

७०. दिनकर 'रसवन्ती' - पृ० ३

७१. दिनकर 'रसवन्ती' - पृ० २१

७२. दिनकर "रसवन्ती" भूमिका से उद्धृत

७३. सम्पादिका - सावित्री सिन्हा - पृ० २३५

७४. दिनकर - धर्म, नैतिकता और विज्ञान - पृ० ११

७५. डॉ० जयसिंह नीरज - दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता - पृ० २६१

७६. डॉ. वेदभानु आर्य - चुने हुए कवि और लेखक - पृ० १५७

७७ . डॉ. वेदभानु आर्य - चुने हुए कवि और लेखक - पृ० १५९

७८. केकयी - पृ० १५२

७९. नवल किशोर भाभड़ा - बच्चन जीवन और काव्य - पृ० ८

८०. बच्चन रचनावली - सम्पादक अजित कुमार - मधुकलश भूमिका - पृ० ११९

८१. वही - पृ० १४०

८२. वही - पृ० १४३

८३. बच्चन रचनावली - सम्पादक अजित कुमार 'निशा निमंत्रण' पृ० १६८

८४. बच्चन रचनावली - सम्पादक अजित कुमार - 'निशा निमंत्रण' पृ० १६९

८५. वही - सम्पादक अजित कुमार - 'एकांत संगीत' - पृ० २३४

८६. वही - सम्पादक अजित कुमार - 'एकांत संगीत' - पृ० २३१

८७. बच्चन रचनावली - सम्पादक - अजित कुमार, आकुल अंतर - पृ० २९९

८८. वही - सम्पादक - अजित कुमार - सतरंगिनी पृ० ३५८

८९. बच्चन रचनावली भाग २ - सम्पादक - अजित कुमार, मिलन यामिनी - पृ० ३३

९०. वही - पृ० ३५

९१. नवल किशोर भाभड़ा - बच्चन जीवन और काव्य - पृ० १२२-२३

९२. बच्चन रचनावली भाग २, सम्पदक, अजित कुमार, मिलन यामिनी - पृ० ५९

९३. वही प्रणय पत्रिका - पृ० ९८

९४. बच्चन रचनावली - सम्पादक - अजित कुमार सतरंगिनी - अपने पाठकों से - पृ०२१९

९५. वही - भाग-२, सम्पादक - अजित कुमार - मिलन यामिनी - पृ० ३२

९६. बच्चन रचनावली भाग-२, सम्पादक, अजित कुमार, मिलन यामिनी - पृ० ११

९७. वही - पृ० ११६

९८. बच्चन - प्रणय पत्रिका - पृ० ३८

९९. बच्चन - प्रणय पत्रिका - पृ० ६८

१००. वही - पृ० १४१

१०१. बच्चन रचनावली भाग - २, सम्पादक - अजित कुमार - बुद्ध और नाचघर - पृ० ३५३

१०२. बच्चन - त्रिभंगिमा - पृ० ८

१०३. सिद्धेश्वर प्रसाद - छायावादोत्तर काव्य - पृ० ६१

१०४. बालकृष्ण राव - विवेचना संकलन - १, 'बच्चन की कविता' पृ० २१७

१०५. डॉ० नगेन्द्र - आस्था के चरण 'बच्चन की कविता' पृ० ४१८

१०६. बच्चन - निकट से 'कवि के साथ घर की एक सुबह, 'डॉ॰ बच्चन सिंह' बच्चन का उत्तर - पृ॰ १७४

१०७. डॉ॰ नगेन्द्र - हिन्दी 'आधुनिक कविता' की मुख्य प्रवृत्तियां - पृ॰ ९५

१०८. नरेन्द्र शर्मा - आधुनिक कवि भाग - ९, पृ॰ १५

१०९. सम्पादक - डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास 'दशम भाग' उत्कर्ष काल 'काव्य' पृ॰ ३७६

११०. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी 'अवगुंठन' - पृ॰ ३८

१११. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी 'आज लजाओ मत सुकुमारी' - पृ॰ ४०

११२. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी 'सपना' - पृ॰ ७९

११३. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी 'आज न सोने दूंगी बालम' - पृ॰ १०९

११४. नरेन्द्र शर्मा - 'प्रवासी के गीत' वक्तव्य - पृ॰ ५-६

११५. नरेन्द्र शर्मा - 'प्रवासी के गीत' वक्तव्य - पृ॰ १

११६. नरेन्द्र शर्मा - 'प्रवासी के गीत' वक्तव्य - पृ॰ ५८

११७. नरेन्द्र शर्मा - 'प्रवासी के गीत' वक्तव्य - पृ॰ २-३

११८. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - वक्तव्य - पृ॰ ६५

११९. नरेन्द्र शर्मा - वही - पृ॰ ८२

१२०. नरेन्द्र शर्मा - पलाशवन - जीवन साथी - पृ॰ ४४

१२१. नरेन्द्र शर्मा - पलाशवन, भेद - पृ॰ ६१

१२२. नरेन्द्र शर्मा - 'मिट्टी और फूल' निवेदन से उद्धृत -

१२३. नरेन्द्र शर्मा - 'मिट्टी और फूल' "किस विधि" - पृ॰ २६

१२४. वही - पृ॰ १८

१२५. नरेन्द्र शर्मा - मिट्टी और फूल 'निर्वासित' - पृ॰ ३७

१२६. नरेन्द्र शर्मा - मिट्टी और फूल 'चुनौती' - पृ॰ ६८

१२७. नरेन्द्र शर्मा - हंसमाला, 'भूला देने वाले' - पृ॰ ५९

१२८. नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन - 'अज्ञात व्यथा' पृ॰ ६९

१२९. नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन 'नियति' - पृ॰ ८२

१३०. नरेन्द्र शर्मा - हंसमाला - भूमिका - पृ॰ ८

१३१. नरेन्द्र शर्मा - आधुनिक कवि - पृ॰ १८

१३२. लक्ष्मीनारायण शर्मा - नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य - पृ॰ ११५

१३३. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - 'अनुपूर्णा' - पृ॰ ४

१३४. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - 'अपराजिता' - पृ॰ ११

१३५. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - 'मधूलिका - आत्म प्रलय'

१३६. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - 'मधूलिका' - मधु का पापी

१३७. वही - अंचल - 'मधूलिका' - अन्तर्गीत

१३८. वही - अंचल - 'मधूलिका' - आज तो

१३९. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - 'मधूलिका' - आत्म प्रलय

१४०. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - 'अपराजिता' उच्छ्वास - पृ॰ ९२

१४१. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - 'अपराजिता' - अन्तर्गान - पृ॰ २२

१४२. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - 'अपराजिता' - भूमिका - पृ॰ १३

१४३. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - 'किरण वेला' - अन्तर्गीत - पृ॰ ७६

१४४. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - करील - 'मनुहार' - पृ॰ ६५

१४५. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - करील - 'मिलन' - पृ॰ ४६

१४६. रामेश्वर शुक्ल - 'अंचल' - लाल चूनर 'मनुहार' - पृ॰ ७

१४७. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' 'वर्षान्त के बादल' - मेरी जलन - पृ॰ १८

१४८. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' 'विराम-चिन्ह' - ज्योति तुम्हारी ही तो जलती - पृ॰ ९

१४९. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - विराम-चिन्ह - ओ मेरी जन्मान्तर साथिन - पृ॰ ३४

१५०. डॉ॰ विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगति - पृ॰ १२२ भूल जाने दे

१५१. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी - पृ॰ ९०

१५२. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰ १४२

१५३. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - अनुपूर्वा - पृ॰ १०

१५४. सम्पादक - श्री युगलकिशोर झा - आरसी प्रसाद सिंह - पृ॰ ९६

१५५. आरसी प्रसाद सिंह - कलापी - पृ॰ ४८

१५६. वही - पृ॰ ७२

१५७. आरसी प्रसाद सिंह - संचयिता - पृ॰ २५७-२५८

१५८. सम्पादक - श्री युगल किशोर झा - आरसी प्रसाद सिंह - पृ॰ ७६१

१५९. आरसी प्रसाद सिंह - कलापी - पृ॰ १७६

१६०. जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर तरंग - पृ॰ ३

१६१. नई धारा - अप्रैल १९५८, वर्ष ९, अंक-१, श्री जानकी बल्लभ शास्त्री की कविता - श्री कृष्णनन्दन दीक्षित 'पीयूष'

१६२. जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर तरंग - पृ॰ १२

१६३. जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर तरंग - पृ॰ ६

१६४. वही - पृ० ३२

१६५. वही - पृ० ५०

१६६. गोपाल सिंह नेपाली - उमंग - मधुऋतु - पृ० ८०

१६७. गोपाल सिंह नेपाली - नवीन - पृ० ३

१६८. वही - पृ० ४

१६९. गोपाल सिंह नेपाली - नवीन - पृ० ४३

१७०. डॉ० शम्भुनाथ सिंह - व्यष्टि और स्रष्टा, सम्पादक : करूणापति त्रिपाठी तथा अन्य - पृ० ४०

१७१. डॉ० शम्भुनाथ सिंह - रूपरश्मि - पृ० १६

१७२. डॉ० शम्भुनाथ सिंह - व्यष्टि और स्रष्टा, सम्पादक : करूणापति त्रिपाठी तथा अन्य - पृ० ५३

१७३. डॉ० शम्भुनाथ सिंह - छायालोक - पृ० १

१७४. वही - पृ० ३६

१७५. वही - पृ० ६३

१७६. डॉ. शम्भुनाथ सिंह - छायालोक - पृ० ७१

——————

अध्याय - ४

“ग”

प्रयोगवादी काव्यधारा

छायावादोत्तर काल में व्युत्पन्न काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने से यह विदित होता है कि प्रस्तुत युग दो तरह की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रथम राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता जिसमें भारतेन्दु युग से छायावादोत्तर युग पर्यन्त परम्परा और प्रयोग का सुन्दर विनियोग है। द्वितीय प्रवृत्ति छायावाद की है जो पूर्ण उत्कर्ष को पहुंचकर परवर्ती उत्तर छायावाद प्रवृत्ति के भीतर समाहित है। ध्यान देने की बात यह है कि इस काल के कवियों ने आन्तरिक दीप्ति की प्रगाढ़ अनुभूतियों में छायावाद की सप्राण परम्परा का केवल समाहार किया है एवं जीवंत तत्वों को आत्मसात करते हुए नवीन प्रयोग से युग-जीवन को अनुप्रेरित किया है। प्रयोग जड़ता को नि:शेष कर परम्परा को अधिक पुष्ट व क्षमतायुक्त करता है। चूंकि परम्परा एक उपक्रम है जिसके माध्यम से नये को विकास मिलता है। उत्तर छायावाद के पश्चात सर्जित प्रगतिवाद भी परम्परा के व्यापक महत्व को अंगीकार करता है भले ही यह प्रवृत्ति भिन्न दृष्टि पर आधृत है। पर इसकी चेतना से प्रभावित नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन का काव्य प्रत्यक्ष प्रमाण है इनके काव्य में यत्र-तत्र परम्परा के प्रगति युक्त स्वरूप का निर्वाह हुआ है साथ ही नयी उद्भावनाओं का वरण भी स्वतन्त्र चिंतन के धरातल पर है। इसकी विशद चर्चा आगे हो चुकी है। यहां यह कहना इसलिये अनिवार्य था कि परम्परा का उपयोग हर साहित्यकार का अपना अभीष्ट है, परम्परा बोझ नहीं, न विवशता है वरन नये को अधिक ठोस व मजबूत बनाने का एक ऐसा साधन है जिसकी सार्थकता प्रयोग में सन्निहित है। परम्परा का स्वीकार साहित्यकार की विवशता है किन्तु प्रयोगवादी काव्यधारा के अध्ययन के क्रम में हम पाते हैं कि साहित्यकार अपने ही कथ्यों और अनुभूतियों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिये प्रयोग को ग्रहण करता है मानो प्रयोग उनकी अनिवार्यता है। परंपरित संस्थापित मान्यता उसकी अन्तर्निहित काव्यगत नव्य दृष्टि के रूपायन में व्यवधान डालती है। अत: वह सत्य के नये आयामों का उदघाटन प्रयोग के द्वारा करता है। प्रयोग तात्कालिक मांग है, परम्परा का संवरण वहां नहीं होता।

हर एक स्थापित प्रतिमान को वह प्रयोग के निकष पर चढ़ाता है परन्तु बौद्धिक और तार्किक मस्तिष्क को सामयिकता की दृष्टि से वहां अपूर्णता और निरर्थकता दिखती है फलस्वरूप यह निरर्थकता परम्परा की सत्ता को अस्वीकार कर, राही राहों के अन्वेषी, मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं है आदि वक्तव्य देकर प्रयोगवादी काव्यधारा का अन्वेषण करती है। रामधारी सिंह दिनकर ने इस प्रयोगवादी काव्यधारा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि – 'छायावाद में सबसे बड़ी कमी सुस्पष्टता की थी जो सबको अनुभूत होती थी और सुस्पष्टता की दिशा में हिन्दी कविता ने छायावादोत्तर काल में प्रगति की किन्तु जब प्रगतिवाद के नाम पर साहित्य में कनस्तर बजाये जाने लगे और साहित्यिक मूल्य का ह्रास होने लगा तब यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी में कला और शैली के हिलते हुए महत्व को फिर से सुस्थिर करने के लिये कोई बड़ा प्रयास किया जाय। वही प्रयास धीरे-धीरे बढ़कर प्रयोगवाद बन गया।'१

मतलब साफ है कि छायावादोत्तर काल में देश की तीव्रता से मोड़ लेती यातनापूर्ण स्थितियां, विज्ञान सम्मत तार्किक चिंतन, दूसरी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव, द्वन्द्व, अस्थिरता, अन्त: वाह्य संघर्ष इन सबसे अलग खुद साहित्यकार का उसके भीतर से गुजरकर यथार्थ से आत्मसाक्षात्कार आदि विषयों को भावातिरेकता में संगुम्फित करना जटिल व कठिन था। अतएव पूर्ववर्ती परम्परा के ग्राह्य तत्वों का भी निषेध कर नये कथ्य, नये शिल्प को लेकर तारसप्तक को सामने रखते हुए एक नई प्रवृत्ति का संधान हुआ जिसे प्रयोगवादी काव्यधारा के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रयोगवादी काव्यधारा के नाम से नये-नये प्रयोग के प्रति अभिरूचि बढ़ती है। तारसप्तक की भूमिका में 'राही राहों के अन्वेषी', 'मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं आदि वक्तव्यों के द्वारा अज्ञेय प्रयोक्ता कवियों की मानसिकता को स्पष्ट करते हैं। जीवन व साहित्य को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में आंकना ही इन प्रयोगकर्त्ताओं की मौलिकता है।'

'संगृहीत कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं- जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।'२ अर्थात अज्ञेयजी मात्र प्रयोग को महत्व नहीं देते। हर नई दृष्टि, हर अनछुये सत्य का अन्वेषण ही उनकी मूल प्रवृत्ति है। अर्थात् नित्य प्रति अन्वेषण के द्वारा उपलब्ध प्रयोग ही सही प्रयोग है। परन्तु प्रयोग की सार्थकता भी वहां होती हैं जहां वह किसी ठोस और स्थायी चिंतन की गवेषणा करता है। यह तभी संभव है जब वह अपने अन्वेषित सत्य

को सम्पूर्ण कालखंड के अन्दर पूरी ईमानदारी के साथ जिये और उससे उद्‌भूत सत्य को काव्य की गति क्रम में संयुक्त करें।

दूसरे सप्तक में अपनी पुष्टि को अधिक सतर्कता से प्रामाणित सिद्ध करते हुए उनकी अवधारणा है–

'हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय के लिये कोई महत्व नहीं है- महत्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हमें प्राप्त हों क्योंकि पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं।'३ यानी अज्ञेय प्रयोग की अपेक्षा सत्य को महत्ता देते हैं जो उन्हें प्रयोगक्रम में मिलता है। परम्परा यहां मात्र एक ऐसा सत्य है जो सारहीन है।

इस तारसप्तक प्रयोगवादी काव्यधारा के क्रम में एक और प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है जिसे नकेनवाद के नाम से पहचाना जाता है। नकेनवाद नामकरण प्रतिष्ठापक कवियों के नाम के प्रथमाक्षर पर अवलम्बित है। नकेनवादी प्रयोग को साधन न मानकर साध्य के रूप में स्वीकार करते हैं और इसके आधार पर वे स्वयं को प्रयोगवादी कवियों से पृथक कर लेते हैं तथा एक भिन्न दर्शन की प्रतिष्ठापना करते हैं। इन कवियों की मूल प्रवृत्ति भी प्रयोग से प्रेरित है तथा इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर इन्होंने 'प्रयोग दशसूत्री' सिद्धान्तों की स्थापना की है। नकेनवाद की प्रयोगवादी काव्यधारा के संबंध में कतिपय आलोचकों का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। डॉ॰ नामवर सिंह नकेनवाद को प्रयोगवाद की एक शाखा मानते हुए कहते हैं– 'प्रयोगवाद का दूसरा पहलू बिहार के नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश के नकेनवादी प्रपद्य पक्षों द्वारा सामने आया जो अपनी समझ से अज्ञेय के प्रयोग का विरोध करते हुए वस्तुत: उसी की एक शाखा है।'४

एक अन्य विचारक प्रयोगवाद की उपधारा के रूप में नकेनवाद का विवेचन करते हुए मानते हैं कि 'प्रयोगवाद की उपधारा के रूप में नकेनवाद का नाम लिया जाता है। नकेनवाद बिहार के तीन कवियों नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश के संयुक्त प्रयासों का दर्शनीय दर्शन है। ये शब्द वास्तव में अज्ञेय द्वारा प्रतिपादित प्रयोगवाद को उन्हीं के शब्दों में कराते हैं और उन्हें प्रयोगशील कवि मानते हैं।'५ स्पष्ट है नकेनवाद प्रयोगवादी काव्यधारा से प्रभावित अगला चरण है। इन कवियों का सर्वाधिक दुर्बल पक्ष यह है कि ये कवि एक नये नाम से चौंकाते अवश्य है, किसी

गम्भीर चिंतन का उनमें पूर्णतया अभाव है, न ही काव्यक्षेत्र में उनकी सर्जित कृति है एक सम्मिलित काव्य-संग्रह- 'नकेन के प्रपद्य' एकमात्र कृति है जो नकेनवादियों की प्रयोगमूलक अवधारणा को प्रयोगवाद से भिन्न करती है।

'सर्वप्रथम नकेनवाद या प्रपद्यवाद के अन्तर्गत ही प्रयोग को साध्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।'६ प्रयोग के साध्य के रूप में स्थापित करने वाले इन कवियों की रचनात्मक क्षमता प्रयोग के वृहत्त आयाम से न गुजरकर एक अंश का प्रतिनिधित्व करती है।

निष्कर्षत: काव्य की वृहत्तर प्रसारित यात्रा में जब कोई धारा अपना प्रभाव अंकित करती है तो उसकी प्रभाववत्ता को नकारा नहीं जा सकता। भले ही परम्परा और प्रयोग की व्यापक भावभूमि पर इनका अस्तित्व समीकृत न हो पर उसका प्रयास निश्चय ही एक अवदान है, जो स्मरणीय है।

नकेनवाद के कवि और उनकी रचनायें

हमने आगे 'तार-सप्तक' की चर्चा की है। इसके अन्तर्गत यह भी बतलाया है कि तारसप्तक की कविताओं तथा उसकी शैली में लिखी जानेवाली कविता को आलोचकों और उसके प्रवर्तकों ने किस प्रकार इसे 'प्रयोगवाद' के नाम से अभिहित किया। प्रयोगवाद के समानान्तर ही प्रयोग के एक अन्य रूप की चर्चा करते हुए एक अन्य काव्य प्रवृत्ति का अन्वेषण किया गया। इसे नकेनवाद के नाम से जाना जाता है। यह प्रवृत्ति बिहार के तीन प्रमुख कवि नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार एवं नरेश द्वारा उद्‌घाटित की गई। इन कवियों ने अपने नामों के प्रारम्भिक अक्षरों के आधार पर इसका नामकरण किया। नकेनवाद के उन्नायक इन कवियों ने अज्ञेय की प्रयोग सम्बन्धी स्थापनाओं का खण्डन करते हुए अपने को प्रयोगवाद का वास्तविक जन्मदाता और अपनी कविता को प्रयोगवादी कविता का आविष्कारकर्त्ता घोषित किया। उनके मतानुसार नलिन विलोचन शर्मा ही प्रयोगवाद के वास्तविक आविष्कारकर्ता है। जैसा कि कहा गया है अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक हैं। अज्ञेय ने तारसप्तकों के माध्यम से काव्यसंबंधी जिन मतों की विशद चर्चा की है वही प्रयोग है। यह अवधारणा सचमुच दोषपूर्ण है क्योंकि यह मत प्रयोगशीलता की विवेचना करता है। प्रयोग का सही

विश्लेषण करने में यह असमर्थ है। दरअसल नकेनवादी कवि द्वारा अन्वेषित प्रयोग ही वास्तविक प्रयोगवाद है। 'प्रयोग साधन नहीं, साध्य है। ऐसा उनका मत है। इन कवियों ने प्रयोगशील और प्रयोगवादी के बीच के अन्तर को दिखलाने के लिये अपने वाद के लिए एक घोषणापत्र प्रस्तुत किया जिसमें अठ्ठारह सूत्र है। इन कवियों के दृष्टिकोणों और मान्यताओं को समझने के लिये जिनको देखना यहां अनिवार्य है। प्रपद्यवाद के घोषणापत्र का प्रारूप इस प्रकार है–

१. प्रपद्यवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।
२. प्रपद्यवाद सर्वतंत्र-स्वतन्त्र है, उसके लिये शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त है।
३. प्रपद्यवाद महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को ही निष्प्राण मानता है।
४. प्रपद्यवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है।
५. प्रपद्यवाद को मुक्त काव्य की नहीं, स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभीष्ट है।
६. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रपद्यवादी साध्य।
७. प्रपद्यवाद की दृक्वाक्यपदीय प्रणाली है।
८. प्रपद्यवाद के लिये जीवन और कोष कच्चे खान का माल है।
९. प्रपद्यवाद प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छंद का स्वयं निर्माता है।
१०. प्रपद्यवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है।
११. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य में अन्तर है।
१२. प्रपद्यवाद मानता है कि चीजों का एकमात्र सही नाम होता है।
१३. प्रपद्यवाद आयाम की खोज है और उससे अभिनिष्क्रमण भी, ठीक वैसे जैसे वह भाव और व्यंजना का स्थापत्य है और उससे अभिनिष्क्रमण भी।
१४. प्रपद्यवाद चित्रेतना है।
१५. प्रपद्यवाद मिथक का संयोजक नहीं, स्रष्टा है।
१६. प्रपद्यवाद बिम्ब का काव्य नहीं, काव्य का बिम्ब है।

१७. प्रपद्यावाद सम्पूर्ण अनुभव है।

१८. प्रपद्यवाद अविभक्त काव्यरूचि है।"७

प्रपद्यवाद क्या है? प्रपद्यवाद की मान्यताएं क्या है', इसके सर्जककर्त्ताओं ने अपने घोषणापत्र में इसी की व्याख्या की है। इसके अलावा पाटल और अवंतिका पत्रिका के माध्यम से भी इन कवियों ने अपने मत से सम्बन्धित अनेक लेख लिखकर भी इसको मजबूत करने की कोशिश की जिससे इनके दृष्टिकोण को समर्थन मिल सके। देखा जाय तो प्रपद्यवाद के पोषक कवि परम्परा को सम्पूर्णता से नकारते हैं तथा पूर्ववर्ती धारा अथवा पूर्ववर्ती परिपाटी का अनुकरण भी वर्जित समझते हैं। अनुकरण में विकास निहित नहीं होता। इन कवियों ने न अपने को भारतीय जमीन से सम्पृक्त किया, न जीवन के शाश्वत मूल्यों को मान्यता दी। एक नई दृष्टि, स्वच्छन्द काव्य की सर्जना को ही अपना मुख्य अभीष्ट समझा। प्रयोग या परिवर्तन की सार्थकता अपनी पिछली परम्पराओं के सम्पर्क से ही अर्थवान होती है। हम पाते हैं कि नकेनवाद ने अतीत से सम्बन्ध विच्छेद कर मात्र वर्तमान को ग्रहण किया। वर्तमान में भी उनकी दृष्टि जीवन से सम्पृक्त न होकर इतर मूल्यों से जुड़कर प्रकाश में आई। जो एक धमाके की आवाज के उपरान्त विलुप्त भी हो गई। साहित्य में जब भी कोई धारा आविर्भूत होती है वह अपने कदमों के निशान छोड़कर ही अदृश्य होती है भले ही उसका योगदान व्यापक न रहा हो। नकेनवाद के कवि और उनकी रचना भी एक समयविशेष में जन्म लेकर शीघ्र ही अवसान ग्रस्त हो गई। पर इसके योगदान को झुठलाया नहीं जा सकता। नकेनवादी नलिन विलोचन शर्मा को प्रयोगवाद का उन्मेषक घोषित करते हैं तथा प्रयोगवाद को 'प्रयोग का दर्शन' कहते हैं। इनका कहना है 'काव्य का अभिप्रेत वह प्रयोग ही है जिसके स्थापत्य भाव और व्यंजना एक परिस्थितिजन्य अनिवार्यता में एकाकार होकर सत्य मानने के कारण प्रयोगवाद एक दर्शन हो जाता है।'८

अतएव नकेनवादी भाव और भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्मप्रेषण, तत्व तथा रूप में प्रयोग की आवश्यकता पर बल देते हैं। कविता का निर्माण शब्दों से होता है। कविता भाव, विचार या दर्शन से नहीं लिखी जा सकती। न छन्द अलंकार पिंगल आदि से लिखी जा सकती है। प्रयोग सभी युगों के कवि करते है। प्रयोग युग की एक अनिवार्य आवश्यकता है। प्रयोग में गति सन्निहित होती है किन्तु नकेनवादी द्वारा किया गया 'प्रयोग' सही है क्योंकि वह प्रयोग की आवश्यकता को चिरंतन मानता है।

'प्रपद्यवाद मानता है कि कविता की वास्तविक प्रेरणा वस्तु स्थिति से मिलती है। वस्तु दृष्टा के भीतर भावछवियां उत्पन्न करती है। उन छवियों के साथ दृष्टा की असंगतियां मिलकर एक दृष्टिबिन्दु उत्पन्न करती है और जब उस दृष्टिबिन्दु से कवि वस्तु को देखता है तब वह शक्ति के एक नये संश्लेष के रूप में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार कविता में सदा ही पुनर्निर्माण हुआ करता है।'९ प्रपद्यवादी कविता की विशिष्टता नई दृष्टि में देखता है। नई संगतियों की महत्ता को उद्धृत करते हुए आगे उसका मत है "प्रपद्यवाद तरह-तरह से वस्तु संश्लेष को देखता है और उसे नई संगतियों में देख सकने के कारण ही प्रपद्यवादी कवि अपने आधार के लिये नैतिक स्वीकृति पाता है। स्वीकृत संगतियां, व्यवहार में घिस-पिट जाने के कारण व्यंजक नहीं होती। चूंकि वे स्वीकृत और नित्य अनुभूत होती है। इसलिये नई संगतियों की जटिलताओं को शब्दों में निर्णीत करते चलना प्रपद्यवाद का दृष्टिकोण होता है।'१०

प्रपद्यवादी नवीन संगति हेतु नवीन शब्द का अन्वेषण करता है। शब्द और अनुभूति विभाज्य नहीं होते। उनका कहना है 'प्रपद्यवाद अनुभूति को शब्द से अलग नहीं देखता वह प्रत्येक अनुभव को एक संश्लेष के रूप में देखता है। स्वीकृत संगतियों की अनुभूति स्वीकृत शब्द संगतियों से ही होगी, इसलिए नवीन संगतियों के लिए नवीन शब्दसंगीत की आवश्यकता होगी क्योंकि कविता शब्दों में लिखी जाती है और शब्द संगति से अर्थ ग्रहण करते हैं।'११

नकेनवादी अज्ञेय की साधारणीकरण की स्थापना का निर्विकार भाव से प्रतिवाद करते हैं। उनके लिये साधारणीकरण या संप्रेषण अपूर्ण होता है। "वह मानता है प्रत्येक वस्तु का एकमात्र सही नाम होता है और उस तक पहुंचना कवि कर्म होता है। वह प्रेषण अथवा साधारणीकरण के आधुनिक भाष्य को अपूर्ण मानता है। पर वह यह भी मानता है कि शब्द अपूर्ण होते हैं। वे केवल आत्यांतिक होते हैं। इसलिए प्रपद्यवाद पाठक की स्वतन्त्रता को वापस देता है।'१२ उनके अनुसार संप्रेषण गद्य का गुण है। पाठक कविता में व्यक्त भाव का सही आकलन नहीं कर पाता। अतएव पाठक अपने अनुभव के अनकूल कविता का अर्थ ग्रहण करता है। पाठक को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह मनोनुकूल भावों का चयन करें। 'यह स्वतन्त्रता आज ज्यादा आवश्यक है क्योंकि आज साधारणीकरण नहीं, ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्टीकरण हो रहा है।'१३ आज की कविता में रागात्मक पौर्वापर्य का समावेश है। यह निरवकाश सभ्यता की सुरक्षा हेतु

अनिवार्य है। नकेनवादी इसके निमित्त मुक्त आसंग के आधार से उपचेतन की जटिलता से बाहर निकलता है। 'आज की कविता में रागात्मक पौर्वापर्य आया है। रागात्मक पौर्वापर्य भागती हुई निरवकाश सभ्यता की शिराओं को प्रभावित करने का और मुक्त आसंग (ड्डिर्‍दर्म्रूग्दह) अपने को सुरक्षित रख, आधुनिक मनोविज्ञानदीक्षित, मानवमन द्वारा उसकी निबिड़ता के अवगाहन का आवश्यक साधन है।'१४ नकेनवादी स्वच्छन्दता के परिपोषक है। नकेनवादी परम्परा का प्रतिरोध करते हैं। अतीत उनके लिए खाद है। अतीत खाद्य नहीं हो सकता। अतीत को वे एक शवसाधना मानते हैं। शव की साधना रूढ़ि का पोषण है। नकेनवादियों की अवधारणा है कि साहित्य में अनुसंधान नहीं होता, आविष्कार होता है।

नकेनवादी नयी भाषा, नये शब्दों के प्रयोग के समर्थक है। इस सम्बन्ध में उनकी मान्यता है कि 'भाषा की थकान को दूर करने के लिये, उसमें नई ताजगी भरने के लिए तथा उसे नए आवेगों एवं आसंगों के उपयुक्त बनाने के लिए वह शब्दों को नई व्यवस्था, स्वर-विधान (र्ण्हमे) एवं नई शब्द संगति का निर्माण कर रहा है, विशेषणों का स्थानान्तरण तथा शब्द लोपी वाक्य विन्यास (त्त्ग्ज्रग्म ण्दह्रैल्स्दह) प्रस्तुत कर रहा है।' इस प्रकार आज का कवि भाषा का वैयक्तिक प्रयोग कर रहा है, भाषा को निजी रखना चाहता है क्योंकि वह पाठकों में अपने भावों की, एक अभिलषित रीति से प्रतिक्रिया देखना चाहता है, वह पाठक को एक खास ढंग से प्रभावित करना चाहता है।१५

नकेनवादियों की इन मान्यताओं के प्रकाश में हम इन कवियों की रचनाओं की सारगर्भित समीक्षा कर सकते हैं। यदि घोषणा के प्रारूप के परिप्रेक्ष्य में नकेन के कवियों की रचनाओं का विश्लेषण करें तो इनकी कविताओं और उदघोषित काव्य सिद्धान्तों में कहीं भी सामंजस्य परिलक्षित नहीं होता। सर्वप्रथम हम नलिन विलोचन शर्मा को लें। नलिन जी ने कविता में हर प्रकार से नया प्रयोग को प्रतिपादित किया है। नवीन उपमा तथा रूपक को निर्वाह दिया है। वह कविता की विशिष्टता वस्तुओं को नई दृष्टि से देखने में सवीकार करते हैं।

'प्रत्यूष की नीली, धब्बों भरी शान्ति
क्षितिज की गंजी चाँद
गाढ़ा हरा रंग,

पत्थर कोयले की धूवर्त खडरा हुआ चूं कूं - कांव
चिड़ियों का, बैलगाड़ियों
के चक्कों का रौंदना
कोलतार की कोमल सड़क को
बैलों की क्षुद्र घंटिकाओं की
क्षुद्रतर टुन- धुन
रिक्शों की वर्ण-संकर भोंपू।१६

यहाँ प्रत्यूष बेला का वर्णन है। क्षितिज की गंजी चांद की सटीकता द्रष्टव्य है। पर 'मनहूस' शब्द का प्रयोग असंगत प्रतीत होता है। उनकी एक कविता 'अलि-विलासी-संलाप' भी दर्शनीय है–

"कलिका में संदेहेत पुष्प
ढूंढा। नहीं पाने पर
उसका प्राण-रस
पी लिया। (अलि)"१७

यहाँ वटन छिद्रित किया। अब परिमृदित पड़ी है में नवीन रूपक का मूर्तिकरण है। नकेनवादी कवियों की विशिष्टता वस्तुओं को नई दृष्टि से देखने में निहित है। वह कविता शब्दों में लिखता है। यहां कलिका में संदेहित पुष्प की खोज, उसका प्राणरस पीना, कल्पित सुगंध सूंघकर वटन छिद्रित करना, उसका परिमृदित होना, कलिका की दया याचना एक नई दृष्टि है, यह नई दृष्टि नकेन के कवियों की विशेषता है। पं॰ नलिन विलोचन शर्मा की अलि-विलासी-संलाप शीर्षक रचना देखी जा सकती है।

नकेन के कवि महान कवियों की परम्परा का स्पष्ट रूप से विरोध करते हैं। वह परम्परा के गत्यात्मक प्रयत्नों को भी जड़ और निष्प्राण उदघोषित करते हैं। कालिदास का विरहीयक्ष 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' से जिस विरहानुभूति से विक्षुब्ध होता है। वहां नलिन जी में इसकी विपरीत प्रतिक्रिया का उन्मेष जागृत होता है। वह प्रकृति पर प्रेम की विजय दृष्टान्त देने में असमर्थ होता है। 'वर्षभोग्य' में प्रेम के ऊपर प्रकृति की विजय है–

"आज नवीकृत प्रकृति में, मन में
उनसे वंचित होना दुष्कर लगता।"१८

वह क्रौंचवध मार्मिक घटना को नहीं देखता। न रामायण की कथा को अनुष्टुप छन्द में लिख कर परम्परा को पुनर्निवाह देता है। वह बाल्मीकि से अधित तटस्थ है, द्रष्टा है।

"मैंने देखा नहीं क्रौंध-वध
सो मैं न तो लिख रहा अनुष्टुप में
और न रामायणी कथा ही।
पर हृदय उद्वेलित उतना ही
जितना होगा बाल्मीकि का।"१९

वह अली अकबर खां के सरोद वादन को तटस्थ भाव से देखता है। वहाँ उसे एक नई अनुभूति मिलती है मानों पीतल और लोहे से मधु निचुड़ रहा हो–

"सरोद पर तुमने था बजाया
मैं समझा नहीं ! मैंने देखा,
पीतल और लोहे से
तुमने मधु निचोड़ा
सारा कड़वापन दूर हो गया,
मधु विदुंत होकर बंट गया।"२०

परम्परा की पूर्ण नकारात्मक दृष्टि को 'पिकासो की चित्र-कला' में नलिन विलोचन शर्मा ने सशक्त होकर स्वीकारा है। परम्परा में सीखने जैसा कोई प्रत्यय नहीं है। वह एक बेढंगा प्रत्यय है। जिसका न सीखना ही उचित है।

"जटिलतम चित्रकला
सीख ली जा सकती है,
सिर्फ अभ्यास जरूरी है।
तुम्हारी बेढंगी रेखाओं को
सीखना क्या ?"२१

नलिन जी किसी भी घटना में सारगर्भित अर्थ को ढूंढ लेते हैं। इस प्रकार वह यथार्थ का उदघाटन करते हैं। वह कविता को परम्परित उपमान और रूपकों से बाहर निकालकर अभिनव प्रयोग में आस्था रखते हैं। कविता के माध्यम से उन्होंने इस सत्य को प्रकाशित करने का यत्न भी किया है। नकेन के दूसरे प्रमुख कवि हैं श्री केसरी। श्री केसरी प्रयोग को ही कविता का साध्य मानते हैं। हिन्दी कविता की धारा में नकेन के कवियों से ही सही विकास की अवस्थिति की निश्चितता पर बल डालते हैं। केसरी का मन्तव्य है प्रयोग तो हर युग की आवश्यकता है। हर युग में साहित्यकारों ने इनको समर्थन भी दिया किन्तु नकेनवादी अपने वाद के आधार से जिस प्रयोग को लक्ष्य मानकर कर्त्तव्य रत हैं। वह पूर्ववर्ती काल के प्रयोग से एकदम अलग है। यह प्रयोग चिरंतन प्रयोग है। केसरी जी की कविताएं अत्यन्त उलझी हुई है। यथा:

“घनान्ध
प्रात (या दिवा रात)
वज्रावर्त्तन
विद्युतालम्भ
फिर अंधकार
रोमिल बिडाल:
आखेटी दांतों में जिसके
है पकड़ गया।” २२

प्रथम पंक्तियों में नवीन उपमा तथा रूपक का अंकन है। अगंलित उमस, मूर्च्छित नखदान शब्द का प्रयोग असंगत परिलक्षित होता है। ‘नखदान’ सुरति शास्त्र का प्रयोग है। कवि का यहां अभीष्ट क्या है? यह स्पष्ट नहीं होता। मोती न गिरा, आंसू न गिरा भी एक नया प्रयोग है जिसकी सटीकता एवं नवीनता मोती गिरने, आंसू गिरने जैसे पुरानी उपमाओं के स्पष्ट प्रतिरोध में सन्निहित है। एक उदाहरण है–

ई से ईश्वर
उ से उल्लू
‘मां’ जी ?
नहीं जी,

वह पंछी
जो देखता है रात-भर।२३

यहां ई से ईश्वर, उ से उल्लू, मां जी, नहीं जी से कवि का प्रमुख अभिप्रेत क्या है, अस्पष्ट है। 'वर्षहारा' में अतीत को एक हार की संज्ञा देता है। अतीत के साथ भविष्य भी उसके लिये सार्थकतारहित है।

"उसका सम्मान क्यों-
कि अतीत का आतिथ्य
महापर्व है, महंगाई है न? होने दो
अवकाश है, नववर्ष है न कल तो
अतीत ज्यों:
भविष्य हार है त्यों
हार है।"२४

कवि केसरी ने प्रेम सम्बन्धी कविताओं को भी लिखा है। 'सालगिरह' शीर्षक रचना में प्रेमी मन की उदभावना का वर्णन है। यह कविता पूर्वापर प्रेम सम्बन्धी कविता से बिल्कुल हटकर है।

"पर हम-तुम वर्तमान
भूत नहीं,
इसीलिए प्रिय चलो मनाएं
अपनी तेरी सालगिरह।"२५

नये और पुराने को कवि चाहता है अपने समय की सापेक्षता में ही जीया जाय। अवसर नये के निर्माण क्रम में रूढ़ि का ही पुन: निर्माण होता है। ऐसी उनकी उक्ति है।

"सत्य के इन
तथा अन्यान्य
स्तरों में वरेण्य

क्या यही
कि नया नये में
रहे और जिसे ?" २६

'अभ्यस्त' में कवि के शब्द-प्रयोग है। इन शब्द प्रयोग के माध्यम से वह कविता में किन शाश्वत तथ्यों को प्रतिष्ठित करता है। यह बहुत ही जटिल और उलझनपूर्ण है जिसे सहजता से सुलझाना कठिन है।

"एक मेरे मित्र कहते हैं
कि सब पालटिक्स है और पलटि
काव्य ? वह तो योग ही प्रत्यक्ष ! राग कुंडलिनी, कल्पना
मधुचक्र, सपने त्रिकुटी हैं ! गगननि:सृत अजर
अनहद आह ! तुम कहो ऐसी कि जैसी कह गये
तुलसी, कबीर, सूर ! यानी भाव-पद
विन्यस्त।" २७

केसरी कुमार जी नई संगतियों की जटिलताओं को शब्दों के प्रयोग से उदघाटित करते हैं। इनके वाक्यविन्यास बहुत दुरूह है। कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है जान-बूझकर शब्दों का व्यवहार किया गया है। नलिन जी की तरह श्री केसरी भी परम्परा को निष्प्राण मानते हैं।

नरेश नकेनवाद के अंतिम कवि हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम की प्रबलता है। इनकी कविताओं मे ंजटिलता का अभाव है। जैसा कि श्री केसरी कुमार की कृतियों में उपलब्ध है –

"मैं हूं दूर, दूर हूं फिर भी
तुमसे इतना पास
जितना दो नासाओं के
चलने वाली सांस
और बुद्धि को कुंठित करने वाले
निराकार पर मानव का विश्वास

मैं जिसे मिटाने को सहसा
चल पड़ा दूर, पर रहा पास
तुम बिन्दु और तुम केन्द्र रहीं
यह प्यार हमारा बना व्यास
मैं वृत्त वृत्त बन नाच रहा
तुम विन्दु-विन्दु बन रही पास।"२८

नरेश की प्रेम कविता कहीं भी पाठक को प्रभावित नहीं करती। वह अपने भावों में प्राणों का स्फुरण करने में असमर्थ हैं क्योंकि इस कविता पर सिद्धान्तों का प्रभाव है। सैद्धान्तिक प्रारूपों में बंधकर कविता का निर्माण असंभव है। कविता तो अन्तः स्थल की उपज है। वह स्वतः स्फूर्त है। एक और कविता दर्शनीय है–

"ले लो बेच रहा
वेदना निग्रह रस
जो सरे-बलम की संग्रहणी को
करता हूंमन्तर
आहवेदना मिली विदाई।"

....

तो भी कोई न ग्रहक
अर्गो : वेदना निग्रह के ग्रहक बन लो।"२९

नरेश की यह कविता अतिवादिता से भारग्रस्त है। इटन, ले क्राई मल 'एच टू ओ' और कंपेडियस, पोर्टबुल जैसे अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग कविता के सौन्दर्य को विकृतरूप में उद्घाटित करते हैं। 'काकपद' कविता में भी ऐसी प्रस्तुति है–

"बहु लतावेष्टित मात्र
थर-थर तरू-पात्र
टलमल बूंदें पल्लव पर
शेल्फ भर सार्त्र
"क्राइम पेशनेल" के पृष्ठ
खुले ओठों से अशिष्ट

मुंह बाये-ताक
रहे, वातायन के बाहर।

....

अस्तित्ववाद
का - क पद मात्र"३०

'शब्दों के घरौंदे' में नरेश बलपूर्वक आयत शब्दप्रयोग का महत्व बतलाते हैं-

"छोटे-छोटे शब्दों के घरौंदे
मेरे गिर्द फैले हुए हैं,
उनमें उदग्र भावों-अनुभावों
के पृथुल-पृथुल शब्द
बलपूर्वक घुस पड़ना चाह रहे हैं।
मैं चानघर जाने को उद्यत
कंधे पर तौलिया, हाथ में
मार-गो की बट्टी-घर
लिए इस बलात्कार का साक्षी।"३१

नरेश में शब्दों में प्रयोग की प्रवृत्ति है। शब्दों को तोड़कर लिखने की प्रवृत्ति भी उनमें विद्यमान है। शब्दों को तोड़कर प्रयोग की प्रवृत्ति नकेन के इन तीनों कवियों में दृष्टिगोचर होती है।

'प्रपद्यवादी' प्रत्येक शब्द और प्रत्येक छन्द का स्वयं निर्माता होने की बात करते हैं और यह मानते हैं कि 'चीजों का एक मात्र सही नाम' होता है। उनका यह दावा अज्ञेय के शब्दों में 'विचित्र गड़बड़-घोटाला' उत्पन्न करता है। शब्दों का अपना एक इतिहास होता है और उसके ध्वन्यार्थ की एक सामाजिक स्वीकृति भी होती है। इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती।'३२ नकेनवाद के प्रस्तोता कवियों में शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति सचमुच एक चमत्कार है। जिसका न कोई इतिहास है। जिसकी न कोई सामाजिक स्वीकृति है। जिसका न कोई महत्व ही है। शब्दों का वैयक्तिक प्रयोग एक मिथ्या आकर्षण है जो कोई महत्वपूर्ण योगदान देने में सफलीभूत नहीं हो सका। डॉ. रमाशंकर तिवारी ने इनके काव्य सम्बन्धी मतों पर अत्यन्त संक्षिप्त टिप्पणी दी है-

जिसको यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा– 'न तो इसमें सामाजिक यथार्थ को पकड़ने की बलवती वृत्ति दिखाई पड़ती है, न अतिशय वैयक्तिक कुंठाओं अथवा अहंवादी प्रवृत्तियों के प्रकाशन की लालसा ही, साथ ही ग्राम्य जीवन अथवा प्रकृति के प्रति कोई अनुराग भी इन कवियों में प्राप्तव्य नहीं है।"३३ पूर्ववर्ती धाराओं में यद्यपि विषय क्षेत्रों का चयन तो सामाजिक यथार्थ से गृहीत है या वैयक्तिक जीवन में सम्पृक्त है या प्रकृति से तादात्म्य कर अभिनव दृष्टियों से चित्रित है। यह धारा नकेन की कविताओं में कहीं भी लक्षित नहीं होती। आगे रमाशंकर तिवारी की उक्ति है– 'किन्तु एक बात निश्चिततया कही जा सकती है- यह कि इनकी रचनाओं में भाषाशैली की गद्यात्मक साधारणता के दर्शन नहीं होते जो अनेक नई कविताओं को सम्प्रति आकर्षणविहीन बना देती है। जनपदीय मुहावरों के प्रयोग के नाम पर नकेनवाद 'थूकने', 'खंखारने', 'हगाने' इत्यादि जैसे भद्दे शब्दों के व्यवहार से पाठकों की सुरूचि पर प्रहार– नहीं करता। साथ ही प्रतीकों की योजना भी उसमें सार्थवती एवं व्यंजनापूर्ण हुई है।"३४ यह उक्ति उनके शैल्पिकपक्ष की सार्थकता को प्रकाश में लाती है। किसी भी धारा का अभ्युदय जब होता है भले ही उसका प्रभाव गहरा न पड़े। आंशिक महत्व तो होता ही है। इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता। भले ही नकेन के कवियों का विषयक्षेत्र बहुत संकुचित है पर भाषाशैली में कुछ विशिष्टता के कारण इसका अनुदान प्रशंसनीय है। 'विषय-चयन का क्षेत्र उसका संकुचित है क्योंकि जीवन तथा जगत की विभिन्न प्रेरणाओं एवं छवियों की ओर इन नागर कवियों का ध्यान नहीं खिंच सका है। निराशा और अनास्था के गहरे चित्र भी इनमें नहीं उपलब्ध होते, इसका कारण शायद यह हो सकता है कि इन्हें जीवन की दारूणता के वे कशाघात नहीं सहने पड़े हैं जो आज के अनेक मध्यमवर्गीय कवियों के भाग्य में बदा हुआ है।"३५ अतएव नकेन का काव्य जीवन से विच्छिन्न, सामाजिक दायित्व से हीन ही है। हिन्दी की काव्य-परम्परा के प्रति उपेक्षा का बर्ताव इस बात का प्रमाण है कि प्रयोगवाद के समानान्तर युग की बदली काव्यदृष्टि को प्रयोग के जरिये विस्तार देने वाले इन कवियों के काव्यसिद्धान्त एक नारा बनकर ही गूंज गये और अपनी अल्प अवधि में ही अदृश्य भी हो गये।

——————

१. दिनकर - चक्रवाल - पृ० ५३

२. अज्ञेय - तारसप्तक की भूमिका - पृ० ५

३. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ० ८

४. डॉ० नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां - पृ० १२८-१२९

५. डॉ० बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका- पृ० २१३

६. केसरी कुमार - नकेन - पृ० ११५

७. नकेन संग्रह - भूमिका में नलिनी विलोचन शर्मा का उद्धृत टिप्पणी से

८. पस्पशा - नकेन-१ पृ० १३१

९. सम्पादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु 'अवन्तिका' जनवरी १९५४ - पृ० २५२

१०. वही - पृ० २५३

११. सम्पादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु 'अवन्तिका' जनवरी १९५४ - पृ० २५३

१२. वही - पृ० २५४

१३. नकेन के प्रपद्य - पृ० ११७

१४. वही - पृ० ११७

१५. नकेन के कवि - पृ० १४४-४५

१६. सम्पादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु 'अवन्तिका' काव्यलोचनांक १९५४ में उद्धृत

१७. नकेन - २, पृ० ५

१८. नकेन के प्रपद्य - पृ० १०-११

१९. नकेन के प्रपद्य - पृ० १७

२०. नकेन के प्रपद्य - पृ० २, ५

११. नकेन के प्रपद्य - पृ० २/५-६

२२. सम्पादक : लक्ष्मीनारायण सुधांशु, अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' १९५४ में उद्धृत

२३. नकेन के प्रपद्य - पृ० ५०

२४. वही - पृ० ५४

२५. वही - पृ० ३७

२६. नकेन - पृ० २/२४

२७. वही - पृ० २/३१-३२

२८. नकेन के प्रपद्य - पृ० ७१-७२

२९. सम्पादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु अवन्तिका 'काव्योचनांक के उद्धृत'

३०. नकेन - २/४०-४१

३१. वही - २/४४-४५

३२. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ० १५४

३३. वही - पृ० १५६

३४. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ० १५६

३५. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगधारा - पृ० १५६

——————

अध्याय - ५

छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में परम्परा और प्रयोग के विविध रूपों का अन्वेषण

"क"

पन्त - निराला - छायावादी संस्थान के कवि

छायावादोत्तर काल में काव्य की धारा जिस नूतन संवेदना और नई भंगिमा में संक्रमित हुई उसमें छायावादी संस्थान के कवि पन्त और निराला की प्रगतिशील कला का योगदान निश्चय ही स्मरणीय है। कविता के क्षेत्र में सन १९३६ के बाद छायावादी काव्यधारा ने स्वत: आगे बढ़कर नवीनता की प्रतिस्थापना की। इसका यह अर्थ नहीं कि यहां क्रमागत सम्पूर्ण काव्यधारा के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार की रीति अपनाई गई हो। परम्परा के सबल और जनहितैषी तत्वों का उनके मस्तिष्क पर गहरा असर था। चूंकि समय की बदलती परिस्थितियों का साहित्यकार अध्ययन व मनन कर युगपरिवर्तन को आकार देना प्रथम कर्त्तव्य समझता है। अतएव पंत और निराला ने भी अपनी परम्परा को परिमार्जित व परिवर्द्धित करने की आवश्यकता को महसूस किया है किन्तु मानवता के विकास में बाधा डालने वाली जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का प्रतिरोध ही नहीं हुआ, खुलकर भर्त्सना भी हुई। इस प्रतिवाद में.प्रगति की भावना विद्यमान थी। निष्प्राण और निष्प्रयोजनीय तत्वों से मुक्ति प्रकृत्या नैरन्तर्य को अधिक परिपक्ता और सुदृढ़ता प्रदान करती है। पंत और निराल के काव्य विकास प्रक्रिया को देखें तो उसमें दो स्थितियां है पहली वह जिसमें ये कवि जीर्णता के बंधन से स्वतन्त्र होकर नूतनता का आह्वान करते हैं दूसरी वह कविता को संकुचित आयाम से निकालकर एक विस्तृत कैनवास पर अंकित करते हैं। इस प्रकार इस युग में कविता के युगीन यथार्थ का अवलम्बन लेकर नये-नये रूपों में अपने अस्तित्व को सार्थकता दी। कविता का इन नये रूपों में प्रयोग वास्तव में कविता को एक विशेष प्रवाह से संयुक्त करना था ताकि प्रगति के एक नये सूत्र में आबद्ध होकर वह अधिक जीवन्त और सक्रिय बन सके। प्रयोग से तात्पर्य यहां बदलती दृष्टि और नये-नये संदर्भों से हैं। इस नये मार्ग के अन्वेषणकर्त्ताओं और

प्रस्तुतकर्त्ताओं में पंत और निराला सर्वप्रथम विचारणीय है क्योंकि महादेवी और प्रसाद दोनों सन १९३६ के बाद एकदम मौन हो गये। पंत और निराला ने ही अपने कृतित्व के माध्यम से हिन्दी कविता को मूल स्वरों में ढाला। पंत ने युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा और अणिमा जैसी कृतियां प्रस्तुत की। युगीन यथार्थ और परम्परा दोनों का सुन्दर समन्वय किया। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या जैसी युगीन सत्य को प्रतिभासित करने वाली कृतियों के पश्चात पन्त स्वत: अपनी परम्परा से आकर्षित हुए। 'स्वर्ण-किरण'और 'स्वर्ण-धूलि' इसका दृष्टान्त है। 'अणिमा' का प्रयोग भी कवि के आज के भौतिक मानसिक सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित करने का यत्न है। बच्चन के शब्दों में 'वे कभी केवल एक के बल पर कभी एकाध को संयोजित कर अपनी रचनायें करते हैं इस रचनाप्रक्रिया में विविधता की कितनी संभावनायें हैं इसका आभास उनकी समस्त कृतियों को देखकर किया जा सकता है। प्राय: कवि व्यक्ति के मनोभावों में सीमित होकर कविता लिखते हैं, पंत ने व्यक्ति को समाज में, समाज को मानवता में और मानवता को सृष्टि के अंतर्वाह्य विकास क्रम में रखकर देखा है।'१ तथा इस विकास क्रम में युग के नए यथार्थ के संदर्भ में प्राचीन रूढ़ियों की भर्त्सना करते हुए प्रगति की नई जमीन के निर्माणकर्त्ता पंत निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार निराला के परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अणिमा वेला, कुकुरमुत्ता और नये पत्ते में प्रगति के सार्थक मंत्रोच्चार की सफल प्रभावान्विति देखी जा सकती है। वस्तु और शिल्प, भाव और सौन्दर्य में नये-नये प्रयोग ही उन्होंने नहीं किये वरन कविता हेतु सुदृढ़ आधार भूमि की निर्मिति भी की। 'उनके विद्रोही व्यक्तित्व में प्रतिक्रियावाद की गंध नहीं है। नव्यता की गौरव प्रतिष्ठा के लिये वे रूढ़ियों के परिमार्जन की आवश्यकता प्रतीत करते हैं। प्रतिक्रियात्मक विद्रोह निषेधात्मक होता है जो ध्वंस की सीमा तक पहुंच सकता है किन्तु निराला का विद्रोह नव्यता की दिशा में विधेयात्मक है।'२ परम्परा में निहित नैरन्तर्य किस प्रकार युग सन्दर्भों में अपने स्वरूप को परिवर्तित व परिवर्द्धित करता है। इस सम्बन्ध में आगे वे लिखते हैं। 'जिस प्रकार सर्प अपने पुरातन निर्मोक को उतार देता है क्योंकि उसे उसकी आवश्यकता नहीं रहती, जिस प्रकार नये वस्त्र पुराने शीर्ण वस्त्रों के परित्याग की आवश्यकता को प्रस्तुत करते हैं उसी प्रकार सांस्कृतिक परम्पराओं जो कभी उपयोगी समझी गयी होगी, युग की नई आवश्यकताओं के अनुरूप अपना स्वरूप परिवर्तन कर लेती है अथवा करने के लिये विवश हो जाती है जो

क्रान्तिकारी युगद्रष्टा परम्पराओं को परिवर्तन की दिशा देता है वह क्रान्तिपुरुष कहलाता है। परम्परा में कुछ स्वस्थ अंश भी हो सकता है और क्रान्तिदृष्टि उससे भी परिचित होती है।"३ पंत और निराला दोनों ही क्रान्तिकारी युगद्रष्टा हैं। ये वे प्रगतिशील कलाकार हैं जो परम्परा और प्रयोग के सही समन्वय के द्वारा प्रगति की चेतना के साथ आगे बढ़े। इन्होंने रूढ़ियों का परित्याग किया और युग के नये यथार्थ को चेतना दी। परम्परा के स्वस्थ अंश को काल की चेतना के अनुकूल वाणी भी दी। उसका उपयोग कर एक नई स्फूर्ति और नई ऊर्जा से प्राण फूंके। आगे हम विस्तारपूर्वक इन रचनाकारों की रचनात्मक प्रक्रिया की विवेचना करेंगे जिससे हमारा अभीष्ट छायावादोत्तर काव्य में परम्परा और प्रयोग के विविध रूपों का अन्वेषण किस भांति इन कवियों ने रचना के माध्यम से उपस्थित किया, सिद्ध हो सके। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रयोग से हमारा तात्पर्य वस्तुत: परम्परा की जड़ता का परित्याग करने का उपक्रम है जिसके द्वारा कवि अपने युग, वातावरण, परिस्थिति से प्रतिबद्ध होकर स्वप्न या कल्पना में विचरण नहीं करता बल्कि युगीन सत्य को आत्मग्राह्य बनाकर उससे जूझता है प्रासंगिक सर्जनात्मकता सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। प्रयोग परीक्षण या मूर्त उपकरणों का अनुसंधान नहीं समसामयिक मांग है। इसको ध्यान में रखकर हम पंत और निराला की कृतियों का अवलोकन करेंगे। कविवर सुमित्रानंदन पन्त कल्पना और सौन्दर्य के सुकुमार कवि ही नहीं है। वह युगद्रष्टा और युगचेता रचनाकार भी हैं। पंत का काव्य प्राचीन जीर्ण-शीर्ण संस्कारों को झटकते हुए नूतनता का आह्वान करता है, मानवता के उद्धार के लिये रूद्ध हृदय के द्वार खोलने की उद्घोषणा भी करता है। युगांत की रचनाओं में यह जागरूक चिंतक पुरातन का विध्वंस कर नये के निर्माण के लिये प्रयत्नशील है। अतीत का अंध सम्मोहन उसे बांध नहीं पाता बल्कि सही प्रगतिशील होने के कारण वह संकल्पात्मक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ता है, नवीनता का वरण चाहता है 'द्रुत झरो' जगत के जीर्ण-पत्र में जीर्ण-शीर्ण परम्परा का प्रतिवाद उपस्थित है। जड़ता और पुरातन के प्रति उसका विद्रोह विधेयात्मक है।

"द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त-ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत
तुम वीत राग, जड़-पुराचीन।"४

प्रगतिशील रचनाकार जीर्णता, जड़ता का पोषण नहीं करते। रुढ़ि को अलग हटाकर सक्रियता को गतिशील करते हैं। प्रगति भी तभी संभव होती है जब निष्प्राणता का परित्याग किया जाय। इसीलिए वह नवीनता को अग्नि के पांव धारण करके आने का उद्घोष करता है जिसके ताप से जीर्णता नष्ट-भ्रष्ट हो जायें।

"गा कोकिल, बरसा पावक गण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बन्धन
पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन।"५

नूतनता को कोकिल कहकर पावक कण की वर्षा करने की प्रबल अभीप्सा एक नयी दृष्टि है। कोई भी नया विकास सदैव अतीत भित्ति पर निर्मित नहीं होता कभी-कभी नये का उद्भव नई मानसिकता से भी होता है। गत युग की दुर्धर संस्कृतियों को गिरि कारा कहकर उसने बन्द पड़ी मानवता की स्वतन्त्रता की कामना अभिव्यक्त की है–

"मानव जग में गिरि-कारा-सी
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बन्दी की है मानवता को
रच देश-जाति की भित्ति अमर।"६

जीर्णता के प्रतिवाद के साथ-साथ सदियों से चली आती शोषकप्रवृत्ति का खंडन भी उसकी रचनाओं में प्रस्तुत है। इस वर्ग के प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति का वर्णन है। 'ये नाप रहे' कविता में इसी वर्ग का चित्रण है। 'ताज' शीर्षक कविता में तो उनकी यथार्थवादी दृष्टि ही उभरी है। 'इसमें कवि ने जीवन को उसकी यथार्थता में चीन्हा है।'७

यथा–

"हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन?
संग सोध में हो शृंगार मरण का शोभन
नग्न क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित-जन।"८

इस प्रकार 'युगांत में' जड़ता के बहिष्कार के द्वारा नूतनता का आह्वान मिलता है। शोषितों के उद्धार के साथ यथार्थपरक दृष्टिकोण की प्रधानता मिलती है। अस्तु नवीनता में प्रगति की गति को आस्था के भाव से स्वीकारते हुए पंत ने 'युगांत' में कल्पना और सूक्ष्मता के सत्य और स्थूल की ओर प्रस्थान किया है।

'युगवाणी' की भूमिका में पंत ने यह लिखा है 'जिस परंपरागत मधुवन को हम पल्लवों के मर्मर लज्जारूण और फूलों के रंग गुंजन से यौवन गर्वित देखते आए हैं उसकी दक्षिण पवन 'काव्य-प्रेरणा' शिशिर में ठंडी उसासें भर, आज ढेर-ढेर पीले पुराने पत्तों को युगपरिवर्तन की आंधी में उड़ा कर जैसे उन टूटते हुए स्वप्नों पर स्थिर चरण न रख सकने के कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई नई संस्कृति के बीज बिखेर रही है।'९ युगवाणी में पन्त ने अतीत की ओर दृष्टि फेरकर वर्तमान से साक्षात्कार किया है।

युगान्त में प्रकृति पावक कण की वृष्टि करने की असीम क्षमता रखती है तथा कवि उससे नूतनता को प्रतिस्थापित करने की चेष्टा करता है। युगवाणी भी उसी स्वप्न का एक जीवन दर्शन है।

"स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव
अन्तर जगत ही बहिर्जगत
बन जावे वीणापाणि इ।
युग की वाणी।"१०

युग की वाणी में सत्य और स्थूलता का समावेश है। अतएव आकाशचारी बनने के बजाय जीवप्रसू ही प्रधान लक्ष्य हो गया क्योंकि–

'खुल गए छंद के बंध।
प्रास के रजत पाश
अब, गीत मुक्त
ओ युग की वाणी बहती अयास।'११

'खुल गए छंद के बंध' के कारण का उल्लेख करते हुए फूलचन्द्र पाण्डेय ने एक जगह लिखा है 'युगवाणी पन्त से साहित्यिक विकास में इसी सत्य की पोषिका है। इससे पहले

के चिंतन में कवि सर्वदा 'सूक्ष्म' सौन्दर्य के चिंतन में ही व्यस्त रहा है परन्तु अब उसके वाह्यरूप, आकार, स्थूलता तथा उससे ठोसपन की ओर अधिक झुका हुआ है। उसकी भावना का स्थान जीवन की 'मूर्ति' ने ले लिया है।

अब स्वर्गिक कल्पना कोरी कल्पना की ओर आकर्षित नहीं रह गयी है। किसी मनोविकारात्मक सत्य के स्थान पर उसे उस प्रवृत्ति का व्यक्ति अधिक आकर्षित हो गया है।'१२ भव्य मानवता का विकास वर्तमान पर टिका होता है, अतीत में नहीं। इस हेतु नवीन संस्कृति के उपकरणों के संग्रह की आवश्यकता है–

"रीति-नीति को विश्व प्रगति में बने नहीं जड़-बंधन पाश
ऐसे उपकरणों से हो भव मानवता का पूर्ण विकास।"१३

'खोलो' कविता में युग-युग के अंधकार में बंदी संसार में चीत्कार करती मनुजता के उद्धार निमित्त रूप हृदय के द्वारा खोलने का भाव पूर्ण आस्था के स्वर से प्रकट है–

"निर्मम कर आघात मर्म में
निष्ठुर तड़ित प्रहार
चूर्ण करो गत संस्कारों को
लेओ प्राण उबार
खोलो फिर इस बार।"१४

इसके अलावा गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों प्रवृत्तियों का समन्वय युगवाणी की कृति में है। जिससे लक्षित होता है पन्त आदर्श परम्परा का अनुकरण करने वाले युगद्रष्टा कलाकार नहीं है। उनकी सक्रियता समय विशेष में प्रादुर्भाव होने वाली विशेष घटनाओं से प्रभाव ग्रहण करके भी विकासोन्मुख रही है। पन्त की लेखनी रूढ़ प्रणालियों पर कसकर प्रहार करती है, उन्नति को स्वर देती है, प्रगति का समर्थन करती है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों से अनुप्रेरित पन्त ने शोषण के विरुद्ध यत्र-तत्र विद्रोह किया है। द्रष्टव्य है- साम्राज्यवाद, संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति, समाजवाद और गांधीवाद कविता। कृषक, मजदूर, मध्य वर्ग में भी इसी दृष्टि का प्रकाशन है। नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की भी उनमें आकांक्षा है–

“मुक्त करो नारी को मानव
चिर वंदिनी नारी को
युग-युग की बर्बर कारा से
जननि सखी प्यारी को।”१५

अस्तु युगवाणी में परिवर्तन की महत्ता पर विशेष बल है। पंतजी ने युगवाणी को गद्यगीत कहा है। यहां पंत का गद्य प्रयोग भी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। ‘पंत जी ने जीवन की वास्तविकता और यथार्थता के प्रतिबिम्ब के अर्थ में ही युगवाणी को गद्य कहा है।’१६ युगवाणी, ‘युगांत’ की अगली कड़ी है।

‘ग्राम्या’ में पंतजी ने ग्राम्य संस्कृति और सौन्दर्य को बौद्धिकता के धरातल पर प्रस्तुति दी है। ‘ग्राम-श्री’ में गांव की सुषमा का रमणीय वर्णन है। ‘धोबियों का नृत्य’, ‘चमारों का नाच’, ‘कहारों का रूद्र नृत्य’ में ग्रामीण कला को मूर्तित किया गया है।

“वाद्यों के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कंपित
जन इच्छा का गाड़ चित्र कर हृदय पटल पर अंकित;
खोल गए संसार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौन्दर्य स्वप्न दिखलाकर।”१७

उसने गांव की रूढ़ियों, विषमताओं को भी प्रत्यक्ष किया है। ‘ग्रामदेवता’ ग्रामचित्र आदि कवितायें इसका परिणाम है।

“राम-राम
हे ग्राम देवता, रूढ़िधाम
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्ण काम
जड़वत परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य तुम्हें शत-शत प्रणाम।”१८

प्रकृति से पंत का निकट का संपर्क रहा है। यहां भी प्रकृति का सौन्दर्य उसके चित्त को अमिट सौन्दर्य से उत्प्रेरित करता है। गांव के प्राकृतिक उपादानों में रम कर भी कहीं-

कहीं युगवाणी की चेतना पुनः प्रकट हुई है। 'पतझर' में पुरानी रूढ़ियों का खुलकर विरोध है, नवीन हरीतिमा को चतुर्दिक विकीर्ण करने की कामना है–

"झरो, झरो, झरो
जंगम जग प्रांगण में
जीवन संघर्षण में
नव युग परिवर्तन में
मन के पीले पत्तों
झरो, झरो, झरो।"१९

उसकी वाणी जन-जन के भीतर प्रविष्ट कर जड़ता को उच्छेदित कर गुणों को जागरित करने को संघर्षरत बन गई है-

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार
चित्त शून्य आज जग नव-निनाद से हो गुंजित
मन जड़ - उसमें नव स्थितियों के गुण हो जागृत
तुम जड़ चेतन की सीमाओं के आर-पार
झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार।"२०

युगांत, युगवाणी और ग्राम्या के पश्चात कवि पंत की विचारधारा एकदम परिवर्तित हो जाती है। विगत युगों के सीमित दृष्टिकोण को लांघकर नवीन चेतना को आत्मसात करने की सतत कोशिश हुई है। कवि के चिन्तन की पृष्ठभूमि में अब भविष्य ही महत्वपूर्ण है। अतीत और वर्तमान दोनों गौण हो जाते हैं।

आध्यात्मिक चिंतन और प्रगतिवादी चेतना का समन्वय उसका अभीष्ट है। कवि के चिंतन का अकस्मात् एक नया मोड़ अरविन्द - दर्शन का प्रभाव है। वे यहां लोककल्याणकारी महत्तर सांस्कृतिक चेतना के पोषक हैं। 'अरविन्द दर्शन की ओर उन्मुख होने का कारण संभवत: उसकी भूत और चेतना की समन्वयात्मक विशिष्टता तथा अतिमानस की कल्पना रही है। जहां मानव जीवन एक परिपूर्ण विकास प्राप्त कर सकेगा। वस्तुत: श्री अरविन्द का दर्शन समन्वय का समर्थक है। वे जगत और ब्रह्म में

किसी का निषेध नहीं करते। वे जगत को भी क्रम का एक अंग मानते हैं। इसीलिए उन्होंने भौतिकता को अध्यात्म से समन्वित करने पर बल दिया है। और इस प्रकार जीवन को समग्र दृष्टि से देखकर सुख और शान्ति की कल्पना की है।"२१ "स्वर्ण-किरण", 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' कृतियों में इसी दृष्टान्त का आकलन है। 'स्वर्णकिरण' इस दर्शन की पहली कृत्ति है जिसमें प्रयुक्त प्रतीक उर्ध्वमुखी चेतना से संबद्ध है। 'हिमाद्रि' कविता में हिमालय का प्रयोग कवि के ऊर्ध्व चेतना के लिये किया है–

"मानदण्ड भू के अखण्ड है,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण
प्रिय हिमाद्रि तुमको हिमकण-से
घेरे मेरे जीवन के क्षण
मुझ अंचलवासी को तुमने
शैशव में आशा दी पावन
नभ में नयनों को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।"२२

'इन्द्रधनुष' का प्रयोग अखण्ड शक्ति, अतुल सौन्दर्य और शाश्वत प्रेम के अर्थ में है। 'अशोक-वन', 'स्वर्णोदय, ऊषा (मनः स्वर्ग) जैसी लम्बी कविताओं पर भी अरविन्द दर्शन की स्पष्ट झलक है। किन्तु स्वर्णकिरण में प्रयुक्त प्रतीक अत्यधिक रहस्यमय और जटिलता से ओत-प्रोत है जिसकी गहराई तक साधारण पाठक पहुंच नहीं सकता। इसका कोई विशेष प्रभाव पाठक पर नहीं पड़ता। वह इसकी जटिलता में उलझ जाता है या भटक जाता है उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता। भले ही कवि की अंतर्दृष्टि अरविन्द दर्शन को संक्रान्ति काल के लिये अमूल्य मानती हो। स्वर्ण-किरण की तरह 'स्वर्ण-धूली' में भी चिन्तन को उद्धत किया गया है। अन्तर यह है कि इसमें आध्यात्मिक-भौतिक चिन्तन के बदले मानवता का चिन्तन प्रधान है। पर कोरे सिद्धान्तों के प्रचारात्मक दृष्टिकोण से उसकी काव्यात्मकता को ठेस पहुंची है। 'पतिता', 'परकीया', 'श्रमजीवी' में सामाजिक समस्याओं की भर्त्सना है 'सामाजिक रूढ़िवादिता हमारी कमजोरी है, हमारी भूल है, हमारा दुर्गुण है परन्तु उसे सुधारना, उसे सौन्दर्यान्वित

करना, उसे जीवन के समकक्ष ले आना, उसे नया बनाना, उसे नवीनता से अनुप्राणित करना, उसे नवीन संस्कृति के अनुकूल बनाना मानव का कार्य है।' २३ यथा–

"जा रहा प्राचीन
तर्जन कर, गर्जन कर
आ रहा चिर नवीन
वर्षण कर, सर्जन कर।" २४

पन्त दुर्गुणों की स्थिति से ऊपर उठाकर जीवन को सौन्दर्य से मंडित करते हैं ऐसा नवीन संस्कृति में ही सम्भावित है। सामाजिक समस्याओं के साथ प्रणयपरक कविताएं भी स्वर्णधूलि में है। ये प्रणयपरक रचनाएं चिन्तन के रूप में उभरी हैं जो पिछली रचनाओं से एकदम अलग है।

'ग्रन्थि और पल्लव अथवा भावी पत्नी के प्रति आदि रचनाओं में कवि अपने हृदय को आवेश में पाकर उसके सभी बन्धन खोल देता है और उन्मादी की भांति

अपनी उन्मत्त प्रकृति का परिचय देता है परन्तु स्वर्णधूलि में कवि का प्रणय संबंधी चिन्तन प्रारम्भ होता है। आवेश में चिन्तन को स्थान नहीं मिलता है और चिन्तन में आवेश तितर-बितर हो जाता है। चिन्तन वस्तुत: अवकाश की निधि है।' २५ कवि की स्मृति प्रणयबद्ध होकर भी उसे निराशा और असफलता में जीने को बाध्य नहीं करती, प्रणय तो कवि के लिये साधना है–

"प्राणों में चिर व्यथा बांध दी।
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी।" २६

प्रगतिशील साहित्यकार पन्त ने परम्परा को रूढ़ि से विलग कर निरन्तर आगे की ओर प्रस्थान किया है। यह प्रगति युगपरिवर्तन के प्रति सजग और प्रबुद्ध चेतना की देन है। अपनी अनुभूति को परिवर्तित सत्य के अनुसार नये मूल्यों का सृजन तथा पुराने मूल्यों में युगानुकूल संशोधन और परिवर्द्धन जागरूक साहित्यकार हेतु संभव है। पन्त की सजग चेतना इसका दृष्टान्त है। 'उत्तरा' की भूमिका में उनका मन्तव्य है 'मैंने सदैव ही उन आदर्शों, नीतियों तथा दृष्टिकोण का विरोध किया है जो पिछले युगों की संकीर्ण

परिस्थितियों के प्रतीक है जिनमें मनुष्य विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों तथा वर्णों में विकीर्ण हो गया है। उन सभी विश्लिष्ट सांस्कृतिक मान्यताओं के विरुद्ध मैंने युग की कोकिल से पावककण बरसाने को कहा है जिनकी ऐतिहासिक भूमि खिसक गई है और जो मानव चेतना को अपनी खोखली भित्तियों में विभक्त की हुई है।' २७

यहां पन्त का आशय खोखलेपन की रिक्तता को तोड़ना है तथा समसामयिक बोध को उजागर करना है–

"तुम खोलो जीवन बंधन
जन मन बंधन
जीर्ण नीति अब रक्त चूसती जन का
सदाचार शोषक मन के निर्धन का
स्वार्थी पशु
मुख पहने मानवपन का।" २८

या फिर–

"छिन्न करो जड़ पाश पुरातन
भग्न रुद्र प्राणों के बंधन
गत आदर्शों की बाहों से
मुक्त करो जन-जीवन।" २९

उसके भीतर भग्न रूढ़ बंधन से स्वतन्त्र होने की छटपटाहट है। रूढ़ियों से चिपके रहकर मनुष्य की उन्नति कभी नहीं हो सकती। ऐतिहासिक विकास की यात्रा में जीर्णता से संघर्ष करते हुए युग की जड़ता में नवीन चेतना को भरकर नूतनता को गति देने से प्रगति सार्थक हो सकती है। आज सर्वत्र क्रांति की आवश्यकता कवि को महसूस होती है। प्रकृति का प्रयोग मानव की उपासिका रूप में यहाँ है। यहां स्थूल चित्रण को मूर्तित किया गया है। "स्वर्णकिरण", 'स्वर्ण धूलि' और उत्तरा का परिवर्तित मोड़ 'अणिमा' में एक नयी प्रवृत्ति लेकर अवतरित है। प्रस्तुत संग्रह में प्रकृति संबंधी कविताओं के अतिरिक्त कविता कई हिस्सों में बंटी है एवं उनकी प्रेरणाभूमि युग जीवन के आयामों को संस्पर्श देती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों तथा प्रतीकों में साकार हुई है। यहां

अतिमा शब्द का प्रयोग भी एक विशेष अर्थ में लिया गया है। 'अणिमा का प्रयोग मैंने अतिक्रांति अथवा महिमा के अर्थ में किया है कि जिसे अंग्रेजी में ट्रान्सन्डेन्स कहते हैं। वह मन:स्थिति जो आज के भौतिक मानसिक सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो। अतिमा में नये अरूणोदय का दर्शन कराया गया है।'३०

"जग - जीवन में रे अस्तोदय
मैं मानस-धर्मा, अक्षय वय
आओ, तम के कूल पार कर
नव अरूणोदय तुम्हें दिखाऊं।"३१

'युगांत' से लेकर 'अणिमा' तक पन्त की काव्यात्मक दृष्टि का विश्लेषण करने से स्पष्ट विदित होता है कि पन्त बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। युग-सत्य से साक्षात्कार करके भी उनकी लेखनी सामयिक बोध से जुड़ती है तो मानवता के प्रति अपार सहानुभूति ही साकार करती है। उनकी कविता की प्रमुख विशेषता विश्वकल्याण से उत्प्रेरित है। अरविन्द के दर्शन को अपनाकर उन्होंने समष्टि के विकास का पथ उन्मुख किया है। पन्त के ऊपर अपनी समृद्ध परम्परा का प्रभाव अंकित है। 'पन्त का सर्ववाद और विश्वमानवतावाद भी संपूर्णत: भारतीय संस्कृति का प्राचीन सूत्र है।' 'सब सुखी हो, सभी का कल्याण हो में राष्ट्रीय सीमाओं को अतिक्रमण करती हुई चेतना का स्वरूप मिलता है।'३२ पन्त का भाषा प्रयोग अत्यन्त परिष्कृत और संस्कृतनिष्ठ है। उनके शब्दों में प्रयोग आकर्षणीय है। शब्दों की आत्मा और शरीर का जितना सूक्ष्म ज्ञान पन्त को है उतना हिन्दी में गिने-चुने कवियों को ही होगा। जो शब्द जहां पर जड़ दिया गया उसका स्थान वहीं पर निश्चित रहेगा। पन्त के लिए एक-एक शब्द मूर्त रूप रखता है अत: हमको उनकी कविताओं में एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न पर्यायवाचियों के चित्रोपम प्रयोग मिलते हैं। उनकी चक्षुरिद्रिंय जितनी अंत: प्रवेशिनी है श्रोतेन्द्रिय उतनी ही सूक्ष्मग्राहिणी है।'३३ पन्त की कविताओं में लक्षणा का भी प्रयोग है। कहीं-कहीं दुरूह भाषा-प्रयोग भी है। पुराने छंदों के साथ पाश्चात्य छंदो का निर्वाह है। छंदो के प्रयोग में पन्त बहुत सजग है। पन्त ने अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष हेतु किया है। इनके काव्य में द्रष्टान्त, विसंगति, अन्योक्ति के साथ मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यर्थ व्यंजना का विपुल प्रयोग मिलता है। बिंब योजना भी अत्यन्त सुन्दर है। इनके काव्य में प्रगीत

काव्य की सहजता और भावोन्मेष का भी सुन्दर उपयोग है। इस प्रकार पन्त का सम्पूर्ण काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रगतिशील है।

अंत में यही कहना तर्कसंगत है कि पंत ने सदैव अपने युगीन परिवेश के सन्दर्भ में समकालीन सत्यों को अन्नवेषित किया है पर उन्होंने भारतीय पम्परा का कहीं भी विरोध नहीं किया। उन्होंने बंधी-बंधायी लीक का उल्लंघन किया है। 'युगांत से अतिमा' तक इस प्रयत्न को देखा जा सकता है। पुरानी जड़ रूढ़ियों आदि से मुक्ति की जो वाणी पंत ने उठाई है वह युग चेतना से संपृक्त है। क्योंकि परिवर्तन में प्रगति होती है। पंत के काव्य में नई चेतना व्यक्तिवाद से अंततोगत्वा समष्टिवाद, समष्टिवाद से विश्वकल्याण की ओर अभिप्रेरित है। इसको कोई भी कारण देकर नकारा नहीं जा सकता। सुमित्रानंदन पन्त की सर्जनात्मक प्रतिभा अपने में अद्वितीय है।

छायावादी संस्थान के द्वितीय प्रमुख कवि क्रांतिपुरूष निराला का व्यक्तित्व अपने आप में बेजोड़ है। निराला ने छायावाद को ही सुदृढ़ पीठिका प्रदत्त कर विराम नहीं किया प्रत्युत छायावादोत्तर काव्य में उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने चमत्कारिक प्रयोग कर अपने वैशिष्टय को एकदम अलग और एक नयी ही भंगिमा में उपस्थित किया है। युग की नयी आवश्यकताओं के अनुरूप निराला की दीप्त मेधा ने भारतीय परम्परा में नये प्राण फूंके तथा नयी दिशा को प्रवेश दिया साथ ही साथ नव्यता को भी प्रतिस्थापित किया ताकि परम्परा रूढ़ियों, विषमताओं का त्याग कर अधिक शक्ति व गति के बीच बहकर नैरन्तर्य से जुड़ी रह सके। उनकी सम्पूर्ण सृजनात्मक प्रक्रिया के अवलोकन से विदित होता है कि निराला परम्परा का विरोध नहीं करते, न प्रतिक्रियात्मक रूख अपनाते हैं। परम्परा के स्वस्थ अंशों का निर्वाह करती उनकी सजग चेतना प्रगति और प्रयोग की रचनाओं का सूत्रपात करती है। निराला के काव्यप्रयोग सचमुच हिन्दी जगत में अविस्मरणीय है। वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्रों में वे प्रयोग को महत्व देते हैं। जहां वस्तु के अन्तर्गत वे नये-नये प्रयोग करते हैं वहीं वस्तु के अनुरूप भाषा के क्षेत्र में भी बहुलता से प्रयोगात्मक दृष्टि अपनाते हैं। निराला काव्य के ये प्रयोग सायास नहीं है, मौलिक है एवं प्रखर भावचेतना के द्योतक हैं। जिस प्रकार सर्प अपने पुरातन निर्मोक को उतार देता है क्योंकि उसे उसकी आवश्यकता नहीं रहती, जिस प्रकार नये वस्त्र पुराने शीर्ण वस्त्रों के त्याग की आवश्यकता को प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार सांस्कृतिक परम्परायें जो कभी उपयोगी समझी गयी होगी, युग की नयी आवश्यकताओं के अनुरूप

अपना स्वस्थ परिवर्तन कर लेती है अथवा करने के लिये विवश हो जाती है। जो क्रान्तिकारी युगद्रष्टा परम्पराओं को परिवर्तन की दिशा देता है वह क्रान्तिपुरुष कहलाता है।'३४ निराला एक ऐसे ही क्रान्तिपुरुष हैं जिनके काव्य में निहित व्यापकता में प्रगति और प्रयोग का संगम अनूठा है। दूसरे शब्दों में यह कहना ज्यादा सही होगा।

निराला जी के विकास की समूची परम्परा हमें सिखाती है कि 'देश की तत्कालीन परिस्थितियों' के साथ बढ़कर परिवर्तन की घड़ी लाने के लिये हिन्दी कवियों और लेखकों को आगे बढ़ना है।'३५ इस प्रकार निराला के द्वारा हिन्दी कविता को एक नयी विकासात्मक काव्यभूमि मिलती है। यह निराला के विराट व्यक्तित्व की देन है जहां वस्तु और शिल्प दोनों में अभिव्यंजना की प्रणाली नये-नये प्रयोग करती है और नये प्रयोग परवर्ती कवियों के लिये भी महती प्रेरणा का कार्य करते हैं और निराला को एक अन्यतम स्थान दिलाने का गौरव भी प्रदत्त करते हैं।

'परिमल' निराला का प्रथम काव्य संग्रह है जिसमें निराला की प्रतिभा विभिन्न दिशाओं का संस्पर्श करती है जैसे 'जूही की कली', 'यमुना के प्रति', 'प्रिया के प्रति', 'शेफालिका' आदि कविताएं एक तरफ है, दूसरी तरफ 'जागो फिर एक बार-१', 'जागो फिर एक बार-२', 'महाराजा शिवाजी का पत्र' कवितायें है, एवं 'विधवा', 'भिक्षुक', 'बहू', 'दीन' रचनाएं सामाजिक चेतना का संवहन करती है, 'बादल-राग' तो मानों निराला को बादलों के कवि के रूप में प्रसिद्धि साकार कराती है। किसी भी कवि की रचना में ऐसे बहुमुखी प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है। जूही की कली में मुक्त छन्द का प्रयोग है। इसमें स्वस्थ और स्थायी प्रेम को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है: जैसे–

"विजन - वन - वल्लरी पर
सोती थी सुहाग - भरी - स्नेह - स्वप्न - मग्न
अमल - कोमल तनु तरूणी - जुही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक में।"३६

'यमुना के प्रति' कविता में पौराणिक विषय को नवीनता से परखा गया है–

"किस अतीत के स्नेह सुहृद को

अर्पण करती तू निज ध्यान
ताल-ताल के कम्पन से द्रुत
बहते हैं ये किसके गान।"३७

'शेफालिका' में भी जूही की कली की तरह स्वस्थ यौवन का चित्रण है–

"बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यास से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।"३८

'जागो फिर एक बार' में जागृति की प्रेरणा है– दूसरे भाग में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का संबल लेकर वीरता का वर्णन है–

"उगे अरूणाचल में रवि
आयी भारती-रति कवि-कण्ठ में,
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति-पट
गया दिन, आयी रात,
गयी रात, सुला दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने ही हजार-
जागो फिर एक बार।"३९

तथा–

"जागो फिर एक बार
सत श्री अकाल
भाल - अनल धक-धक कर जला
भस्म हो गया था काल
तीनों गुण-ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम

मृत्युंजय व्योमकेश के समान,
अमृत-सन्तान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण-मरण-लोक,
शोकहारी पहुंचे थे वहां
जहां आसन है सहस्त्रधार
जागो फिर एक बार।"४०

'महाराज शिवाजी का पत्र' में एक बार पुन: सांस्कृतिक उत्थान का अंकन है 'जितने विचार आज' – स्वतन्त्रता की भावोत्तेजना के लिये हृदय पर सीधी चोट करने के लिये यहां धिक्कार और भर्त्सना का प्रयोग भी किया गया है। समाज के पतित चित्र और औरंगजेब के अत्याचारों की स्मृति दिलाई गई है जो उद्दीपन कार्य करती है।'४१ निराला की प्रगतिशीलता सामाजिक परिपाश्र्वो को भी स्पर्श करती है। उनकी विधवा, भिक्षुक, बहू और दीन कविता द्रष्टव्य है

'विधवा' में कवि के अन्तर की पीड़ा मूर्तित है–

"वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरू की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।"४२

यहां निराला ने भारतीय रूढ़ि की भर्त्सना की है। 'भिक्षुक' में भी शोषण के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई है। 'भिक्षुक' में भिक्षुक का रूप-वर्णन मात्र संवेदना के धरातल पर वर्णित नहीं है वह तो इन दीन-हीनों को इस अवस्था से उबारने का प्रयास है-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता।"४३

ये सभी कवितायें निराला के सामाजिकबोध से सम्पृक्त है। निराला की 'बादल-राग' की कवितायें तो विलक्षण है, अप्रतिम है। वह क्रांति की भावना से ओत-प्रोत है।

'परिमल' काव्य-संग्रह में संग्रहित कविता के विविध ये रूप बहुत ही प्रभावशाली और आकर्षणीय है। मात्र उन्हीं के आधार पर कहा जा सकता है कि निराला चिर प्रयोगी हैं। काव्यविकास की प्रक्रिया में नये-नये प्रयोग का अनुसंधान ही निराला को हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में अग्रगण्य स्थान दिलाते हैं।

'गीतिका' में निराला के गीत कई स्रोतों में बंटे हैं जैसे– नारी-सौन्दर्य तथा श्रृंगार से सम्बन्धित गीत प्रकृति सम्बन्धित गीत, स्वच्छन्द भावभूमि पर रचित गीत। श्रृंगार सम्बन्धित गीतों का एक उत्कृष्ट उदाहरण द्रष्टव्य है–

"नयनों के डोरे लाल गुलाल- भरे, खेली होली!
जागी रात सेज प्रिय पति - संग रति सनेह - रंग घोली
दीपित, दीप - प्रकाश, कंज छवि मंजु - मंजु हंस खोली
मली मुख चुम्बन रोली।"४४

प्रकृति से सम्बन्धित गीत भी मिलते हैं–

"(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज - द्वग अरूण – मुख -
तरूण - अनुरागी।"४५

कहीं प्राचीन के प्रति आक्रोश मुखर है–

"जला दे जीर्ण - शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तन जीवन-हीन।"४६

गीतिका की स्वछन्द प्रवृत्ति के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत यहां उल्लेखनीय है। 'गीतिका' में संघर्षमय अनुभूतियों की पीठिका भी जगह-जगह मिल जाती है जिसने उनके परवर्ती काव्य को मोड़ दिया। 'बहु-वस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा निराला में है।' 'अज्ञात प्रिय' की ओर इशारा करने के अतिरिक्त इन्होंने जगत के अनेक प्रस्तुत रूपों और व्यापारों को भी अपनी सरल भावनाओं के रंग में देखा है।'४७ 'गीतिका' में कवि की प्रतिभा एक सीमित दायरे से प्रतिबद्ध होकर प्रकट हुई है।

'अनामिका' में इस प्रतिभा का चमत्कारिक स्वरूप दिखलाई पड़ता है। एक ओर 'सरोज-स्मृति' में वैयक्तिक वेदना फूटी है, 'वन-बेला' में सामाजिकविषमता का उद्‌घाटन है, 'तोड़ती पत्थर' में इलाहाबाद के पथ पर भीषण ताप में पत्थर तोड़ती मजदूरनी का वर्णन है, 'नर्गिस में पृथ्वी के सौन्दर्य को स्वर्ग मानकर कवि का प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य उद्धत है, सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति में स्वच्छन्द प्रेम-विवाह में पुरातन प्रेम सम्बन्धी धारणा का विरोध है।

'राम की शक्ति पूजा' में सांस्कृतिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। हालांकि मनुष्य के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को विशेष महत्ता मिली है। 'राम की शक्ति पूजा' का नायक अपनी परम्परागत लीक से हटकर आधुनिक मानव के कमोजर और दुर्बल अंश का प्रतिनिधित्व करता है।

"धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।"४८

इस प्रकार राम के चरित्र को परम्परा से लेते हुए भी नये परिप्रेक्ष्य में उनको चित्रित किया है।

'तुलसीदास' काव्य इतिहास प्रसिद्ध महाकवि तुलसीदास के जीवन पर आधृत है किन्तु यह कविता एक ओर इतिहास से अनुस्यूत होकर अतीत को एक बार फिर वाणी देती है तो दूसरी ओर मुगलकालीन भारतीय संस्कृति को साकार करती है और इतिहास पर नई दृष्टि फेंकती है। यहां उसका मुख्य अभीष्ट है कि कामासक्ति अजेय नहीं होती। नारी केवल काम में ही मनुष्य को नहीं बांधती, मनुष्य को अपने बंधन से मुक्त कर उसे एक नया जीवन भी दे सकने में सक्षम है–

"बंध के बिना, कह कहां प्रगति
गति-हीन जीव को, कहां सुरति
रति-रहित, कहां सुख केवल क्षति-केवल क्षति
यह क्रम विनाश इससे चल कर
आता सत्वर मन निम्न उतर
छूटता अन्त में चेतन स्तर, जाती-मति।"४९

इस प्रकार निराला तुलसीदास की परम्परा से संबद्ध होकर सांस्कृतिक नवोत्थान के लिये कोशिश करते हैं। 'तुलसीदास' भी एक प्रयोग है। 'तुलसीदास' के पश्चात निराला की सृजन प्रक्रिया एक नया मोड़ लेती है। यहीं से निराला एक सार्थक यथार्थ अनुभूति सम्पन्न प्रयोगशील कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। परवर्ती काव्य रचनायें बिल्कुल नये प्रकार की हैं जो युगीन सत्यों से साक्षात्कार करती हुई सत्य में कल्पना का, सौन्दर्य का मिश्रण कर प्रस्तुत नहीं करती, सत्य को व्यंग्य और विद्रुपता में ही अंकित करती है जो हृदय पर सीधी चोट करें, पाठक को तिलमिला दे। 'इस संग्रह की कविताएं जैसे हिन्दी कविता की भावसम्पदा की उस सम्पूर्ण परम्परा, कल्पना प्रवणता और तथाकथित अनुभव समृद्धि के छलावे पर सामूहिक रूप से प्रहार करती है जिससे छायावादी कविता ग्रस्त थी। लेकिन यह प्रहार निराला की अपनी ही या अपने दूसरे समकालीन कवियों की स्थापित और मान्यताप्राप्त, लोकप्रिय काव्य वृत्ति को तोड़ने के लिये नहीं, बल्कि अपनी नयी शक्तिमता और सार्थकता को उतनी ही महत्ता और मूल्यवता से स्वीकृत कराने के लिये एक आस्थाशील हठ के रूप में है।'५० निराला ने जीवन की असंगतियों और अंतर्विरोधों को समझकर विकासशील और प्रतिगामी शक्तियों के संघर्ष को परम्परा और प्रयोग के उचित समन्वय के द्वारा विश्लेषित करने की चेष्टा की है। क्योंकि विगत परम्परा से पूर्णतया कटकर एकांगी प्रगति का प्रयास सदैव निष्फल होता है। निराला ने प्रारम्भ से ही बुराइयों का पर्दाफाश किया है परन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दप्रयोग, अभिव्यंजना के तरीके भी निराले ही हैं। वास्तव में 'निराला काव्य की क्रांतिकारी भूमिका में प्रखर भावोद्वेगों का बाहुल्य है। ऐसी स्थिति में निराला काव्य के प्रयोग उनके उद्दाम व्यक्तित्व और भावचेतना से संबद्ध हो जाते हैं।'५१ उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रयोगशीलता की वृत्ति में अभिवृद्धि ही मिलती है। कुकुरमुत्ता को लें तो वह भी एक प्रयोग है। यह उनकी सशक्त क्षमता को प्रकट करती है। गुलाब और कुकुरमुत्ता के प्रतीक के जरिये व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य निराला की तीक्ष्ण बुद्धि की परिचायिका है। कहीं-कहीं गूढ़ संदर्भ है जो सहजता से अर्थबोध की व्याख्या नहीं दे पाते। यथा–

"मैं कुकुरमुत्ता हूं
पर वेनजाइन वैसे,
बने दर्शनशास्त्र जैसे

ओमफलस और ब्रह्मवर्त
वैसे ही दुनिया के गोले और पर्त्त।"५२

दूधनाथ सिंह की उक्ति इस सम्बन्ध में तर्क संगत है 'उनकी ताजगी, उनके शब्द-प्रयोग, उनकी गद्यात्मकता का कवित्व, भाषा का अजीब सा छिदरा-छिदरा संघटन, अन्दर तक चीरता हुआ व्यंग्य और उन्मुक्त हास्य-क्षमता तथा कठोरता के कवच में छिपी अगाध 'अप्रत्यक्ष' करूणा और उपेक्षित उन्नयन के प्रति गहरी आस्था, 'निराला' की रचना और काव्य दृष्टि के एक नये 'सर्वथा अछूते नहीं' आयाम को हमारे सामने उद्घाटित करती है।'५३ 'बेला' मे ंतो निराला की प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का एक अनूठा रूप परिलक्षित होता है। इसमें निराला ने उर्दू की गजल शैली की बहरों का प्रयोग किया है। उर्दू बहरों का प्रयोग नवीनता को इंगित करता है।

"निगाह तुम्हारी थी
दिल जिससे बेकरार हुआ
मगर मैं गैर से मिलकर
निगाह के पार हुआ।"५४

उर्दू मिश्रित शैली का एक अन्य प्रयोग भी दर्शनीय है–

"अंधेरा छाया रहा
रोशनी की माया में
कहीं भी छाया का आंचल
न तार-तार हुआ।"५५

इन गजलों के प्रयोग ने निराला को प्रयोगवाद और नई कविता के प्रयोगात्मक लक्ष्य से कहीं आगे ही उच्च स्थान दिया है। ये प्रयोग शुद्ध रूप से प्रयोगात्मक है।

काव्य परम्परा में ऐसे सफल प्रयोग अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। 'नये-पत्ते' में उनकी प्रयोगशक्ति विविधता लिये है। 'रानी और कानी', खजोहरा, मास्को डायलाग्स, गर्म-पकौड़ी, झिंगुर डटकर बोला, महंगू महंगा रहा आदि कवितायें इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'रानी और कानी' में एक नया रूप दृष्टिगत होता है। इस कविता में प्रयुक्त शब्द प्रयोग निराला जैसे व्यक्तित्व के लिये सम्भव हैं।

“कांपे कुल अंग
दाई आंख से
आंसू भी बह चले मां के दुख से
लेकिन वह बाई आंख कानी
ज्यों की त्यों रह गई रखती निगरानी।”५६

दाई आंख से बहते आंसू में निराला की करूणा तीव्र व्यंग्य को सजीव करती है। ‘खजोहरा’ में भी व्यंग्य आकर्षणीय है–

“बुआ ने कहा “मुआ खजोहरा”
नहाते नहाते मुझको लग गया
घी ले आई अम्मा, पूछा “कहाँ लगे?”
बुआ ने कहा कि नहीं बची जगह।”५७

‘मास्को डायलाग्स’ में विनोदात्मक व्यंग्य का प्रयोग है–

“देखा उपन्यास मैंने
श्री गणेश में मिला
“पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।”
इसको फिर रख दिया “मास्को डायलोग्स।”
देखा गिडवानी को।”५८

‘गर्म-पकौड़ी’ मे भी इसी तरह संकेतात्मक प्रयोग अतीव नुकीला और पैना है–

“पहले तूने मुझको खींचा
दिल लेकर फिर कपड़े सा फींचा
अरी तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी।”५९

“झींगुर डटकर बोला” में पुनः जमींदारों के अन्याय-अनाचार का पर्दाफाश है जिसमें सामाजिक जीवन की विद्रुपता ही दिखलाई पड़ती है–

"झिंगुर डटकर बोला
चूंकि हम किसान सभा के
भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली को
ऐसा यह पेच है।"६०

'महंगू महंगा रहा' भी एक नया प्रयोग है जहां कवि ने मनुष्य के मूल्य को स्वर दिया है 'राजे ने अपनी रखवाली की' में सामंतवादी व्यवस्था के विरोध में आक्रोश है। अस्तु विषय और शैली की दृष्टि से इस काल की रचनाएं सचमुच प्रभावोत्पादक और मर्मस्पर्शी है। निराला की कविता ने अपनी अनुभूति की स्पष्ट और सजीव अभिव्यक्ति के लिये प्रयोग का अवलम्बन लिया है एवं इस प्रयोगशील कलाकार ने जो भी कुछ कहा है दृढ़ आस्था और विश्वास की भूमि पर अडिग खड़े होकर उनका प्रयोग किसी वाद से सम्बन्धित नहीं है, न प्रयोग के लिये प्रयोग है। वह तो स्वतः स्फूर्त है, कविता को नयी संभावना और नये आयामों के भीतर से मोड़ देता है ताकि उसका क्षेत्र अधिक विस्तृत और उज्ज्वल बन सके। 'अणिमा' में निराला का यह जोजस्वी रूप तो दृष्टिगोचर नहीं होता पर कहीं व्यक्तिगत चित्रण हुआ है, कहीं कवि का सरल अन्तःकरण मूर्तित है–

"मैं अकेला
देखता हूं आ रही।"६१
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला
जानता हूं नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूं, हंस रहा हूं यह देख
कोई नहीं भेला।
या फिर–
स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।"६२

'देवी सरस्वती' भी एक विलक्षण कविता है जो पुनः निराला कला मर्मज्ञता को प्रकाशान्वित करती है जो मानवता का नवनिर्माण करने के कांक्षी है। इस मोड़ के पश्चात निराला की रचनाओं में एक नयी दृष्टि दिखती है। 'अर्चना और आराधना में भक्ति भावना को अब प्रश्रय मिलता है। यहां भी वह प्रयोग से चूकता नहीं कहीं-कहीं अर्थ साधक प्रयोग का इस्तेमाल है–

"गगन गगन है गान तुम्हारा
धन-धन जीवन यान तुम्हारा।"६३

अथवा–

"हरिण नयन हरि ने छीने हैं।
पावन रंग रग-रग भीने हैं।"६४

अन्तर्वेधिनी और सूक्ष्म पत्तों को उघारने में सक्षम है। वे सर्वत्र पुरानी विगलित मान्यताओं, आदर्शों का प्रतिरोध करते मिलते हैं। इस प्रतिरोध में व्यंग्य की शैली विशेषतया अपनाई है। सामाजिकजीवन में परिव्याप्त बुराईयों प्रदूषणों के विरुद्ध उठी उनकी लेखनी क्रूरता, खोखलापन, अनाचारों को मूर्तित करती है वहां कवि के प्रयोग बहुत ही आकर्षक और मनोहर बन पड़े हैं। निराला ने अपनी -अपनी परम्परा का कहीं भी विरोध नहीं किया वे परम्परा को युगीन चेतना और मानसिकता के अनुसार अर्जित करते हैं। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा पुराने का निषेध करते हुए नये का वरण नहीं करती। निराला ने परिवर्तन की दिशा और ऐतिहासिक आवश्यकता को समझते हुए परम्परा को अधिक जीवंत बनाने के लिए प्रयोग के द्वारा नया विकास हिन्दी कविता को दिया है। उनका प्रदेय मूल्यवान है। अंत में यह कहना ठीक होगा कि–

'निराला की कविता भी स्वच्छन्दतावाद के उस क्रांतिकारी प्रगतिशील रूप का प्रतिनिधित्व करती है, कोरी कल्पनाओं तथा थोथे स्वप्नों से जिसका कोई संबंध नहीं, जिसकी कल्पनाएं तथा स्वप्न युग की वास्तविकताओं की उपज है। स्वच्छन्दतावाद का यह रूप कवि को आकाशचारी न बनाकर धरती तथा जीवन की वास्तविकताओं से संबद्ध करता है, पलायन तथा पराजय की भूमिकाओं में उसे निःशेष न कर, कर्म की प्रेरणा देता है, 'व्यक्ति' की अंधी गलियों में उसे न भटकाकर 'अनगिनत आ गए, शरण में जन, जननि', 'माँ अपने आलोक निखारों नर को नरक त्रास से उबारो तथा 'दलित

जन पर करो करूणा' जैसे गीतों की प्रशस्त भाव भूमि प्रस्तुत करता है, केवल बंधी-बंधाई, घिसी पिटी लीकों को ही परंपरा प्रेम के नाम पर छाती से चिपकाए रहने के स्थान पर उसे प्रशस्त भावबोध के लिए व्यापक क्षितिजों की ओर देखने की प्रेरणा देता है और इस क्रम में उसे प्रवर्तन के लिए नया आत्मविश्वास और नई शक्ति देता है।'६५

वस्तुतः पन्त और निराला दोनों छायावादी संस्थान के कीर्ति स्तम्भ होते हुए भी छायावादोत्तर काल में अपनी सर्जनत्मक क्षमता को अधिक प्रखर और प्रगति से पूर्ण करने में सफलीभूत हुए हैं। परम्परा इनकी प्रगति में बाधा नहीं डालती। परम्परा और प्रयोग के समन्वय द्वारा इन कवियों ने नये सृजन को स्वर दिया है, विविध रूपों का अन्वेषण किया है जो अत्यन्त उत्कृष्ट है, अविस्मरणीय है।

"ख"

रोमांटिक काव्यधारा

छायावाद के उत्कर्ष काल में छायावाद की परम्परा से प्रभावित होकर भी, मौलिकता को पूर्ववर्ती काव्यधारा के तत्वों से अनुस्यूत करके भी एक सर्वथा भिन्न नई अभिव्यक्ति प्रणाली का प्रस्फुटन हुआ जिसे रोमांटिक काव्यधारा के नाम से जाना जाता है। वास्तव में कोई भी नई काव्यधारा परम्परा का उच्छेदन कर उदित नहीं होती। वहां पुराना और नया का मिश्रण एक नये रंग का निर्माण करता है। उत्तरछायावाद का रोमांटिक भाव बोध छायावाद के तत्वों से ही अनुस्यूत है। परम्परा से आविर्भूत है। वह एक नई दृष्टि है जो प्रयोग के द्वारा विकसित हुई है। मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ उसकी प्रकृति और संवेदना में भी विस्तार हुआ है। युगीन सत्य के परिप्रेक्ष्य में नये सत्य का वरण उसकी जागृत चेतना की मांग हुआ करती है। इसके लिए वह तटस्थता से अतीत को देखता है और वर्तमान से भी जुड़ता है। इससे उसकी संवेदनात्मक दृष्टि काव्य धारा में निहित नैरन्तर्य को मांजती-संवारती रहती है। छायावाद और रोमांटिक भाव बोध के बीच एक अंतर हो गया था वह यह कि अतिशय काल्पनिकता, आदर्शप्रियता, आवरणप्रियता के बंधन में फंसकर कविता की धारा को अपना प्रशस्त पथ अवरूद्ध दिखाई पड़ने लगा था। इसके अलावा सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होकर, अज्ञात अशरीरी अवलम्बन के माध्यम से अभिव्यक्ति में अधिक

विस्तार की गुंजाइश परिलक्षित नहीं हो रही थी। फलत: कविता में एक नये मोड़ की आवश्यकता महसूस हो रही थी। जैसा कि डॉ॰ रघुवंश की अवधारणा है 'छायावाद की यह स्थिति बहुत दिनों तक संभव नहीं थी। जीवन की अस्वीकृतियों को गौरवान्वित करके, मानसिक कुण्ठाओं को छिपाकर कल्पनालोक के छायाभास और रहस्याभास, वैभव को अपने आप में भुलाये रहना अधिक संभव नही था। और सामाजिक भावनाओं के लिये अज्ञात अशरीरी आलम्बन का रहस्यात्मक आधार भी अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हो सका। परिणामस्वरूप आज के काव्य में नया मोड़ स्वाभाविक था।'६६ रोमांटिक काव्यधारा के प्रणेता कवियों ने छायावाद की आदर्शप्रियता अशरीरी आध्यात्मिक रहस्यात्मक प्रवृत्ति के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट की। उसके ही तत्वों में निजी प्रगाढ़ता अनुभूतियों को अनुस्यूत कर एक अभिनव काव्यधारा की सर्जना की जिसका स्वरूप और अभिव्यक्ति का ढंग छायावाद से बिल्कुल अलग था। कतिपय उदाहरणों के द्वारा इस पार्थक्य को रेखांकित भी किया जा सकता है। छायावादी कविता वैयक्तिक संवेदना पर आधृत थी। छायावादी कवि वैयक्तिक संसार से प्रतिबद्ध था। अतएव उसकी प्रकृति वायवी और अस्पष्ट थी। उनकी वैयक्तिक-स्वातन्त्रय की स्वच्छन्दता भी आवरण से ढंक कर अन्तर्मुखी ही थी। इसके विपरीत रोमांटिक कविता वैयक्तिक संवेगो का प्रतिफलन थी। सामाजिक प्रतिबन्धों से क्षत-विक्षत उनकी भावानुभूतियां अधिक प्रखर और प्रत्यक्ष थी। उसकी प्रकृति स्पष्ट और अकृत्रिम थी। उनकी वैयक्तिक स्वातन्त्रय की स्वच्छन्दता अंकुशों का प्रतिरोध कर बर्हिमुखी हो उठी थी। वैयक्तिक सुख -दुख, आशा-निराशा, वेदना और पराजय की प्रवृत्ति छायावाद की विशेषता थी। इन कवियों ने जीवन की सच्चाई को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करने का दुस्साहस नहीं किया। भुक्त संवेगों की आवरण में प्रस्तुति की। रोमांटिक भाव बोध के अनुयायियों ने आपबीती को ज्यों का त्यों नि:संकोच होकर मूर्तित किया। इन्होंने निडरतापूर्वक अपने अन्तर के भावों को जनता जनार्दन के समक्ष उपस्थित किया। इससे इन्हें लोकग्राह्यता का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। प्रेम के क्षेत्र में छायावादी कवियों ने आदर्श का प्राबल्य दिखाया। उसका सूक्ष्म चित्रण कर उस पर आध्यात्मिकता का अनुलेपन किया। ठीक इसके विपरीत रोमांटिक कविता ने स्थूल प्रेम का आधार लिया। इसके संयोग और वियोग दोनों पक्षों का उदघाटन करते हुए शारीरिक, मांसल और मूर्त स्वरूप को ही अंकित किया। इसके अलावा वेदना, निराशा, क्षणभंगुरता, मृत्युपासना

आदि प्रवृत्तियों का भी अपने काव्य में समाहार किया। जहां कहीं भी कृत्रिमता और आडम्बर का दिग्दर्शन नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोमांटिक काव्यधारा छायावाद का ही अनुवर्ती विकास है। इसकी विषयवस्तु छायावाद के तत्वों से अनुप्रेरित होकर भी एकदम मौलिक है। छायावाद की परम्परा से इसका सम्बन्ध विच्छेद कर इसके अस्तित्व की परिकल्पना करना उचित नहीं है। यह छायावाद की परम्परा का अगला चरण है। जो छायावाद के तत्वों से प्रभाव अर्जित करने के उपरान्त भी छायावाद की परम्परा में आबद्ध होकर अवतरित नहीं हुआ। जिसने अपनी भूमि का निर्माण किया। अपनी एक अलग पहचान भी दी। जिसे अत्यधिक प्रखर स्पष्ट और सीधी सादी अभिव्यक्ति के कारण विविध नामों से अभिहित किया गया। वैयक्तिक गीत कविता, उत्तर छायावादी कविता, स्वच्छन्दतावादी कविता, आत्मपरक कविता, रोमाण्टिक कविता। पर इसे रोमाण्टिक काव्यधारा कहने से इसकी समस्त प्रवृत्तियाँ इसमें समाहित हो जाती है।

रोमाण्टिक काव्यधारा के प्रवर्तकों में श्री हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और रामेश्वर शुक्ल अंचल का नाम अग्रण्य हैं। इसके अन्यान्य कवियों में भी प्रेरणा के प्रभावस्वरूप इस काव्यधारा को अवदान दिया। इसमें आरसी प्रसाद सिंह, जानकी बल्लभ शास्त्री, गोपाल सिंह नेपाली और शम्भूनाथ सिंह का नाम विशेष स्मरणीय है। इन सभी कवियों की प्रवृत्तियों में समानता विद्यमान है किन्तु अभिव्यक्ति की शैली एक दूसरे से भिन्न है। प्रेम उनकी केन्द्रीय वृत्ति है। प्रेमजन्य सफलता-असफलता के द्वारा इनके निजी संवेगों का आवेग स्त्रोत पाता है। वेदना, निराशा और पराजय इनके अन्तःकरण को दुर्बल करती है। नियति को वह अपनी दयनीय अवस्था का एकमात्र कारण पाता है। जीवन की आपदाओं से प्रताड़ित दुर्बल मन मृत्यु की उपासना में भी आस्था रखता है। जीवन की क्षणभंगुरता में काल की कठोरता के समक्ष वह आत्मसमर्पण करता है। देखा जाए तो इस धारा के समस्त कवियों ने जीवन के कटु तिक्त अनुभवों से साक्षात्कार किया। एक ऐसे संक्रान्तिकालीन दौर में उनका पदार्पण हुआ था जहाँ संवेदनशील युवामानस पग-पग पर ठोकरों से आहत होता था। स्वप्न और अभिलाषाओं के बारम्बार टूटने से वह अपनी वैयक्तिक सत्ता से जूझता था। आत्मपीड़ा से सम्बद्ध स्थितियां अवस्थितियां ही उसकी आर्द्र आंखों के सामने बार-बार आकर उठती गिरती रहती थीं। इनके पास गहन अध्ययन था वे केवल समकालीन जीवन मूल्यों से अनुभव अर्जित कर रहे थे।

एक नई रोमानी दृष्टि का विकास करने में तल्लीन थे। अत: उनके हृदय से निसृतउद्गार में भावुकता की प्रधानता थी। उनकी दृष्टि रोमानी थी। भावों के अनुकूल भाषा भी अत्यन्त सहज और सरल रूप लेकर अवतरित हुई। छायावादी कवियों की भांति अलंकार, प्रतीक और उपमान के द्वारा इन्होंने कविता का श्रृंगार नहीं किया, न बिम्बों के प्रति आग्रह किया। इस प्रकार इन कवियों की आत्मचेतना धरती के परिवेश से संयुक्त होकर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विसंगतियों के मध्य यात्रा करती है। मूल प्रवृत्ति एकसम होने पर भी इनके स्वरों में भिन्नता है। इस भिन्नता को इनकी कविताओं के अध्ययन और मनन से देखा और परखा जा सकता है।

रोमाण्टिक काव्यधारा के उद्भव के मूलवर्ती कारणों की खोज करें तो इसके सूत्र युगीन परिवेश में निहित मिलते हैं। डॉ॰ नगेन्द्र की उक्ति की व्याख्या यहां समीचीन प्रतीत होती है–

‘साहित्य की शक्तियों का केन्द्र मध्यवर्ग में ही स्थित होने के कारण साहित्य में उत्कट व्यक्तिवाद की चेतना का आविर्भाव होना स्वाभाविक ही था। छायावाद काल के पूर्वाद्ध तक तो जैसा कि मैंने ऊपर कहा है जीवन पर एकमात्र आदर्शवादी चिन्ताधारा का ही प्रभाव था, परन्तु इसके उपरान्त सन १९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन की विफलता से देश की चिन्ताधारा आदर्शवाद से कुछ भिन्न सी होने लगी। समाज में कुछ ऐसे तत्व धीरे-धीरे उभरने लगे तो गांधीजी के आदर्शवाद से असन्तुष्ट होकर यथार्थ समस्याओं का यथार्थ समाधान चाहते थे। राजनीति में गांधीवाद के विरुद्ध वाम पक्षीय समाजवादी चिन्ताधारा का धीरे-धीरे आविर्भाव होने लगा और यह प्रभाव स्वभावत: राजनीति से आगे बढ़कर सामाजिक और बौद्धिक जीवन पर भी पड़ने लगा। आर्थिक विषमताओं ने बेकारी आदि ने उसे और भी प्रोत्साहन दिया। इसके फलस्वरूप सूक्ष्म आदर्श परक जीवन के प्रति अनास्था और स्थूल यथार्थपरक जीवन के प्रति आस्था बढ़ने लगी।’६७ देश की परिवर्तित नाजुक घड़ियों में छायावादी कवियों की आदर्श भावना में श्वास लेना कष्टसाध्य था। जीवन की यथार्थ समस्याओं से संघर्षशील कवि की चेतना यथार्थ अभिव्यक्ति का अवलम्बन चाहती थी। रोमांटिक कविता के उद्भावकों ने आगे बढ़कर स्थूल यथार्थपरक जीवन के प्रति आस्था दिखाई। उसने अपनी अस्मिता से सम्बन्धित राग-विराग, हर्ष-विषाद को महत्वपूर्ण साबित करने का यत्न किया। ‘व्यक्ति में यह चेतना जग गई मेरा अपना अस्तित्व किसी से कम नहीं, मेरे राग-विराग, हर्ष-विषाद का

मेरे लिये सबसे अधिक महत्व है, उसको स्वीकार न करना आत्महीनता का सूचक है और इस आत्महीनता को पूरी शक्ति से झटक कर दूर फेंक दिया।'६८ रोमाण्टिक भाव बोध के इन कवियों ने परम्परा से अर्जित किसी गहन ज्ञान से उपलब्ध दृष्टिकोण के स्थान पर स्थूल, मूर्त मौलिक विचारधारा को स्थापित कर दिया था। छायावाद के विरोध में प्रकाश में आने वाली यह काव्यधारा जिस उद्देश्य को लेकर प्रकट हुई थी उसमें वह एक सीमा के पश्चात अस्वस्थ आकार में ढलकर उद्भूत हुई। जिसे साहित्यिक कोटि में स्थान देना साहित्य की दृष्टि से वर्ज्य था। इन कवियों ने स्थूल श्रृंगारिकता और सौन्दर्यप्रियता का इतना खुला चित्रण किया कि अंततोगत्वा इसे अश्लील और अस्वस्थ साहित्य के नाम से कठोर आक्षेपों का सामना करना पड़ा। इन कवियों ने अपनी भूल को स्वीकार भी किया एवं भविष्य में स्वस्थ मूल्यों के दृष्टिकोण को अपनाने का संकल्प भी लिया। 'परन्तु इन कवियों ने कुछ तो अपनी अनुभूतियों के प्रति शतशः ईमानदार रहने के कारण और कुछ प्रतिक्रिया के तीखे आवेश में उसे इस सीमाओं तक खींचा जहां पहुंचकर वह अश्लीलता और क्षय की अतिशयता के कारण स्वस्थमना साहित्यप्रेमियों के विरोध और आरोपों का कारण भी बन गई। न केवल इन कवियों की अस्वस्थ और स्थूल श्रृंगारिकता तथा सौन्दर्यप्रियता पर ही आरोप लगाये गये- इनके निराशावाद, भोगवाद, नियतिवाद व क्षणवाद पर भी कड़े प्रहार हुए। ये सारे आरोप चूंकि दृढ़ और ठोस आधारों पर टिके थे, अतः इन्होंने इन कवियों को एक बार पुनः अपनी स्थिति पर विचार करने के लिये बाध्य किया।"६९ आरोपों और विरोधों के बावजूद इस काल के कवियों को बहुत ख्याति मिली। बच्चन की 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा-निमंत्रण', 'एकांत-संगीत' और 'प्रणय-पत्रिका' नरेन्द्र शर्मा की 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात-फेरी', अंचल की 'मधूलिका', 'अपराजिता', 'किरणबेला', 'लाल-चूनर', आरसी प्रसाद सिंह की 'कलापी', जानकी बल्लभ शास्त्री की 'रूप-अरूप', 'तीर-तरंग', शम्भुनाथ की 'दिवालोक', 'रूप-रश्मि' आदि कृतियां साधारण युवावर्ग में बहुत ही लोकप्रिय हुई। इनमें बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल को अधिक लोकप्रियता का सुअवसर मिला था। ये कवि देश की परिस्थितियों से अनुप्रेरित थे। यह सच है किन्तु इन सबों पर वाह्य संस्कृति का भी पूर्ण प्रभाव था। 'इस युग के कवि में कई प्रकार के वैचारिक सूत्र अनुस्यूत है। जैसे गांधी की अहिंसा, फ्रायड की काम वासना, मार्क्स की व्यावहारिक चेतना आदि। इन सभी विचारों का सुमंथन मध्यवर्ग के जिस संवेदनशील मनुष्य में हुआ था उसे ही उत्तरछायावादी युग का

कवि मान सकते हैं। ये सभी विचारधारायें मनुष्य में अपना प्रभाव जाने-अनजाने दोनों प्रकार से छोड़ रही थी।'७० बच्चन के निराशावाद और वेदना में, नरेन्द्र के निराशा में 'हालावाद' का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। फिट्जरेल्ड द्वारा किया हुआ उमर खय्याम की रूबाईयों का अनुवाद अनेक कवियों में लक्षित है। बच्चन के काव्य की प्रारम्भिक भूमिका पर खय्याम का पूर्ण प्रभाव लक्षिता होता हैं। 'फ्रायड' की कामवासना से भी ये अनुप्रेरित है। अपने दमित कुण्ठित आवेगों, संवेगों, आसक्ति-अनासक्ति की अभिव्यक्ति ही इनका कथ्य है।

'इसी प्रकार अंग्रेजी के कतिपय रोमाण्टिक कवि भी इन कवियों के प्रेरणा स्रोत हैं जिन्होंने इनकी प्रणय की सुख-दुख से पूर्ण अनुभूतियों पर सान रख कर उसे तीव्र बनाने में योग दिया है। अंचल के काव्य में 'बायरनिक' प्रवृत्तियों को स्पष्टत: परखा जा सकता है। अंग्रेजी के ह्रासशील रोमाण्टिक कवियों से भी ये कवि प्रभावित हुए हैं फलत: उनके काव्य के समान ही कुछ विकृतियां इन कवियों के काव्य में भी स्थान पा गई है। चूंकि ये सारे प्रभाव इन कवियों की अनुभूतियों का अंग बनकर ही उनकी कविताओं में आये थे। अत: पर्याप्त तीव्रता भी दिख पड़ती है।'७१

'रोमाण्टिक काव्यधारा' के प्रणेता कवियों ने भले ही आत्मानुभवों को प्रकाशित किया हो पर इसके प्रादुर्भाव के बीज छायावाद की चेतना में निहित हैं। यह छायावाद की एक शाखा है। उसने छायावाद के तत्वों में संशोधन व परिवर्तन किया है। छायावाद की प्रगति धारा को इसने प्रवहमान रखने की कोशिश की। प्रगति प्रयोग की मनोवृत्ति है। प्रगति और प्रयोग में अकाट्य संबंध है। प्रयोग से प्रगति होती है। कोई भी परम्परा शाश्वत नहीं होती। वह नई परम्पराओं को प्रोत्साहन देती है। प्रयोग और परम्परा के बीच यही अनिवार्य संबंध है। उत्तर छायावाद छायावाद की वह कड़ी है, छायावाद की मूल प्रवृत्तियों में निजी स्वच्छन्द अनुभूति का मिश्रण प्रयोग से करता है। प्रयोग द्वारा इसके उदभावकों ने आत्मानुभवों की अभिव्यक्ति की है। उसने छायावाद के जीवंत तत्वों का सार्थक प्रयोग किया है। इसके अवदान का परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान का मन्तव्य इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है। 'आधुनिकता की प्रक्रिया के फलस्वरूप जिस प्रकार छायावाद के उदय में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, रूढ़ि के स्थान पर प्रयोग का महत्व, वस्तुनिष्ठता के स्थान पर आत्मनिष्ठता की स्थापना आदि उपलब्ध हैं उसी प्रकार छायावाद के अवसान में इसी प्रक्रिया के

परिणामस्वरूप धीरे-धीरे आदर्श के प्रति यथार्थ का विद्रोह, भावुकता के प्रति बौद्धिकता की प्रक्रिया, सूक्ष्मता के स्थान पर मांसलता की स्थापना, शाश्वत की बजाय क्षण का महत्व अलौकिकता के स्थान पर लौकिकता का आग्रह पाया जाता है।'७२ इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद और रोमाण्टिक कविता की प्रवृत्तियां आपस में साम्य रखते हुए भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक निश्चित भेद रखती हैं। रोमाण्टिक काव्यधारा के कवियों को काव्यात्मक गौरव भले ही प्राप्त न हो। उन्होंने अल्पअवधि में जो ख्याति अर्जित की उसके महत्व को अस्वीकारा नहीं किया जा सकता। इसको हमें छायावाद के उत्कर्ष काल की अनुवर्ती धारा ही मानना चाहिए। इसको उत्तर छायावाद भी कहा जाता है।

प्रवृत्तियां : छायावाद और उत्तर छायावाद दोनों की प्रवृत्तियों के अध्ययन से एक निष्कर्ष यह निकलता है कि छायावाद में आत्मभिव्यंजना, निराशावाद, वेदनावाद, प्रेमानुभूति की अशरीरी अमूर्त कल्पना का चित्रण है एवं इन प्रवृत्तियों के द्वारा छायावाद को ऐतिहासिक गरिमा को उपलब्ध करने का गौरव भी है। इस काल के पश्चात आने वाले प्रत्येक युग के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार इसके प्रभाव से समय-समय पर प्रभावित भी होते रहे हैं। किन्तु इसी की अनुवर्ती धारा उत्तर छायावाद में यद्यपि तमाम प्रवृत्तियां सन्निहित है सिर्फ अभिव्यक्तिगत पार्थक्य है। छायावाद के गौरवशाली चिन्हों का अनुसरण करने के उपरान्त भी रोमाण्टिक काव्यधारा के उन्मेष को अर्थवत्ता नहीं मिली। इसको एक विशेष काव्यधारा का गौरव हासिल नहीं हुआ। इसकी प्रवृत्तियां एक लघु सीमा के भीतर या तो दिशा परिवर्तित कर गतिवान हुईं या लघु परिवेश में सिमट गईं। आगे हम इसकी प्रवृत्तियों की विस्तृत विवेचना करेंगे जो इस प्रकार हैं :- १. प्रणयाभिव्यक्ति, २. निराशावाद, ३. वेदनावाद. ४. नियतिवाद, ५. क्षणभंगुरतावाद, ६. मृत्योपासना, ७. ईश्वर के प्रति अनास्था, ८. पलायनवाद, ९. प्रकृति चित्रण, १०. सहज सरल अभिव्यक्ति प्रणाली आदि।

१. प्रणयाभिव्यक्ति :- छायावादा की अशरीरी, अमूर्त, आवरणप्रियता के विपरीत रोमाण्टिक कवियों ने प्रणय के शरीरी, मूर्त, अनावृत्त रूप को प्रस्तुत किया। प्रणय भावनाओं की अभिव्यक्ति इनकी केन्द्रीय वृत्ति थी। यह वृत्ति लौकिक धरातल की ही उपज थी। इन कवियों ने जीवन की इस प्रवृत्ति का अत्यन्त खुला वर्णन किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि सामाजिक प्रतिबन्धों ने अपने कठोर नियमों से इनके हृदय को

बलपूर्वक कुचल डालने की नाकामयाब कोशिश की थी। सामाजिक नैतिकता, आचार व्यवहार प्रेमी मन के मार्ग के सबसे बड़े शत्रु थे। वैयक्तिक रुचियों के लिये भी अवरोधक जान पड़ रहे थे। अतएव इन कवियों ने सामाजिक नियमों का उल्लंघन किया तथा सामाजिक कठोर नियमों की खुलकर भर्त्सना की। प्रेम के क्षेत्र में बाधारहित, स्वच्छन्द प्रेम की उपासना की। उसकी स्पष्ट, खुली, प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति को अपने काव्य का लक्ष्य सिद्ध किया। जिसमें कहीं गोपनीयता नहीं थी, आवरण नहीं था। प्रणय के प्रत्येक पक्ष को बड़े साहसपूर्वक इन्होंने सामने रखा। इनकी कृतियों के देखें तो विदित होता है कि प्रणय का चित्रण ही इनके काव्य में सर्वत्र मुखर है। बच्चन 'एकांत-संगीत' में अकेले होकर भी प्रणयसंवेदना से ग्रस्त है–

"जब करूं मैं प्यार
हो न मुझे पर कोई नियन्त्रण
कुछ न सीमा, कुछ न बन्धन
तब रूकूं जब प्राण, प्राणों से करें अभिसार।"७३

इनके प्रणय-ग्रस्त स्वछन्द प्रेम में भोग की व्याकुलता है–

"खोलो, अवगुंठन खोलो
प्यासे नयन भ्रमर से आकुल
कमलनयनि दर्शन को व्याकुल।"७४

प्राय: स्थलों पर चुम्बन और आलिंगन का विशेष वर्णन है–

"पियें अभी मधुराधर चुम्बन
गात-गात गूंथे आलिंगन

"सुने अभी अभिलाषी अन्तर,
मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन।"७५

कहीं भी वासना पगी तृष्णा में संकोच या दुराव छिपाव नहीं है। ऐसी आस्था में सामाजिक मर्यादा और नैतिकता का उल्लंघन है–

"आज सोहाग हरूँ मैं किसका
लूटूं किसका यौवन
किस परदेशी को बंदी कर
सफल करूं यह वेदन।"७६

आरसी प्रसाद सिंह की रचनाओं में तो अश्लीलता और नग्नता तक का चित्रण है –

"मत हो लज्जा सर में निमग्न
कर दे कुच नीबी ग्रन्थि भग्न
आ जा ओ, आ मेरे समीप
सम्पूर्ण नग्न, एकान्त नग्न
हो जाय चकित विस्मित समाज
देखूँ मैं तुझको नग्न आज।"७७

प्रणय सम्बन्धी स्थूल प्रेम की खुली अभिव्यक्ति के कारण इस काव्यधारा का विरोध हुआ। उच्छश्रृंखल वासना का यह रूप समाज के लिये घातक और विनाश का भी सूचक था। इसके संक्रमणकारी तत्वों का शीघ्र ही उन्मूलन आवश्यक था। अतएव रोमाण्टिक काव्यधारा को अवरूद्ध होना पड़ा। इस धारा के सभी कवियों का प्रतिपाद्य लौकिक प्रणय को इस असहनीय स्वरूप में प्रतिपादित करना था। ऐसा नहीं है। गोपाल सिंह नेपाली, शम्भुनाथ सिंह, बच्चन, अंचल, जानकी बल्लभ शास्त्री ने इसके सरस पक्ष का भी उद्घाटन किया है।

"तन का दिया, प्राण की बाती
दीपक जलता रहा रात भर।
मिलता रहा स्नेह रस थोड़ा
दीपक जलता रहा रात-भर"७८

नेपाली अपने प्रेम का चित्रण छायावादी कवियों की तरह एक आदर्श रूप में साकार करते हैं जहां न तीव्रता है, न असंयम। इसमें प्रेम का एक सुलझा चित्रण है। शम्भुनाथ सिंह भी प्रणय को उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ उद्घाटित करते हैं।

"स्वप्न में भी तुम न आये

प्राण तुम को निज हृदय के
गान से मैंने पुकारा
अश्रु से, मन की व्यथा से
मान से मैंने पुकारा।"७९

जानकी बल्लभ शास्त्री में इस प्रणय आकांक्षा का एक अनोखा रूप मिलता है जो अतीव सरस है, ग्राह्य है।

"पांवों में है पड़ी बेड़ियां, हाथों में हथकड़ियां
लगी आग अन्तर में, आंखों में सावन की झड़ियाँ
फिर भी छोड़ मुझे न भागते
मेरे प्राण बड़े अभिमानी
मेरी तेरी प्रीत हो रही
दिन-दिन छिन-छिन नई-पुरानी।"८०

प्रेम के क्षेत्र में मिली असफलता से इनमें निराशा की प्रवृत्ति मिलती है। रोमाण्टिक काव्यधारा की चेतना व्यक्तिनिष्ठता का परिणाम है अतएव इनके निराशावाद को भी व्यक्तिनिष्ठता का कारण समझना चाहिए। इनकी कविताओं में प्रणय से सम्बद्ध निराशावाद का मार्मिक चित्रण मिलता है जिसने इन्हें अधोमुखी प्रवृत्तियों की ओर जाने की ही कायरता दी। इसके अलावा निराशावाद के और भी कई कारण थे जैसा कि डॉ॰ शिवकुमार मिश्र का मन्तव्य है- 'सन १९३०-३२ के लगभग सारे आदर्शवादी स्वप्नजगत के यथार्थ की कटुताओं से टकरा कर चूर-चूर होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न अस्त-व्यस्तता अथवा विक्षिप्तता की परिस्थिति में अपनी व्यक्तिनिष्ठता के कारण ही ये कवि समाज की संघर्षशील शक्तियों के साथ नाता न जोड़ सके और और उन्होंने समाज तथा जीवन की विषमताओं को मात्र अपने वैयक्तिक प्रयत्नों के द्वारा ही जीत लेने के भ्रम को अपने मन में स्थान दिया था फलत: सक्रिय प्रयत्नों के अभाव में जब वे उन विषमताओं पर विजय न प्राप्त कर सके तो उनका एक व्यापक निराशा भावना में सर्वथा लय हो जाना भी स्वाभाविक था।'८१ छायावाद और उत्तर छायावाद के निराशावाद में परिस्थितिगत भिन्नता है। पन्त और निराला में निराशा का वर्णन सुख-

दुख की आवृत्ति न कर उससे मुक्ति की चेष्टा है जबकि उत्तर छायावाद में मात्र दुःख की भावना परिव्याप्त है इससे बाहर निकलने की छटपटाहट नहीं है।

"सचमुच तेरी बड़ी निराशा
फल की धार पड़ी दिखलायी,
जिसने तेरी प्यास बढ़ायी
मरूथल में मृगजल के पीछे दौड़ मिटी सब तेरी आशा
सचमुच तेरी बड़ी निराशा।"८२

इनका जर्जरित तन और मन संसार सागर में असफलता के थपेड़े खाकर टूटता है पुनः निर्माण की अभिलाषा नहीं करता।

"इस चक्की पर खाते चक्कर
मेरा तन-मन जीवन जर्जर
हे कुम्भकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो
अब मत मेरा निर्माण करो।"८३

सचमुच बच्चन में निराशा की घनीभूत पीड़ा दृष्टिगोचर होती है। 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत-संगीत' की कृतियों में अनोखा अवसाद वर्णित है। कवि के गहन अवसाद की मार्मिक व्यंजना इनमें संगृहीत है। बच्चन की तरह नरेन्द्र शर्मा भी निराशा के अन्धकार में कैद है–

"जल चुका है स्नेह मेरा, बुझ गया है दीप
गल गया विश्वास का मोती, पड़ी है सीप।
बहुत काले सांप मेरा पथ गए हैं लीप
हूं राख का ढेर मैं, है भस्म सब सुकुमार अंतर।"८४

एकाकी जीवन को तिमिर से ग्रस्त देख कवि तड़पता है मानो वेदना अतल सागर के समान हो जिसमें वह जीवन नैया को अकेले निरीह होकर खे रहा हो–

"मैं एकाकी, विरही, उदास,
खेता जीवन-नैया निराश
इस अतल वेदना सागर में

अवसान तुम्हारा कहां वास।"८५

वह इस अकेलेपन से जूझकर टूटता ही है। इससे उबर नहीं पाता। निराशा का ऐसा स्वरूप पूर्ववर्ती कवियों में प्राप्त नहीं होता।

"कौन यहां है जिसे सुनाऊँ जा कर अपनी अमित व्यथा
कौन सकेगा सुन यह मेरी उर की दारूण करूण कथा।"८६

निराशा की चरम स्थिति में पहुंचकर कवि आत्मविस्मृत हो जाता है। इस संसार से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है–

"जग विलग हुआ, मैं एक विभाग बना हूं
जिसमें जीवन जलता वह आग बना हूं
खो दिया हाय जब से अपने को तुझमें
उस नुपूर का हूं मन्द, बन्द गुंजन भर।"८७

हिन्दी काव्य परम्परा में निराशावाद को जो स्थान रोमाण्टिक काव्यधारा में मिला वह अनिर्वचनीय है। उसके निराशावाद के मूल में सामाजिक प्रतिबन्धनों के कारण असफल युवामन की हताशा थी। इन नये कवियों ने जीवन की भुक्त वेदना को ही सरल भाषा के द्वारा प्रकाशित किया है।

वेदनावाद :- वैयक्तिक स्वातन्त्रय की परिणति वेदना में होती है। अत: उत्तर छायावाद में वेदना को प्रमुखता मिली तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। छायावाद के काव्य में वेदना एक परिनिष्ठित रूप में ग्राह्य है। आरंभिक भाग में वेदना के सुरीले गीत गाने वाले कवि वेदना की चरम परिणति किसी भव्य दर्शन में हो जाती है। प्रसाद में यह घनीभूत पीड़ा 'दुर्दिन में आंसू बनकर आज बरसने आई' रूप में उपस्थित है। पन्त में 'उमड़ कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान' रूप में साकार है। निराला के लिये 'दु:ख ही जीवन की कथा रही क्या कहूं जो आज नहीं कहीं' है एवं महादेवी स्वीकार करती है 'वेदना में जन्म करूणा में मिला आवास' पर परवर्ती कवि बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल अन्यान्य प्रभृति कवि की निश्छल वेदना का चित्रण छायावादी कवियों की वेदना के समान दर्शन में परिणत होने में समर्थ न था। क्योंकि यह वेदना

घनीभूत अवस्थिति में उन्हें दयनीय और कातर कर देती है। भाग्यवाद के प्रति आस्थाशील करती है। बच्चन की दृष्टि में वेदना का स्वरूप देखिये–

“वेदना आयी शरण में
गीत ले गीले नयन में।
क्या इसे निज द्वार से तू आज देगा ढेल
कवि तू जा व्यथा यह झेल।”८८

नरेन्द्र शर्मा आत्मस्वीकार करते हैं–

“जाने किस अरण्य रोदन की
है अनुगूंज समाई मन में।
किस अज्ञात व्यथा की छाया
रही सदा मेरे जीवन में।”८९

अंचल भी वेदना के उपासक कवि हैं। इनकी वेदना में एकनिष्ठता, विह्वलता और सजगता है। ‘कवि के वास्तविक विद्रोह का यहीं से आरम्भ होता है।’ ‘अरमानों और साधों की अशेष आहुतियां, डाल कर उसने विरह वह्नि’ को जगा रखा है। नैराशय की तमिस्रा में जीवन पर एक दृष्टि डालने के लिये इस आग का ही सहारा है।’९०

अंचल की वेदना चिर विषाद से सम्पृक्त है–

“अपनी ही लघुता में रोता
हूं एकाकी पागल हत।
चिर विषाद से कांप रहा
यह सूना जीवन भार-नत।”९१

आरसी प्रसाद सिंह वेदना को चिरन्तन मानते हैं। यह निर्झरणी सदा-नीरा है। इसका अवसान ही कहीं नहीं है –

“वेदना मेरी चिरन्तन, निर्झरी यह सदा-नीरा।”९२

शम्भूनाथ सिंह के गान भी इसी वेदना से गीले हैं –

"निकल पड़ते आज मेरे
क्यों न जाने गान गीले
बिखरते बरबस हठीले।"९३

इसके अलावा गोपाल सिंह नेपाली, जानकी बल्लभशास्त्री, भगवतीचरण वर्मा के काव्य में वेदना की व्यापकता मिलती है। उसमें बन्धन और नरेन्द्र शर्मा की सी गहराई नहीं है। इन कवियों ने वेदना को जीवन की थाती मानकर उसे ही काव्य में स्वर देना आरम्भ किया। छायावादी काव्य की प्रवृत्ति को परम्परा रूप में ग्रहण करने के बाद भी उत्तरछायावाद काल में इसकी प्रस्तुति दूसरे ढंग से हुई। भले ही छायावादी कवियों की वेदना की तरह उसका पर्यवसान दर्शन में न हो पाया हो। इसका कारण यह है इनके पास जीवन को देखने और समझने की व्यापक सूक्ष्म गहन अध्ययन क्षमता का अभाव था। जो कुछ भी इनके पास था वह युगीन जीवनदृष्टि से सम्बद्ध था अतएव इनमें समाहित वेदना अधिक उज्जवल और परिष्कृत न हो सकी।

नियतिवाद :- डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय का मत है 'अज्ञानी, निष्क्रिय और परोपजीवी लोग भाग्यवादी हो जाते हैं। कभी-कभी संघर्षों से जूझते रहने के बाद उचित परिणाम न मिलने पर भी नियति पर विश्वास होने लगता है।' 'राम की शक्ति-पूजा' में राम का ऊर्जस्वित व्यक्तित्व भी अन्ततः कह उठता है, 'धिक जीवन जो सहता ही आया विरोध, धिक साधन जिसके लिये किया शोध।'९४

उत्तर छायावाद के प्रतिनिधि कर्त्ताओं में दृढ़ संकल्प शक्ति और सक्रियता का अभाव था। अतः वे अपनी हर पराजय की जिम्मेदार नियति को ठहराते थे। बच्चन कहते हैं–

"कल्पना - पथ अनुसरण कर में नियति के घर पधारा,
आंख मूंदे लिख रही थी एक पुस्तक वह उदारा"

"यह कथा मेरी, कहा उसने तथा पुस्तिका दी,
खोलते ही पृष्ठ पहला कंाप उठा तन-प्राण सारा",

'भूमिका' पढ़कर पड़ा रो यह गगन स्वप्नाभिलाषी,
'आज-कल' अध्याय दो में पूर्ण लघु आख्यान मेरा।"९५

नियति के प्रति ये कवि विवशता से समर्पित है। नियति ही जीवन को अनुशासित करती है। मनुष्य अदम्य साहस के बल पर भी इसके बंधन से स्वतंत्र नहीं हो सकता। नियति की सत्ता शाश्वत है–

"नियति लकड़हारिन है
काल की कुठार कठिन
जीवन का वृक्ष है।"९६

यह नियति उसे जीवन में सक्रिय होने से रोकती है। बेबस और लाचार मनुष्य नियति की निष्ठुरता के सामने घुटने टेक देता है।

"मैं काल का कोदण्ड हूं, मैं प्रकृति से उदण्ड हूँ।
मुझको झुकाते जा रहे हैं, निष्ठुर नियति के हाथ।"९७

नियतिवाद पर इन कवियों की दृढ़ आस्था है जिसे उनकी दुर्बलता का परिचायक माना जा सकता है। यह दुर्बलता उन्हें सदैव भीरूता और कायरता की ओर गतिशील करती है। दरअसल 'जीवन के विविध क्षेत्रों में बहुधा ही मिलने वाली पराजय तथा असफलता से उत्पन्न निराशा, वेदना एवं अभावों की अनुभूति, भावी के प्रति उपेक्षा, उदासीनता अथवा अनास्था का भाव एवं अपनी वैयक्तिक समस्याओं के समाधान में कभी भी सफल न होने का विश्वस 'जिसका कारण उनकी आत्मलीनता है और जिसे उन्होंने स्वीकार भी किया है' ही उन्हें नियति पर आस्था करने के लिए बाध्य कर देता है।'९८

क्षणभंगुरता :- इन कवियों का निराशावादी, वेदनावादी और नियतिवादी दृष्टिकोण ही इन्हें जीवन को क्षणभंगुर मानने को बाध्य करता है। जीवन क्षणभंगुर है। यौवन क्षणिक है। अतएव वह अतृप्ति, अनन्त प्यास, भोगेच्छा में संतरण करता रहता है एवं वह सारे उपलब्ध क्षणों को भोगने को तत्पर हो जाता है।

"काल सागर में न क्षण-क्षण, ये कहीं खो जाए
आदि होते ही न इनका, अन्त भी हो जाय
समय दुहराता नहीं यह, स्नेह का उपहार
सुमुखि ये अभिसार के पल-चल करें अभिसार।"९९

प्रणयप्रसंग के चित्रण में सदा इनके मानस में क्षणभंगुरता का ही भय बना रहता है। वे क्षणभर के सुख को भी गंवाने को प्रस्तुत नहीं है–

"है दो दिन का दर्शन-मेला
विवश नियति शासित यह जीवन
दृष्टि न धुंधली कर लो रोकर
मिले आज क्षण भर जब लोचन।"१००

'सब कुछ दो दिन का वास है' यही सोचकर अंचल भी अपनी पिपासा को स्वर देने को उद्यत है–

"दो दिन का यह वास और फिर
कौन कहां होगा जाने
आओ फिर सस्वर कर लें
हम भूल न जायें ये गाने।"१०१

निराशा, वेदना, नियति, क्षणभंगुरता आदि विघटनकारी तत्वों से घिरा इन कवियों का कृतित्व निश्चय ही छायावादी सबल जन हितैषी तत्वों से इन्हें विलग कर देता है। छायावादी परम्परा के तत्वों का सही अनुसरण करके भी ये कवि अपनी अस्वस्थता और दुर्बलताओं के कारण मार्ग से भटक गये। उनसे आक्रान्त इन कवियों ने जीवन के सही पक्ष का साक्षात्कार ही नहीं किया। निजी सीमाओं से आबद्ध इनका पराजित मस्तिष्क अन्ततः मृत्योपासना को इस तमाम विडम्बनाओं से ऊबरने को उन्मुक्त मान बैठता था।

मृत्योपासना :- मृत्योपासना के प्रति आसक्ति इन कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति है। जीवनक्षेत्र में मिली विफलता, निराशा से इनका मस्तिष्क अपने चतुर्दिक एक सघन अन्धकार को पाता है। इससे टकराने का दुस्साहस इनमें नहीं रहता और स्वेच्छा से वे मृत्यु की शरण के आकांक्षी हो जाते हैं। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल के नैराश्य की घनीभूत अवस्थिति में इस स्थिति को स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है। बच्चन जगत की घृणा, निर्ममता से विक्षिप्त होकर मृत्यु की कामना करते हैं–

"मुझे खुशी से दो मत जीवन, मरने का अधिकार मुझे दो

मत मेरा संसार मुझे दो।"१०२

जीवन संघर्ष से पराभूत कवि का मनोव्यथा से बोझिल मन जब एकदम अकेला हो जाता है तब उसे अपने प्राणों से व्यामोह नहीं रहता। वह उससे भी चले जाने की प्रार्थना करता है-

'अनचाहे मेहमान प्राण मेरे, जाओ न निकल जाते क्यों।

....

मेरे आकुल प्राण छोड़ मुझको तुम भी न चले जाते क्यों।'१०३

'अंचल' का भूखा, प्यासा निर्बन्ध मन भी मरण की ओर गत्योन्मुख है–

'आज मरण की ओर दौड़ते ये भूखे प्यासे निर्बन्ध
आज इन्हें करना है अपने प्राणों का किस प्रकार प्रबन्ध।'१०४

आरसी प्रसाद सिंह और जानकी बल्लभ शास्त्री में भी मृत्यु का यही आकर्षण परिलक्षित होता है–

'कब समझोगे तुम जीवन धन है उन्माद कितना मरण में।'१०५

तथा

"मैं जला रहा जीवन होली
यह मरण गुलाब अबीर भरा।"१०६

अतिशय निराशा से मृत्युपासना उत्तरछायावादी कवियों की एक अन्यतम प्रवृत्ति है जिसे इनकी ह्रासशीलता का कारण भी माना जा सकता है।

ईश्वर के प्रति अनास्था:- इन कवियों ने यत्र-तत्र अपने काव्य में ईश्वर के प्रति अनास्था भाव को प्रकट किया है। पर देखा जाए तो इनके मस्तिष्क के तल में कहीं गहरे ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास की भावना हिल्लोर ले रही थी जिसका परिणाम कतिपय कवियों की दर्शन सम्बन्धी कृतियां है। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल की कृतियां इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यथा: बच्चन की 'मधुशाला', 'मधुबाला'। नरेन्द्र शर्मा की 'पलाशवन' आदि। अत: ईश्वर के प्रति अनास्था के सम्बन्ध में यह कहना तार्किक

होगा कि– 'जहां तक प्रस्तुत काव्य के निर्माताओं का प्रश्न है, ईश्वर तथा धर्म के प्रति उनका अनास्था भाव अथवा विद्रोह सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के लिये आवश्यक एक नवीन बौद्धिक दृष्टिकोण की आवश्यकता से उतना सम्बन्धित नहीं है, जितना उनकी समस्याओं से समाधान अथवा सामाजिक रूढ़ियों-रीतियों को छिन्न-भिन्न कर अपने अनुकूल परिवेश बनाने की असफल से उत्पन्न खीझ, आक्रोश अथवा उन्माद से। यही कारण है कि उनकी इस प्रकार की उक्तियां एक सीमित और संकुचित दायरे में ही चक्कर लगा कर रह गई है।'१०७ ऐसी बात नहीं है सामाजिक विषमताओं के दबाव को इन्होंने अनुभव नहीं किया। उसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाई। किन्तु छायावादी संस्कारों के प्रभावित उनकी वृत्तियों में आत्मवाद की प्रधानता थी। निजी समस्याओं के समाधान की चेष्टा थी। उसमें असफल होने पर ईश्वर के प्रति खीझ, आक्रोश, अनास्था से प्रकटीकरण को ही स्वर मिला।

'झुकी हुई अभिमानी गर्दन
बंधे हाथ, नत निष्प्रभ लोचन
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर।'१०८

नरेन्द्र के काव्य में भी ईश्वरीय उपेक्षा की भावना मिलती है–

'कौन सुनता है करूण पुकार, किसे रूचता है हाहाकार
भूल गया है ईश्वर जग को पा मादक अधिकार।'१०९

आरसी प्रसाद सिंह तो मृत्यु की घोषणा कर स्वयं को विधाता स्वीकारते हैं–

"मैं अपना आप विधाता हूँ, मेरा भगवान गया है मर।"११०

वस्तुत: छायावाद ने जहां भारतीय संस्कृति को पुनप्रश्रय दिया और विश्वबंधुत्सव की भावना को आध्यात्मिकता से अनुस्यूत किया। वहां उत्तर छायावाद के कवियों ने सर्वप्रथम तो संस्कृति के इस पक्ष पर गौर करने को महत्ता न दी भले ही उनकी रचनाओं में बाद में दर्शन की झांकी दृष्टिगोचर होती हो।

पलायनवाद :- इस धारा की कृतियों में पलायन का स्वर भी ध्वनित है। सामाजिक दायित्व और वैयक्तिक द्वन्द्व से मिली उदासीनता और निराशा की कचोट ने इन कवियों

को जीवन संघर्ष से पलायनवादी किया। छायवादी कवि पलायनवादी है। वह नाविक से वहां ले जाने का आग्रह करता है जिस स्थान पर उसे सुख शान्ति मिल सके। उत्तरछायावादी कवियों की पलायनवृत्ति में यह प्रभाव नहीं दिखता। 'छायावादी कवियों को भी समाज से पलायित कहा जाता है और इन्हें भी। वास्तव में छायवादी कवि पलायनवादी नहीं थे। उन्होंने समाज के वाह्य सम्बन्धों की अपेक्षा अन्त: सम्बन्ध स्थापित किया है। इन कवियों का पलायन एक प्रकार से विषम समाज के प्रति नकार और अस्वीकृति परक भी माना जा सकता है।'१११ ये कवि नकार और अस्वीकृति की प्रमुखता है। 'हालावाद' अर्थात हाला प्याले के नशे में जीवन के अभावों, विषमताओं, असफलताओं तथा पराजय और इस प्रकार वस्तुस्थिति को भूलने की चेष्टा करना, अपने को छल कर मस्ती और मादकता, बेसुधी और तन्मयता का एक ढ़ोंग रचना, 'बच्चन' इस हालावाद के प्रवर्त्तक कहे जा सकते हैं।'११२ बच्चन कहते हैं–

"मिले न पर, ललचा - ललचा क्यों आकुल करती है हाला,
मिले न, पर तरसा -तरसाकर क्यों तड़पाता है प्याला
हाय, नियति की विषम लेखनी मस्तक पर यह खोद गयी
दूर रहेगी मधु की धारा, पास रहेगी मधुशाला।"११३

नरेन्द्र शर्मा की काव्य-कृत्तियों में भी यह उद्गार अंकित है-

"कैसे बुझाऊँ प्यास-मेरा हृदय खंडित पात्र
मृत्यु से मांगा हलाहल,
प्यास से होकर विकल जब
हंसी श्यामा सुन्दरी वह
भर दिया प्याला लबालब
लब न छू पाए गरल, यह हृदय खंडित पात्र।"११४

देखा जाए तो मन के भीतर आलोड़ित द्वन्द्व से छुटाकारा पाने निमित्त ही ये कवि मादकता का आश्रय लेते हैं। भले ही बच्चन इस हालावाद के उन्मेषक हो तथापि मादकता की यह प्रवृत्ति इस धारा के प्राय: सभी कवियों में मिलती है। जो इस प्रतीक की सार्थकता पर भी प्रकाश डालती है। अंचल के हृदय में 'मधु' और 'मद' की ज्वाला वर्तमान है–

"धधक उठी पापी प्राणों की
चिर प्यासी वह ज्वाला
पागल सा हो उठा आज फिर
मैं प्रेमी मतवाला।"११५

इन कवियों के काव्य में चित्रित पलायनवाद में आत्मिक संतोष अथवा सुख शांति की खोज का भाव नहीं मिलता। यह पलायनवादिता इनकी पराजय में निहित है। यह इनकी दुर्बलताओं को ही जागरूकता प्रदत्त करती है।

प्रकृति चित्रण:- छायावादी कवि ने प्रकृति-चित्रण की जिस सचेतन प्रक्रिया को जन्म दिया वह यहां आकर प्रधान प्रवृत्ति न रहकर गौण हो गई। उत्तर-छायावादी कवियों ने प्रकृति को सजीव रूप देने का प्रयत्न नहीं किया एवं न ही प्रकृति का स्वरूप मनुष्य के मनोभाव से सम्बन्धित होकर प्रकट हुआ है। ये कवि स्वेच्छा से प्रकृति का वर्णन नहीं करते। अनायास ही इसका प्रवेश इनके काव्य में हुआ है। अस्तगामी संध्या बच्चन के नितान्त अकेले मन में एक उद्वेलन की मन:स्थिति को साकार करती है–

"था उजाला जब गगन में
था अंधेरा ही नयन में
रात आती है हृदय में भी तिमिर अवसाद भरती
अब निशा नभ से उतरती।"११६

प्रकृति के चिर-परिचित दृश्यों को देखकर उसके निर्वासित मन में प्रिया की सुधि जागरित होती है। वह इन दृश्यों में नये सौन्दर्य का अन्वेषण नहीं करता। हृदय की नैसर्गिक आकांक्षा का प्रकृति को देख स्मरण करता है और आत्मिक सुख महसूस करता है।

"बादलों के बीच से जब
झांकता है चांद रह - रह कर
और जब मधुगंध - भीनी वात
बहती है तुम्हारी बात कह - कहकर
तब तुम्हारी सुधि हृदय के कुंज में

खिलती, सहज खिलती।"११७

'अंचल' की कृति 'वर्षान्त के बादल' में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कवितायें हैं। उनकी 'एक शाम', 'प्रत्यागता नर्तकी', 'कालबैसाखी', 'वर्षागीत', 'शरद निशा', 'शारदी संध्या", 'पावस की संध्या' में प्रकृति और ऋतुचित्रों की विविधता दर्शनीय है। पर यह हमारे मानस को आन्दोलित नहीं करती। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"घेरे है प्रकाश के शव को बुझे प्रदीपों की दीवार
झुकी - झुकी उदास दिशाएं धूम्रसलिल में छिन्नाकार।"११८

कुल मिलाकर इनका प्रकृति चित्रण किसी विराट सत्य से साक्षात्कार नहीं है। न ही इनका प्रकृति प्रेम मानव जीवन को प्रकृति के अपरिमित सौन्दर्य से आच्छादित करने का इच्छुक है। वह अपनी प्रेयसी की गंध प्रकृति के अमित वैभव में पाता है।

"यह वसन्त है, या जागी मेरी अपनी ही तरूणाई
पुष्पों का यौवन है आया
रूप, गन्ध, रस का जग छाया
मंजरियों का मृदु सौरभ मधु
तरू से कोकिल का स्वर लाया
मलयानिल है या मेरी अज्ञात प्रिया की अंगड़ाई।"११९

सहज सरल अभिव्यक्ति :- उत्तरछायावादी कवियों ने छायावाद की संस्कृतनिष्ठ, छन्दबद्ध भाषा का अनुकरण न कर सहज, सरल जन सुलभ भाषा का प्रयोग किया। उसने छायावादी काव्य शिल्प का विरोध किया क्योंकि यह भाषा क्लिष्ट और जन सामान्य के सुलझे विचारों से कहीं जुड़ नहीं सकी थी। इन कवियों ने एक बार फिर भाषा में सरलता, सहजता का समावेश कर इसमें नयापन भरा। इनकी शब्दयोजना में कहीं भी दुरूहता नहीं है। कविता में अलंकार का इच्छा-पूर्वक प्रयोग नहीं है। मुक्त छन्द का निर्वाह प्राय: सभी कवियों में पाया जाता है। बच्चन की 'मधुशाला' और नरेन्द्र शर्मा की 'प्रवासी के गीत' की लोकप्रियता का कारण भावों की सरलता है। इस काल के कवियों ने भाव के अनुसार ही भाषा की अभिव्यंजना का प्रयोग किया है। डॉ॰ शिवकुमार मिश्र का कथन है कि 'यह कारण और कुछ नहीं' इन कवियों द्वारा अपनायी

गई सहज सीधी शैली, अभिव्यक्ति का साफ सीधा अकृत्रिम रूप और भाषा की सरलता, व्यवहारिकता तथा आत्मीयता ही है, जिसने सामान्य काव्य प्रेमियों के अतिरिक्त मान्य समीक्षकों तथा विद्वानों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया था, उनमें अपने प्रति एक आशावादिता सी जगायी थी।'१२०

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्तर छायावादी काव्य अपने समग्र रूप में छायावादी परम्परा का अगला सोपान है। व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की प्रगाढ़ता में लीन रहने के कारण इस धारा ने अपने विकास के मार्ग को संकीर्ण किया। एक निश्चित धुरी पर चक्कर काटते-काटते इसके प्रणेताओं ने ताजगी और स्फूर्ति को गंवा दिया। फलत: छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य एक संक्षिप्त समय में उदित होकर भी यह स्वत: सिमट गई। परम्परा के प्रवाह में इसका अवदान इस अर्थ में महनीय है "छायावाद की अमूर्त और अमांसल अनुभूतियों को मूर्त तथा मांसल रूप देते हुए, इस कविता ने प्रगतिवाद की भौतिक मान्यताओं के लिये पथ प्रशस्त किया। इस प्रकार यह प्रवृत्ति छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा है।"१२१ ऊपर इसके विविध नामों की चर्चा हुई है। इसमें रोमाण्टिक काव्यधारा नामकरण से प्राय: सभी कवियों की विशिष्ट प्रवृत्तियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है तथापि उत्तर छायावाद नामकरण भी किया जा सकता है। कालक्रम के अनुसार इसके उद्घोषकों ने छायवादी अभिव्यंजना में अपनी मौलिक अनुभूतियों का प्रयोग किया। निश्चित रूप से इस काल के कवियों की चेतना छायावाद से भिन्न है। इसे प्रयोग ही माना चाहिए। अस्तु: रोमाण्टिक काव्यधारा के बीज अपनी परम्परा में समाहित है। उसकी भूमि पर वर्तमान जीवन से सम्बन्धित है।

"ग"

प्रगीत कविता

प्रगीत कविता छायावादोत्तर काल की देन है। ऐसी बात नहीं, छायावादोत्तरकाल के पूर्व युग में भी प्रगीत कविता के स्वरूप का दर्शन मिलता है। परम्परा और प्रयोग की सापेक्षता में प्रगीत कविता का विवेचन करें, इससे आगे इस शब्द के अर्थ को जान लेना उपयुक्त होगा। 'प्रगीत' शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक' शब्द का अर्थ व्यक्त करता है।

व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से 'लिरिक' शब्द "लायर' नामक वाद्ययन्त्र से उद्‌भुत हैं।'१२२ 'अंग्रेजी का लायर शब्द भी ग्रीक 'लूरा' शब्द से निर्मित है। लूरा एक प्राचीन तन्त्री वाद्य था जिस पर गाये जाने वाले गीतों को 'लूरिकोस' कहते थे। लुरिकोस ही अंग्रेजी लिरिक्स बन गया। समवेत गान से भिन्न ये प्रगीत केवल एक ही कवि द्वारा निश्चित अवसरों पर वाद्यों पर गाये जाते थे।"१२३ इस प्रकार प्रारंभिक काल में वाद्यों पर गाये जाने के लिये ही इन प्रगीतों की रचना की गई।'१२४ अनेक कलाविदों ने इसका सम्बन्ध हिन्दी साहित्य में उपलब्ध 'पद' और 'गीतिशैली' से भी जोड़ा है। हमें संस्कृत में इसका कोई पर्याय नहीं मिलता। आधुनिक हिन्दी काव्य में इसका प्रयोग विदेशी प्रभाव के कारण मिलता है। इस प्रकार प्रगीत काव्य का नवीन स्वरूप स्वदेशी और विदेशी चिन्तनों के सम्मिश्रण से हुआ है। इसमें गेयात्मकता की प्रधानता होती है। प्रगीत शब्द में 'प्र' उपसर्ग भी प्रगीत काव्य में गेयता की प्रकर्षता का द्योतक है। भारतीय परम्परा में भी संगीत का महत्व वर्जित है। आत्माभिव्यक्ति प्रगीत काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है जिसमें निजी अनुभूति अंकित होती है। प्रो० गमर के मतानुसार 'वह अन्तवृर्ति निरूपिणी कविता है, जिसका सम्बन्ध वाह्य जगत के वस्तु व्यापारों से न होकर मानव मन में उठनेवाली इच्छाओं, आकांक्षाओं, हर्ष, भय आदि मनोभावों से घनिष्ठ रूप में रहता है।'१२५

छायावाद युग की यशस्वी गीतकार महादेवी वर्मा 'प्रगीत काव्य को व्यक्ति सीमा में तीव्र सुख-दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप मानती है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'१२६ वैयक्तिक सुख-दु:खात्मक अनुभूतियों से साक्षात्कार भावोद्रेकता के कारण होता है। भावोद्रेकता भी प्रगीत के लिये अनिवार्य होती है। भावावेग के क्षणों में कवि हृदय तीव्र रागात्मक संवेदनों से परिपूरित हो जाता है और अनायास गीत का प्रादुर्भाव हो जाता है। भावावेग की लघुता के कारण प्रगीत का आकार भी लघु होता है। भावों के तीव्र संवेगों के फलस्वरूप प्रगीत में मनमोहक लय का समावेश हो जाता है। अत: प्रगीत की इन विशेषताओं के अनुसार प्रगीत एक ऐसी वृत्ति है जिसमें आत्मगत भाव सहजता से स्फूर्त होते हैं। वैयक्तिक जीवन की सुख-दुखात्मक शोक-हर्ष आदि भावों की उद्रेकता से प्रगीत कविता का प्रकाशन होता है। दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत प्रत्यक्ष अनुभूति के प्रत्यक्ष संयोग से प्रगीत कविता अन्त:करण के तल की गहराई से फूटती है।

छायावादोत्तर युग की परिवर्तित जीवनसंदर्भों की प्रणाली की सापेक्षता में इसका स्वरूप भी नित्य नये आकार में ढलता रहा है। इस परिवर्तन में मूल तत्व में परिवर्तन नहीं होता केवल कवि की निजी दृष्टि और अभिव्यक्ति का फर्क रहता है। यानी एक और अतीत से आंशिक मोह नहीं छूटता दूसरी ओर प्रयोग से नवीनता को अर्जित कर विकास का लोभ भी पीछे नहीं हटता। व्यावहारिक रूप से देखा जाय तो परम्परा और प्रयोग का संगम एक नये रूप में प्रवहमान होता है।

परम्परा की सापेक्षता में देखें तो भारतेन्दुयुग में भी प्रगीत काव्यधारा के स्रोतों का दिग्दर्शन होता है। यहां प्रगीत काव्य के दो रूपों का चित्रण है। एक में भक्तिपद का वर्णन है दूसरे में राष्ट्रीयभावना का अंकन। द्विवेदी युग में इतिवृत्तात्मक वर्णन और सुधारवादी दृष्टिकोण की वजह से यह प्रवाह किंचित क्षिप्र पड़ता परिलक्षित होता है। छायावादयुग में स्वच्छन्दतावाद के साथ प्रगीत के सूक्ष्म भावों को नवीन स्वरूप की प्राप्ति होती है। एक युग की प्रगीत काव्यधारा ने अनुभूति, भाव और कल्पना में सामंजस्य कर इसकी सुन्दर रूप में प्रस्तुति की। वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति के उद्रेक से जागरित इस भावना ने आगत कवियों के लिये एक मार्ग खोल दिया जिसका इसके बाद के कवियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां हमारा उद्देश्य छायावाद युग न होकर छायावादोत्तर युग में प्रगीत काव्यधारा से है। परम्परा और प्रयोग की अन्विति से प्रगीत धारा किस प्रकार संवर्द्धित और संगठित हुई। इसलिए हम छायावादोत्तर काल में प्रगीत काव्यधारा का ही विवेचन करेंगे।

छायावादोत्तर युग एक संक्रान्ति काल है। युग की संक्रामक परिवर्तित अवस्थितियों की कोख से एक के बाद एक अनगिनत धाराओं का अविर्भाव हुआ। जैसे– रोमाण्टिक काव्यधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और समकालीन हिन्दी कविता। प्रगीत कविता कोई स्वतन्त्र धारा नहीं। यह एक विशेष प्रवृत्ति है। जिसका प्रयोग प्रत्येक युग के कवियों ने किया है। प्रत्येक युग के कवियों ने इसे युग-बोध से जोड़कर जीवन्तता दी है।

सर्वप्रथम रोमांटिक काव्यधारा का उल्लेख करें तो विदित होता है कि रोमांटिक काव्य में रोमानी भावों का प्राचुर्य था। वैयक्तिक सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा से उद्भूत सहज, सरल, प्रत्यक्ष अनुभूति का छवि अंकन इनकी मूल विशेषता थी। इस धारा के प्रगीतकारों ने अपनी वैयक्तिकता को किसी आवरण या अध्यात्म का सहारा लेकर मूर्तित नहीं किया। अन्तस के प्रबल आवेग को नि:संकोच होकर प्रणय के

भोगात्मक पक्ष को निडर होकर उपस्थित किया। अपने प्रेमसंवेग को, प्रणय की मांसल व मादक भावनाओं को इन कवियों ने यथार्थ के धरातल पर वाणी दी। छायावादी अपार्थिव अमूर्तित प्रणय को इन कवियों ने पार्थिव और मूर्तित किया। इस समय के प्रमुख प्रगीतकार हैं– बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, जानकी बल्लभ शास्त्री, आरसी प्रसाद सिंह, शम्भुनाथ सिंह।

बच्चन रोमाण्टिक काव्यधारा के प्रथम प्रगीतकार है। इनके प्रगीतों में स्थूल प्रणयचित्रण, सुख-दुःख, आशा-निराशा, वेदना, मृत्योपासना, क्षणभंगुरता को नई धारा मिली। बच्चन नये संवेदन के गीतकार हैं। त्रिभंगिमा में तो बच्चन ने लोकधुनों के आधार पर गाये जाने वाले लोकगीतोन्मुख गीतों का प्रयोग किया। तथापि उनके प्रगीतों में प्रणयपरक प्रगीतों का आधिक्य है। बच्चन जी ने छायावादी वायवी, अशरीरी, अमांसल प्रणयानुभूति को अवायवी, शरीरी मांसल प्रणयानुभूति के धरातल पर उतारा। उन्होंने इसमें मर्यादा और संकोच के आवरण को उतार फेंका। 'उनके प्रणय प्रगीतों में है– देहों की उष्णता का आदिम स्वाद। मिलन के गायन क्षणों के विकल विह्वल अर्थ तन के व्याकुल कक्ष, बांहों के सेतु, गंधमुग्ध चुम्बनों का संगीत, पिघले होठों की अर्थवती घड़ियां उन्मथ वीथियां और है- मन के टूटते कगार, मरणस्थल का चीत्कार मृत्यु के कसाव का निर्मम सन्नाटा, विषाद के हलकोरे, अवसाद की मलिनता और बच्चन ने नहीं रखा है कहीं भी प्रतीक, बिम्ब का एक अन्तराल अपने और गीतों के बीच।'१२७

एकाकी कवि मन अपने एकांत क्षणों में बीतती संध्या को सम्बोधित करता है–

"अन्तरिक्ष में आकुल आतुर
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़
पन्थ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक अकेला
बीत चली सन्ध्या की बेला।"१२८

"अंधेरे से आबद्ध मन प्रेयसी से आने का आग्रह करता है–
सपनों ने ही मुझको लूटा
सपनों का ही मोह न छूटा
मेरे नीड़ नयन में आओ कर लो प्रेयसि रैन - बसेरा
तम ने जीवन तरू को घेरा।"१२९

कवि प्रणय में याचक है। वह अपनी प्रिया से निशा से प्रारम्भ होने वाली अपूर्ण कथा को सम्पूर्ण करने की विनती करता है–

"पूर्ण कर दे वह कहानी
जो शुरू की थी सुनानी।"१ ३ ०

क्षणिक प्रेम की अधूरी अतृप्ति साधिकार प्रिया को उलाहना देती है–

"क्षण भर को क्यों प्यार किया था
अर्द्ध रात्रि में सहसा उठ कर।"१ ३ १

कभी-कभी प्रिया से परिचय एक स्वप्नवत लगता है–

"स्वप्न था मेरा भयंकर
धार से कुछ फासले पर
सित कफन की ओढ़ चादर
एक मुर्दा गा रहा था बैठकर जलती चिता पर
स्वप्न था मेरा भयंकर।"१ ३ २

अन्ततः निराशा ग्रसित मन अपनी प्रिया को विदा देता है-

"जाओ कल्पित साथी मन के
जाओ जग में भुज फैलाये,
जिसमें सारा विश्व समाये,
साथी बनो जगत के जाकर मुझसे अगणित दुखिया जन के
जाओ कल्पित साथी मन के।"१ ३ ३

परन्तु 'एकांत-संगीत' का संगीतकार प्रिया के अभाव में जीवन को व्यर्थता का पर्याय स्वीकार करता है। ऐसी दयनीय अवस्था में वह पहुंच जाता है कि कमजोर हृदय बिफर पड़ता है–

"तब रोक न पाया मैं आंसू
मेरे पूजन-आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को

जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हंसा
तब रोक न पाया मैं आंसू।"१ ३ ४

दुर्बल हृदय का निभृत कोना फिर भी प्रेयसी के साथ अभिसार की आकांक्षा रखता है। ऐसे क्षणों में नियन्त्रण अथवा प्रतिबन्ध उसे बिल्कुल स्वीकार नहीं–

"जब करूं मैं प्यार
हो न मुझ पर कोई नियन्त्रण
कुछ न सीमा, कुछ न बन्धन
तब रूकूं जब प्राण प्राणों से करे अभिसार।"१ ३ ५

जब उसकी स्वप्न तन्द्रा टूटती है। यही एकन्त पुनः 'कुछ खोज' के लिये अधीर हो जाता है–

"कितना अकेला आज मैं
खोया सभी विश्वास है
भूला सभी उल्लास है
कुछ खोजती हर सांस है, कितना अकेला आज मैं
कितना अकेला आज मैं।"१ ३ ६

'आकुल अंतर' तक आते-आते चरम-वेदना अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ती है। अब वह एकाकीपन को गुनहगार मानता है। अपने से बाहर अथवा व्यष्टि से समष्टि को जानने को उतावला होता है–

"तू एकाकी तो गुनहगार
बस अपने में ही हुआ लीन
बस इसीलिए तू दृष्टिहीन।"१ ३ ७

'सतरंगिनी' में वह नवीन उत्साह और आशा से जीवन का आरम्भ करता है–

"नीड़ का निर्माण फिर- फिर
नेह का आह्वान फिर-फिर।"१ ३ ८

प्रिया का संग पाकर वह भोग में प्रवृत्त हो जाता है।

"कल सुधारूंगा हुई संसार में जो भूल
कल उठाऊंगा भुजा अन्याय के प्रतिकूल
आज तो कह दो कि मेरा बन्द शयनागर
सुमुखि, ये अभिसार के पल, चल करें अभिसार।"१३९

'मिलन यामिनी' में वह इस ओर संकेत करता है कि उसे इस संयोग के निमित्त गहरे मूल्य चुकाने पड़े हैं–

"मैं जलन का भाग अपना भोग आया
तब मिलन का यह मधुर संयोग आया
है दे चुका हूं इन पलों का मोल पहले
है रूपहली रात, है सपने सुनहले।"१४०

प्रिय को देने के लिये एकमात्र प्यार ही अमोल धरोहर है–

"प्राण केवल प्यार तुमको दे सकूंगा।"१४१

प्रिया के भुजपाश को बन्धन मानता है–

"बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में, और कहो क्या बन्धन मानूं।"१४२

'प्रणय-पत्रिका' में कवि की सहज अनुभूतियों में एक नया मोड़ मिलता है। वह अपने प्रिय को गीत बनकर समर्पित होना चाहता है-

"एक यही अरमान गीत बन, प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ।"१४३

जीवन की गांठें खोलकर वह प्रिया को इसके लिए आग्रह करता हैं–

"तुम अपने जीवन की गांठें खोलों, संगिनि मैं भी खोलूं।"१४४

बच्चन के प्रगीतों में जीवन की कटु भुक्त सच्चाई और उतार-चढ़ाव की अनुभूति का भाव-विह्वल वर्णन उपस्थित है। इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता। जीवन में निराशा का बहुलता से भावोद्रेकता के अनुसार कवि की रागात्मक वृत्ति की सच्चाई में सम्मोहन

पैदा करने का आकर्षण था। इसमें एक कलकल निनाद से पूर्ण प्रवाह था जो बरबस किसी को अपने में बांध ले। निराशा से आशा की ओर गमन के साथ-साथ रोमानी भावना एक नया रंग, एक नयी ताजगी, एक नयी रंगीनी लेकर अवतरित होती है। वह वायवी और कल्पना मिश्रित आदर्श नहीं, भोगा हुआ यथार्थ है। बच्चन के प्रगीतों मे अन्तर्वेदना का प्रस्फुरण है। बच्चन के गीतों का मूल्यांकन करते हुए डॉ॰ कल्याणमल लोढ़ा का कहना है कि 'बच्चन मूलत: गीत कवि हैं, उन्होंने लेखन में जितने सफल प्रयोग किये हैं, उतने संभवत: किसी भी समकालीन कवि ने नहीं, छन्दोबद्ध और मुक्त छन्द के साथ उन्होंने लोकधुनों पर आधारित गीत रचे हैं।'१४५ लोकधुनों पर आधृत गीत कविवर बच्चन का नया प्रयोग है। यह प्रयोग अतीव सुन्दर है।

नरेन्द्र शर्मा रोमानी काव्यधारा के दूसरे सशक्त उन्नायक हैं। 'प्रभात-फेरी' और 'प्रवासी के गीत' में संकलित प्रगीत से इन्हें विशेष ख्याति और यश अर्जित हुआ है। नरेन्द्र शर्मा के अधिकांश प्रगीतों में वियोग का पक्ष प्रबल है। बच्चन की तरह नरेन्द्र ने मिलन के गीत नहीं गाये। कदाचित उनके जीवन में प्रथम पक्ष ही विशेष मुखरित रहा है।

"सांझ होते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी
क्या किसी की याद आई ओ विरह व्याकुल प्रवासी।"१४६

उसे विदा के अंतिम-क्षण का स्मरण होता है। पीड़ा से व्यथित मन पुकार उठता है–

"आह अंतिम रात वह बैठी रही तुम पास मेरे
शीश कन्धे पर धरे घन कुंतलों से गात घेरे
क्षीण स्वर में कहा था - अब कब मिलेंगे
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।"१४७

प्रवासी मन प्रेम को कलंकित करने का इच्छुक नहीं। प्रेम को ज्योति बनाकर जगत में उजियाला फैलाने की कांक्षा रखता है।

"जल प्रिया की याद में जल, चिर लगन बन कर प्रवासी
स्नेह की बन ज्योति जग में, दूर कर उर की उदासी।"१४८

परन्तु सच्चाई तो यह है–

"सुमुखि तुमको भूल जाना तो
असंभव है असंभव।"१४९

प्रिया को साथ ही इस दर्दजन्य पीड़ा से न गुजरने का अनुरोध करता है-

"याद जब आए तुम्हें मेरी सुनयने, व्यर्थ भर लाना न लोचन।"१५०

कहीं आशंकित हो कहता है–

"मिल गये उस जन्म से संयोगवश
यदि क्या मुझे पहचान लोगी।"१५१

कहीं दयनीय हो प्रिया को पूछता है–

"क्या तुम्हें भी आता है हमारा ध्यान
नाम लेकर हमारा, खींचता आंचल तुम्हारा क्या कभी सुनसान
क्या तुम्हें भी आता है ध्यान।"१५२

'प्रभात-फेरी' में प्रणयाभिव्यक्ति के स्वर में आत्माधिकार की भावना निहित है। प्रेम अधिक मुखर है। मांसलता लिये है–

"खोलो अवगुंठन खोलो
प्यासे नयन भ्रमर से आकुल
कमलनयनि दर्शन को व्याकुल
अधर अधीर मधुर चुम्बन को
श्रवन तृषित कोकिल कूजन को।"१५३

वह स्वच्छन्द भोग में आस्था रखता है। ऐसी अवस्था में सीमा का अतिक्रमण उसके काव्य को अश्लील और कुरूप भी बना देता है–

"पियें अभी मधुराधर चुम्बन
गात-गात गूंथे आलिंगन।"१५४

उसका पंथ प्रेम से ओत-प्रोत है। इस पथ में सदैव आगे की ओर प्रशस्त रहना ही कवि का लक्ष्य है–

"प्रेम का प्रिय पंथ मेरा, पंथ है तो पंथ में चलना सदा है
विश्राम कैसे लूं, प्रिये जब भाग्य में ही भूलना

फिर खोजते रहना बदा है।"१५५

कवि अन्तरराग को प्रिय के स्वर से शब्द देने को उत्सुक है –

"मैं गीत लिखूं, तुम गाओ
मेरे बौरे रसाल वन से मन में कोयल बन जाओ।"१५६

नरेन्द्र शर्मा के प्रगीतों का मूल्यांकन करें तो देखते हैं कि ये प्रगीत किशोर मन के उद्‌गारों की प्रस्तुति हैं। इनके प्रगीतों में बच्चन और अंचल की सी तरल निराशा, और प्रचण्ड उद्दामता नहीं मिलती। इनकी दृष्टि रूमानी है। प्रेम को वह पंथ मानता है। प्रेम उसके लिए प्रेरणा भी है। कवि की प्रणयानुभूति का पक्ष प्रवासकाल में अधिक वेग से उफनता है।

रामेश्वर शुक्ल अंचल वैयक्तिक प्रगीत कविता की अन्यतम विभूति हैं। इनके प्रगीतों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। इसके साथ ही रूपासक्ति, उद्दाम वासना और अदम्य अतृप्ति मिलती है। 'अंचल ने अपने प्रगीतों में प्रणय को इतने अधिक रूप प्रकारों में अंकित किया है कि काव्यशास्त्र की मर्यादाएं धूमिल हो गयी हैं। कहीं रूप वन की कोकिल के रूप में 'अंचल' ने पंचम गान किया है, कहीं वासना के उद्दाम अंधड़ में संस्कार एवं शील की हर सीमा को ध्वस्त कर दिया है। कहीं मिलन के क्षणों को मूर्तिमंत कर दिया। कहीं विदा की घड़ियों को मन के अवसाद से आर्द्र कर दिया है। कहीं अपनी प्रिया को अपने प्रणय का विश्वास दिलाने की कोशिश की है। कहीं सन्देह की किसी विजनवती गंध से वे मूर्च्छित हो जाते है। कहीं प्रिय की प्रतीक्षा का, कहीं स्मृतियों का, कहीं पूर्ण समर्पण का गीत इन्होंने गाया है।"१५७ यथा–

"है अमर मेरी पिपासा, है क्षणिक मेरा न यौवन।"१५८

अंचल अपनी अन्तर्ज्वाला को प्रकट न कर पाने के कारण अतीव दु:खी है। शैशवकाल से यौवनावस्था तक कौन अज्ञात शुचिता दु:खदायी पीड़ा का कारण है। यह उसकी समझ में नहीं आता।

"किस शुचिता के लिये व्याकुल जला यह भी न जाना
बालापन से ले प्रलय मन्थन रहा चिर मूक प्यासा।"१५९

रूपाशक्ति वर्णन में कहीं भी आवरण नहीं है, छिपाव नहीं है –

"किसी के रूप की आसक्ति जीवन से नहीं जाती
नहीं जाती किसी की याद जीवन से नहीं जाती।"१६०

वह प्रेम में स्पष्टता, निर्भीकता को ही वरेण्य मानते हैं–

"मेरा वश चलता मैं
बन जाता कौमार्य तुम्हारा।"१६१

मनुहार, अनुनय-विनय के स्थान पर आत्मविश्वास ही उनकी शक्ति है–

"चीर कर कैसे दिखाऊँ आत्मा अपनी तुम्हें
हो कलेजा किस तरह दो टूक मेरे प्यार का।"१६२

चांदनी शीर्षक प्रगीत कवि की श्रेष्ठ रचना है–

"चांदनी में आज केवल चांद की बातें करो
प्रेम के इस राजपथ पर मिल गये हम आज फिर
उग रहे आकाश को भरते गये तारक शिशिर
आज हो मधुवर्षिणी आये द्रगों में स्वप्न तिर
चांदनी में आज केवल चांद की बातें करो।"१६३

वियोग वर्णन में भी इतनी ही तन्मयता है–

"आज मैं कुछ अनमनी हूँ
विकल मन की प्यास मुझसे ही स्वयं जानी न जाती
सांस अपनी बांसुरी से पहचानी न जाती
आज बादल की नयी घुलती घुमड़ सी मैं धनी हूँ
आज मैं कुछ अनमनी हूँ।"१६४

वियोग वर्णन में वह अपने प्रिय की स्मृति को शक्ति रूप में अर्जित करता है।

"तुम्हारी याद फिर भी संकटों में शक्ति देती है

भले ही तुम समझ लो मैं हुआ निष्प्राण सब दिन को"१६५

अंचल के प्रगीतों से सर्वेक्षण आभासित होता है कि अंचल के प्रगीतों में सुकुमार भावों की घनीभूत तीव्र अभिव्यक्ति के कारण अधिक वेग मिलता है। वे रूपासक्ति अतृप्ति और उद्याम वासना से भले ही सम्पृक्त हो, वैयक्तिक अनुभूति को नि:संकोच उद्घाटित करने का दुस्साहस अंचल जैसे कवि के लिए ही संभव है। विनोद गोदरे के अभिमत में 'अंचल ने अपने प्रणय प्रगीतों में जहां इंद्रिय संवेदनाश्रित, उत्कट भोग के चित्र खींचे हैं। वहीं विरह विदग्ध प्राणों का संदेह चीत्कार भी अंकित किया है। इन गीतों में मात्र देह का अगोपन समर्पण नही हैं, मन की उष्णता ने भी वर्जना की रिक्त सीमा लांघ उसे पूर्णत्व दिया है।'१६६

आरसी प्रसाद सिंह ने रोमानी भावों को सजीवता दी है और प्रेम के पथ में भय, संकोच और लज्जा के आवरण को उतार फेंका है।

"प्रेम की ऐसी गली रे, प्रेम को पहचानता
लाख रोको, मन न मोहन का किसी विधि मानता
इस गली में भय नहीं, संशय नहीं, ना लाज है
सरफरोशों का बड़ा ही अजब अन्दाज है।"१६७

कवि ने प्रणय के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को प्रगीतों में डाला है–

"कौन तुम मेरे नयन में
बादलों से उमड़ आते
चिर सजल पावक गगन में
कौन तुम मेरे नयन में।"१६८

वह प्रेमिका से अनुग्रह करता है–

"अभी रात है शेष, दीपक गगन के
सभी जल रहे हैं, बुझा कर न जाओ।"१६९

आरसी प्रसाद के प्रगीतों में कोमल निश्छल अनुभूतियाँ ही प्रतिबिम्बित हैं। उनके प्रणय प्रगीत लौकिकता की देन हैं।

जानकी बल्लभ शास्त्री भी गीतों के लिए प्रसिद्ध हैं। अपने प्रगीतों में उन्होंने वास्तविकता को प्रत्यक्षीकृत किया है। 'शास्त्रीजी के कण्ठ में वेदान्त की छाया है यही कारण है कि उनके गीतों में संयोग की कोयल नहीं कूकती वरन विरह की पिकी पुकारती मिलती है। उसमें वसन्त की मुस्कराहट नहीं दिखती है, पावस की घुमड़न मिलती है।'१७० कवि ने जो विरह गीत लिखे हैं उनकी सशक्तता को अस्वीकारा नहीं जा सकता।

"छुएं नहीं मुस्कान कभी भी, होंठ रहे नित सूखे
आँखे रहें उदासी, प्यासी, प्राण रहें नित भूखे
तुम हल्के - हल्के तोलो तो
अब यह जीवन कितना भारी।"१७१

इनके गीतों में दु:ख का आवरण झलकता मिलता है।

"जग विलग हुआ, मैं एक विभाग बना हूँ
जिसमें जीवन जलता वह आग बना हूँ।"१७२

शम्भुनाथ सिंह का योगदान भी प्रगीत कविता में महत्वूर्ण है। शम्भुनाथ सिंह के प्रगीतों की एक विशेषता यह है कि इनके प्रगीत अधिक भावप्रवण, नूतन अनुभूति, कलात्मक स्तर के है। लोक गीतों को लेकर भी इन्होंने गीतों की रचना की है। इन गीतों में कल्पना का भी मिश्रण है।

"मेरे अन्तर के राग-ललक
अकुलाकर उठते छलक - छलक
मैं युग-युग किस में लय होऊँ
चिरजीवन कोई हो भी तो।
मेरे मन कोई हो भी तो।"१७३

इनके प्रगीत में न उत्कट वासना के चित्र अंकित हो पाये और न भाव विह्वलता का प्रस्तुतीकरण ही। शम्भुनाथ की वैयक्तिक अनुभूतियों ने प्रणयपरक गीत अवश्य लिखे। बच्चन और नरेन्द्र की भावप्रवणता और अंचल की स्थूल अतृप्त रूपासक्ति का चित्रण यहां नहीं मिलता।

प्रगीत कविता की दूसरी धारा है प्रगतिवाद। प्रगतिवाद उत्तर छायावाद अथवा रोमाण्टिक भावबोध की व्यष्टि की चेतना से नि:सृत समष्टि की काव्यचेतना है। अर्थात प्रगतिवाद की चेतना व्यष्टि से समष्टि की यात्रा है। इसने सामाजिक यथार्थवाद पर टिकी मार्क्स की चेतना को आत्मसात किया। इसका मुख्य लक्ष्य समष्टि कल्याण से अनुस्यूत था। जैसा कि प्रगीत के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि प्रगीत आत्मानुभूति के भावोद्रेकता का परिणाम है। कवि निजी जीवन के राग-विराग को सहज सरल रूपों में उपस्थित करता है। यह आत्मानुभूति हर काल के कवियों में विद्यमान रहती है। यदि युग में किसी विशेष प्रवृत्ति की प्रधानता होती है, कवि इसकी उपेक्षा नहीं करता। वह आत्मगीत को किसी भी तरह अवश्य आकार देता है। सामाजिक यथार्थवाद के प्रस्तोता कवियों ने अपनी परम्परा की प्रवहमान शाश्वत प्रवृत्ति का काव्य में निर्वाह किया है। उसका समाजीकरण रूप में प्रयोग किया है। कथ्य की दृष्टि से उत्तर छायावाद में प्रणयप्रगीत के संयोग-वियोग पक्ष से सम्बन्धित प्रगीत है। प्रगतिवाद के प्रगीतकारों ने भी इन प्रवृत्तियों को अपनाकर इसको समष्टि नैतिक मर्यादाओं में चित्रित करने का यत्न किया है। प्रगतिवादी प्रगीत उत्तर छायावादी प्रगीतों के सम्पूरक है। इसके प्रमुख प्रगीतकार हैं– नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, गजानन माधव मुक्तिबोध। पन्त और निराला छायावादी संस्थान के कीर्ति स्तम्भ होकर भी प्रगति के गायक हैं। उनके प्रगीत भी यहां ध्यातव्य है।

नागार्जुन प्रगतिशील कवि हैं। नागार्जुन की काव्य-प्रतिभा वाद की सीमा में न बंधकर जीवन के विविध अंगों-उपांगों का संस्पर्श करते हुए उन्मुख है। नागार्जुन में व्यष्टि और समष्टि के प्रगीतों का अद्भुत समाहार है। इनके व्यक्तिगत प्रणय में कोई खुलापन नहीं है। न वियोग की मार्मिक पीड़ा का उद्घाटन है। न अतृप्ति, रूपासक्ति का समावेश है। कवि को प्रवासकाल में प्रेयसी का स्मरण अंधकारपूर्ण जीवन में ज्योति की फांक सा उदित जान पड़ता है।

"कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फांक
यह तुम थी।"१७४

प्रवासकाल में प्रिया स्मरण के संग प्राकृतिक उपादानों की भव्यता उद्दीप्त हो जाती है पर चिन्तन के केन्द्र में सिन्दूर तिलकित भाल सतत याद आता है-

"मैं रहूँगा सामने 'तस्वीर' में पर मूक
सांध्य नभ में पश्चिमांत समान
लालिमा का जब करूण आख्यान
सुना करता हूँ सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।"१७५

प्रवासकालीन समय समाप्त होने के पश्चात कवि का जब प्रत्यावर्तन होता है। वह आत्मिक आनन्द को प्राप्त करता है।

"बहुत दिनों के बाद
अब के मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर।"१७६

उत्तर छायावाद और प्रगतिवाद के कवियों में यद्यपि भोग की समान प्रवृत्ति मिलती है तथापि उत्तरछायावादी व्यष्टिगत धरातल पर इसका प्रत्यक्ष वर्णन करते हैं जबकि प्रगतिवादी समष्टि धरातल पर इसका संतुलित आकलन करते हैं। नागार्जुन भी दाम्पत्यप्रेम की साधिकारता को एक अलग रूप में प्रकट करते हैं।

"पास ही सोई पड़ी श्लथ शकुन्तला
प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गई तो दिखा कर तारे बचे दो चार
कहा मैंने तब पकड़ हाथ
दो घड़ी का हमारा, इनका रहा है साथ
हो रहे अब विदा, गा दो सुमुखि एक विहाग।"१७७

नागार्जुन के काव्य में प्रगीत की संख्या अल्प है। किन्तु उन्होंने जो भी लिखा है वह सुन्दर है, अतुलनीय है। नागार्जुन में प्रगीत चेतना का अभाव नहीं है।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील धारा के सबसे सशक्त प्रगीतकार हैं। वैयक्तिक प्रणय और लोकगीत की सोंधी महक केदार के गीतों को रसमय बनाती है। केदारनाथ

अग्रवाल ने गीतों के सम्बन्ध में लिखा है 'गीतों के विषय में मेरा कुछ कहना उचित न होगा। केवल इतना कहूंगा कि मेरे गीत लोक मानव के हृदय के गीत हैं। न वे गायकी के गीत हैं, न साहित्यिक उपलब्धियों के गीत हैं।'१७८ यानी वह अपने गीतों को गायकी और साहित्यिक उपलब्धियों की निधि नहीं मानता। लोक-चेतना से सम्पन्न अपने गीतों को वह लोक की सम्पत्ति स्वीकारता है। प्रगीत के क्षेत्र में कवि ने नये प्रयोग किये हैं। 'जहाँ इनकी प्रगीत चेतना सामाजिक यथार्थ के ऊबड़-खाबड़ पथ की अनुगामिनी बनी, वहीं वैयक्तिक प्रणय के पार्थिव स्वरों को भी उसने संजोया है। इसके अतिरिक्त लोकगीतों की आदिम उष्मा से केदार ने अपने प्रगीतों को चम्पई तेवर दिये हैं और भावना को दी है पारिजाती गंध। इन दो छोरों के अतिरिक्त केन-किनारे का यह विहग प्रगीत के आकाश में प्रयोगों का कपोती गान करता है।'१७९

प्रेम को वह जीवन की उपलब्धि मानता है। जीवन का यह अनिवार्य अंग उसे अन्यत्र भटकने को नहीं छोड़ता।

"एक तुम्हारी ही स्मृति ने तो चिर जीवन स्वप्न सजाया
एक तुम्हीं को पाया मैंने एक तुम्हीं को पाया।"१८०

प्रेम में आध्यात्मिक का संगुम्फन नहीं है। मांसल चित्रण में कहीं विकृति का उपयोग नहीं है–

"तुमको जब तक लिए अंक में
जिऊँ, अंत तक
तब तक हाँ, तुम तब तक
मेरी ओर निहारो।"१८१

'केन-किनारे' का गीत विहग कनेर खिले फूलों से प्रणय का सन्देश देता है–

"आओ ना,
गले मिलने
फूल आये कनेर के तले
सघन छांह में
खिलने।"१८२

लोकजीवन से प्रभावित केदार के कई प्रगीतों में आंचलिकता का सम्पुट मिलता है। "माझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता" में लोक भावना मुखरित है। यह गीत लोकप्रसिद्ध भी है।

"माझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता।"१८३

इसके अलावा कवि ने और भी कई प्रकार के प्रयोग किये हैं–

"चम्पई आकाश तुम हो
हम जिसे पाते नहीं
बस देखते हैं
रेत में आधे गड़े
आलोक में आधे खड़े।"१८४

केदार जी के प्रगीतों में निश्चय ही रागात्मकता का पक्ष सर्वोत्तम है। इनके गीतलोक मानव के गीत हैं। वे गायकों के गीत हैं। वे साहित्यिक उपलब्धियों के गीत हैं। यह ज्वलन्त सच्चाई है।

त्रिलोचन भी प्रगीत के समर्थक कवि हैं। नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की प्रगीत परम्परा का त्रिलोचन ने भी निरूपण किया है। त्रिलोचन साँनेट प्रयोग के लिये विख्यात है। साँनेट को भारतीय संस्कृति में रंग कर विदेशी काव्य ढांचें को अपनाकर भी वे भारतीय लोक परम्परा से सम्पृक्त हैं। त्रिलोचन भी जीवन की वैयक्तिक भावनाओं के संवाहक कवि हैं। पर इनके प्रगीतों में उच्छृंखलता नहीं मिलती। इनकी रागात्मकता में संयम है। एक लयात्मक अनुशासन भी। त्रिलोचन के प्रगीतों में अतिशय भावुकता और बौद्धिकता नहीं मिलती। उसने अपनी गीतों को अतिशयता के बोझ से सुरक्षित रखा है।

प्रणय कवि को नयी स्फूर्ति प्रदान करता है। साहस से संजोता है। कर्मक्षेत्र में भी प्रगति पथ का सम्बल देता है।

"मुझे जगत जीवन का प्रेमी बना रहा है प्यार तुम्हारा
मेरी दुर्बलता को हर कर, नयी शक्ति नव साहस भर कर

तुमने फिर उत्साह दिलाया, क्रम-क्षेत्र में बढ़ूं संभलकर
तब से मैं अवतरित बढ़ता हूँ, बल देता है प्यार तुम्हारा।"१८५

प्रणय में निराशा अथवा विफलता से वह विक्षिप्त नहीं होता। उसका प्रणय सम्बन्ध आयातित नहीं है, स्वेच्छा से आया है।

"बिना बुलाये जो आता है प्यार वही है
प्राणों की धारा उसमें चुपचाप बही है।"१८६

प्रिय से बिछोह की पीड़ा से वह वेदना का आलिंगन नहीं करता। इस वियोग को जीवन का एक हिस्सा मानकर वह प्रसन्नतापूर्वक इसे ग्रहण कर लेता है–

"आज सदा के लिये अलग होने से पहले
आओ पुनः गले मिल लें हम, फिर तुम जाओ
जहां कहीं जी चाहे, जिसमें जीवन पाओ।"१८७

इसका यह अर्थ नहीं कि उसका प्रिय जीवन से उसे निकाल फेंके। वह न होने की स्थिति में उपस्थित की कांछा रखता है–

"यदि मैं बुलाऊं तो तुम भले न आओ
मेरे पास, परन्तु मुझे इतना तो बल दो
समझ सकूं यह, कहीं अकेले दो ही पल को
मुझको जब तक लख लेती हो नी गाओ
प्राणों के वे गीत जिन्हें मैं दुहराता हूँ।"१८८

सॉनेट के प्रयोग में त्रिलोचन अद्वितीय हैं। सॉनेट में गेयता त्रिलोचन जैसे कलाविद् कर सकते हैं—

"गालिब होकर रहे, जीत कर दुनिया छोड़ी
कवि थे, अक्षर में अक्षर की महिमा जोड़ी।"१८९

त्रिलोचन के कवि व्यक्तित्व की महत्ता है परम्परा को स्वीकार करना, प्रयोगों का उचित व्यवहार। त्रिलोचन ने सॉनेट का प्रयोग सफलता से किया है।

मुक्तिबोध हालाँकि प्रगतिवादी काव्यधारा के सर्वाधिक विशिष्ट कवि हैं। इनकी प्रायः रचनाएं लम्बी है। प्रगीत की संक्षिप्तता को इनमें खोज पाना बहुत ही जटिल कार्य है। यत्र-तत्र कवि की लम्बी कविताओं में व्यक्तिगत अनुभूति प्राप्त हो ही जाती हैं–

"मैं उनका ही होता, जिनसे मैंने रूप-भाव पाए हैं।
वे मेरे ही हिये बँधे हैं, जो मर्यादाएं लाए हैं।"१८९

अथवा

"मुझे पुकारती हुई पुकार खो गई।"१८९

या

पता नहीं कब, कौन, कहां किस ओर मिले
किस सांझ मिले, किस सुबह मिले।।
यह राह जिन्दगी की जिससे जिस जगह मिले।"१९०

प्रगीत लिखना मुक्तिबोध का उद्देश्य नहीं था। अपने समय के प्रभाव से वे अछूते नहीं रह सके। इसका अंश समाहित हो गया। जिसका प्रतिफलन प्रगीत उनमें है।

छायावाद के आलोक स्तम्भ पन्त और निराला की काव्यकृतियों का विवेचन प्रगतिशील धारा में समानान्तर महत्व अधिकारी है। पन्त और निराला ने ही सर्वप्रथम जड़ता के विरूद्ध प्रगति का आह्वान किया था। समय की पहचान करने की इन कवियों में विलक्षण प्रतिभा थी। युग की कठोर और दुर्दमनीय स्थितियों में जीवन के स्पन्दन को भारतीय मिट्टी से संयुक्त कर नयी चेतना को रूपायित करने में इन कवियों का विशेष सहयोग रहा है। "वीणा और पल्लव" का कवि 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' का रचनाकार बना। दूसरी ओर निराला 'राम की शक्ति पूजा', 'बेला', 'नये-पत्ते', 'अर्चना' के सर्जक बने।

पन्त का झुकाव मार्क्सवाद से प्रेरणा लेकर प्रगत्योन्मुख रहा है। 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में इनके समष्टिबद्ध यथार्थ प्रगीत संकलित है।

कवि 'ताज' को देखता है तो उसका मन खिन्न हो जाता है। मृत्यु का अमर पूजन और मानव के प्रति विरक्ति, आत्मा का अपमान, प्रेत छाया से प्रीति यह कवि के लिए अत्यन्त विस्मयकारी है–

"हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन
संग सोध में हो श्रृंगार मरण का शोभन
नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित-धन।"१९१

वह 'चांदनी' को चिरन्तन शक्ति का प्रतीक मानता है। सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त चांदनी को देख उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों सम्पूर्ण विश्व उसमें एकीकृत हो गया हो।

"वह है, वह नहीं, अनिर्वच, जग उसमें, वह जग में लय
आकार चेतना सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय।"१९२

'लोकसंस्कृति का अध्येता कवि धोबियों का नृत्य' को बड़ी उत्सुका से देखता है। जनगण के त्यौहार हमारी संस्कृति के प्रतीक है।

"खोल गए संसार नया तुम मेरे मन में क्षण भर
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौन्दर्य स्वप्न दिखलाकर।"१९३

'पतझर', 'बसन्त', 'झँझा में नीम', 'याद', 'जीव-प्रसू' और 'चींटी' भी पन्त के श्रेष्ठ प्रगीत है। पन्त नारी को सामंतीय पाश से मुक्त कराने के अभिलाषी हैं।

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"१९४

पन्त के प्रगीत में उत्तरछायावाद और प्रगतिशील धारा के कवियों की सी ताजगी, लय नहीं है। उन्होंने कविता को जड़ता से बाहर निकालकर प्रगति के स्वर से परिपूर्ण किया।

निराला के प्रगीतों में वैयक्तिक अनुभूतियाँ प्रश्रय न पाकर मानवीय मूल्यों का प्रतिष्ठापन है। निराला के प्रगीतों में उनकी बहुमूल्य अनुभूतियां दर्शनीय हैं। इन्होंने प्रगीत के क्षेत्र नें नये-नये प्रयोग किये जैसे संबोधन, शोक पत्र, गीत एवं चतुर्दशपदी आदि। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूं, गहो हाथ,
हार गया जीवन-रण,
एकाकी नैश क्षण,
कण्टक पथ, विगत पाथ।"१९५

निराला के एक गीत में कजली का प्रयोग है। जिससे मधुर सौन्दर्य उसमें समविष्ट हो गया है।

"काले काले बादल आये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे-कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
बिजली बन के मन की कौंधी,
कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सर सर करते धाये न आये वीर जवाहरलाल।"१९६

निराला की खूबी यह है कि वे प्रयोग करने में बहुत कुशल है। इनके प्रगीतों की सान्द्र अनुभूति सहसा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। वेदव्रत शर्मा की उक्ति उनके प्रगीतों के लिये सटीक है।

'निराला प्रगीतों में कहीं अपनी बात आप कहते हैं, कुछ में वे किसी दूसरे से बात करते हुए दिखायी पड़ते हैं और कहीं वे द्रष्टा के रूप मे अन्य पुरूष शैली को अपनाते हैं। उन्होंने कहीं प्राकृतिक उपादानों पर अपने आशय का आरोप किया है और कहीं चेतना का। इन विशेषताओं के साथ-साथ, कहीं-कहीं अद्भुत नाटकीयता ने इनके प्रगीतों को अत्यधिक उत्कर्ष प्रदान कर दिया है।'१९७

प्रगतिवाद के विरोध में आविर्भूत प्रयोगवाद एक ऐसी धारा है जो परम्परा को पोटली समझकर मात्र प्रयोग को साधन रूप में ग्रहण करती है। प्रयोगशील कवियों का मुख्य लक्ष्य प्रयोग करना था। इसलिये शिल्प के प्रति इनका झुकाव अधिक रहा। इन कवियों में प्रगीत के तत्वों की छान-बीन की जाय तो छिटपुट रूप में गीत विद्या का स्पर्श मिल जाता है। "इस धारा के गीतकारों ने जहां गीतों को यथार्थ की तपन दी, निराशा का स्याहपन दिया, वहीं आशा की शुभ्रता भी प्रदान की है। विश्वास की एक नयी जमीन

भी दी है। इन्होंने गीतों में संघर्ष का सप्तक रचा, जो इनके जीवन का संगीत बन गया। युगबोधानुकूल संत्रास एवं भय की भूमियों से भी इनके गीत अछूते नहीं है। प्रयोग की शर्त्त नवीनता होती है, इनके गीतों में नवीनता का आसव बिखरा पड़ा है और लोकगंधी चेतना ने इनके कलागीतों को अपनी आदिम उष्मा दे, इन्हें अत्यधिक सम्वेदनशील और नयी अर्थवत्ता से सम्पन्न कर दिया है।"१९८

भवानी प्रसाद मिश्र नये गीत लिखने हेतु पुराने बन्धन को काटने को कटिबद्ध है।–

"नये गीत लिखने का मन है
तब तू काट पुराने बन्धन।"१९९

अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक हैं। अज्ञेय की प्रवृत्ति भी वेदना, पीड़ा को उद्भूत करने में रमी है। कवि प्रेम में विरह को अनिवार्य मानते हैं।

"प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा।"२००

वह विदा के क्षणों में, गीत को उदास न होने का आदेश देता है–

"यह जाने का दिन आया
पर कोई उदास गीत
अभी गाना ना।"२०१

वह दूरवासी गीत को कांपते गीत प्रेषित करता है–

"दूरवासी गीत मेरे
पहुंच क्या तुझ तक सकेंगे कांपते ये गीत मेरे।"२०२

अज्ञेय के प्रगीतों में वासना नहीं है, न मादकता, वियोग पक्ष में सहजता और निर्मलता इनके प्रगीतों को सरसता देती है। अज्ञेय ने छायावादी परम्परा को विस्तार दिया है। पर आगे कवि अपनी रचनाओं में प्रगीत को विस्तार नहीं दे सका।

गिरिजाकुमार माथुर भी प्रसिद्ध प्रगीतकार हैं। माथुर प्रगीत में कथ्य को मुख्य मानते हैं। उनके मतानुसार गीत में सिर्फ मूल भावना अर्थात् सुख-दुख, प्रणय वियोग आदि ही

व्यक्त होते हैं, ऐसा नहीं है। सामयिक जीवन की धड़कनें भी मनुष्य की मौलिक नियति के रूप में व्यक्त होती है।"२०३ इनके प्रगीतों में काव्यतत्व और संगीततत्व का अद्‌भुत मिश्रण है। साथ ही नयी भाषा प्रयोग, फैन्टेसी शिल्प का प्रयोग से इन्हें प्रगीत काव्य परम्परा में अलग स्थान मिला है।

गिरिजाकुमार माथुर ने प्रणयपरक गीतों की बहुलता से रचना की है कवि ने स्वयं प्रणय के सम्बन्ध में लिखा है 'प्रणय के संबध में छायावादी परिवृत्त के कवियों की भांति नया कवि झिझक या कैशौर्य झेंप का अनुभव नहीं करता और न ग्लानि का भाव। पिछले कवि नर-नारी के कोमल अंतरंग प्रेमालापों को बहुत छिपकर दुरस्थित, वायवी संकेतों से व्यक्त किया करते थे मानों कोई अपराध कर रहे हों। नये कवि में यह अपराध भावना बिल्कुल नहीं है। उसने अधिक आश्वस्त, परिपक्व एवं मुक्त रूप से प्रणय के आस्वादन को व्यक्त किया है।"२०४ माथुर जी के ये भाव उनकी रचनाओं में भी अंकित है। माथुरजी प्रेम को शक्ति के अर्थ में स्वीकार करते हैं।

"शक्ति दो मुझको सलोनी प्यार से
लड़ सकूँ मैं जुल्म के संसार से"
"बांह गोरी मनुजता की ध्वज बने, छाप तेरे अधर की सूरज बने
फिर उड़ते प्यार की दृढ़ ढाल दो, फिर नयन मेरे नयन में डाल दो।"२०५

वियोगावस्था में प्रिय का स्मरण भी उसकी वेदना को द्विगुणित कर देता हैं।

"छाया मत छूना मन
होगा दुख दूना मन।"२०६

माथुर जी ने प्रगीत को नव विकास दिया है। इन्होंने परम्परा से हटकर प्रगीतों में प्रयोग किये हैं। छायावादोत्तर प्रगीत काव्य में उनके प्रगीतों में परम्परा और प्रयोग का अनूठा संगम है।

धर्मवीर भारती भी इस धारा के प्रतिनिधि प्रगीतकार हैं। तार-सप्तक के वक्तव्य में भारती ने लिखा है "जब उसकी "भारती" चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोलबाला था। उसे लगा कि कविता की शहजादी इन पार्थिव कल्पनाओं, टेड़े-मेढ़े शब्द जालों, अस्पष्ट रूपकों और उलझे हुए जीवन दर्शन की शिलाओं से बंधी उदास जलपरी

की तरह कैद हैं और भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाये। इसलिए भारती ने सबसे पहले लिखे सरलतम भाषा में रंगबिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्याम यौवन के सर्वथा मांसल गीत जो न तो मन की प्यास को झुठलाएं और न उसके प्रति कोई कुण्ठा पैदा करें। जो सीधे ढंग से पूरी ताकत से अपनी बात रखें। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियों के साथ साथ निडर खेल सकें, बोल सकें।" २०७

धर्मवीर भराती रूप और वासना को अति आवश्यक मानते हैं। यहां भारती अंचल के निकट जान प्रतीत होते हैं।

"न हो वासना तो जिन्दगी की भाप कैसे हो
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो।" २०८

अन्य कवियों की तरह भारती ने भी वियोग परम्परा का पुनः संधान किया है।

"बरसों के बाद उसी सूने से आंगन में
जाकर चुपचाप खड़े होना
रिसती सी यादों में पिरा-पिरा उठना
मन का कोना-कोना।" २०९

भारती ने प्रगीतों में नये प्रयोग किये हैं जैसे—

"मिलो जब गांव भर से, बात कहना, बात सुनना
भूल कर मेरा
न हर्गिज नाम लेना
अगर कोई सखी कुछ जिक्र मेरा छेड़ बैठे
हंसी में टाल देना बात
आंसू थाम लेना।" २१०

भारती भी रुपासक्ति के कवि हैं। गिरिजाकुमार माथुर की भांति इन्होंने भी प्रगीत को नये प्रयोग से सजाया- संवारा है। इसके पश्चात नई कविता तक आते- आते प्रगीत का पुनः रूप परिवर्तन हुआ। इसे नवगीत की संज्ञा मिली। संक्षेप में प्रगीत कविता समकालीन जीवन मूल्यों से रस पाकर विकास करती रही। छायावादोत्तर काल में इसे

पूर्ण उत्कर्ष मिला और आगे जाकर इसने 'नव-गीत' नामक नई उद्‌भावना को निर्माण का अवसर प्रदान किया। छायावादोत्तर काल में प्रगीत कविता का प्रदेय अनुपम है।

"घ"

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा छायावादोत्तर युग की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। यह प्रवृत्ति नवजागरण काल की देन है। भारतेन्दु युग में उद्‌भूत यह प्रवृत्ति अतीत और वर्तमान के बीच सन्तुलित दृष्टिकोण को अपनाते हुए परम्परा और प्रयोग में उचित सामंजस्य को स्थापित करते हुए इतनी अधिक व्यापक और विस्तीर्ण होती गई कि उसने सम्पूर्ण देश के कोटि-कोटि लोगों को राष्ट्रीयगौरव की महत्ता के प्रति जागरण दिया। छायावादोत्तर काल में राष्ट्रीयसांस्कृतिक काव्यधारा के स्वरूप का आकलन करने से पूर्व यहां आवश्यक है कि उसके पूर्व रूप पर भी दृष्टि डालें अन्यथा विवेचन एकांगी होगा।

'राष्ट्र' शब्द एक अतीव व्यापक और गूढ़ शब्द है। डॉ० सुधीन्द्र ने इसके स्वरूप की सुन्दर व्याख्या की है, 'भूमि', 'भूमिवासी', 'जन और जन संस्कृति' तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात भौगोलिक एकता, जन अर्थात जनगण की राजनैतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात सांस्कृतिक एकता तीनों के समुच्य का नाम राष्ट्र है। 'राष्ट्र' में भौगोलिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक इकाइयों पुंजीभूत है।२११ अर्थात राष्ट्र भौगोलिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक इकाइयों का समन्वय है जो देश की बदलती परिस्थितियों के प्रभाववश शनैः शनैः उज्जवल से उज्जवलतर होता जाता है।

राष्ट्रीयता का सही आरम्भ अंग्रेजों के आगमन से होता है। दूसरी संस्कृति के संपर्क में भारतवासियों में शिक्षा का प्रसार हुआ साथ ही मुद्रणादि के आविष्कारों ने भी समूचे देश को प्रभावित किया। हालांकि १८५७ की क्रांति की असफलता से हृदय में परिव्याप्त यह भावना दृष्टिगोचर होने लगी थी। किन्तु भारतेन्दु युग में ही इसका सही प्रादुर्भाव हुआ जो कभी अपने अतीत का स्मरण करती है, कभी वर्तमानदशा में विक्षुब्ध हो उठती है। इस युग की राष्ट्रीयकाव्यधारा में राजभक्ति और वर्तमान अधोगति दोनों ही भावनायें परिव्याप्त है। 'इन कवियों की रचनाएं आरम्भ से राजभक्ति से ओतप्रोत है परन्तु

क्रमशः मोह का परदा हटता गया और एवं दासता की कठोरता सामने आती गयी जिससे इनके बाद की रचनाओं में असन्तोष की स्पष्ट झलक मिलने लगी। इस समय का इतिहास भी इन कवियों की भावनाओं की सत्यता प्रमाणित करता है।'२१२ कतिपय उदाहरणों के द्वारा इन कवियों के भीतर उत्पन्न भावना को समझा जा सकता है। 'भारत-भिक्षा' में राजभक्ति का प्रदर्शन करते हुए भारतेन्दु कहते हैं—

"ब्रिटिश सुशासित भूमि में आनंद उमगे जात।" २१३

'बद्रीनारायण चौधरी' 'प्रेमघन' के शब्दों में—

"राजभक्ति इनमें रही जैसी अकथ अनूप
वैसी ही तुम आज हूं पैहो पुरब रूप
सबै गुनन के पुत्रज कर भरे सबल जग माहिं
राजभक्ति भारत जसि और ठौर कहूं नाहिं।" २१४

कोरी राजभक्ति से अपने संलक्ष्य में कोई लाभ न मिलने से इनकी दृष्टि वर्तमान दुर्दशा और अधोगति के उल्लेख में प्रवृत्त हुई।

"रोबहु सब मिलिकै आबहु भारत भाई
हा-हा, भारत-दुर्दशा देखि न जाई।" २१५

तथा –

"भीतर भीतर सब रस चूसे। हंसि हंसि के तन मन धन मूसै
जाहिर बातिन में अति तेज। क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज।" २१६

तथा कहीं-कहीं सुप्त भारतवसियों हेतु जागरण संदेश है—

"उठो आर्य सन्तान सकल मिलि बस न बिलम्ब लगाओ
ब्रिटिश राज स्वातन्त्रमय समय व्यर्थ बैठि न बिताओ।" २१७

देश के अतीत से प्रेरणा लेकर इस युग के कवियों ने वर्तमान में जागरण का शंख फूंका है। भारतेन्दु के संग प्रेमघन, राधाकृष्णदास, ठाकुर जगमोहन सिंह, प्रताप नारायण मिश्र,

बालमुकुन्द आदि सभी कवियों ने अपनी परम्परा की सक्रिय उपलब्धियों को वर्तमान में प्रक्षेपित किया है–

"अब जहं देखहु तहं दुःखहि दुःख दिखाई
हा हा भारत - दुर्दशा देखि न जाई।"२१८

भारतेन्दु एक ओर हरिश्चन्द्र, नहुण, ययाती, राम, युधिष्ठिर, कर्ण, अर्जुन की परम्परा से जुड़े हैं वहां वर्तमान जीवन में उपजी मूढ़ता, कलह, अविधा जैसे दुर्गुण भी उनके काव्य में समाविष्ट हो गये हैं। भले ही इन कवियों के राष्ट्रीय स्वर में ओज और गति का प्राबल्य न मिलता हो वह दबे स्वरों में प्रकट हो पर उसने अपने अतीत स्मरण के साथ अपनी संस्कृति को उन्नत और प्रभावशाली चेतना को नहीं भुलाया, न ही वर्तमान के प्रति उपेक्षा दिखाई। इस युग की धारा में फिर भी एक ऐसी उत्कृष्टता विद्यमान है परवर्ती युग के साहित्यकारों पर जिसका गहरा असर पड़ा और उन्होंने इस काव्यधारा को नया उत्स दिया, एक अनूठी अभिव्यक्ति दी, एक नवीन प्रगति भी दी। 'राष्ट्रीयता की जो तान भारतेन्दु ने छेड़ी थी उसका स्वर गुप्तजी में बहुत ऊंचा हो जाता है।'२१९ गुप्तजी ने द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय काव्यधारा का नेतृत्व भार संभाला। इन्होंने प्राचीन कालीन गौरव का वर्णन किया, वर्तमान की क्षोभनीय अवस्था को साकार किया पर इसके साथ ही साथ उद्बोधन की चेष्टा की। इनकी 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' कृतियां देश भक्ति अनुराग को जागरित करने में सर्वाधिक सफल हुई। 'भारत-भारती' देश के भूत, वर्तमान और भविष्य की गीता थी

जिसने लोगों के हृदय में जागृति की भावना का प्रादुर्भाव किया। 'भारत-भारती' राष्ट्रीय चेतना के उद्यीपन के लिए हिन्दी की सर्वप्रथम सबल रचना रही है।'२२० इस कृति में नई सम्भावनायें समाविष्ट थी जिसने कालांतर में भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा को असीमित और सुदृढ़ किया और गुप्तजी का प्रमुख उद्देश्य था भारतवासियों को उनके गौरवशाली अतीत की याद दिलाकर वर्तमान विपन्नावस्था से उबार कर एक उज्जवल भविष्य की प्रेरणा जागृत करना–

"भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में
सिंधु-पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।"२२१

एक और दृष्टान्त दर्शनीय है –

"हम कौन थे क्या हो गये है और क्या होंगे अभी
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएं सभी।" २ २ २

अपनी अतीतकालीन वैभव सम्पदा का समकालीन युग में अभाव देखकर इन कवियों का स्वर आर्त स्वर में पुकार उठा–

"वह धीरता कहां है गम्भीरता कहां है
वह वीरता हमारी है वह कहां बड़ाई
क्या हो गयी कलाएं कौशल सभी हमारे
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई।" २ २ ३

रामनरेश त्रिपाठी ने भी परतन्त्रता के विरोध में आवाज उठाई। देशमहिमा का गुणगान किया ताकि राष्ट्रीय स्वर को अधिक प्रखरता और सम्वर्द्धन मिल सके।

"वन्दनीय वह देश जहां के देशी निज अभिमानी हों
बान्धवता में बंधे परस्पर परता के अज्ञानी हो।" २ २ ४

इस प्रकार द्विवेदी युग ने अपनी गौरवशाली अक्षुण्ण संस्कृति को प्रेरणादायक मानकर परम्पराओं के प्रति जनता के हृदय में अनुराग उत्पन्न करने की कोशिश की। रूढ़ियों के लिए विद्रोह किया, राष्ट्र विरोधी शक्तियों और दुश्मनों के प्रति घृणा एवं नफरत को बढ़ावा दिया, क्रान्ति की शक्ति दी, अब देशभक्ति की भावना का एक ही लक्ष्य था परतन्त्रता के पाश से मुक्ति। इसके लिए राष्ट्रीय काव्यधारा को नयी तीव्रता से विकासोन्मुख किया गया। वर्तमान की स्थितियों ने खीझ और असन्तोष को प्रश्रय दिया।

"संसार रूप शरीर में जो प्राण रूप प्रसिद्ध था
बस सिद्धियों में जो कभी सम्पूर्णता से सिद्ध था
हा हन्त, जीते जी वही, अब हो रहा प्रियमाण है
अब लोक रूप मयंक में भारत कलंक समान है।" २ २ ५

द्विवेदी युग में अतीत का गरिमा गान, वर्तमान अवनति, मातृभूमि प्रेम आदि का चित्रण हुआ। राष्ट्रीयता की भावना अधिक स्पष्ट और उन्नत हुई। 'द्विवेदी युग के कवियों ने वैभवशाली अतीत के गुणगान से देश की सुप्त धमनियों में रक्त का चैतन्य प्रवाहित किया है। द्विवेदी युग का कवि यदि अतीत के स्वर्ण-युग का अवलम्बन न लेता तो उसके हृदय में आत्म सम्मान और आत्मनिर्भरता के व्यापक प्रभाव प्रस्फुटित हो ही नहीं सकते थे।'२२६ भारतेन्दु युग में जिस राष्ट्रीय काव्य धारा का जन्म हुआ उसकी अभिवृद्धि द्विवेदी युग की राष्ट्रीय काव्यधारा में हुई किन्तु परवर्ती काल में वही अधिक व्यापक और विस्तीर्ण होती गई।

द्विवेदी युग के पश्चात आविर्भूत छायावादयुग में चूंकि रोमाण्टिक प्रवृत्ति प्रमुख थी अतएव राष्ट्रीय काव्यधारा को प्रमुखता न देने के उपरान्त भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा की प्रवहमानता में शैथिल्यता का उन्मेष नहीं हुआ। प्रसाद, निराला और पन्त की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन हुआ। प्रसाद ने अपनी इस भावना का प्रकाशन ऐतिहासिक माध्यम से करते हुए अपनी परम्परा का निर्वाह किया। उन्होंने अपनी परम्परा के उन स्वर्णिम पृष्ठों को अंकित किया जिसमें आत्म गौरव और स्वाभिमान के भाव सन्निहित थे।

'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' ऐसी ही गौरवशाली रचनाएं है–

"ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में
अब तो न लेश मात्र
लालसिंह जीवित कलुष पंचनद् का
देख, दिये देता है
सिंहों का समूह नख दन्त आज अपना।"२२७

प्रसाद की तरह निराला ने भी सांस्कृतिक-ऐतिहासिक चेतना को पुनर्जीवित किया है 'जागो फिर एक बार', 'शिवाजी का पत्र' इसी का प्रमाण है। भारतवासियों में ओजता का मंत्र फूंकने वाले निराला की यह पंक्तियां निश्चय ही सशक्त है–

"तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्
हे नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार
जागो फिर एक बार।"२२८

इसी प्रकार पन्त की भी 'ज्योति भारत', 'भारत गीत', 'स्वतन्त्रता जागरण', 'भारत माता' कविता भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष से यह कहा जा सकता है कि देश की बदलती-परिस्थितियों में शनैः शनैः परिवर्तन आता गया उसी के अनुरूप राष्ट्रीयता की

भावना में परिवर्तन होता गया। देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों को छायावादोत्तरकाल में एक ऐसी संक्रामक और प्राणघातक अप्रत्याशित घटनाओं से साक्षात्कार करना पड़ा था कि राष्ट्रीय काव्यधारा का स्वरूप भी उतना ही उग्र और निर्मम बनकर प्रकट हुआ। परिवर्तित परिवेश में कविता ने भी वर्तमानकालिक संकट से उबरने निमित्त कविता में प्रयोग के द्वारा नई प्रतिस्थापनाओं को स्थापित करने की चेष्टा की। अब अतीत की ओर हसरत भरी निगाहों से देखना या अतीत की पुनःस्थापना करना कवि का अभीष्ट नहीं रहा वह तो वर्तमान की प्रत्येक चुनौती से संघर्ष कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रतिबद्ध था। किन्तु कवियों का उद्देश्य राजनीति के आपसी मतभेद के कारण किसी एक निश्चित पथ पर चल नहीं सका। जहाँ तक राजनीतिक का प्रश्न है गांधी और तिलक दोनों ने दो विपरीत रास्तों को अपनाकर अपने दृढ़संकल्प को पूर्ण करने की सचेष्टता की। गांधी ने अहिंसा और सत्य के शस्त्रों का अवलम्बन लिया। तिलक ने क्रांति और विप्लव के बल पर आधार लिया। गांधी के सिद्धान्तों में आत्म-समर्पण, शान्ति का सद्भाव, मानवतावाद विचारधारा की प्रधानता थी जबकि तिलक की अनुचेतना में विप्लव, रक्तरंजित क्रान्ति, हिंसात्मक प्रसाधनों का प्राचुर्य था। इसका कारण था तात्कालिक विषम तेजी से परिवर्तित घटनायें यथाः १९३६ में ब्रिटिश सत्ता का कांग्रेस के ऊपर से प्रतिबन्ध हटाना, सन् १९३८ में द्वितीय विश्वमहायुद्ध सन् १९४२ में गांधीजी का 'करो या मरो' की शंख उद्घोषणा, विदेशी शासकों का अमानुषिक व्यवहार, जनता का भी उतनी ही सक्रियता से टूट पड़ना,

राजनीतिक नेताओं, कवियों भारतीय जनता के आतंकवादी और प्रहारात्मक संकल्पात्मक इरादों से विदेशी सत्ता का कांप उठना, अन्ततः स्वतन्त्रता प्राप्ति। कहने का अर्थ यह नहीं कि बस इन्हीं घटनाओं ने राष्ट्रीय चेतना को शक्ति दी। यह काल जीवन के विविध परिवेश में बहुत ही जटिल और संक्रामक स्थितियों के प्रहारों से टकराता रहा। वर्तमान परिस्थितियों के प्रति असन्तोष, असहनीयता निरन्तर होने वाली अप्रत्याशित, असंभावित घटनाओं में उसके हृदय और मस्तिष्क को एक नई चेतना दी तथा इस काल के कवि इस तथ्य से भलीभांति परिचित था कि अब आत्मसमर्पण या करबद्ध प्रार्थना से कुछ भी हासिल करना एकदम असंभव है। अतएव उसने स्वतन्त्रता के युद्ध में प्रत्यक्ष भाग लिया, यातनाओं को झेला फिर भी अपने घुटने नहीं टेके। उनकी लेखनी ने एक ऐसी चिनगारी को फूंका जिसमें बड़वानल की सी ताकत थी, जिसने कोटि-कोटि भारतवासियों को नयी आशा, नया उत्साह और नई प्रदीप्ति दी ताकि संघटित शक्ति की ऊर्जा से अंग्रेजी सत्ता का प्रभुत्व प्रकम्पित हो उठे एवं देश को आजादी मिल सके। अतएव संलक्ष्य की चेष्टा ने दो सजग नेतृत्व के सिद्धान्तों में अपने को बांटकर राष्ट्रीय काव्यधारा को उत्कर्ष देना प्रारम्भ किया। किन्तु इनकी अभिव्यक्ति की शैली में अन्तर स्पष्ट था। राष्ट्रीय कव्यधारा के दो पृथक वर्ग बने। प्रथम वर्ग के अनुचिंतकों ने तिलक की उग्र और कठोर नीति को अपनाया। द्वितीय वर्ग के अनुयायियों ने गांधी की नम्र और अहिंसा की प्रणाली को आधार बनाया। प्रथम वर्ग में रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन और सोहनलाल द्विवेदी आदि सर्वप्रमुख है। द्वितीय वर्ग में मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान उल्लेखनीय है। ये समस्त कवि केवल वर्तमानबोध के कवि हैं। यह कहना अनुचित होगा। हम इन कवियों की कृतियों का आकलन करें तो यह निश्चित कहा जा सकता है कि वे युगधर्म की संवेदना को ही अर्जित नहीं करते, अतीत की सांस्कृतिक उपलब्धियों को भी ग्रहण करते हैं यथावत नहीं आत्मसत्य के अनुसार। यह आत्मसत्य परम्परा को प्रयोग रूप में गतिशील करता है। सामान्यतः प्रयोग परम्परा के निर्जीव अंशों को निकालकर नये सत्य से भरकर उसे प्रवहमान करता है। यह परम्परा के नैरन्तर्य की ही नवीन कड़ी कही जाती है। प्रयोग-प्रयोग के उद्देश्य से नहीं सिर्फ परम्परा के नैरन्तर्य को बनाये रखने की एक प्रक्रिया है। परम्परा से अभिप्राय निर्जीव अतीत या रूढ़ियों का सम्बर्द्धन नहीं। परम्परा एक ऐसा दस्तावेज है जो वर्तमान के विकट क्षणों को भी प्रेरणा व स्फूर्ति देने में समर्थवान और क्षमतावान होता है। इस तरह इन समस्त

कवियों ने परम्परा और प्रयोग के सम्मिश्रण से एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन ही किया है। अब हम क्रम से इन कवियों की रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालेंगे किस प्रकार वह अतीत और वर्तमान में सामंजस्य करते हुए राष्ट्रीयप्रक्रिया को उत्कर्ष की ओर उन्मुख करते हैं।

सर्वप्रथम हम उग्र-नीति के संचालकों को लें तो इसमें सर्वप्रथम माखनलाल चतुर्वेदी का नाम गणनीय है। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस प्रवृत्ति को निर्बाध गति दी। चतुर्वेदी स्वतन्त्रता आन्दोलन के सिर्फ प्रत्यक्ष द्रष्टा ही नहीं, स्वतन्त्रता आन्दोलन के सक्रिय भूमिका निभानेवाले साहसी और निर्भयी सेनानी भी थे। राष्ट्र के लिए हंसते-हंसते बलि होना ही वे देशप्रेम मानते हैं। 'उदात्त आदर्शों की रक्षा के लिए जो कवि बलिदान की भावना को लेकर मृत्यु का जय-जयकार कर रहा हो, जो केवल स्वप्नलोक में ही नहीं, वास्तविक जगत में भी राष्ट्रीयपथ का सच्चा पथिक रह चुका हो, और जेलों में ही जिसके रवि उगे और अस्त हुए हों, उस कवि के काव्य की ओजस्विता और मार्मिकता का तो भला कहना ही क्या।' २ २ ९ श्री माखनलाल चतुर्वेदी का 'पुष्प की अभिलाषा' में देशप्रेम इन शब्दों में अभिव्यक्त है—

"चाह नहीं सुर बाला के गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वन-माली, उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक।" २ ३ ०

युग की संत्रास देने वाली यातना से स्वतन्त्रता आन्दोलन को शक्ति देने वाली भावना में सदैव उबाल ही उफनता रहा—

"क्या देख न सकती जंजीरों का गहना
हथकड़ियां क्यों यह ब्रिटिश राज का गहना।" २ ३ १

उन्होंने मानव-जीवन को वह शक्ति दी जो संहार से कांपता नहीं, मरण-त्यौहार से आनंदउत्सव को संयोजित करता है–

"जम्बुवेश, चलो जहां संहार है,
वन्य पशुओं का लगा बाजार है,

आज सारी रात कूकेंगे वहां,
मोम दीपों का मरण-त्यौहार है।" २ ३ २

रूढ़ियों में उनके जैसे महान कवि की वाणी कभी नहीं उलझी मौलिकता और नवीनता में उनकी विलक्षण प्रतिभा रमती रही–

"हम है नहीं रूढ़ि की
पुस्तक के पथरीले भार
नित नवीनता के हम है
जग के मौलिक उपहार।" २ ३ ३

निरन्तर आगे की ओर प्रशस्त रहना उनका मुख्य प्रतिपाद्य था।

"तुम बढ़ते ही चले, मृदुलतर जीवन की घड़िया भूलें,
काठ खोदने चले, सहस्त्रदल की नव पंखड़ियां भूले।" २ ३ ४

राष्ट्रीयभावना के प्रसार से चतुर्वेदी जी की लेखनी सबसे अधिक प्रेरणादायक बनी। देश के युवकों में साहस और शक्ति की ऊर्जा, बलिदान की भावना जागरित करने में वह अत्यधिक सफलीभूत बने। तात्कालिक विदेशी शासकों के अमानुषिक कुकृत्यों के विरुद्ध उनकी बुलन्द आवाज ने ऐसी निर्भयता को उत्स दिया जिससे सम्पूर्ण देश प्रभावित हो उठा। राष्ट्रीय भावना का नयी-नयी भंगिमाओं में प्रकाशन कवि की विकासोन्मुख क्षमता का उद्घाटन करता है। 'कैदी और कोकिला' में जेल की दीवारों में कैद एक कैदी के मानसिक द्वन्द्व को प्रस्तुत किया गया है। कारावास के निर्मम और कठोर चित्र चित्रित है तथा ब्रिटिशशासकों की कुनीति, दमनपूर्ण नीति का वर्णन भी दर्शाया गया है–

"ऊंची काली दीवारों के घेरे में
डाकू, चोरों बटमारों के डेरे में।"

"जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं तड़प रह जाना
जीवन पर अब दिन रात कड़ा पहरा है
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है

हिमकर निराश कर चला रात भी काली
इस समय कालिमामयी जगी क्यूं आली।" २ ३ ५

सचमुच राष्ट्र भक्त कवियों में चतुर्वेदी जी की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। उनके राष्ट्रीय-चिंतन में अतीत का भी समादर है पर वर्तमान बोध के प्रति उनका गहरा झुकाव है। वर्तमान जीवन में उथल पुथल मचानेवाली छोटी से छोटी घटना भी उसके मस्तिष्क को चोट पहुंचाती है, आघात देती है, गुलाम भारत को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्ति दिलाने में एकमात्र बलिदान को ही वह सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानता है। इस पथ का अनुगामी अपनी सोद्देश्यता में बड़े से बड़े व्यवधानों से भी विचलित नहीं होता, संघर्षों का डटकर मुकाबला करता है, पीछे हटना उसकी निर्भयता ने नहीं सीखा, सदैव आगे की ओर बढ़ते रहना उसकी क्रान्ति का प्रेरणा स्रोत है, गत्यात्मक परम्परा को अधिक प्रवहमानता देना, अनुभूतियों के नये-नये प्रयोग से स्वतन्त्रता के दीवानों में विदेशी शासकों के प्रतिरोध में प्रतिशोध को जगाने में तल्लीन रहना उसकी सिंहनाद गर्जन करनेवाली शक्ति का रहस्य है। 'सिपाही' में उनकी अपार भावना अभिव्यक्त हुई है–

"सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती, मुट्ठी में मनचाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रयतम है, मैं हूं एक सिपाही।।" २ ३ ६

राजनीतिक घटनाओं से सम्बन्धित कविताओं में हमें यत्र-तत्र वर्तमान-दशा के करूणापूर्ण चित्र उन्होंने दिये हैं।

"घटनाओं की आग, सुखाती आशाओं का झरना
कारागारों में चक्की पिस रही देवताओं से
नष्ट हुआ गौवंश
जा रहे जंग संहारक पीसे
जंगल ही क्यों नगर-ग्राम लख निरे अस्थि के ढेर।" २ ३ ७

स्वतन्त्रता के पश्चात चतुर्वेदी जी की आग की तपिश को पैदा करने वाली लेखनी ने विराम नहीं किया, वह उतनी ही सक्रियता से सशक्त और प्राणवान् रचनाओं में प्रवृत्ति रही। 'समर्पण', 'युगचरण' तथा 'वेणु लो गूंजे धरा' ऐसी उत्कृष्ट काव्यकृतियाँ है।

'युगचरण' की एक कविता 'मुक्त गगन है, मुक्त पवन हैं' में महान राष्ट्रभक्त की उल्कापात करने वाली पंक्तियां निश्चय ही सराहनी है–

"उठ रणराते ओ बलखाते विजयी भारतवर्ष,
नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज, माप रहे उत्कर्ष
ओ पूरब के प्रलयी पन्थी,
ओ जग के सेनानी।
होने दे भूकम्प कि तूने
आज भृकुटियां तानी।
उठ पूरब के प्रहरी, पश्चिम जांच रहा घर तेरा,
साबित कर, तेरे घर पहले होता विश्व सबेरा।" २३८

अस्तु उनकी कृतियों में हमें अतीत के गौरवगान का स्मरण नहीं मिलता, न गौरवशाली चरित्रों के माध्यम से देशभक्ति का स्मरण कराया गया है उनके उदार दृष्टिकोण में एक विशेष गति मिलती है जो उत्तरोत्तर उत्कर्ष की ओर बढ़ती है। राष्ट्रीयभावना का प्रसार किसी विशेष दृष्टि को अपनाकर उपस्थित नहीं हुआ है, हृदय के तल से उठती यह भावना समय से सजगता और संवदेनशील दृष्टि ग्रहणकर सदा नवीनता को लेकर उद्‌भुत होती है। वे महाकवि थे।

राष्ट्र की भूतकालीन सफलताओं की धड़कन, वर्तमान का स्पन्दन उनके काव्य में सहज ही बिखरा पड़ा है। वे देश की स्वतन्त्रता, मान-मर्यादा और विगत गौरव की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण देशवासियों की बलिभावना से भलीभांति परिचित थे।" २३९ कवि किसी एक विशेष युग का प्रतिनिधि नहीं। द्विवेदी युग के अन्तिम चरण से साहित्यसाधना आरम्भ करने वाला यशस्वी स्वतन्त्रता का कर्मठ सेनानी छायावाद काल में अपनी ओजस्विता की ध्वजा गाड़कर छायावादोत्तर काल में अधिक स्पष्ट और प्रखर हुआ है। इनकी रचनाओं में सर्वत्र राष्ट्रीय भावना का स्वर ही दिखलाई पड़ता है। वह परम्परा के गौरव को नकारता नहीं आपद् स्थिति में उसकी अक्षय कृति और महत्ता पर प्रशंसात्मक निगाहें डालकर वर्तमान उत्पीड़क अवस्था में संजीवनी का कार्य लेता है। उनका काव्य राष्ट्रीय जीवन का एक बहता स्रोत है जिसका पाट समय के प्रभाव से अधिक विस्तृत होता गया है और विस्तार देने में नई प्रयोगात्मक दृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह

प्रयोग प्रयोगवादियों का प्रयोग नहीं अनुभूति की अभिनव व्यंजना का प्रयोग है। 'वस्तुत: चतुर्वेदीजी का काव्य समय के प्रभाव की दृष्टि से अन्य किसी भी कवि से भारी ठहरता है। समय के प्रति इतनी सजग और संवेदनशील दृष्टि दुर्लभ है। राष्ट्रीय जीवन की कोई भी उल्लेखनीय घटना उनसे अनंकित नहीं जा सकती। शक्ति काव्य राष्ट्रीय जीवन का भावात्मक इतिहास है जिसमें युग की तरूणाई शक्ति का परिचय दे रही है। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में कला है, भावनाएं है, जोश है और कुछ ऐसा है जो सदा नवीन रहनेवाला है। वे भारतीय राष्ट्रीयता के वैतालिक है।'२४० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उग्र क्रांतिदर्शी, विप्लवगायनकारी कवि थे। उनकी कविता में आक्रोश है, उत्तेजना है, प्रलंयकारी गर्जना है, विप्लकारी शक्ति है। नवीन "संक्रान्ति युग" के कवि है। अतीत और वर्तमान दोनों के प्रति सजगता और संवेदना कवि नवीन के काव्य की अन्यतम उपलब्धि है। 'नवीन का युग असि तथा मसि का युग था। उसमें संस्कृति के पुनर्जागरण काल के मूल्य और राष्ट्रीय चेतना की बलि के समन्वित प्रभावों का प्रोज्जवल चित्र आत्मस्थ था।

वह अत्यन्त संवेदनशील तथा विद्युत कम्पनों से परिप्लावित कालखंड था। नवीन ने जब अपने कवि-जीवन तथा राष्ट्रार्पित व्यक्तित्व की पंखुड़ियों को खोला, उस समय साहित्य तथा राजनीतिक दोनों के ही वरेण्य क्षेत्रों में 'नव' का 'रव' छा रहा था, और 'गत' का 'मत' इतिहास के पृष्ठों में विलीन होने के लिए उत्सुक था।"२४१ राष्ट्रीय भावना की नवीनतम प्रणाली में वर्तमान के प्रति विशेष झुकाव मिलता है। वर्तमान जीवन की घातक परिस्थितियों से जूझता कवि अपनी पूरी शक्ति के साथ हर भारतवासी में राष्ट्रीयता की हुंकार को निनादित करने को प्रतिबद्ध हो उठता है–

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।"२४२

उनका राष्ट्रीय काव्य वैविध्यपूर्ण है। नवीन के काव्य में निहित ऊर्जा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है। मनुष्य के भीतर सोयी हुई चेतना को जागृत करने के लिए कितनी सशक्त कितने गंभीर शब्दों का प्रयोग करता है।

"ओ बरसों से शिथिल पाश में जकड़े रहने वाले तू
आत्मदीनता की दाहकता में नित दहने वाले तू

तत्व निखर आये, यह असत्य होवे भस्मीभूत सभी
अग्नि परीक्षा विधि पूरी हो, जग हो पावक पूत अभी।" २४३

ऐसी प्रभावपूर्ण रचनायें वातावरण की उपज थी 'नवीन का युग राष्ट्रीयता की प्रबल भावना और राजनीतिक गत्यावरोध का समय था। वातावरण के अनुरूप वे स्वयं भी राष्ट्रीय सांचे में ढ़ले शुद्ध सिक्के के समान देश के अग्नि आन्दोलनों में विप्लव और क्रान्ति का स्वर उठाने वाले महान देशभक्त थे। ऐसे राष्ट्र के काव्य में

राष्ट्रीयता का प्राधान्य रहना स्वाभाविक ही है।' २४४ आवेश जन्य उद्वेग तथा प्रचण्डता की तान छेड़ने वाली नवीन की राष्ट्रीय कृतियां चिर स्मरणीय है।

"आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ,
विजय पताका झुकी हुई है लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ,
मुझे न छेड़ो इतिहासों के पन्नों में गतधीर हुआ
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ।" २४५

कवि नवीन का यह ओजपूर्ण उद्गार धीरे-धीरे विकसित ही हुआ है। अपने समय के प्रत्यावर्तित घटनाओं से प्रगति का रूप निखरा है। सन १९४२ की क्रान्ति के अवसर पर वह गरल-पान को युग आवश्यकता समझ शोले उगलती आवाज में पुकार उठता है–

"अवाप्तव्य अनवाप्त ध्येय के इस अज्ञात अतल का मन्थन
तुमने किया, किन्तु फैलाया जग में कैसा भीषम क्रन्दन
हाहाकार भरा दिशि दिशि में, नभ रक्ताक्त अश्रु रोता है
लोहित सब दिड्मूल हुआ है, रणचण्डी नर्त्तन होता है।" २४६

उनके काव्य में सत्यतः एक ऐसी शक्ति है जो कम्पन पैदा कर दे–

"दुर्दम रण-चण्डी चेत उठे
कर महा-प्रलय संकेत उठे
सर्वश्व नाश का रुद्र रूप
नव-नव निर्माण समेत उठे।" २४७

इस प्रकार नवीन जी ने 'मेरे अतीत की ज्योति लहर' कहकर प्राचीन संस्कृति तथा गौरव की महत्ता को चिर प्रेरणा के रूप में स्वीकारा है। परम्परा से वे बहुत प्रभावित थे। परम्परा के इन शाश्वत रूपों में से ही राष्ट्रीयता के स्वर को एक अगला विकास देने में सक्षम बने थे। इनकी राष्ट्रभावना कई भागों में विभाजित है– अतीत गौरव, वर्तमान बोध, जागरण गीत, वन्दना और प्रशस्ति गीत। स्वतन्त्रता के पश्चात भी उन्होंने इस तरह की रचनाएं लिखी। पर उनका यह देश प्रेम विश्वप्रेम में परिवर्तित हो गया।

"वह दो, इस स्वाधीन देश के हम आबाल वृद्ध नर नारी,
तब विश्व भर रूप निहारे, करें नित्य उसका आराधन
है ज्योतिर्मय, विश्व नाश का तिमिर हरो, चमके वसुधागना।" २४८

कवि की विश्व - वन्दना असुन्दर को सुन्दर रूप में देखने को व्यग्र है –

"बने असुन्दर, सुन्दर सन्मय,
क्षिप्त चित बन जाए तन्मय,
रजकण तब कर बने हिरण्यमय,
यों इस क्षर को पद अक्षर दो,
मरु कण-कण में मधु रस भर दो।" २४९

नवीन एक और परम्परा के प्रभाव से प्रभावित है दूसरी ओर वर्तमान से प्रतिपल अनुप्रेरित है। अतीत और वर्तमान के संगम से उनकी राष्ट्रीय काव्यधारा अधिक प्रौढ़ व सुष्ठ हुई है। 'राष्ट्र का चिन्तक और उद्धारक कवि नवीन विप्लव के गीत गाकर जीवन से जड़ता सदैव के लिए समाप्त करने का आकांक्षी है। उसकी मान्यता है कि पतन ही नवनिर्माण का द्वार खोला करता है। अत: मानव देह की काया परिवर्तन वाली भारतीय दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित होकर वह राष्ट्र के उद्धार के लिए मृत्यु के भी गीत गाने में संकोच नहीं करता है। नि:सन्देह मृत्यु सम्बन्धी काव्यरचना के द्वारा कवि नवीन ने राष्ट्रभक्तों को

बलिपथ का अनुसरण करने और मृत्यु का हंसते-हंसते वरण करने की अद्‌भुत उत्प्रेरणा प्रदान कर देश के राजनीतिक इतिहास को जहां नया मोड़ दिया था वहां हिन्दी काव्य के क्षेत्र में युगान्तकारी विषय का सूत्रपात भी किया था।" २५०

निष्कर्षत: नवीन का काव्य युगीन चेतना को प्रश्रय देता हुआ निरन्तर उर्ध्वमुखी हुआ है। 'नवीनजी के राष्ट्रवादी व्यक्तित्व में दुर्वासा, परशुराम के साथ ही साथ अगस्त्य मुनि, दधीचि तथा विश्वामित्र के भी दर्शन किये जा सकते हैं। उन्होंने ध्वंस तथा निर्माण दोनों ही के गीत गाये परन्तु उनका ध्वंस चिर विनाश अथवा पूर्ण अनुर्वरता का परिचायक न होकर नवल सृष्टि, अभ्युत्थान तथा मंगलविधान का प्रतीक है।"२५१ वह नवल है, सम्बर्द्धक है, अप्रतिम है।

रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। दिनकर ने रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन की राष्ट्रीयभावना को क्रान्ति तथा हुंकार के द्वारा व्यापकता देने का सप्रयास किया है। उसने सामयिक आयामों के संघर्ष को स्वीकार कर अतीत के रोमांचक और उदात्त विषयों को प्रयोग से एक नई अर्थवत्ता दी। कवि ने परम्परा का कहीं भी वस्तुपरक आकलन नहीं किया। अतीत की विध्वंसक पीठिका पर नवचेतना को नवोत्साह से पूरित किया है। दिन की समस्त कृत्तियों की विवेचना से ज्ञात होता है कि इन कृतियों के बीच एक तारतम्य है। इनकी कृतियां है– 'रेणुका, हुंकार, कुरूक्षेत्र और सामधेनी, इतिहास के आंसू, रश्मिरथी, नीम के पत्ते, परशुराम की प्रतीक्षा। इनमें अतीत और वर्तमान हेतु सूक्ष्म अध्ययन दृष्टि, राष्ट्रीय प्रेम की प्रबलता विद्यमान है। युगधर्म को आत्मसात करके भी वह अतीत मोहासिक्त है।

"देवि दुखद है वर्तमान की
यह असीम पीड़ा सहना
कहीं सुखद इससे संसृति में
है अतीव में रत रहना।"२५२

'तांडव', 'बोधिसत्व' और हिमालय शीर्षक कविता में भी अतीत के प्रति गहरा आकर्षण उपस्थित है। तांडव में परिवर्तन निमित्त शंकर के तांडव नृत्य की प्रबल आकांक्षा है।

"स्वर खरभर संसार, ध्वनित हो नगपति का कैलाश शिखर
नाचो हे नाचो नटवर।"२५३

वर्तमान की करुण अवस्था ही उसकी दृष्टि को अपने अनुकूल दिशा में मोड़ती है–

"समय दूह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये
आज खोजते उन्हें बुलाने वर्तमान के पल आये।" २५४

परतन्त्रता के क्षणों में अतीत के स्वर्णयुग का स्मरण कर शक्ति संचार करने की कोशिश की –

"प्राची के प्रांगण-बीच देख
जल रहा स्वर्णयुग अग्नि-ज्वाल
तू सिंहनाद कर जाग-तपी।" २५५

दिनकर की वाणी माखनलाल चतुर्वेदी के आत्मसमर्पण, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की बलिदानी भावना से हटकर प्रलय और विध्वंस के द्वारा आजादी के लिये सचेत है।

यह परम्परा के प्रख्यात पौराणिक-प्रसंगों को आधार लेकर वर्तमानकालिक स्थिति को चुनौती देती है। 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी' कृतियां इसका प्रमाण है। नि:सन्देह 'कुरूक्षेत्र' परिवर्तनशील विश्व परिस्थितियों में राष्ट्रीय मूल्यों का पुनर्निधारण अतीत के सन्दर्भों में करने वाला हिन्दी का सर्वप्रथम राष्ट्रीय काव्य है। यह एक युद्ध काव्य है, इसमें युद्ध की समस्या का पोस्टमार्टम किया गया है। नि:सन्देह "कुरूक्षेत्र" अन्याय और अनाचार से लोहा लेने के लिए दिनकर की प्रेरणास्पद अभिव्यक्ति है।' २५६ प्रलय और विध्वंस का आह्वान दिनकर के शब्दों में यों प्रकट है —

"न्यायोचित अधिकार मांगने
से न मिले तो लड़के
तेजस्वी छीनते समर को
जीत या खुद मरके
किसने कहा पाप है समुचित
स्वत्व प्राप्ति हित लड़ना
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना मरना।" २५७

अत: हम पाते हैं कि भारतीय संस्कृति के अप्रतिम कवि दिनकर का राष्ट्रीय काव्य हिन्दी साहित्य की अनुपम धरोहर है। इनकी कविता अतीत की ओर बांहें पसारकर भी वर्तमान के अनुकूल युग के सांघातिक समय में एक नयी दिशा का निर्माण करते हुए अविराम गति से लक्ष्य के संधान में तटस्थ रही है। उसमें एक विलक्षण प्रतिभा है जो 'छायावादी युग की प्रेम और श्रृंगारमयी कविता को उन्होंने ओज और शौर्य के प्रखर तेजवान स्वर में बदलकर काव्यशैली और काव्यविषयों में नूतनता का जहां महान कार्य किया है, वहां युगस्पन्दन और धड़कन के अनुरूप प्राचीन सांस्कृतिक अध्यायों के अनुकरणीय पृष्ठों को पुन: परिवर्तित युग परिस्थितियों में पढ़ने और प्रेरणा ग्रहण करने के अवसरों को भी बड़े ओजस्वी ढंग से सुझाकर राष्ट्र धर्म की महान सेवा की है।"२५८ उनमें अतीत मोहासक्ति, युगधर्म का निर्वाह, प्रयोग की बलवती इच्छा का अच्छा संयोजन मिलता है। उसने सर्वत्र परम्परा की चेतना को रूढ़ि में पर्यवसित होने से रक्षा की है। दिनकर परम्परा और वर्तमान बोध का समन्वय करते हैं। 'रेणुका' में उसकी दृष्टि अतीतोन्मुखी है, हुंकार में वह वर्तमान से आबद्ध है, सामधेनी में भी वह द्विधात्मकता से जुड़ता है। 'इतिहास के आँसू' में पुन: ऐतिहासिक घटनाओं का संबल ग्रहण करता है। 'कुरूक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' में पौराणिक प्रसंग का आधार लेकर वर्तमान बोध को उजागर करता है। इनमें भी उसने राष्ट्रवाद को चित्रित किया है 'परशुराम की प्रतीक्षा' में पुन: परम्परा का प्रक्षेपण है। जैसे–

"खड्ग सींचा जाता है
नहीं युद्ध में गंगा के जल की फुहार से।
दबा पुण्य का वेग अखड़ियां गीली मत होने दे,
कसकर पकड़ कृपाण मुट्ठियां ढीली मत होने दे।
ऋषियों को भी सिद्धि तभी तप से मिलती है,
पहरे पर जब स्वयं धनुर्धर राम खड़े होते हैं।"२५९

दिनकर की राष्ट्रीयता में पौरुष, वीरत्व, हिंसा के स्वर प्रधान है। वे प्रारम्भ से अपने अतीत से प्रभावित रहे हैं किन्तु वे वर्तमान के प्रति भी उतना ही सजग है। परम्परा के गौरवशाली अंशों को गति देकर दिनकर ने अपनी सृजन प्रतिभा का आकर्षक परिचय दिया है। सचमुच राष्ट्रीय काव्य परम्परा में उनका योगदान प्रेरणास्पद है।

दूसरे वर्ग के उन्नायकों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम सर्वप्रसिद्ध है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रतिनिधि गुप्त जी ने अपने अतीत को अनोखा रूप दिया है। साथ ही वह सामयिक विपन्नतावस्था को अतीत स्मरण के द्वारा छुटकारा दिलाने को व्यग्र दिखते हैं। 'उन्होंने प्राचीन भावों और विचारों की रक्षा करते हुए अर्वाचीन विचारों और भावों की अद्वितीय विवेचना की है। शताब्दियों की पदाक्रान्त हिन्दू जाति की दयनीय दशा पर बहाये गये आंसुओं की अमानत "भारत-भारती" में पूर्णतया सुरक्षित है।" २६० 'भारत-भारती' गुप्त जी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रूप में प्रसिद्ध हुआ क्योंकि उसमें कवि अपनी समृद्ध परम्परा का चिन्तन कर वर्तमान अवनति से विक्षुब्ध होता है–

"हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।" २६१

भारत के स्वर्णिम अतीत की याद दिलाकर वर्तमान की शोचनीय अवस्था पर गुप्त जी के मनोद्गार की झांकी कैसी प्रभावोत्पूर्ण है–

"भारत तुम्हारा आज यह कैसा भंयकर शेष है,
है और सब निःशेष केवल नाम ही अवशेष है।
हा हाय हा हा कृष्ण! हा हा नाथ! रक्षा करो,
मनुजत्व दो हम को दयामय दुःख दुर्बलता हरो।" २६२

कवि सियारामशरण गुप्त गांधी सिद्धान्तों के अनुयायी हैं। उन्होंने शान्ति और प्रेम के बल पर आजादी को पाने की कोशिश की है। 'मौर्य विजय' में ऐतिहासिक कथानक के आधार पर वर्तमान दशा में आत्मविश्वास को जगाया गया है। पर निष्क्रियता को उखाड़ फेंक देने को वह कटिबद्ध है–

"नभ को छूकर दूर-दूर तक गूंज उठे तेरा जय-नाद
घर के भीतर छिपे पड़े जो बाहर निकल पड़े साह्लाद।
जीवन-रण के योग्य हमारा निर्भय साज सजा दे आज
ओ भैरव, कवि की वाणी में निर्मम शंख बजा दे आज।" २६३

निर्मम शंख के उद्घोष से वह जीर्ण-शीर्ण परम्परा को रौंद डालने को तत्पर है जिससे नव-निर्माण को अवकाश मिल सके–

"ओ कृतान्त, हम को भी दे जा,
निज कृतान्तता का कुछ अंश।
नयी सृष्टि के नवोल्लास में
फूट पड़े तेरा विभ्रंश।"२६४

जब तक गलित, रूग्ण का विनाश नहीं होता नयी चेतना का आविर्भाव भी नहीं होगा। सियारामशरण गुप्त भी परम्परा के प्रति गहरी सूझ और वर्तमान के लिए सक्रिय अभ्यास लिए है। 'सियारामशरण गुप्त आधुनिक युग के उस सन्धिकल के कवि थे जहां पर प्राचीन मर्यादा, नैतिकता और आदर्श के साथ प्रगतिशील चेतना का मेल हुआ है।'२ उनकी नोआखाली, आत्मोत्सर्ग, जयहिन्द में राष्ट्रीय भाव का चित्रांकन है। इनके काव्य में भी प्राचीनता और नवीनता का उत्कृष्ट समन्वय है।

इसके अलावा रामनरेश त्रिपाठी और सुभद्रा कुमारी चौहान का भी राष्ट्रीय काव्य चेतना को प्रगतिशील बनाने में महनीय सहयोग रहा है। उन्होंने भी प्रेरणाशील कृतियों की सर्जना की और युग की पुकार को जागरूक लेखनी के द्वारा अभिव्यक्ति दी। छायावादोत्तर काल में राष्ट्रीय चेतना का परम्परा और प्रयोग की दृष्टि से अन्वेषण करने से यह पता चलता है कि यह धारा संकीर्ण से विस्तीर्ण ही हुई है। भारतेन्दु युग में उद्‌भव काल से द्विवेदी युग छायावाद-युग और छायावादोत्तर युग तक आते-आते समय की संक्रामक और असहनीय आपदाओं के धर्म में चट्टान की तरह अडिग खड़े रहकर राष्ट्रीय काव्यधारा का अस्तित्व समय के गर्त्त में तिरोहित नहीं हुआ। अपने व्यवधानों को काटते हुए गंतव्य पर वह पहुंच ही गया। पर उसका अस्तित्व प्रगति से प्रगतिशील ही रहा। इसका एक कारण है कि इस धारा के समर्थकों ने कहीं भी परम्परा का प्रतिवाद नहीं किया। परम्परा के सबल पक्षों को यथा आवश्यकतानुसार नयी व्यंजना दी।

समसामयिक बोध से जुड़कर नवीनता को भी प्रतिस्थापित किया। इस प्रकार प्रगति का पथ अपनाया। छायावादोत्तर काल में भी इस काव्यधारा को दो वर्गों में पुनः देखा जा सकता है– स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतन्त्रता के पश्चात। स्वतन्त्रता पूर्व राष्ट्रीय काव्य धारा का ऊपर हम अनुशीलन कर चुके हैं। अब हमें यहां यह देखना है स्वतन्त्रता पश्चात इसका प्रारूप कैसा रहा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीयता का स्वरूप अधिक जटिल और उलझनपूर्ण तथा विवादास्पद रूप में प्रकट हुआ। साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिला। महंगाई, बेकारी, भूखमरी को बढ़ावा मिला। नेताओं की काली करतूते और स्वार्थ लिप्सा बढ़ी। निरक्षरता के कारण अराजकता को बल मिला। आर्थिक कठिनाई ने अशान्ति को आग दी। सन् १९६२ में चीन और ६५ में पाकिस्तान के आक्रमण ने तो हमारी अस्मिता और चिंतना को झकझोर डाला। सर्वत्र विघटनकारी तत्वों की ताकत बढ़ने से राष्ट्रीयता को एक नये खतरे से मुकाबला करना पड़ा।

"शीश मांगती धरा, शीश मांगता गगन।"२६५

दिनकर की ओजस्वी वाणी और हुंकार ने पुन: 'परशुराम की प्रतीक्षा' में पशुराम का आह्वान किया। पौराणिक प्रसंग को एक नये सिरे से प्राणवत्ता दी। बालकृष्ण शर्मा नवीन भी संस्कृति के प्रेमी बनकर उपस्थित हुए। माखनलाल चतुर्वेदी में भी राष्ट्र के प्रति गौरव भावना का ही समुज्जवल रूप प्रतिभाषित हुआ। चीन और पाकिस्तान के युद्धोपरान्त तो कवियों की लेखनी ने युगधर्म के अनुरूप भारतीय आत्माओं को झकझोर देनेवाले काव्य सृजन किया। "देश की अनेक जीवन्त समस्याओं के प्रति आज के कवि की मनोदृष्टि पहले की अपेक्षा कहीं अधिक लगी हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश के सम्मुख विभाजन से त्रस्त शरणार्थियों की समस्या, राष्ट्र के अनुकूल अन्न उत्पादन की समस्या, प्रजातन्त्र के स्थायित्व के लिये निरक्षरता उन्मूलन की समस्या, स्वतन्त्र राष्ट्र के अनुरूप स्वस्थ नागरिकों के लिये भौतिक आवश्यकताओं को जुटाने की समस्या, जनसंख्या की वृद्धि की रोकथाम की समस्या आदि प्रमुख है। परिवार नियोजन, हरित क्रान्ति, सामुदायिकता, श्रमदान, भू-दान आदि अनेक आन्दोलनों को राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से अनुकूल परिणाम देने हेतु सक्रिय बनाये रखने के लिये आज की कविता उन्मुक्त कंठ से गा रही है।'२६६ देखा जाए तो यह काल बहुत ही परिवर्तनशील रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात स्वप्नभंग की दृष्टि ने जीवन पर गहरा असर छोड़ा। साहित्य चूंकि जीवन मूल्यों से प्राण रस ग्रहण करता है। अत: तद्‌युगीन चेतना के प्रभाव से काव्य कहां तक वंचित रह सकता था। जीवन को झकझोर देने वाली विडम्बनापूर्ण सांघातिक परिवेश के परिणामस्वरूप काव्य कलाकारों ने नये प्रयोगों की प्रतिस्थापना की। अब राष्ट्रीय धारा की क्रमागत धारा का स्वरूप विश्व से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक को छूने को प्रचेष्ट हुआ। राष्ट्रीयता ने देश की बहुमुखी

समस्याओं को अपने में समेट कर राष्ट्रीयता को एक नया आयाम दिया। अब राष्ट्रीयता के सेवकों ने पुरातन की केंचुल उतार डाली। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में नूतनता को स्वीकारा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में राष्ट्रीयता ने कहीं भी इतने उन्नत पैमाने पर अपने आप को प्रस्तुत किया हो, ऐसा कहीं भी परिलक्षित नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन से यह समझा जा सकता है कि छायावादोत्तर काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति के सन्दर्भ में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का अनुवीक्ष्ण करें तो इसमें परम्परा और प्रयोग के विविध आयामों का सुन्दर अन्वेषण दिखलाई पड़ता है। भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय काव्यधारा का उद्‌भव हुआ। अतीत और वर्तमान दोनों के प्रति इन कवियों में अपार सहानुभूति मिलती है। द्विवेदी युग इसका अगला विकास चरण है। इसमें वैभवशाली अतीत का गुणगान साथ ही वर्तमान अवनति में आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता का प्रस्फुटन होता है। यही वह काल है जहां से राष्ट्रीयता की जलराशि में एक उफान पैदा होता है। यह उफान दिन-प्रतिदिन परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभावश प्रबल से प्रबलतम होता है। छायावाद युग में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की प्रधानता से

सांस्कृतिक गरिमा विशेषतया प्रतिबिम्बित हुई। किन्तु छायावादोत्तर युग में राजनैतिक तथा आर्थिक कारण के फलस्वरूप इस उफान का स्वरूप अधिक तेजी से बहने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति इसका प्रमुख उद्देश्य था। अंततोगत्वा भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता के पश्चात जीवन का परिवेश अधिक विवादास्पद होकर अवतरित हुआ। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण से समूचे देश में राष्ट्रोपासना की भावना को जागृत किया। इस युग में राष्ट्रीयता ने सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक आदि समस्याओं से आक्रान्त पाया। देश के सजग कर्णधारों ने प्रत्यक्ष आपदाओं को चुनौती दी। इस काल के अन्तिम चरण में राष्ट्रीयता का एक नया स्वरूप ही सामने आया जो अपनी समाद्धत परम्परा के विकास को ग्रहण कर एक वृहत्तर सांस्कृतिक दृष्टि अर्जित करने में सफलीभूत रहा। परम्परा के नैरन्तर्य में युगधर्म की ऊष्मा उड़ेलकर पुरातन और नवीन का उचित सम्मिश्रण कर उसे नवीनता की ओर अग्रसर किया है। प्रस्तुत विश्लेषित अध्याय में विभिन्न उद्धरणों के द्वारा परम्परा और प्रयोग, परम्परा और नवीनता हमारा अभीष्ट भी सिद्ध करने की चेष्टा है कि एकमात्र राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा छायावादोत्तर युग की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो प्रारम्भ से लेकर अपने अब तक के स्वरूप में युगोनुकूल प्रबल से प्रबलतर हुई है।

———————

१. डॉ॰ बच्चन - सुमित्रानन्दन पन्त - पृ॰ २६

२. वेदव्रत शर्मा - निराला के काव्य - बिम्ब और प्रतीक - पृ॰ १६

३. वेदव्रत शर्मा - निराला के काव्य - बिम्ब और प्रतीक - पृ॰ ८६

४. युगांत - पृ॰ १

५. वही - पृ॰ ३

६. युगांत - पृ॰ १२

७. शांति जोशी - सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य - पृ॰ ३४८

८. युगांत - पृ॰ ४५

९. युगवाणी - भूमिका - पृ॰ क

१०. युगवाणी - नवदृष्टि से

११. युगवाणी - नवदृष्टि से

१२. फूलचन्द्र पाण्डेय - पन्त आधुनिक कवि - पृ॰ १६५

१३. युगवाणी - युग उपकरण से उद्धत

१४. युगवाणी - 'खोलो' से

१५. युगवाणी - नारी से

१६. शांति जोशी - सुमित्रानंदन पंत - जीवन और साहित्य - पृ॰ ४०९

१७. ग्राम्या - पृ॰ ४७

१८. ग्राम्या - पृ॰ ६२

१९. ग्राम्या - पृ० ९७

२०. ग्राम्या - पृ० १०३

२१. डॉ० प्रतापसिंह चौहान- हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन - पृ० १८६

२२. सुमित्रानंदन पंत - रश्मिबंध, हिमाद्रि - पृ० ८४

२३. फूलचन्द्र पाण्डेय - पन्त - आधुनिक कवि - पृ० २४०

२४. स्वर्ण - धूलि - पृ० २३

२५. पन्त - आधुनिक कवि - फूलचन्द्र पाण्डेय - पृ० २४६-४७

२६. स्वर्ण धूलि - पृ० ६५

२७. उत्तरा - भूमिका से

२८. उत्तरा - पृ० ३७

२९. उत्तरा - पृ० ४९

३०. अतिमा भूमिका से

३१. वही - पृ० ८

३२. विजय बहादुर सिंह - वृहत्रयी - पृ० ७९

३३. डॉ. नगेन्द्र - सुमित्रानंदन पन्त - पृ० ४८

३४. वेदव्रत शर्मा - निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक - पृ० ८६

३५. नया साहित्य - निरंजन लेख - पृ० ६६

३६. सम्पादक, नवल किशोर - निराला रचनावली भाग-१, पृ० ३१

३७. वही - पृ० १०४

३८. वही - पृ० १३३

३९. वही - पृ॰ १३८

४०. सम्पादक - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग १ - पृ॰ १४२

४१. सम्पादक - इन्द्रनाथ मदान, निराला - पृ॰ ४७

४२. सम्पादक - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग-१, पृ॰ ६०

४३. सम्पादक - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग-१, पृ॰ ६४

४४. वही - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग-१, पृ॰ २१२

४५. सम्पादक - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग-१, गीतिका पृ॰ २३८

४६. सम्पादक - नवल किशोर, निराला रचनावली भाग-१, गीतिका पृ॰ २४४

४७. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास दशम संस्करण - पृ॰ १६-१७

४८. निराला रचनावली, सम्पादक नन्दकिशोर नवल 'राम की शक्ति पूजा' पृ॰ ३१८

४९. तुलसीदास चतुर्थ संस्करण - पृ॰ ३७

५०. सम्पादक - इन्द्रनाथ मदान - पृ॰ १००

५१. रमेशचन्द्र मेहरा - निराला का परवर्ती काव्य - पृ॰ १४६

५२. कुकुरमुत्ता - संस्करण-२ - पृ॰ ६-७

५३. सम्पादक - इन्द्रनाथ मदान 'निराला' पृ॰ ९९

५४. बेला - पृ॰ २९

५५. बेला - पृ॰ २९

५६. नये पत्ते - पृ॰ १०

५७. नये पत्ते - पृ॰ १७

५८. नये पत्ते - पृ॰ १९

५९. नये पत्ते - पृ॰ ४८

६०. नये पत्ते - पृ॰ ५७

६१. निराला - अणिमा - पृ॰ १२

६२. निराला - अणिमा - पृ॰ ४३

६३. निराला - अर्चना गीत - पृ॰ १०३

६४. निराला - अर्चना गीत - पृ॰ ९०

६५. डॉ. शिवकुमार मिश्र - आधुनिक कविता और युग दृष्टि - पृ॰ २१३

६६. डॉ. रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - पृ॰ १२१-१२२

६७. डॉ॰ नगेन्द्र - आस्था के चरण - पृ॰ २५४

६८. वही - पृ॰ २५४

६९. डॉ. शिवकुमार मिश्र - 'नया हिन्दी काव्य' पृ॰ १०८

७०. डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय, छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि- पृ॰ १०५-१०६

७१. डॉ॰ शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰ १०७

७२. डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान - कविता और कविता 'आधुनिक कविता' - पृ॰ १३

७३. सम्पादक - अजित कुमार 'बच्चन रचनावली' भाग-१ एकांत संगीत - पृ॰ २३४

७४. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी - पृ॰ ३८

७५. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी - पृ॰ ४०

७६. रामेश्वर शुक्ल - अंचल - मधूलिका आज तो

७७. प्रकाशक, युगल किशोर झा - पृ० २६५

७८. गोपाल सिंह नेपाली 'नवीन' पृ० ३

७९. डॉ० शम्भुनाथ सिंह - रूप रश्मि - पृ० ६

८०. जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर तरंग - पृ० ५०

८१. अंचल - मधूलिका 'सखी'

८२. सम्पादक - अजित कुमार 'बच्चन रचनावली' भाग - १, 'एकांत संगीत' पृ० २३२

८३. डॉ० शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ० ११२

८४. सम्पादक, अजित कुमार, बच्चन रचनावली भाग-२, 'निशा-निमंत्रण', पृ० १९७

८५. सम्पादक अजित कुमार, बच्चन रचनावली भाग-१, एकांत संगीत, पृ० २१५

८६. नरेन्द्र शर्मा - मिट्टी और फूल - पृ० ३७

८७. रामेश्वर शुक्ल अंचल, 'अपराजिता' पृ० १०३

८८. श्री युगलकिशोर झा, आरसी प्रसाद सिंह - पृ० ५०

८९. पं० जानकी बल्लभशास्त्री - तीर तरंग - पृ० १२

९०. सम्पादक - अजित कुमार - बच्चन रचनावली भाग-१, 'एकांत संगीत' पृ० २७५

९१. नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन - पृ० ६९

९२. अंचल - 'अपराजिता' प्रवेश से उद्धृत - पृ० १३

९३. अंचल - 'मधूलिका' टूटते हुए तारों के प्रति - पृ० १

९४. श्री युगलकिशोर झा - आरसी प्रसाद सिंह - पृ० ७६

९५. डा. शम्भूनाथ सिंह - रूप-रश्मि - पृ० ३४

९६. डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ० १११

९७. सम्पादक - अजित कुमार - बच्चन रचनावली भाग - २, 'मधुकलश', पृ० १३१

९८. नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन - पृ० ८२

९९. नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन - पृ० १७

१००. डॉ० शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ० १६०

१०१. सम्पादक - अजित कुमार, बच्चन रचनावली भाग - १, 'संतरंगिनी', पृ० ३५८

१०२. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ० ९

१०३. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ० ६३

१०४. अंचल 'मधूलिका' - आज मरण की ओर

१०५. आरसी प्रसाद सिंह - संचयिता - पृ० ३१९

१०६. पं. जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर-तरंग - पृ० १५

१०७. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ० १२०

१०८. सम्पादक, अजित कुमार 'बच्चन रचनावली भाग-१' एकांत संगीत - पृ० २५४

१०९. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी - पृ० १०२

११०. आरसी प्रसाद सिंह - संचयिता - पृ० ४८

१११. डॉ. कमलाप्रसाद पाण्डेय, छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ० १११

११२. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य, पृ० १२१

११३. सम्पादक - अजितकुमार - बच्चन रचनावली भाग - १, मधुशाला, पृ० ५८

११४. नरेन्द्र शर्मा - 'पलाशवन' - पृ० २१

११५. अंचल - मधूलिका - 'आत्म - प्रलय'

११६. सम्पादक - अजित कुमार, बच्चन रचनावली भाग - १, निशा - निमन्त्रण, पृ० १६४

११७. पं० नरेन्द्र शर्मा - कदलीवन - पृ० ६०

११८. श्री रामेश्वर शुक्ल - "अंचल" अनुपूर्वा - पृ० २६

११९. श्री युगलकिशोर झा - आरसी प्रसाद सिंह - पृ० ६५

१२०. डॉ० शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ० १०९

१२१. डॉ० नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियां - पृ० ११

122.Encyclopedia of Britanica Vol. XVII Page 177

123. Lyrical Forms in English – Introduction, Page 1.

a. "The lyric to the Greek was a poem designated to be sung by a single voice to the accompaniment of a lyre."

124. Judgement in Literature Page 97- "Lyric poetry is poetry originally intended to be accompanied by the lyre or by some other instrument of music.

१२५. स्वदेश चावला - लहर मीमांसा में उद्धृत - पृ० ५८

१२६. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य - पृ० १४७

१२७. डॉ० विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत - पृ० १००

१२८. बच्चन - निशा निमंत्रण - पृ० ३०

१२९. वही- पृ० ४७

१३०. बच्चन - निशा निमंत्रण - पृ० ६६

१३१. वही - पृ० ८९

१३२. वही - पृ० ५, ११५

१३३. वही - पृ० १३५

१३४. बच्चन - एकांत संगीत - पृ० ६३

१३५. वही - पृ० ७१

१३६. वही - पृ० १२६

१३७. बच्चन - आकुल अंतर पृ० ११९

१३८. बच्चन - सतरंगिनी पृ० ११६

१३९. वही पृ० १०९

१४०. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ० ३६

१४१. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ० ३९

१४२. वही - पृ० १५२

१४३. बच्चन - प्रणय पत्रिका - पृ० ३८

१४४. वही पृ० ९०

१४५. सम्पादक - दीनानाथ शरण - डॉ० कल्याणमल लोढ़ा 'लोकप्रिय बच्चन' पृ० २३

१४६. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ० १

१४७. वही पृ० १६

१४८. वही पृ० १३

१४९. वही पृ० १७

१५०. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ० १९

१५१. वही - पृ० २८

१५२. वही - पृ० ४०

१५३. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी - पृ० ३८

१५४. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात फेरी - पृ० ४०

१५५. नरेन्द्र शर्मा - प्रभात - फेरी - पृ० ४३

१५६. नरेन्द्र शर्मा - मिट्टी और फूल - पृ० ४३

१५७. डॉ० विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत पृ० १२४

१५८. अंचल - किरण वेला 'अन्तर्गीत' पृ० ७३

१५९. अंचल - अपराजिता पृ० १०६

१६०. अंचल - लाल चूनर पृ० १०

१६१. वही पृ० ७

१६२. अंचल - प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी - पृ० १५

१६३. अंचल 'विराम चिन्ह' पृ० २३

१६४. अंचल - 'अनुपूर्वा' पृ० ४५

१६५. अंचल - प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी - पृ० ५५

१६६. डॉ० विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत पृ०१२१

१६७. सम्पादक - युगल किशोर झा - आरसी प्रसाद सिंह पृ० ७८

१६८. सम्पादक - जैनेन्द्र कुमार हंस १९३७ अंक १११ अश्रुगीत पृ० १२३

१६९. सम्पादक - रामवृक्ष बेनीपुरी 'नई धारा' नवम्बर १९५८ पृ० १

१७०. सम्पादक - रामवृक्ष बेनीपुरी - नई धारा - अप्रैल १९५८ पृ० ७४

१७१. पं० जानकी बल्लभ शास्त्री - तीर - तरंग पृ० ३

१७२. वही - पृ० १२

१७३. शम्भुनाथ सिंह - रूपरश्मि पृ० ११

१७४. नागार्जुन - सतरंगे पांखोवाली पृ० २०

१७५. वही पृ० ४८

१७६. वही पृ० २४

१७७. नागार्जुन - तालाब की मछलियां पृ० २६-२७

१७८. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ० ६

१७९. डॉ० विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत पृ० ४४

१८०. केदारनाथ अग्रवाल - नींद के बादल पृ० ८

१८१. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ० ५४

१८२. वही पृ० १५७

१८३. वही पृ० २५

१८४. केदारनाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ० ४७

१८५. त्रिलोचन - धरती पृ० १

१८५. त्रिलोचन - दिगन्त पृ० १

१८६. वही पृ० ३४

१८७. वही पृ० ११

१८८. वही पृ० ५८

१८९. तार सप्तक - मुक्तिबोध पृ० ७३

१९०. मुक्तिबोध - चांद का मुंह टेढ़ा है पृ० ६८

१९१. पन्त - युगान्त पृ० ४५

१९२. फूलचन्द्र पाण्डेय - पन्त आधुनिक कवि पृ० ४८५

१९३. पन्त - ग्राम्या - पृ॰ ३७

१९४. पन्त पृ॰ ८५

१९५. निराला - अर्चना पृ॰ ६

१९६. निराला - राग - विराग पृ॰ १२३

१९७. डॉ॰ वेदव्रत शर्मा - निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन पृ॰ २७८

१९८. डॉ॰ विनोद गोदरे - छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत पृ॰ १७२

१९९. भवानी प्रसाद मिश्र - गीत - फरोश पृ॰ १०४

२००. अज्ञेय - इत्यलम् पृ॰ १०२ "पूर्वा"

२०१. अज्ञेय - सागर - मुद्रा पृ॰ ४५

२०२. अज्ञेय - इत्यलम् पृ॰ ७२ "पूर्वा"

२०३. गिरिजाकुमार माथुर - छाया मत छूना मन पृ॰ १०

२०४. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता - सीमाएं और समस्याएं पृ॰ ९

२०५. धूप के धान पृ॰ १०७

२०६. गिरिजाकुमार माथुर - 'छाया मत छूना मन' पृ॰ ११

२०७. दूसरा सप्तक - धर्मवीर भारती का वक्तव्य पृ॰ १४५

२०८. भारती - ठण्डा लोहा पृ॰ २८

२०९. भारती - सात गीत वर्ष पृ॰ ६५

२१०. भारती - डोले का गीत पृ॰ ९

२११. डा॰ सुधीन्द्र - हिन्दी कविात में युगान्तर - पृ॰ २२९

२१२. डॉ॰ केसरीनारायण शुक्ल - आधुनिक काव्यधारा पृ॰ २३-२४

२१३. भारतेन्दु ग्रन्थावली - भारत भिक्षा पृ० ७०१

२१४. बद्रीनारायण चौधरी - 'प्रेमघन' आर्याभिनन्दन पृ० ६

२१५. डॉ० श्रीकृष्ण लाल - आ० हिन्दी साहित्य का विकास पृ० ८१ से उद्धत

२१६. भारतेन्दु ग्रन्थावली - द्वितीय खण्ड - पृ० ८११

२१७. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल - आधुनिक काव्यधारा पृ० २२ से संकलित

२१८. भारतेन्दु नाटकावली - भारत - दुर्दशा पृ० ५७८

२१९. डॉ० जयकिशन प्रसाद - हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां पृ० ३१९

२२०. डॉ० रामचन्द्र मिश्र - श्रीधर पाठक हिन्दी का पूर्ण स्वच्छन्दतावादी काव्य पृ० १३

२२१. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती पृ० १५

२२२. वही - पृ० १०

२२३. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४९६

२२४. वही पृ० ४९५

२२५. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती, पृ० ८४

२२६. देवराज शर्मा 'पथिक' - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - एक समग्र अनुशीलन पृ० २०५

२२७. प्रसाद– लहर "पेशोला की प्रतिध्वनि" पृ० ५१

२२८. निराला - राग - विराग - जागो फिर एक बार - २ पृ० ६०

२२९. डॉ० जयकिशन प्रसाद - हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां पृ० ३१

२३०. युगचरण - पुष्प की अभिलाषा पृ० ३१

२३१. हिमकिरीटिनी - कैदी और कोकिला पृ० १७

२३२. हिमकिरीटनी-मरण त्यौहार पृ० ३०

२३३. वही पृ० ५७

२३४. डॉ० जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ० ३२६

२३५. हिमकिरीटिनी - कैदी और कोकिला पृ० १५

२३६. हिमकिरीटिनी - 'सिपाही' पृ० ५०

२३७. माता 'प्रथम संस्करण' पृ० २२

२३८. युगचरण - 'मुक्त गगन है, मुक्त पवन है' पृ० ४७-४८

२३९. देवराज शर्मा - 'पथिक' हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, एक समग्र अनुशीलन, पृ० १३३

२४०. वही पृ० २४१

२४१. डॉ० देवीशरण रस्तोगी, आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन, पृ०-३

२४२. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हम विषपायी जन्म के पृ० ४२९

२४३. वही पृ० ४१२

२४४. देवराज शर्मा 'पथिक' - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा - एक समग्र अनुशीलन, पृ० २४६

२४५. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - हम विषपायी जन्म के, पृ० ४२३

२४६. वही, पृ० ४१७

२४७. वही, पृ० ४१३

२४८. आजकल - ज्योतिर्मय फरवरी १९५६, पृ० २०

२४९. डा० देवीशरण रस्तोगी - आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन पृ० २५४

२५०. देवराज शर्मा - 'पथिक' - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा एक समग्र अनुशीलन, पृ,.२५४

२५१. लक्ष्मीनारायण दुबे - बालकृष्ण शर्मा नवीन व्यक्ति एवं काव्य, पृ० २२५

२५२. दिनकर 'रेणुका' पाटलिपुत्र की गंगा से, पृ० ३३

२५३. दिनकर - रेणुका 'ताडंव', पृ० १

२५४. दिनकर - हुंकार 'आमुख', पृ० १

२५५. दिनकर - चक्रवात हिमालय, पृ० ९

२५६. देवीशरण रस्तोगी - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, एक समग्र अनुशीलन, पृ० २८२

२५७. कुरूक्षेत्र - तृतीय सर्ग, पृ० २८

२५८. देवराज शर्मा पथिक - हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, एक समग्र अध्ययन, पृ० २६२

२५९. दिनकर - पशुराम की प्रतिज्ञा, पृ० ६३

२५९. रामप्रसाद किचलू - आधुनिक निबन्ध, पृ० ३५५

२६०. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १०

२६१. रामप्रसाद किचलू - आधुनिक निबन्ध, पृ० ३५५

२६२. सियाराम गुप्त - पाथेय, पृ० ११८

२६३. सियारामशरण गुप्त - पाथेय - पृ० ११७

२६४. राकेश एम०ए० - बापू का काव्य सौन्दर्य - पृ० ७

२६५. माखनलाल चतुर्वेदी - वेणु लो गूंजे धरा - पृ० ६०

२६६. डॉ. देवराज पथिक- हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, एक अनुशीलन, पृ० १२९

———————

अध्याय - ६

प्रयोगवाद और नई कविता

परम्परा से पार्थक्य और प्रयोग के विविध आयाम

प्रयोगवाद और नई कविता के सन्दर्भ में जब हम परम्परा और प्रयोग की चर्चा करते हैं तो यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि प्रयोगवाद और नई कविता ने परम्परा से पृथक प्रयोग के विविध आयामों का अन्वेषण किया है। परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद का तात्पर्य यह नहीं कि इन दोनों धाराओं ने अपनी पूर्ववर्ती काव्यधारा की उपेक्षा की हो। मात्र अपने अन्वेषित सत्य को प्रतिस्थापित करने का सतत प्रयास किया है। छायावादोत्तर युग की प्रयोगवाद और नई कविता का जब हम अध्ययन करते हैं तो विदित होता है कि ये दोनों धारायें जिस परिस्थिति में उत्पन्न हुई उसमें मात्र प्रयोग का अवलम्बन लेकर ही वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त कर सकती थी। यह एक सच्चाई है कि कविता अब क्रमागत काव्यधारा में आबद्ध होकर नवीनता से जुड़ने में असमर्थ थी। परिवर्तन कविता की आवश्यकता थी। समकालीन युगबोध में परम्परा के लिए कोई स्थान नहीं था। क्योंकि प्रत्येक युग का अपना दृष्टिकोण अपना सत्य होता है। नए मूल्यों से प्रेरणा पाकर अभिव्यक्ति के ढंग भी परिवर्तित हो जाते हैं। परिवर्तन प्रयोग के बल पर होता है। प्रयोग का उद्भव परम्परा से होता है। परम्परा में निर्जीवता ही नहीं होती। परम्परा ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें प्रगति है, प्रयोग की संभावना है। प्रयोगवाद युग में हुए प्रयोग कालान्तर में नई कविता में एक नये रूप में प्रकट हुए। यहां परम्परा और प्रयोग के सम्बन्ध को एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित करने से अभिप्राय यह है कि इन काव्यधाराओं के प्रस्तुतकर्त्ताओं ने भले ही युगसत्य को अपना अभीष्ट माना हो पर परम्परा का महत्व इन्हें अस्वीकार नहीं। परम्परा के महत्व पर प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक अज्ञेय ने दूसरे सप्तव में लिखा कि “जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिये परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बांधकर रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। परम्परा का कवि के लिये कोई अर्थ नहीं है, जब तक वह उसे ठोक बजाकर तोड़-मरोड़कर आत्मसात नहीं कर लेता, जब तक वह इतना गहन संस्कार नहीं बन

जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर निर्वाह अनावश्यक हो जाय।'१ इसके अनुयायियों ने परम्परा के महत्व को स्वीकार करने के उपरांत भी अपने को नवीनता के सापेक्षता में व्यंजना दी। यहां लक्ष्मीकान्त वर्मा का मन्तव्य भी देखें। वे मानते हैं "वाह्यारोपित यथार्थ के समर्थक होने के नाते वह यह मानता है कि परम्परा का खण्डन या विद्रोह, लोकपरम्परा का खण्डन या उसका विद्रोह उसकी संगठनशक्ति को कमजोर और कृत्रिम बना देगा। इसीलिए वह अपने उस ऐतिहासिक दायित्व के प्रति कभी भी जागरूक नहीं हो सका जो समसामयिकता के आधार पर उसके लिए अनिवार्य था। नयी कविता ने इस दायित्व के निर्वाह करने का साहस किया है। उसने परम्पराओं को तोड़ा है। तोड़ा इसलिए कि परम्परायें विकृत रूप में, सारे बोध स्तर पर लदी हुई थी, उनका कोई उपयोग नहीं था। वे अयथार्थ के अधिक निकट थी।'२ प्रयोगवाद की तरह नयी कविता ने भी परम्परा को नहीं स्वीकारा। उससे सम्बन्ध विच्छेद किया। प्रयोग का समर्थन किया। 'प्रयोग में आत्मसात करने का गुण है, विवेक रखते हुए भिन्नता को स्वीकार करने की क्षमता है, नये अनुभव क्षेत्रों को उद्घाटित करने की शक्ति है और इन सबसे बढ़कर उसके पास वह अन्तर्दृष्टि है जो हमें जीवन को नये माध्यमों से देखने की प्रेरणा देती है।"३ युगपरिवर्तन से मनुष्य की सतत विकासमान सांस्कृतिक यात्रा में जीवनमूल्य और सौन्दर्यात्मक दृष्टि में विस्तार हुआ। प्रयोग में मानवीय चेतना की प्रस्तरित और सूक्ष्म प्रत्येक स्तर को दृष्टि प्रदत्त करने की क्षमता थी। अतएव प्रयोग को विशेष महत्व मिला, प्रोत्साहन मिला, मान्यता उपलब्ध हुई। प्रयोगवाद में निहित प्रयोग की प्रवृत्ति तार-सप्तक के प्रकाशन में उभरी। यहाँ यह स्मरणीय है कि कथ्य और शिल्प विषयक प्रयोग हमें उत्तर छायावाद, प्रगतिवाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता प्रभृति सभी कवियों में मिलते हैं किन्तु वह प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्ति की भाँति किसी

आन्दोलन से सम्बद्ध नहीं है। छायावादी कवि पन्त और निराला की प्रवृत्तियों को वहन करके उपस्थित होने वाली उत्तरछायावादी कवियों का प्रस्तुतीकरण निश्चय ही छायावाद से भिन्न था। उसकी अभिव्यंजना नये रंग, नयी भंगिमा और अधिक यथार्थ के साथ विकसित थी। इसे हमने प्रयोग माना। हालांकि इन कवियों का अभीष्ट प्रयोग नहीं था, जैसा कि प्रयोगवादियों के वक्तव्यों में भी हमें प्रयोग के प्रति आकर्षण परिलक्षित होता है। इन कवियों की दृष्टि प्रयोग पर केन्द्रित थी। शिल्पगत प्रयोग की ओर इनका विशेष झुकाव था। अज्ञेय जी ने दूसर सप्तक की भूमिका में प्रयोग शब्द की स्पष्टता को

इन शब्दों में कहा– "प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधक है, दोहरा साधन है। एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेक्षण क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधक है।"४ अर्थात प्रयोगवाद एक साधन है जिससे कवि के नए सत्य का संधान मिलता है तथा कवि के प्रेषण के नये-नये अनुसंधानों का भी बोध मिलता है। नयी संवेदना, नये बोध तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत नये प्रयोग का स्पष्टीकरण एकमात्र प्रयोग से संभव था अतएव प्रयोगवादियों ने प्रयोग का बारम्बार इस्तेमाल किया। प्रयोग को प्रमुखता दी। "हम....किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी एक मंजिल पर रूके नहीं हैं, अभी राही है....राही नहीं, राहों के अन्वेषी है।"५ जिस नई प्रवृत्ति के आकर्षण में बंधकर नये-नये कवियों ने नयी अभिव्यक्ति दी, नयी दिशा को छूकर नयी शक्ति दी उनकी मंजिल का कोई छोर स्थायी नहीं था, वे राही थे, अन्वेषण में सन्नद्ध उनका अन्वेषण भी एक गतिशील प्रक्रिया थी। जो हर सत्य को परीक्षा की कसौटी पर कसकर अभिनव अर्थ से अलंकृत कर सके। प्रयोग को विकास की ओर मोड़ सके। लक्ष्मीकान्त वर्मा का कहना है 'इसीलिए प्रयोग मात्र उस आत्मसत्य की प्रतिष्ठा का हेतु है, वह स्वयम् पूर्ति नहीं है। वह मात्र शिल्प सज्जा भी नहीं है, वह देशकाल के वातावरण से उत्पन्न हुआ प्रयोग है।

इसी कारण से यह कहना उचित होगा कि प्रयोग केवल चमत्कार की अनुभूति नहीं है: इसमें युग का ध्येय लक्षित होता है।'६ प्रयोग में विकास सम्मिलित है। युगसंवेदना सम्माहित है। अब कवि का दर्द अपनी सीमा से छूटकर नये अर्थ का अन्वेषी बन जाने को व्यग्र हो उठा–

"जीवन है कुछ इतना विराट इतना व्यापक
उसमें है सबके लिये जगह, सबका महत्व
ओ मेजों की कोरों पर माथा रख रोने वाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सब का है।"७

नयी कविता की आस्था भी प्रयोग के प्रति रही। युगीन परिस्थितियों और वाह्य चिन्तन के परिणामस्वरूप नई कविता ने नये प्रयोग किये। अपना एक अलग क्षेत्र निर्मित किया। क्षणबोध, लघुमानव, विघटनकारी मूल्य, नवमानवतावाद, जनभाषा और जनसंस्कृति का निर्वाह आदि ऐसे प्रयोग हुए जिनसे नई कविता ने परम्परा से पृथक

अस्तित्व का निर्माण किया। उसने परम्परा के तत्वों से आकार ग्रहण करते हुए मौलिकता का मिश्रण नहीं किया उनकी मौलिकता ने परम्परा से अलग हटकर अस्तित्व की निर्मिति की। उसने जीवन सत्य के उन धरातलों को छुआ जिनसे पूर्ववर्ती कवि जुड़ नहीं सके थे। नयी कविता के ये नये आयामों का प्रयोग ही परम्परा से उसे भिन्न करता है। अज्ञेय एक स्थल पर कहते हैं–

"नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला है या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"८

प्रयोग परम्परा से प्रेरणा पाता है परन्तु उसका आधार दृष्टि की नवीनता है। प्रयोग परम्परा की क्रमबद्धता में अपनी नवीन अभिव्यंजना से नया स्तर प्रतिष्ठित करता है। यह नया स्तर प्रगति का लक्षण है। 'जहां कहीं भी विचारधारा में, मूल्यों में और मर्यादाओं में विकास होगा, वहां प्रयोग में वह विकासशील तत्व व्यक्त होगा। प्रयोग साहित्यिक अभिरूचि और विकास का मुख्य अंग है।"९ नयी कविता का कवि समय की बदलती स्थितियों के विकासात्मक स्वरूप को नये-नये प्रयोगों से अधिक विकासोन्मुख करता है क्योंकि 'प्रयोग का सत्य से नेह है, रूढ़ियों से नहीं। स्वस्थ परम्परा विकासमान जीवन के साथ परिवर्तित होती रहती है और नये प्रयोगों को प्रेरणा प्रदान करती है।'१० नयी कविता की दृष्टि इस प्रकार सत्यान्वेषी है। उसकी अन्वेषणमय दृष्टि में परम्परा से मोह नहीं मिलता। वह तो सदैव आगे की ओर देखती है आगे से भी आगे, जहां वह जीवित मूल्य को प्राप्त करके भी अपनी यात्रा में सन्नद्ध रहे। उसकी इस यात्रा में कहीं विराम नहीं है। वह तो अनवरत न थक कर बैठनेवाला चलनेवाला राही है। एक असमाप्ति की खोज में व्यस्त। वह पथ में मिलने वाले अनुभवों को निजी अनुभूतियों के द्वारा प्रकट करता है। यह अनुभूति प्रयोग से व्यक्त होती है। उसकी प्रयोग में पूर्ण आस्था है। इस आस्था ने ही आगे चलकर क्षणवाद और लघुमावता की खोज की। यह उनकी प्रयोगात्मक दृष्टि है।

क्षणवाद

क्षणवाद एक नया प्रयोग है। यह अतीव बौद्धिकता की देन है। इसमें परम्परा या अतीत का पूर्ण अभाव है। केवल वर्तमानबोध की ही इसमें प्रधानता है। अतीत और भविष्य दोनों ही क्षणवाद में निष्प्रयोजनीय है। क्षणवाद अर्थात् क्षण की सार्थकता को ही ग्राह्य माना जाता है। क्षण अपने आप में लघु नहीं एक विराट सत्य है। यह विराट सत्य जीवन की तमाम संगतियों और विसंगतियों को क्षण में भोग सजीवता प्रदत्त करता है। छायावादोत्तर काल में यह एक विशिष्ट प्रयोग है। बुद्धिजीवी वर्ग ने इसपर अपनी सहमति देते हुए अधिक सार्थक और प्राणवान बनाने की कोशिश की है। “क्षण को सत्य मान लेने का अर्थ है जीवन की एक-एक अनुभूति को, एक-एक व्यथा को, एक-एक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप में मानना।’११ क्षण ही सत्य है। हम क्षण को जीते हैं। इसमें जीवन की संपूर्णता व्याप्त है। यह एक साकारात्मक दृष्टि है। इसे किसी भी रूप में नकराना अनुचित है। यह एक अनुभूत यथार्थ है, युगबोध से सम्पृक्त परम्परा से पृथक। क्षण की विराटता, महत्ता अज्ञेय के शब्दों में दर्शनीय है–

“एक क्षण: क्षण में प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता
इससे कदापि बड़ा नहीं था महाम्बुधि जो
पिया था अगस्त्य ने
आज के इस विविक्त अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें आत्मसात कर लें
उसकी विविक्त अद्वितीया में
शाश्वत हमारे लिए यही है
अजर है अमर है।”१२

कवि जिये गये क्षण को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित करता है। उसके लिए एक क्षण ही शाश्वत है, अजर है, अमर है। शेष सब कुछ क्षणभंगुर है, अस्थायी है। उसमें प्राप्य क्षण को अधूरे रूप में नहीं सम्पूर्णता के साथ जीने की लालसा है। क्षण के प्रति दायित्व बोध अतीत से मुक्ति दिलाता है। उसे वर्तमान से जोड़ता है। वर्तमान के प्रति सजग होकर जो कुछ भी अन्दर है उसे कह देने की तटस्थता रखता है। कीर्ति चौधरी में कई

दिनों के चिन्तन और संघर्ष के उपरान्त प्राप्त क्षण में सब कुछ कह देने की प्रबल उत्सुकता है।

"मैं प्रस्तुत हूँ
इन कई दिनों के चिन्तन और संघर्षवाद
यह क्षण जो अब आ पाया है.
उसमें बंधकर मैं प्रस्तुत हूँ
तुमसे सब कुछ कह देने को।"१ ३

जीवन क्षणभंगुर है। काल की धारा अनन्त है। क्षणभंगुर जीवन में मनुष्य को हर एक क्षण का उपयोग करना चाहिए। क्षण की सार्थकता से लाभान्वित होना चाहिए। एक लघु क्षण में की अनुभूति किसी व्यापक सत्य का अनुसंधान करने में समर्थवान हो सकती है। क्षण के प्रति गहरी निष्ठा ही नये कवियों को प्रोत्साहन देती है।

"काल की धारा
अनंत असीम है
हम क्षणिक है।"१ ४

मनुष्य का जीवन भले ही क्षणिक हो। क्षण के भीतर से अनुसंधित सत्य उसे काल की प्रवहमान धारा में भी तिरोहित नहीं होने देते। उसके एक क्षण को कालजयी पृष्ठभूमि पर कालधर्मी सिद्ध करते हैं। क्षण की इस महत्ता का भारतभूषण अग्रवाल की 'ओ अप्रस्तुत मन' में अत्यन्त ही सजीव वर्णन है। हताश और निराश मन को एक क्षण जहां आह्लाद देता है दूसरा क्षण विह्वलता। बिजली की कौंध तो उसके लिए अभिव्यक्ति का संदेश है। इस अभिव्यक्ति का स्वभाव क्षण है। यह है क्षण की महत्वपूर्णता। इसे उन्होंने इन शब्दों में बांधा है–

"दर्द के घुटे घिरे बादलों में
अचानक –
बिजली की तड़प कौंध गई।
एक क्षण को
सारा आसमान प्रकाश से भर गया

तीखे उद्धत क्षणिक प्रकाश से
तुम्हारे प्यार की तरह
और दूसरे ही क्षण
आसमान बुझ गया
बादल और गहरा गये।"१५

आधुनिक दृष्टि अतीत से पाई अनुभूति को अस्वीकारती है। उसके समक्ष आज क्षण-प्रतिक्षण में परिवर्तित अनुभूति ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वह प्रत्येक अनुभूति को विश्लेषित करता है। गतिशील अनुभूति को ही वह विवेक से अर्जित करता है। यह आधुनिक जीवन की मांग है–

'आधुनिक जीवन का स्तर यह मानकर चलता है कि क्षण प्रतिक्षण जो भी साक्षात्कार हम करते हैं उसके प्रति हमारा दायित्व है और वह भी एक गतिशील अनुभूति है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जीवन क्षण-प्रतिक्षण जिस जगत का, जिस मानव संवेदना का, जिस मनोवैज्ञानिक सत्य का साक्षात्कार करता है वह ऐसा है जिसके आधार पर मानव भविष्य और मानव नियति को गति मिलती और रूप मिलता है।'१६

जीवन की गत्यात्मकता से सम्बद्ध प्रत्येक क्षण महनीय है। मानवीय जगत और संवेदना को प्रभावित करने वाला हर क्षण सार्थक है। यह क्षण ही गति का आधार है। 'जैसे-जैसे सांस की गति में हम प्राण की अभिव्यक्ति पाते हैं, वैसे ही क्षण-क्षण के दायित्व में हम जीवन की बहुल्यता का स्वरूप भी पाते हैं।'१७ यदि हम वास्तव में प्रगति के लिये सचेत हैं तो हमें क्षण-बोध को स्वीकारना ही होगा। क्षणबोध से प्रेरित कलाकार प्रगति की संभावना को अस्वीकारता नहीं। वह उसको यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करता है तथा उसका प्रस्तुतीकरण इस लघु क्षण में नये रूप, नये स्तर का उद्घाटन प्रयोग के द्वारा करता है। इसमें सक्रियता मिलती है। वसन्तदेव की पंक्तियों में कालाभिव्यंजना का रूप द्रष्टव्य है–

"किस ने क्षण की मर्यादा को थाम लिया है
मैंने
किस ने गति को एक तमाचा मार रोक लिया है
मैंने

किस ने पल के विष अमृत को कृष्ण सरीखा चूस लिया है
मैंने।"१८

वसन्तदेव की इन पंक्तियों में क्षण दृष्टि का प्रयोग अद्‌भुत है। उसके अनुभव क्षण-क्षण पतंगों से लुटे हैं। पर वह इन लुटे हुए क्षण के साथ पूर्ण आस्था से ईमानदार रहने का कांक्षी है। मुद्राराक्षस अतीत को भूलकर एक क्षण से अपने को सम्बद्ध करने को व्यग्र है–

"आओ हम उस अतीत को भूले
और आज की अपनी रग-रग के अन्तर को छू लें
छू लें इसी क्षण
क्योंकि कल के वे नहीं रहे
क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।"१९

अतीत और भविष्य या व्यतीत कल और आगत कल दोनों ही क्षण-आग्रही रचनाकारों के लिए निरपेक्ष है। उनके लिए वर्तमान सापेक्ष है। यद्यपि वह क्षण व्यतीत और आगत के बीच की मध्य रेखा है किन्तु फिर भी वह अद्वितीय है। अप्रतिम है। वह गतिशील है–

"आज इस क्षण में
मैं केवल मैं हूं
आदि अंत कुछ भी आज याद नहीं मुझको।"२०

इस प्रकार क्षणवाद में क्षण का सत्य कवि को परम्परा के पूर्वाग्रह से स्वतन्त्रता देता है। नयी कविता 'मुक्त क्षणों की यादगार नहीं है, वह वह एक संचित उपलब्धि है, जिसमें गतिहीनता नहीं, क्षण से क्षण तक की श्रृंखला में बह सकने का प्रवाह है, गति है, भाव-सम्पन्नता है और है एक ऐसा आत्म स्वर जो समूचे व्यक्तित्व का नैतिक निर्णय बनकर ही उभरता है।'२१ क्षण की अनुभूति अतीत की ओर दृष्टिपात नहीं करती, वर्तमान से जुड़ी होती है। तात्कालिकता से अनुप्रेरित क्षण की अनुभूति में गतिशीलता होती है। जड़ता नहीं। वह वर्तमान का आत्म संलाप है। यह संलाप प्रयोग से संचालित होता है तथा नये आयामों को उद्‌घाटित करता हुआ नवीनता को उजागर करता है। नवीनता का

वरण विकास की प्रथम शर्त्त होती है। अतएव क्षणवाद एक अभिनव दृष्टि है। एक नया प्रयोग है। इसका वैशिष्ट्य भिन्न है।

लघुमानवता

लघुमानवता भी हिन्दी काव्य की प्रवहमान परम्परा में एक अभिनव प्रयोग है। लघुमानवता में परम्परा के प्रति पूर्ण उपेक्षा है। परम्परा मनुष्य के विकास को अवरूद्ध करती है। लघुमानवता वर्तमान से अनुस्यूत है। वर्तमान में भी क्षण यथार्थ से उसका निकट सम्बन्ध है। हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास में 'लघुमानवता' के सम्बन्ध में एक टिप्पणी उद्धत है "लघुमानव" का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख-प्यास और मानसिक आंच को लिए उपेक्षित था। जब नयी कविता लघु या सामान्य की बात करती है तब वह किसी विशेष सिद्धान्त या वाद से प्रभावित होकर बात नहीं करती। यानी उसका लघुमानव किसी दर्शन, सम्प्रदाय या राजनीतिक दल की दृष्टि से दिखाई पड़नेवाला मानव नहीं है बल्कि सहज मानवीय संवेदना और आधुनिक यथार्थवादी दृष्टि से अपने सामान्य और विशिष्ट सभी रूपों में दिखाई पड़ने वाला जीवित मनुष्य है जो किसी भी वर्ग का नहीं है और उन सभी वर्गों का है जो जीवन के दर्दों के प्रति ईमानदार है, जो उधार नहीं, अपना जीवन जीते हैं।"२२ लघुमानवता एक आधुनिक दृष्टि है। यह अतीत से पृथक है। अब एक मनुष्य को कतिपय मूल्यों के संदर्भ में ही विश्लेषित किया गया था पर प्रयोगवाद से नई कविता तक लघुमानव अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं, पीड़ाओं को लिए प्रस्तुत हुआ। लघुमानव अपने आप में एक स्वतन्त्र इकाई है। दर्शन, सम्प्रदाय और राजनीति के खेमों में बंटकर जीने वाला वह मानव नहीं है। उसकी उपज आधुनिक यथार्थपरक दृष्टि के फलस्वरूप है। लघुमानव का वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो अपने जीवन को भोगते हुए निजी दर्दों के प्रति पूर्ण ईमानदार है। यह ईमानदारी की भावना ही उसका निजी वैशिष्ट्य है। गिरिजाकुमार माथुर ने लघुमानव की महत्ता दूर अस्तित्व पर शंका करते हुए एक स्थान पर कहा है- "क्या वह अविनश्वर आत्मा है, महापुरूष है, आदर्शनायक है, अतिनायक है, व्यक्तिवादी आत्मा है, अहं घिरा आत्मलीन समाज विमुख अराजक व्यक्ति है। कुंठाग्रस्त वर्जना प्रपीड़ित मनुष्य है अथवा समुदाय मानव 'मास-मैन' है, समूहीकृत व्यक्ति 'क्लैक्टिवाइज्ड मैन' है, लघुमानव है, सहज मानव है या इस व्यक्ति की कोई और ही किस्म है।"२३ माथुर

लघुमानव के अस्तित्व को किसी संज्ञा से अलंकृत करने में असमर्थ है। उनका दृष्टिकोण किसी निष्कर्ष को प्रतिपादित करने में खुद से ही उलझा है। जबकि लक्ष्मीकान्त वर्मा लघुमानव की सत्ता को आंकते हुए लिखते हैं- 'आज इस मानव और इसकी आस्था के अन्वेषण की आवश्यकता इसलिये है कि इतिहास के 'सुपरमैन' या 'जनसत्ता के अधिनायक' अथवा 'देवदूत' या मसीहा ने अपनी समस्त महानता को लघुमानव की बलि देकर अपनाया है।'२४ लघुमानव की इस स्थिति के लिये वह 'सुपरमैन'', "अधिनायकों और देवदूतों को दोषी ठहराते हैं। सच्चाई यह है कि समय के प्रवाह में भौतिक और वैज्ञानिक उपादानों के अनुसंधान ने ही यह स्थिति पैदा की है। डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह ने वर्तमान समय को जिम्मेदार मानकर कहा है 'एक गलित व्यक्तित्वहीन, अनैतिक, क्षुद्र यथार्थवादी, चिड़चिड़ा, कुंठित, निराशाग्रस्त, विकृत सेक्स का पुजारी, खोखली हंसी और मिथ्या रोब का मुखौटा लगाये रहने वाला मानव मूल्यहीन प्राणी है।'२५ बदलते मूल्यों में मानवीय मूल्य तीव्रता से चरमराये। अपने व्यक्तित्व के प्रति हीनता, चिड़चिड़ापन, कुण्ठा नैराश्य, अंधेरे गर्तों में जीना प्रभृति संघर्षशील अवस्थिति का दायी मूल्यों का विघटन है। यदि लघुमानव के भीतर ये तमाम असंगतियां है तो उसकी मूल्यहीनता ही अधिक उजागर होती है। देखा जाय तो यह तो हमारे उस परिवेश की उपज है, स्वतन्त्रता के पश्चात जो हमें उपलब्ध हुआ। वर्मा जी का अभिमत है 'नयी कविता आज की मानव विशिष्टता में उद्‌भूत उस लघुमानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है जो एक और आज की तिक्तता और विषमता को तो भोग रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्तता के बीच अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है। वह विशाल मानव प्रवाह में बहने के साथ-साथ अस्तित्व के यथार्थ को भी स्थापित करना चाहता है, उसके दायित्व का निर्वाह भी चाहता है।'२६

अस्तित्व के यथार्थ की प्रतिस्थापना अज्ञेय की निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है–

"यह दीप अकेला स्नेह भरा
गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।"२४

गर्व - उन्मत्त दीप एक पंक्ति में सार्थकता खोजता है। यह लघुमानव अतीत की उपेक्षा से संत्रस्त है वहीं वर्तमान में आत्मोपलब्धि के प्रति भी जागरूक है–

"आदमी नहीं एक अधकुतरा फल, फेंका हुआ, बिका हुआ धर्मसत्य।
आदमी नहीं एक तड़पाता, छिपकली के मुंह से छूटा अर्धजीवित संतप्त अर्धभोग।
आदमी नहीं एक छटपटाता, बेचैन, अर्धसंशय का अभियोग।
आदमी का सत्य नहीं इतना पराजित
है वह आत्म लब्ध
सम्पूर्ण
सघन घनत्व का
परमाणु।" २५

यह लघुमानव परमाणु से अधिक क्षमतावान है। मार्ग में व्याघात डालने वाले उपकरण उसकी शक्ति को द्विगुणित करते हैं, प्रलयंकारी आपत्तियों में उसकी सत्ता विलीन नहीं होती व्यंग्य की कड़वाहट उसमें खीझ उत्पन्न नहीं करती। इन सारी विषमताओं को भोगता हुआ भी वह अपने लघु सीमा में जीता है।

"अवरोधों को भोगता-
कतराता नहीं
साक्षी है प्रलय का–
पर विलय में डूबता नहीं
हर अनर्गल अपवाद को सहता
पर मजबूर नहीं
हर व्यंग्य में जीता
पर खीझता नहीं।" २६

इसी में आगे वर्मा जी लघुमानव के लघुमहत्तम स्वरूपों को चित्रित किया है –

"और तब मेरी अपनी लघु स्थिति में
वह सब कुछ है जो ऋतु है पावन है, मंगल है, शुभ है
किन्तु वह भी है, रौरव है, गलित, वीभत्स, कुरूप, अपरूप है।" २७

यह लघुमानव लघुता के परिवेश में सौरमंडल सा प्रदीप्त है। सत्त-असत्त का भोक्ता है, साक्षी है। वह अपनी लघुता में ही सार्थकता को छिपाये हैं। तथा अपने प्रति पूर्णतया सतर्क है। वह अपनी अस्मिता को किसी भी शर्त्त पर गवाने को प्रस्तुत नहीं –

"कूड़े सा हमको तजकर तट के पास
मन्थर गति से बढ़ जायेगा इतिहास
सामूहिकता भी केवल
साबित होगी जिस दिन छल
अपनी वैयक्तिकता हार
क्या पायेंगे
प्रभु
हम क्या पायेंगे।" २८

वह प्रत्येक क्षण का भोक्ता है। उसका व्यक्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'लघुमानव प्रत्येक क्षण के यथार्थ को जागरूक चेता प्राणी के रूप में पूर्ण रूप से भोगता है। वह स्वप्न-विगलित आम्र मंजरियों पर कल्पित कोयल की कूक के प्रति द्रवित नहीं होता तो इसके लिए वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह जो जीता है, जो भोगता है, जो क्षण-क्षण उसके व्यक्तित्व में परिव्याप्त है, उसी को अभिव्यक्ति देता है।' २९ वह भोग से पलायन नहीं करता। वह भोग को अभिव्यक्ति देने का साहस रखता है। इस साहस ने यदा-कदा नये संवेदनों को उद्घाटित करने का दुस्साहस भी रखा है। 'वह केवल एक मानसिक स्थिति का प्रतीक है जो प्रत्येक भाव और अनुभूति में केवल सार्थकता की तलाश करने की चेष्टा करता है, लेकिन सार्थकता को आरोपित करने की अपेक्षा वह निरूद्देश्यता, अर्थहीनता और व्यापक स्तर पर नितान्त 'ऐब्सर्ड' को भी स्वीकार कर सकता है। यदि उससे सम्पूर्ण मानवीय चेतना को समझने और विकसित करने में सहायता मिलती है।' ३० सार्थकता और असार्थकता दोनों में वह गति के लिये प्रयत्नवान होता है। वह अतीत को कुछ नहीं मानता, न भविष्य को कुछ समझता है। अतीत और भविष्य से परे वह वर्तमान में जो भी है बस उसे ही ग्राह्य मानता है। अतीत को वह इसलिए अस्वीकरता है यदि अतीत ने उसकी निर्मित की होती तो वर्तमान अधूरा नहीं होता। अब यदि वर्तमान को अधूरा भोगा जाय तो भविष्य का प्रारूप भी वही होगा।

अतएव वर्मा जी के इस दृष्टिकोण से हम सहमत हैं- 'लघुमानव इतिहास के प्रति भले उत्तरदायी न हो, वह वर्तमान के प्रति उत्तरदायी होता है और वह जिस आत्मनिष्ठा से विवेकशील, पोटेंशल को वहन करता है वह इन सभी अपवादों की स्वीकृति के साथ मानव स्वतन्त्रता को अधिक मूल्य प्रदान करने में समर्थ है।' ३१

निष्कर्षत: लघुमानवता को प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों ने लघु सीमा में भी व्यापकता दी है। लघुमानवता वर्तमान के प्रति सजग है, अतीत के लिये

परन्तु उसे प्रवहमान काल से अलग करके नहीं देखना चाहिए। वह इस प्रवहमान धारा की कोख से उत्पन्न एक नया सन्दर्भ है। जो भले ही परम्परा को नकारे पर प्रगति को अधिक उन्नत करता है। उसने परम्परा में ठहराव पैदा नहीं किया, गतिशीलता को वहन कर अपने अस्तित्व को सार्थकता देने की कोशिश की है। लघुमानव समय विशेष का एक अनिवार्य प्रयोग है। इसे अस्वीकारना भूल ही होगी।

परिवेश और प्रतीति

स्वतन्त्रता के पश्चात देश की स्थिति अधिक भयावह हो उठी। पूंजीवाद भले ही समाप्त हो गया हो। मध्य वर्ग ने इस रिक्त स्थान की पूर्ति की। क्योंकि यही वर्ग प्रबुद्ध और कर्मठ था। इसकी स्थिति ऐसी थी कि अपनी कार्यक्षमता के अनुपात में वह कभी भी सिद्धहस्त नहीं हुआ। हताशा, टूटन, कुंठा जीवन का अंग बन गयी। इस टूटन को समसामयिक युग की पीढ़ी ने भोगा और अनुभव किया। यह पीढ़ी स्वप्न और कल्पना में विहार करके जीवन का आनन्द लेने वाली नहीं थी। न एकमात्र स्थूल प्रेम, दुःख, आशा-निराशा से हताशा होकर मृत्यु उपासना में विश्वास रखती थी। न इसमें सामाजिक आग्रह था, न वैयक्तिक प्रतिष्ठा की अहमवादी प्रवृत्ति। बौद्धिकता और विवेक को लघुत्तम और क्षण की सीमा में जीकर भोगने की कोशिश की। इस काल में जो पीढ़ी सामने आई उसने परिवेश की विद्रूप यातनाओं से गुजरते हुए अकल्पनीय भयंकर स्थिति की प्रतिक्रिया में समस्त कुटिल परिवेश के प्रति विद्रोह किया। चतुर्दिक सम्प्रदायवाद, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, राजनीतिक हथकण्डे, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, घूसखोरी, नौकरशाही, पक्षपात एवं अनीति, भारतीय परिवेश में परिव्याप्त थे। महंगाई, आर्थिक विपन्नता, बेरोजगारी, हड़ताल प्रदर्शन, वैमनस्यता ने जीवन की शांति को भंग

कर दिया। इससे अनिश्चयता को प्रोत्साहन मिला। युगीन परिवेश के सहभोक्ता कवियों की रचनाओं में भी इन संक्रामक परिस्थितियों से उत्पन्न असंतोष की प्रतिकृति व्यक्त हुई। परम्परा के शाश्वत और अक्षय समझने वाले मूल्य इस काल की परिधि को उलांघते हुए लड़खड़ा गये। युगीन विसंगति और पीड़ा बोध में लघुमानव को जन्म दिया। इस लघुमानव ने अपनी अदम्य शक्ति से परम्परा और रूढ़ि की शाश्वता पर प्रहार किया। उसने लघु परिवेश में महानता और गरिमा की प्रतिस्थापना की। इसके साथ ही क्षण के जीवन की सार्थकता को महत्ता मिली। लघुपरिवेश की इयत्ता पर वर्मा जी ने प्रकाश डाला है– 'हम कुंठाग्रस्त महानता से निष्पन्द लघुता को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं, निष्क्रिय विराटता से कहीं अधिक मूल्यवान यह बौनापन है जो अनावश्यक और मिथ्या धाराणाओं का पोषण न करके सीधा यथार्थ को महत्वपूर्ण समझता है और उसे स्वीकार भी करता है।'३२

कवि अपने परिवेश की उपज होता है। संवेदनशीलता के कारण वह यथार्थ से साक्षात्कार कर आंखें मूंद नहीं लेता। वरन वह कलम की ताकत से तमाम विडम्बनाओं के प्रतिरोध में आक्रोश उगलता है। ये कवि अपने परिवेश के दाय से चूकते नहीं। परम्परा को भी नहीं स्वीकारते। परिवर्तित परिवेश में परम्परा की प्रवहमानता से मानव की प्रगति में व्यवधान पहुंचा। अतएव इसे निर्मूल साबित करने की चेष्टा हुई। एजरा पाउण्ड का भी कथन है 'जो अतीत और भविष्य के साथ सम्बन्धित न हो, उसका अस्तित्व नहीं है।'३३ इसीलिए वर्तमान का अस्तित्व ही सार्थक बना। वर्तमान परिवेश को सार्थकता दी गई। वर्तमान परिवेश से विक्षिप्त होकर नये आयामों का अवलम्बन ही उसका अभीष्ट हुआ क्योंकि 'देश को आजादी मिली, हम सत्तावान बने। देश का बंटवारा हुआ, लाखों की संख्या में लोग बेघरबार हुए। खून की नदियां बहीं। पाकिस्तान से लौटने वाले परिवार टूटी-बिखरी स्थिति में 'वतन' से निकल कर देश भर में फैल गये। विध्वंस, विध्वंस एक अकल्पित स्थिति का मुकाबला। नये सिरे से शरणार्थी परिवारों को बसाने की समस्या और देश के नवनिर्माण की शुरूआत, पंचवर्षीय योजना, औद्योगिक विकास, रोजी की तलाश में गांवों से शहरों की तरफ माइग्रेट करती हुई आबादी, नागरिक जीवन की जटिलता और अकेलेपन का अहसास, राजनैतिक क्षेत्रों में विघटन की स्थिति, चीन से लड़ाई, बढ़ती महंगाई, अव्यवस्था, नेहरू की मृत्यु, पाकिस्तान से युद्ध, भयंकर सूखा, असंतोष, बेरोजगारी की समस्या,

पक्षधरता, काम का अनुचित बंटवारा और तमाम स्थितियां पन्द्रह बीस साल की अवधि में आयीं और गयीं। मूल्य टूटे और झूठे पड़े और नये मूल्यों की तलाश शुरु हुई।'३४ जब चतुर्दिक परिवेश कुहासाच्छन्न हो तो साहित्य का परिवेश ऐसी विकराल आपदाओं से अछूता कैसे रह सकता है। साहित्य भी विशिष्टताबोध के नाम पर अपनी परम्पाओं से कट कर नये मूल्यों को लेकर प्रकट हुआ। नये-नये आयामों के संदर्भ में उसने अपने व्यक्तित्व और जीवन की सार्थकता को तलाशा। बिना समझे परम्परा की गतिशीलता को निरर्थक साबित किया। वर्तमानकालीन परिवेश की आवश्यकता को देखते हुए कवियों ने ऐसे मूल्यों को सिरजा जिसमें न सामाजिकता का आग्रह था, न व्यक्तित्व की सही अभिव्यक्ति। जो कुछ भी अभिव्यक्त था उसमें परिवेश के प्रति खीझ और झुंझलाहट, उफान और उबाल, आक्रोश और विक्षुब्धता का प्रकाशन था। निश्चय ही स्वतन्त्रता के पश्चात अविश्वसनीय परिवर्तित परिवेश मनुष्य के लिए एक चुनौती बना जहां मनुष्य की क्रियमाण शक्ति पर एक प्रश्नचिन्ह था। जिसने उसकी मेधा को एक नये सिरे से सोचने को मजबूर किया। हर प्रारम्भ अपने आप में अधूरा होता है। प्रयोगवाद और नई-कविता के पश्चात अन्वेषित प्रयोग की दृष्टि भी कुछ इसी प्रकार दिखती है।

———————

१. अज्ञेय-दूसरा सप्तक, पृ० ६७

२. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १२५

३. वही, पृ० १८५

४. दूसरा सप्तक - भूमिका, पृ० ६

५. तार-सप्तक, पृ० ११

६. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १८७

७. वही, पृ० १८७

८. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर

९. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान - पृ० १८७

१०. डॉ० गोपालदत्त सारस्वत - आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और प्रयोग - पृ० २३

११. सम्पादक, डॉ० हरवंशलाल शर्मा - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (अँद्यतन-काल), पृ० १४७

१२. अज्ञेय-इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ० ४४

१३.सम्पादक अज्ञेय - तीसरा सप्तक, पृ० १५

१४. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर - आधुनिक कविताएं सम्पादक - रणधीर सिन्हा, पृ० ४६

१५. भारत भूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन, पृ० ३३

१६. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० २५३

१७. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० २६३-६४

१८. वही, पृ० २६० में उद्धृत

१९. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० २७१ में उद्धृत

२०. लहर - राजेन्द्र किशोर - जन.-फर०, पृ० ५२

२१. लक्ष्मीकान्त वर्मा - लहर - कवितांक १९६१, पृ० १७७

२२. डॉ० हरवंश लाल शर्मा - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास १९८५-२०१७ वि० अद्यतन काल, पृ० १४७-४८

२३. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता अंक ५-६, पृ० ५२

२४. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १६१

२५. डॉ० शिवप्रकाश सिंह - कल्पना १३०, पृ० ५२

२६. लक्ष्मीकान्त वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३६६

२४. अज्ञेय - बावरा अहेरी, पृ० ६२

२५. लक्ष्मीकान्त वर्मा - अतुकान्त, पृ॰ ५-६

२६. वही, पृ॰ ५-६

२७. लक्ष्मीकान्त वर्मा - अतुकान्त, पृ॰ ११

२८. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष, पृ॰ ३९

२९. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नये प्रतिमान पुराने निकष, पृ॰ ९९

३०. वही, पृ॰ १०२

३१. वही, पृ॰ १३०

३२. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ॰ २७६

३३. एजरा पाउण्ड - धर्मयुग ६ जून १९६५, पृ॰ १०

३४. उत्कर्ष "गोपाल उपाध्याय" कविता विशेषांक, पृ॰ १७६

———————

अध्याय - ७

समकालीन हिन्दी कविता

भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम समकालीन हिन्दी कविता पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कालगत सातत्य के समानान्तर प्रस्तुत समय विशेष में उपजी विविध चिंतन प्रक्रियायें केवल वर्तमान से जुड़ी हैं। अतीत से ये सभी प्रक्रियाएं पूर्णतया असम्बद्ध है। इस अवधि-विशेष में प्रादुर्भूत चिंतन प्रक्रियाएं किसी ठोस, गम्भीर, गहन अवधारणा की पुष्टि नहीं करती, एक दूसरे का प्रतिरोध कर, एक दूसरे का उच्छेद करने की चेष्टा करती है। क्योंकि इनके पास निश्चित लक्ष्य नहीं था विश्लेषण की क्षमता नहीं थी, न सामाजिक आग्रह था। अतएव पूर्ववर्ती काव्यधारा के समान इसमें स्थायित्व और टिकाऊपन के सूत्र नहीं मिलते। ये समस्त प्रक्रियायें अपने अतीत की सतत प्रक्रिया में कोई आस्था नहीं रखती। इनकी दृष्टि में परम्परा का कोई अस्तित्व नहीं होता। इनके लिए व्यतीतोन्मुखी परम्परा का निर्वाह रूढ़ि का पोषण करना है। परम्परा की जीवंतता एक ऐसी भ्रान्ति है जो मौलिक प्रवृत्तियों के विकास में भी व्यवधान डालती है। आज साहित्य का जो नया रूप उभर कर आ रहा है वह उसे ही प्रस्थापित करना अपना मुख्य धर्म मानें- यही आज के साहित्यकार की चेष्टा हो। ऐसा इस धारा के संचालकों का मन्तव्य है। ये सभी लेखक महत्वपूर्ण आन्दोलन के रूप में एक नई काव्यप्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हैं। यह काव्यप्रवृत्ति प्रणेताओं के द्वारा ही प्रस्तुत होने के साथ-साथ अदृश्य भी हो जाती है। इनके चिंतन में एक आक्रोश है, एक उबाल है, एक उफान है जिसमें रूग्ण मानसिकता को प्रश्रय मिलता है। जहां न सामाजिकता का आग्रह है, न जीवन सापेक्ष्य मूल्य दृष्टि है। इसमें केवल व्यक्तिगत स्थापना की लालसा है जो मनुष्य को जातीय सन्दर्भों से तो च्युत करती है साथ ही अनास्था, अस्वीकृति, निषेध के संक्रामक कीटाणुओं को पनपने का अवसर प्रदत्त करती है एवं जिसमें गहराई और व्यापकता को खोज पाना कठिन है। जहां तक समकालीन हिन्दी कविता के स्रोतों का सवाल है उन्हें सन १९६० के पश्चात जन्मी संक्रान्तिकालीन परिस्थितियों में देखा जा सकता है। समय की अकल्पनीय स्थितियों के द्रष्टा बौद्धिक कलाकारों के सम्मुख निरन्तर प्रवहमान काव्य की धारा एक गैरजरूरत मन्द प्रत्यय के रूप में प्रकट हुई। यह एक सम्मोहिनी शक्ति थी जिससे मुक्ति के द्वारा ही सच्चाई को जाना या पहचाना जा सकता

था। मुक्ति की छटपटाहट ने ही उन कलाकारों में पुरातन के प्रति विकर्षण को पैदा किया और व्यक्तिगत दृष्टि को संस्थापित करने की निर्भयता भी दी। इनके प्रकाशन में लघु पत्र-पत्रिकाओं का योगदान ही रहा है।

इन नवीन प्रवृत्तियों के आन्दोलन को जन्म से समर्थन के बदले विरोध ही मिला। स्वयं इनके उद्भावकों ने उपेक्षा दी। अत: तीव्रता से उभर कर आते ये समस्त आन्दोलन अवतरण के साथ ही दुर्बल और कमजोर पड़ गये। यदि हम साहित्य को एक नैरन्तर्य सक्रियता के अर्थ में ग्रहण करते हैं तो हमें इस कालविशेष में उत्पन्न चिंतनप्रक्रियाओं के अवदान को भी महत्ता देनी पड़ेगी। समकालीन हिन्दी कविता के अन्तर्गत सम्मिलित विविध लघु चिंतनों को हमारी परम्परा से आगे प्रयोग की एक कड़ी मानते हैं जो भले ही दुर्बल और कमजोर ही रहे हों पर उनका प्रदेय अस्वीकारा नहीं जा सकता।

इसके उद्भव के मूलवर्ती कारणों की खोज करें तो हमारी दृष्टि देश की विविध परिस्थितियों पर केन्द्रित हो जाती है। सन१९६० के पश्चात भारत–चीन सीमाविवाद एक ऐसी घटना है जिसने न केवल हमारी आस्था और भावना को अपितु हिमालय के रूप में अवस्थित विश्वास को भी आघात पहुंचाया। १९६४ में पण्डित नेहरू के निधन और १९६५ में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच होने वाले युद्ध के बाद राजनीतिक दृष्टि एक निर्णयात्मक अवस्थिति में विचार विमर्श करने को मजबूरन प्रयत्नशील हुई। समानान्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अमेरिका और रूस की बढ़ती प्रतिस्पर्धा का प्रभाव प्रत्यक्षत: भारत के समर्थन और विरोध के रूप में प्रकट हुआ। अमेरिका का पाकिस्तान की ओर झुकाव था और रूस का भारत की ओर। इसके साथ ही वियतनाम की धरती पर अमेरिका की मानव विरोधी सर्वनाशी कुनीति का षडयन्त्र चल रहा था वहीं रूस की रूक्षता चेकोस्लोवाकिया की अतिरिक्त स्वातन्त्रय कामना की सुगबुगाहट को संतुलन देने को बाध्य थी। अमेरिका और रूस की छलपूर्ण राजनीति ने इस दौर में भारत को आत्मालोचन और आत्मनिर्णय हेतु विवश किया जिस पर चलते हुए न सिर्फ भारत की कम्युनिस्ट पार्टी बारम्बार विभाजित हुई, कांग्रेस भी इस कुनीति से सुरक्षित न रह सकी। परिणामत: यदि रूस-चीन समर्थन और मध्यमार्ग धर्मिता के नाम पर कम्युनिस्ट पार्टी खण्डित और विभाजित हुई वहां कांग्रेस भी सिण्डिकेट और इण्डीकेट के रूप में अमेरिका और रूस की आयोजित पक्षधरता के नाम पर टूटी बिखरीं।

स्वतन्त्रता के पश्चात देश की अवस्था अप्रत्याशित विभीषिकाओं का शिकार हुई। खाद्यसंकट, बेरोजगारी, महंगाई, महामारी, भूख, कर, नेताओं की स्वार्थता पूर्ण जालसाजी, षड़यन्त्र निरक्षरता आदि स्थितियों के कारण व्यक्ति असम्पृक्ति और अलगाव से जुड़ता गया। अपने परिवेश से विक्षिप्त और पराजित होकर उसने अभिव्यक्ति के नये माध्यमों का अवलम्बन लिया। जिसका अतीत से प्रयोजन न था न भविष्य के प्रति सतर्कता की भावना थी। वर्तमान ही जिनके लिये सर्वस्व था। पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों से विच्छेद ही जिनकी प्रक्रिया थी। उन्हें यह अनुभव हुआ कि अपने पूर्व से सम्बन्ध विच्छेद कर अपनी मान्यता को प्रस्थापित करना ही साहित्य धर्म है। ऐसा प्रयोग से संभव है। प्रयोग में नवीनता होती है। नवीनता में गति निहित रहती है। प्रयोग ही आज की कविता का मुख्य दायित्व है। प्रयोग मे ंजीवंत मूल्यों का संवहन करने की शक्ति होती है। अतएव इस कविता के प्रणेताओं ने परम्परा से सम्बन्ध तोड़कर नये संवेदनों को उजागर करने निमित्त प्रयोग की अनिवार्यता को बल दिया। गोपाल उपाध्याय का अभिमत एक तर्कसंगत उक्ति को प्रस्तुत करता है 'देश को आजादी मिली, हम सत्तावान् बने। देश का बंटवारा हुआ, लाखों की संख्या में लोग बेघरबार हुए। खून की नदियां बही, पाकिस्तान से लौटने वाले परिवार टूटी-बिखरी स्थिति में 'वतन' से निकल 'देश' भर में फैल गये। विध्वंस, विध्वंस एक अकल्पित स्थिति मुकाबला। नये सिरे से शरणार्थी परिवारों को बसाने की समस्या और देश के नवनिर्माण की शुरूआत, पंचवर्षीय योजना, औद्योगिकविकास, रोजी की तलाश में गॉवों से शहरों की तरफ माइग्रेट करती हुई आबादी, नागरिक जीवन की जटिलता और अकेलेपन का अहसास, राजनैतिक क्षेत्रों में विघटन की स्थिति, चीन से लड़ाई, बढ़ती महंगाई, अव्यवस्था, नेहरू की मृत्यु, पाकिस्तान से युद्ध, भयंकर सूखा, असंतोष, बेरोजगारी की समस्या, पक्षधरता, काम का अनुचित बंटवारा और तमाम स्थितियां पन्द्रह-बीस साल की अवधि में आयीं और गयीं। मूल्य टूटे और झूठे पड़े नये मूल्यों की तलाश शुरू हुई।"१

साहित्यिक परिदृश्य पर इसी रोशनी में दृष्टिपात किया जायें तो स्थिति अधिक शोचनीय थी। साहित्य विशिष्टताबोध के नाम पर आधुनिकता का जामा पहनकर अपने ही जातीय संदर्भों से, जातीय मूल्यों से नकारात्मक ढंग से प्रकाशित हुआ। उसकी रचनाधर्मिता में एक नया उबाल है, एक उफान है, विखंडन है, आक्रोश है। एक ऐसी लीक का निर्माण करने की बलवती लालसा है जिसमें विकास निहित हो। यह स्थिति अमेरिकन बीट

कवि एलेन गिन्सबर्ग के भारत आगमन से अधिक सक्रियता से उभरी। उसके प्रभाव को अर्जित कर प्रतिभावान कलाकारों ने जातीय अस्मिता को झुठलाया। वाह्य सत्य को भारतीय भूमि पर सम्प्रतिष्ठित करने की कोशिश की जिसे बीट कविता नाम से अभिहित किया गया। उसके साथ ही अतियथार्थवादी आन्दोलन के प्रवर्तक आन्द्रे ब्रेन्तों की मृत्यु वर्ष से प्रेरणा ग्रहण कर अस्वीकृत कविता का प्रादुर्भाव हुआ तथा बंगाल की भूखी पीढ़ी के कारण अकविता को समर्थन मिला। उधर युयुत्सावाद अमानवीय स्थितियों के विरुद्ध विद्रोहात्मक रूप में प्रकट हुआ। उधर नवगीत के आन्दोलनकर्त्ता काव्य क्षेत्र में अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने लगे।

निष्कर्षत: सन १९६० के पश्चात कविता की आंतरिक संवेदना और शिल्पगत अभिव्यक्तियां स्वतन्त्र रूप से फूटी। परम्परा की अर्थवता जिनके लिए निष्प्रयोजनीय है। 'देखा जाये तो परम्परा जैसी सतत प्रक्रिया का कोई अस्तित्व नहीं होता। होता है सिर्फ अतीतोन्मुख उपलब्धियों को भविष्य में जीवित रखने का प्रयास। परम्परा का प्रवाह या विकासचरण जैसी धारणा महज एक भ्रांति से अधिक नहीं होती।'२ लेखक का आगे अभिमत है कि साहित्य स्थायित्व का पर्याय नहीं होता। स्थायित्व जड़ता का पोषक है। यह शव-साधना की क्रिया है। अत: वर्तमान ही ग्रहणीय है। 'अतीत का रूपान्तरित होता हुआ बोध शीघ्र नष्ट नहीं होता, वर्तमान के एक छोर को वह बड़ी देर तक अपने दांतों से पकड़े रहता है और वर्तमान उसे कुछ समय बाद स्वयं छिटक कर छोड़ देता है। अतीत मोह मनोगत है, तात्विक नहीं।'३ पर अतीत मोह मनोगत नहीं होता। वर्तमान की गतिशीलता का उत्स अतीत ही है। परम्परा भ्रान्ति नहीं होती, गतिशील सांस्कृतिक प्रक्रिया होती है जिसको समझे बिना सार्थकता और निरर्थकता पर किसी के कुछ भी कहने या लिखने को तरजीह देना ठीक नहीं है। प्रयोग वही करने में समर्थ है जिसे पदार्थ और उसके गुणों का उचित ज्ञान हो और वह इस तथ्य से भी अवगत हो कि किन पदार्थों के मिश्रण से नये पदार्थ का निर्माण सम्भव है। अन्यथा घोल या मिश्रण को पदार्थ मान लेना अज्ञान और निरर्थकता का अनावश्यक रूप से प्रसार है। परम्परा किसी भी प्रयोग की आधारशिला है, आधार के बिना प्रयोग संभव नहीं है। समसामयिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यह अवधारणा उचित नहीं ठहरती। इस दशक के नये हस्ताक्षर अनास्था, निष्ठाहीनता से एक विशिष्ट ऊर्जा का शंख फूंकते हैं। ये अपनी लघुसीमा में साहित्य में परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। ये समस्त नये हस्ताक्षर

अस्वीकृति, सांघातिक विसंगति के व्यूह में फंसकर विघटित, अस्थाई मूल्यों की स्थापना के ही प्रबल समर्थक हैं। उचित ज्ञान के अभाव में ही ख्याति सम्पन्न कलाकार बनने का आकर्षण ही इन्हें प्रयोगधर्मी बनाता है।

'निमन्त्रणीय नामकरण की कला और शिल्प में नव हस्ताक्षरों को एक विशिष्ट विदग्धता हासिल है। नाम जो दिलकश हों, चौंकाने वाले प्रक्षेपणास्त्रों से उछाले जाते हैं और एक सम्मोहक आतिशबाजी का नजारा उपस्थित हो जाता है उछाली हुई अभिधाएं कम से कम ५० तो हैं ही।'४ समकालीन हिन्दी कविता का कथ्य भी विरोधाभासी है। जहां शब्द भी शब्द नहीं है। जिसमें न सामाजिक आग्रह है, न जीवन मूल्यों की स्थापना। यह अभिधाएं उछाली हुई है तथा एक कालविशेष में उपजी चिंतन प्रक्रियायें हैं। इनमें किसी गूढ़ दृष्टि को ढूंढ़ना व्यर्थ है। भले ही साहित्यकारों के लिये इनकी कोई प्रयोजनीयता न हो फिर भी इनका योगदान प्रयोग की दृष्टि से परीक्षणीय है।

युयुत्सावाद

युयुत्सावाद की सर्वप्रथम उद्घोषणा स्वदेश भारती द्वारा संपादित रूपाम्बरा के प्रारम्भ मे ंकी गई अगस्त १९६६ में युयुत्सावादी नवलेखन सहकारी प्रयास के रूप में इसी रूपाम्बरा का अधुनातन कविता अंक प्रकाशित हुआ। इस कविता अंक में तीन युयुत्सावादी कवियों के अन्वेषित सत्य को उपस्थित किया गया। शलभ श्रीराम सिंह इनमें प्रवर्तक के रूप में अग्रगण्य है। अन्य में पं॰ छविनाथ मिश्रा और नीलम श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है। इसके स्वरूप के स्पष्टीकरण में कलकत्ता से प्रकाशित मासिक "युयुत्सा" पत्रिका का योगदान भी महनीय है। पत्रिका के युयुत्सा पृष्ठ पर एक वक्तव्य अंकित है- युयुत्सा: अब तक के होने वाले प्रत्येक परिवर्तन क्रान्ति अथवा विघटन की आधारशिला। लेखन की मूल विन्दु भूमि युयुत्सा:।

युयुत्सावाद की स्थापना के पीछे कवियों का प्रमुख लक्ष्य प्रतिरोध और राष्ट्रीय चिंतन और चेतना के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक रचनाधर्मिता के प्रश्न का उत्तर देना है। युयुत्सावाद को सांस्कृतिक उन्नयन की कसौटी पर परखें तो एक अनिवार्य प्रश्न उभरता है कि क्या युयुत्सावाद परम्परा का प्रतिरोध कर नये संस्कार के ग्रहण की प्रक्रिया है ? अथवा यह वर्तमान का दस्तावेज है।

इसके प्रवर्तक शलभ श्रीराम सिंह "आदिम-युयुत्सा" को साहित्य सर्जन की मूल प्रेरणा मानकर लिखते हैं 'मैं साहित्य सर्जन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूँ जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रांति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में प्रमुख रही है। वह युयुत्सा जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक अथवा प्लेटोनिक कुछ भी हो सकती है।'५ यानी युयुत्सा एक ऐसी प्रवृत्ति है जो किसी भी सीमा में नहीं बंधती। वह आदिम युग से अब तक मनुष्य की संभावनाओं में दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक युग में इस प्रवृत्ति से सकारात्मकता को उभारा जाता है। शलभ जी ने यहां युयुत्सा को एक विशेष दृष्टि के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

समय की सांघातिक स्थितियों में मनुष्य युयुत्सु ही क्यों हुआ? इस पर छविनाथ मिश्र का कहना है कि 'युयुत्सा हमारे रक्ताणुओं की मूल चेतना है, यह हमारी वाह्य और अन्तरंग नकारात्मकता और सकारात्मकता का नितान्त वैज्ञानिक और सामाजिक युद्धबोध है।'६ विज्ञान के माध्यम से रोज नये तथ्यों का उद्‌घाटन होता है। समाज में भी परिवर्तन आता जाता है। युयुत्सावाद की चेतना नकारात्मकता और सकारात्मकता के बोध से केवल सकारात्मकता को बल देती है। किन्तु इस युद्ध का स्वरूप कैसा हो, आधार क्या हो? इसकी सही रूपरेखा को न उभार कर उन्होंने नपे-तुले शब्दों से ही इसे परिभाषा में बांधा है।

नीलम श्रीवास्तव ने युयुत्सावाद को 'आस्था' के अर्थ में विवेचित किया है। 'युयुत्सावाद एक आस्थावादी, विद्रोह प्रधान दृष्टिकोण है जो अपने स्वयंचेता सत्य के वरण और उसकी स्थापना के लिये हर स्तर पर जूझने की शक्ति प्रदान करता है।'७ आस्था का सम्बन्ध अनवरत युद्ध से होता है। जिसका उद्देश्य कल्याण से जुड़ा होना चाहिये।

ओम प्रभाकर 'युयुत्सा को मूल प्रवृत्ति मानते हुए सनातन वृत्ति'८ कहते है। डॉ॰ महेन्द्र मधुकर ने 'गतिमय संकल्प' से अर्थ जोड़कर इसे 'विकास की इच्छा'९ कहा है। विमल पाण्डेय 'एंटी यंग मैन' से जोड़ते हुए 'देकार्त' के 'काजिटो इर्गोसम'१० तक पुहंचा देता है। संक्षिप्त युयुत्सावाद एक जागृत चेतना है जो युद्ध हेतु तटस्थता देती है। विरोधी परिस्थितियों में अनुकूल बहती है। शक्ति का अकारण दुरूपयोग नहीं करती। पर किसके प्रति यह एक ऐसा प्रश्न है जो इसकी चेतना पर सन्देह करता है। वैज्ञानिक

समृद्धि के साथ समाज और जगत जीवन और विचार के क्षेत्र में भी मनुष्य युद्धलिप्त हुआ। पूंजीवाद साम्राज्यवाद के पक्ष में भारतीय मूल्यों और जातीय परम्परा के शुभ और उपयोगी तत्वों के योजनाबद्ध नकार की प्रक्रिया का स्वर उत्कर्ष की सीमा पर था तब इस प्रक्रिया में योजनाबद्ध षड़यन्त्रों के ऊपर से पर्दा ऊपर उठाते हुए उनके द्वारा स्थापित

निषेधात्मकता के समक्ष विधेयात्मकता को प्रस्तुत करना युयुत्सावादी कवियों ने कवि धर्म समझा।

इन कवियों ने प्रेरणा रूप में परम्परा के आदिम भाव को भले स्वीकारा हो इनकी अभिव्यक्ति में केवल वर्तमान की प्रधानता है। इनकी दृष्टि भी प्रयोग की प्रस्तुति है।

अस्तु युयुत्सावाद क्या है, उसकी मान्यतायें क्या है इन अपरिहार्य प्रश्नों का समाधान 'युयुत्सावादी' कवि की निर्धारित मान्यताओं में देखा जा सकता है।

१. युयुत्सावाद की कोई प्रचलित परिभाषा नहीं है। वह मात्र भाषा है, जो किसी भी देश काल अथवा मनुष्य की हो सकती है।
२. युयुत्सावाद अब तक के समस्त सीमान्तीय मूल्यों को अस्वीकारता हुआ, सामने नई असंगतियों को झेलते और उनसे मनुष्य को नये परिवेश में प्रतिष्ठित करके, जीवन की निरन्तरता और व्यक्तिगत आदिम चेतना की अनिवार्य शर्त्तें से जुड़ते रहने में अपनी चूड़ान्त संगति एवं परिणति मानता है।
३. यह चिंतन की द्वन्द्वात्मक स्थितियों से उभरकर आई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये भाषा दर भाषा की खोज की अनिवार्यता महसूस करता है जो तमाम मुखौटाधारी अनुचिंतनों को नकारने और चिंतन तथा जीवन क्षेत्र में सर्वस्तरीय युद्ध स्थिति को व्यक्त करने में सक्षम हो।
४. यह प्रचलित मतवादों से वैचारिक स्तर पर रहकर मानवीय यंत्रणा के संदर्भ में सार्वभौम का समर्थन करते हुए जातीय वृत्त की रक्षा की मांग मात्र ही नहीं करता अपितु मानव स्वतन्त्रता के निमित्त विद्रोह की दिशा में पहल करने को प्रेरित करता है। साथ ही संतुलन और सुनियोजन का आग्रह भी।
५. यह किसी हारे हुए क्षण की सार्थकता व्यक्ति को समर्पण के लिये प्रस्तुत हो जाने की जगह उसे अत्यधिक जुझारू बना देने में मानता है। इसके अनुसार युयुत्सा को

तात्कालिकता के आग्रह पर मूल्य रूप में स्वीकार करना, जिजीविषा की ज्वलन्ता को स्वीकृति प्रदान करता है।

६. यह शक्ति और सक्रियता का उपयोग सदैव बाहर की ओर लक्ष्य की दिशा में करने का पक्षधर है। आवश्यकता पड़ने पर संभावनाओं से लेकर असंभावनाओं तक और लज्जानित परिणामों के प्रति भी मनुष्य से युयुत्सु होने का आग्रह करता है।

७. यह मनुष्य मात्र की युयुत्सा को सदैव स्वयं से बड़े किसी वृहत्तर उपार्जन के लिये कार्यरत रखना चाहता है।

८. यह व्यक्ति की विवशता के विरोध में, प्रतिबद्धता को स्वीकारता है अर्थात साहित्य, संस्कृति, समाजनीति, अर्थनीति, राजनीति और जीवन के चौराहों पर सतर्कता के साथ दिशासंकेत की मांग करता है। अस्तु यह बंद कमरे में बैठकर की गई काल्पनिक जोड़-तोड़ का परिणाम न होकर प्रत्यक्ष और सर्वविदित जटिलताओं की शब्दबद्धता है।

९. यह समूह की सम्पर्कित वैयक्तिकता से मुक्ति का चिंतन है। इसीलिये सामाजिक विसंगतियों, कुत्साओं और मानवीय अस्तित्व सम्बन्धी खतरों पर प्रकाश डालते हुए यथार्थ की जड़ तक पहुंचने का प्रयत्न करता है।

१०. यह न केवल अनुभवी विश्वासों के प्रतिफल का अपितु ऊहापोह और यंत्रणा के तल में उतरने वाले विचारों का चिंतन है और अभिव्यक्ति की सहजता और अनुभूति की बेचैनी को इसकी शिनाख्त में शामिल मानना चाहिये।

११. यह सार्वकालिक विश्व जीवन की धड़कन का प्रतिरूप है इसलिए युगसत्य और जगबोध भी। इस धड़कन से अयुक्त नब्जों को युयुत्सावाद विकासक्रम में नयेपन की अभिधा से दूर मानता है।

१२. यह आदिम चैतन्य और सांस्कृतिक चैतन्य के विधान से उत्पन्न होने वाला चिंतन है। इसके अनुसार क्रान्ति और अन्वेषण की प्रक्रिया से जन्में नये जीवन मूल्यों को उपलब्ध कर सकने की प्रवृत्ति 'युयुत्सा, जिज्ञासा और शंका आदि' ही शाश्वत और गतिशील है।

१३. यह गहन अन्तर्दृष्टि और सहवेदना से परिपूर्ण, मनुष्य की किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति से आगे का, आस्थाप्रधान दृष्टिकोण का चिंतन है और अपने स्वयंचेता सत्य के वरण और उसकी प्रतिष्ठापना के लिये संघर्षोन्मुख है।

१४. यह विषमताओं और कठोर आघातों के प्रति उत्तर का चिंतन है और दो विवशताओं के बीच स्वयं की उपस्थिति का दायित्व अपने ऊपर समझता है।

१५. यह अपने चिंतकों के आत्मबोध का चिंतन होने के कारण सफलता और सामान्यता को अपनी व्याख्या प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग मानता है और समकालीन बोध का वाहक होते हुए भी समसामयिक चिंताधाराओं से अलग अरूढ़ रहने के लिये कृतसंकल्प है।

१६. यह जीवित इतिहास के कंधों पर बैठकर वक्तव्य देने वाले चश्मदीद गवाहों का बयान होने के नाते अपने नई किसी प्रकार की सफाई की जरूरत महसूस नहीं करता।

१७. इसकी मूल प्रेरणा वही आदिम युयुत्सा है जो अब तक के होने वाले प्रत्येक परिवर्तन, क्रान्ति, विद्रोह अथवा विघटन की आधारशिला रही है। यह युयुत्सा जिजीविषु, मुमूर्ष, विद्रोही अथवा प्लेटोनिक कुछ भी हो सकती है।’११

उपर्युक्त मन्तव्य साक्षी है कि युयुत्सावाद आत्मबोध से संचालित प्रवृत्ति है जो समसामयिक चिंताधाराओं से पृथक अस्तित्व बनाने को संकल्पबद्ध है। पर यह प्रवृत्ति एक चीख बनकर दब गई। कविता के क्षेत्र में इसका प्रयोग जातीय अस्मिता को केन्द्र मानकर हुआ परन्तु जातीयता की विवेचना इनके कृतित्व में कहीं भी नहीं हुई।

‘कल सुबह होने से पहले’ कृति एक ऐसे क्रान्तिदर्शी की कृति है जो परम्परा और इतिहास की उपेक्षा न करते हुए भी वर्तमान से ही प्रतिबद्ध है। साहित्य और जनसाधारण के बीच दरार पैदा करने वाले तीसरे व्यक्ति से वह संत्रस्त है,

शक्तिमानता के समस्त शस्त्रों के उपयोग द्वारा वह एक ऐसे स्थान पर जनसाधारण को पहुंचाने का इच्छुक है जहां आन्तरिक और बाहरी विवशताओं का संघर्ष शेष हो जाये जो आस्तीन के लहू से नई सुबह को दिग्भ्रमित होने से रोकना चाहता है। उसका यह संघर्ष केवल एक संघर्ष है, विद्रोह एक उछाल है, आक्रोश एक चीख है उसकी कविताओं के भीतर ईमानदारी तटस्थता से उद्‌भूत न होकर एक स्थिति विशेष में उपलब्ध रचना व्यक्तित्व का प्रसारण है।

“न सही सीमान्त की रक्त ध्वजा
आस्तीन का लहू तो है

आस्तीन का लहू
जिसे आनेवाली पीढ़ियां
"इतिहास मान कर ही सही"
जीने समझने की कोशिश करेगी।"१२

पूरी शताब्दी में कवि को नि:शब्दता परिलक्षित होती है। कवि व्यवस्था की निष्कम्पता से भयातुर हो उठता है। मानवीय वृत्तियों में चेतना का स्फुरण कर युद्ध तैयार करने को कहता है।

"मांसपेशियों की
उधेड-बुन में गुम
किसी बन्द हो रहे पिरामिड के नीचे
अपनी नियति के बंध
नि:शब्द-निष्कम्प खड़ी है।"१३

मनुष्य की आत्मानिर्भरता और विश्वास इसी प्रवृत्ति से चरितार्थ हो सकेगा। इसलिए कवि युयुत्सा में प्रगति को अनुस्यूत देखता है।

"ओ, बन्धु
अब मुझे छोड़ कर न जाओ
सद्यः प्रस्फुटित ज्योति-पुष्प है
जल की सतह पर उसका होना
समूची सृष्टि को नया अर्थ दे रहा है।
ओ बन्धु विश्वास
अब मुझे छोड़ कर न जाओ।"१४

समय की अंधी दौड़ में कहीं भी स्थिरता नहीं रहती सिर्फ एक दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ होती है। कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है, कवि स्थापना प्रधान हो।

"दिशाओं की कोख से जन्मा युग
गर्भनाल समेत भागा जा रहा है
पथराई अस्थियों के गुहाद्वार पर बैठा मसीहा

खुद को जिन्दा महसूस करने की धुन में
अपनी नस-नस में सुई चुभो रहा है।"१५

वह संशयग्रस्त है। वह अपनी अनुभूतियों और विचारों को एक युद्ध से जूझते देखता है। समय की संकटग्रस्त अवस्थिति में उसका मस्तिष्क सुन्न हो जाता है। सर्वत्र अंधेरा व्याप्त हो जाता है।

"मैं शताब्दी की आरामगाह में
अंधेरा, रोशनी, सन्नाटा, समय
और कविता के साथ
किसी एक युद्ध और किसी एक "न्यूड" के बीच
चुपचाप सुन रहा हूँ।"१६

पर यह नई प्रवृत्ति किसी सुनिश्चित जीवन पद्धति को लेकर विकसित नहीं हुई। जैसा कि आगे हमें साहित्य के विकास में ठोस मूल्यों का अवदान मिलता रहा। सुनिश्चित जीवन मूल्यों ने उपजे उन तत्वों से सदैव परम्परा का परिमार्जन किया, नई परम्परा की भी नींव रखी परन्तु प्रवाह को उन्मुक्तता दी। युयुत्सावाद परम्परा से विच्छिन्न घोषणापत्रों पर आधारित सिर्फ एक दृष्टि है जो इसके आन्दोलनकर्त्ताओं के द्वारा ही नष्ट भी हुई। इसे एक प्रयोग मात्र के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अस्वीकृत कविता

श्रीराम शुक्ल ने 'अस्वीकृत कविता' नाम से प्रयोग किया। उन्होंने उत्कर्ष १९६७ में 'मरी हुई औरत के साथ संभोग' नाम से एक लम्बी कविता लिखी। इसे 'कविता की खोज में एक कविता' माना। उनकी अस्वीकृत परम्परा से तो है ही साथ ही स्वस्थ और सबल तत्वों से भी है। उनका अभीष्ट है अस्वीकृत तथ्यों का उद्‌घाटन। ऐसा उसने कविता के प्रारम्भ में लिखा भी हैं 'मैं तीन और पाँच के बीच खो गया हूँ।' अथवा सम्भोग का अनुभव ही पर्याप्त है सात महाकाव्य लिख ले जाने के लिये। स्पष्ट है कि श्री शुक्ल ने काव्य की सौन्दर्यवादी दृष्टि को दुष्कृत तो किया ही इसके साथ ही अश्लीलता का वातावरण निर्मित करने की कोशिश की। जैसा कि वे घोषणा करते हैं 'रूपक बांधना अपने को मुर्दा बनाकर पांव के अंगूठों को बांधना है, अलंकारिक भाषा

का प्रयोग मुखौटे ओढ़ना है और रूचि का नियमबद्ध शैली को अपनाना घड़े में सिर फंसा देना है। अस्वीकृति कविता न तो मुर्दा है, न मुखौटे ओढ़े है और घड़े में सिर फंसाये है। यहां तक कि उसने अपनी देह की चमड़ी छील डाली है और खुली हड्डियों, रक्ताविष्ट मांस के साथ उपस्थित हो गयी है।'१७ इससे आगे विस्तार से कहा गया 'अश्लीलता और झिझक को दूर झटककर सामने आई है अस्वीकृत कविता। इसे यदि हम अपने शब्दों में कहें तो इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अस्वीकृत कविता केवल अश्लीलता को लेकर सामने उपसथित है जो संभवत: गलत न होगा। वे विचित्र कवि हैं जो कवि बनने के लिये कविता और सप्रयास योजना बद्ध ढंग से प्रतिष्ठित होने की लालसा के साथ प्रकाशित करवा कर भी अपनी उस चोर लालसा को नकार कर कहने का दुस्साहस करते हैं कि उनमें कवि कहलाने की लालसा नहीं है।'१८

साहित्य का उद्देश्य सदा जनहितैषी और स्वस्थतावर्द्धक मूल्यों का निर्माण करना होता है। खुली हड्डियां और रक्ताविष्ट मांस का चित्रण को यहां वर्जना का सूचक माना गया है। ये तमाम उपकरण जीवन के प्रति घृणा, नफरत पैदा करते हैं। जीवन का एक अन्य पक्ष है उसका ही अंकन हमारा अभीष्ट होना चाहिए। छायावाद, उत्तरछायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तमाम प्रवृत्तियों ने सुनिश्चित जीवन लक्ष्यों की विकासात्मक भूमि पर विचरण किया था। ये तमाम मानव चेतना को उलझी और जटिल स्थिति से बाहर निकलने के उपाय बताती है तथा जीर्णता से उबारकर सांस्कृतिक चेतना से सही पथ पर आरूढ़ करती है। अस्वीकृत कविता देह को छीलकर, रक्त, आवेष्टित मांस में किस एक और कविता को देखती है तथा इससे प्रेरणा ग्रहण कर पाते हैं। यह समझ में नहीं आता। क्या ये कवि इस व्यवहार से व्यवस्था में बदलाव लाने को आतुर है? क्या इनका कोई सामाजिक सांस्कृतिक उत्तदायित्व नहीं है। कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं, जैसे–

"साबुन की टिकिया में
युवती की तस्वीर
मानों हम जांघों के बीच
युवती को घिस रहे हैं।"१९

यहां कवि के विक्षिप्त बीमार मन का वर्णन है। वह विद्रुप चित्रण को प्रधानता देता है।

"मैं सोया था
काम ज्वर ने जन्म ले लिया
मैं सपने में सोया
तब तक काम-ज्वर बह
पत्थर सी जांघों पर बहने लगा उमड़कर
ऐसा लगा, सर्प तो शायद सुस्ताने है लगा
जांघ पर सरक रही है केंचुल केवल
आंखें खुली अचानक
देखा अंधकार था।" २०

इन शब्दों में वह किस अनुभूति को साकार करता है। यह ज्ञात नहीं होता। अस्तु अस्वीकृत कविता वाले अतियथार्थवादी आन्द्रो ब्रेन्तों के मृत्यु-वर्ष से इस आन्दोलन का आरम्भ मानते हैं। शरद ने इसे शार्ट मूड की कविता कहा है। इसे कविता से भिन्न माना गया है। विमल पाण्डेय ने अर्थ ३ में उसके वैचारिक पक्ष को प्रस्तुत किया। 'प्रस्तुत युग में व्याप्त यथार्थ होते हुए भी अस्वीकृत विशिष्ट संवेगों, स्थितियों, मूल्यों, असंगतियों और मूड की सम्प्रेषक कविता है। अस्वीकृत रहने के बावजूद तथ्य-तथ्य ही है। अस्वीकृत कविता उसी को प्रस्तुत करती है।' २१ मुद्राराक्षस ने भी अस्वीकृत कविता को समर्थन दिया है।

अकविता

श्याम परमार अकविता आन्दोलन के प्रस्तुतकर्त्ता हैं। सन् १९६५ में श्री रमेश कुन्तल मेघ और गंगा प्रसाद विमल के सम्पादन में अभिनव काव्य का सूत्रपात हुआ। बाद में जिसे हिन्दी काव्य मे अकविता नाम से अलंकृत किया गया। यह आन्दोलन भी विगत से स्वस्थ और अस्वस्थ्य सभी तत्वों का वहिष्कार करते हुए जिस प्रवृत्ति-विशेष को लेकर संचालित हुआ उसमें न सामाजिक आग्रह था, न हितकारी तत्वों का सन्निवेश। विकृत मूल्यों अश्लील वर्णनों के बीच से गुजरने वाली यह अनुभूति सीमित कथ्य पर अवलंबित है। जिसका विषय पूर्ववर्ती काव्यप्रवृत्तियों अर्थात परम्परा से बिल्कुल पृथक है और इसके उद्भावक विच्छेद को अभिनव प्रयोग मानते हैं।

सर्वप्रथम श्याम परमार ने अकविता में प्रयुक्त 'अ' के प्रयोग को निषेध का सूचक न मानकर कहा– 'यह अन्तर्विरोधों की अन्वेषक कविता है। इसे पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्तियों से अलग सन्दर्भ में समझना होगा क्योंकि यह विच्छेद की द्योतक प्रक्रिया है। विच्छेद अपनी औपचारिकताओं से जिनका सन्दर्भ अब व्यर्थ होता जा रहा है।'२२ अकविता अपनी समस्त परम्परा को अग्राह्य मानकर एक नये युग की ओर प्रेरणा के लिये उन्मुख है। वह स्वतन्त्र आत्मभिव्यंजन को सर्वोत्तम समझता है, निर्ममता से अतीत के अस्तित्व को नकार कर निजी अनुभूति और शिल्प का वरण करता है। 'देखा जाये तो परम्परा जैसी सतत् प्रक्रिया का कोई अस्तित्व नहीं होता। होता है सिर्फ व्यतीतोन्मुखी उपलब्धियों को भविष्य में जीवित रखने का आग्रह।'२३ परम्परा जड़ता का प्रयोग नहीं वरन प्रगति का सूचक है। वर्तमान की बौद्धिकता सूक्ष्म निरीक्षक–शक्ति स्वत: जर्जरता से मुक्त होकर नये सन्दर्भों से जुड़ती है। 'अतीत का रूपान्तरित होता हुआ बोध शीघ्र नष्ट नहीं होता। वर्तमान के एक छोर को वह बड़ी देर तक अपने दांतों से पकड़े रहता है और वर्तमान उसे कुछ समय बाद छिटक कर छोड़ देता है। अतीत मोह मनोगत है, तात्विक नहीं।'२४

अकवि परम्परा के सातत्य से सम्बन्ध विच्छेद कर, स्वतन्त्र दृष्टि का आधार लेकर नये स्रोत के अन्वेषण में सन्नद्ध है। उसकी प्रतिबद्धता निज से है, एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सामान्य से अलग लीक का निर्माण जिसका मुख्य धर्म है। 'अकविता कालधर्मी कविता है। वह सीमित समय की कविता होगी। क्योंकि उसे भविष्य में झंडे नहीं गाड़ना होगा। यह सब है आनेवाली कविता के लिये उसे आज की कई परतों वाली पीढ़ियों की विरोधी स्थितियों से गुजरना होगा, जिसके लिये उसे भविष्य में अपने प्रयत्न की दुहाई देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'२५

अकविता की स्थापना को भी 'अकविता' नामक पत्रिका से सहयोग मिला है। परन्तु इसके सम्बन्ध में विचारकों का दृष्टिकोण भी एकांगी नहीं है। सर्वप्रथम 'अकविता की गैरदार्शनिक पृष्ठभूमि' लेख में अलखनारायण ने कहा- 'अकविता का कार्य रहस्योद्घाटन है, कविता की तरह 'एस्थेटिक कन्टमप्लेशन का आविर्भावन मात्र नहीं।'२६ निश्चित रूप से अलख नारायण का मूल उद्देश्य रहा है इस अभिव्यक्ति के द्वारा जन साधारण को विस्मित करना। अकविता किसी भी ऐसे रहस्य का उद्घाटन करने में असक्षम है जिसकी चर्चा की गई है। श्री निवास शर्मा की दृष्टि में 'अकविता

अनागरिक संदर्भ की कविता है।२७३ नैराश्य और अवसाद पूर्ण स्थिति ने व्यक्ति को अनास्था, अराजकता, विलगाव सम्बद्ध साहित्य रचने को आमद किया अकविता इसी का प्रतिबिम्ब है। अनागरिक संदर्भ से कविता को जोड़ने वाला कवि प्रगति के स्वरूप का विरोधी प्रतीत होता है। जगदीश चतुर्वेदी अकविता को निस्संगति की अभिव्यक्ति मानते हैं। 'कविता एक नि:शेष शब्द है इसलिए वे कविता का प्रयोग करते हैं।'२८ कोई भी शब्द नि:शेष नहीं होता। नि:शेषता मृत्यु का बोधक है, जिसकी उपादेयता खत्म हो जाती है।"

डॉ॰ दयानन्द श्रीवास्तव अकवियों के अन्वेषण सक्रियता पर सन्देह करते हुए प्रकाश डालते हैं कि– 'जीवन के प्रति पूर्व प्रचारित मानदंडों को अस्वीकारना, उनकी व्यर्थता और अनुपयोगिता सिद्ध करना अकवियों का धर्म है। अत: अकवियों के लिये यह अपेक्षित हो जाता है कि वे सम्पूर्ण रूप से नवीन मार्ग का अन्वेषण करें। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि नवीन मार्ग के अन्वेषक तार-सप्तक के कवि भी थे। परन्तु उनका अन्वेषण सार्थक और सायास था परन्तु अकविता वादियों के अन्वेषण की सार्थकता सन्देहजनक है।'२९

अकवि की मानसकि स्थिति रूग्ण है अत: कथ्य के रूप में अधिकांश ने वैयक्तिक आत्म कुंठित भावना का ही प्रसार किया। सेक्स अनुभूति को तीव्रता और व्यंग्यात्मकता से उभार कर स्निग्धता को रौंद डाला। गोपनीय, अनुचित समझे, जाने वाले रूपों में ही इनकी प्रवृत्ति विशेष रमी है। श्याम परमार की एक कविता है- 'प्रतिन्यास' - कविता के स्थापित तत्वों के विपरीत। कवि कविता के मर जाने की घोषणा करते हुए अकविता के जन्म के उत्तरदायी कारण की ओर संकेत करता है।

"कवि

"ता"

मर गई

छंद विच्छति

"हाय"

सं

वेद

ना
ब द ना म
बा म प र
फिर आ ग
ई
सुई।"३०

यह वक्तव्य शाब्दिक घोषणा है। कविता कभी नहीं मरती। वह अपने विकास क्रम में प्रतीक एवं बिम्बों के द्वारा स्वरूप परिवर्तन कर अर्थ रूप में बदलती है।

यौनकुण्ठाओं, यौनस्थितियां ही अकवि के आत्मचेता कलाकार व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है। समर्थ, प्राणवान्, मूल्य की संभावना की प्रयोजनीयता निस्संग समझी जाती है। अकवि का अहं खण्डित है, यंत्रयुग के सर्प से घायल। उसकी निरूपाय स्थिति परकटे कबूतर की प्रतीक है। कटे हुए धड़ की तरह निश्चेष्ट, चेतनाशून्य, कफन में लिपटे मुर्दा की छटपटाहट सी त्रासद स्थिति अकवि की है। समय की सांघातिक परिस्थितियों की यह देन है।

"मैं एक कटे धड़ सा
पड़ा हूं निश्चेष्ट
और हो रहा हूं चेतना शून्य
इन काष्ठ मूर्तियों और डोम तथा शंखनियों के नगर में
डोलते हैं सर्प
ह ह कर हंसते हैं मुर्दे
और मेरा अनिश्चय
मजार में ढके हुए मुर्दे सा निरूपाय होकर छटपटाता है
और ओढ़ लेता है मिट्टी का कफन।"३१

यदि इन तमाम विसंगतियों के मध्य अस्तित्व की सार्थकता को गलित अंशों में ढूंढना अकवि का अभिप्रेय है तो यह प्रयोग गलत प्रयोग है जिसकी सार्थकता न कभी है, न हो सकती है। यंत्रयुग मे ंकवि की दृष्टि तमाम वैज्ञानिक यंत्रशालाओं को औरतों की खालों

के कपड़े पहने पाती है। कवि को वैज्ञानिकों, साहित्यिकों तथा तमाम नामर्द प्रेमियों से सहानुभूति है क्योंकि ये सब क्लीव है एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"यंत्रयुग
औरतों की खालों के कपड़े पहनकर
यंत्रशालाओं में व्यस्त वैज्ञानिक
विज्ञान आविष्कार में व्यस्त है
और औरत की नाभि के नीचे
शून्य में मानव-नियति
स्तंभन आकार गढ़ने में संलग्न
मुझे वैज्ञानिकों से
साहित्यिकों से
तमाम नामर्द प्रेमियों से सहानुभूति है।" ३२

वस्तुतः यौनस्वप्न, आत्मरति, नपुंसकता, असंपृक्तता, अर्थहीन सम्बन्ध, विद्रुपता, विरक्ति पूर्ण चयन, खण्डित इकाई अंश समझते हुए गतिवान है।

"अनवरत ध्वनियों के सहसा जड़ होते ही
मैं अपनी खण्डित इकाई से उबर आता हूँ
"शून्य बोया केकटस""
मृत्यु की तलछट से गिर उठता हूँ।" ३३

यह स्पष्ट है कि अकविता में आकलित बोध आत्मबोध है। कवि की चेतना विरक्ति पैदा करने वाले शब्दों को बारम्बार दुहराती है, प्रयोग करती है जो सामाजिक और नैतिक रूप से अक्षम्य है। इनमें निहित आक्रोश सदैव यौनप्रतीकों से अभिव्यक्ति पाता है। अनाचार, अराजकता अकवि की यथार्थता की मांग है जो न केवल उसे अपनी परम्परा और संस्कृति से विभाजित करती है, अपने प्रति भी आत्मग्लानि और विक्षोभ से क्षुब्ध करती है। अत: उसकी अभिव्यक्ति भी अलग है, कथ्यभंगिमा का स्वरूप भी अनोखा है। सामाजिक जीवन के चरमराते सहसम्बन्धों से हार कर ही वह इस स्थिति में पहुंचा है कि वह निर्भीकतापूर्वक अपनी ही प्रस्थापनाओं का रोपण करें, परम्परा को जड़ से निकालकर अस्तित्व को ही दफना दें।

पूर्ववर्ती काव्यविकास की सापेक्ष्यता में हम अकविता की व्याख्या करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि–

१. यह कविता एक कृत्रिम अभिव्यक्ति है जो असामान्य आयामों का कठोरता से आग्रहपूर्वक प्रयोग करती है।
२. यह परम्परा का उच्छेदन आक्रोश के आधार पर करती है।
३. अश्लीलता से पूर्ण कथ्य की चर्चा करते हुए अकवि हमारी कामेषणा में प्रवृत्त है।
४. यह प्रचलित मतवादों से पृथक विकृतियों के सन्दर्भ में अपने अस्तित्व का समर्थन करते हुए अपने ही संधानित रहस्यों की रक्षा की मांग करता है।
५. यह रूग्ण, बीमार मानसिक स्थिति में उसके अनुकूल प्रारूपों के भीतर ही विचरण करता है जहां उसकी शून्य चेतना में मजार में छटपटाते मुर्दे सा निरूपाय अनिश्चय साथ रहता है। अत: यह अनिश्चय की वैयक्तिक रचना है।
६. यह कविता शारीरिक अंगों पर दृष्टि केन्द्रित कर मर्यादा की सीमा का उल्लंघन कर, विकृत व्यंजना का अवलम्बन लेकर, भावों को पशु से संबंधित कर वासनात्मक अभिधाओं की विज्ञप्ति है।
७. सीमित शब्दावली का बारम्बार प्रयोग भी अकवि की दुर्बल कार्यक्षमता का परिचायक है। तिलचट्टों की टोलियां, फफूंदी कोढ़ के छत्ते, सैक्रीनी मुस्कराहट, अजगरी-विवशता, मिथुन रत कुत्ते, यंत्रयुग के सर्प, पीप और मवाद आत्मरति का विष, स्तनों के स्तूप, स्तंभन, खून में लथपथ देह, स्वप्नदोष प्रभृति शब्दावली का प्रयोग स्वत: विकर्षण और अरूचि का पर्याय हुआ।
८. यह पूर्ववर्ती काव्यभाषा से अलग गद्य की भाषा है।
९. यह कविता एक इतर उद्देश्य पर अवलम्बित है अत: इसका मुहावरा भी एकदम नया है अनगढ़ता और उखड़ापन से सम्पृक्त।
१०. अकविता कालधर्मी कविता है। उसकी उपादेयता भविष्य के लिये असार्थक है। उसका प्रयोजन परम्परा बनने में नहीं मात्र काल विशेष की अवस्थित स्थितियों का प्रयोग बनने में निहित है।

बीट-कविता

बीट कविता वाह्य प्रभाव की अनुकृति है। इसे गतिशील परम्परा के सन्दर्भ में समझना कठिन है। बीट कविता के सूत्र अमेरिकी बीट आन्दोलन की चेतना में निहित है, जिसे प्रभाववश अर्जित कर, जातीय संस्कृति और अस्मिता से असम्बद्ध होते हुए भी आरोपित करने का दुस्साहस है। इस कविता के विद्रोह के आधार है- सामाजिक प्रतिबन्धों से वितृष्णा, वैयक्तिक विकृतियों की स्थापना, यौन कुत्सित वृत्तियों का उद्‌घाटन, परम्परा का खुलकर विरोध, नये कथ्य और शिल्प की संरचना।

सर्वप्रथम प्रभाकर माचवे का दावा है कि 'हिन्दी में कई शब्द पहली बार प्रयुक्त करने का श्रेय मुझे है शायद पहली बार बीटनिकों के बीच 'धर्मयुग' ६० में मैंने लिखा।'३४ इसी सन्दर्भ की रूपरेखा को आगे लिखते हुए कहते हैं कि "अमेरिका में सेनफ्रांसिस्कों के बीच एरिया में और न्यूयार्क में मेरा सम्पर्क 'बीट' कवियों, चित्रकारों, आलोचकों, अभिनेताओं और शिल्पकारों से हुआ वहां अति लक्ष्मी, अति विज्ञान, अति विलास, अति यौन स्वातन्गय से एक तरह की ऊब है, क्लान्ति है चूहेदानी में विवश चूहे हों, वैसे मनुष्य रेट रेस। उसके विरुद्ध उनका आक्रोश है।'३५ पर यहां यह उल्लेखनीय है कि बीट प्रणेता गिन्सबर्ग के भारत आगमन का भारतीय काव्य विद्या पर एक विलक्षण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रतिभा सम्पन्न कलाकार परम्परा की प्रगति और विकासात्मक स्वरूप के प्रति अनास्थावान हुए। उनकी दृष्टि में वैयक्तिकता ही मौलिकता का सृजन करती है, समकालीनता नवीनता में ही व्यंजित होती है। अतएव इन्होंने वाह्य प्रेरणा को आत्मसात कर, काव्य में नई प्रक्रिया का उद्‌घोष किया। जिसमें जातीय जीवन और जातीय-संस्कृति की चेतना निष्प्राण थी। बंगला के शक्ति चट्टोपाध्याय और हिन्दी के राजकमल चौधरी जैसे परम स्वातन्त्रय रचनाकारों के साथ प्रगतिशील खेमें शमशेर और त्रिलोचन जैसे रचनाकारों से भी इस चिंतन को समर्थन एवं बल मिला।

बाहरी प्रभावों से प्रेरित इस अभिनव प्रयोग के समर्थकों ने बीट क्या है, इसकी आवश्यकता क्यों महसूस हुई इसके प्रेरणा-स्रोत क्या है कहीं भी विशद् या गम्भीर विवेचन करना कवि-धर्म नहीं समझा। क्योंकि वाह्य प्रभाव के माध्यम से परम्परा में परिवर्तन करना ही उनका मुख्य प्रतिपाद्य था।

बीट कविता के उन्नायक जैक केरोक की दृष्टि में– 'बीट शब्द का शाब्दिक अर्थ है– दरिद्र, कुचला, प्रताड़ित, मृतप्रायः, निद्रालु। उसका विचार है कि आधुनिक काल में इस शब्द की व्याप्ति अतिशय वृहत हो गयी है तथा बीट शब्द उन लोगों को भी सम्माहित करता है जो गंदी कोठरियों में नहीं रहते पर जो एक विशेष दृष्टिकोण से सम्पन्न है।"३६ एक अन्य प्रयोगशील कवि एलेन गिन्सबर्ग बीट का अर्थ एक ऐसे समुदाय से जोड़ते हैं जो प्रताड़ना के विरुद्ध 'तिक्त वैयक्तिक असंतोष की अभिव्यक्ति है।'३७ यह प्रभाव हिन्दी के कवियों पर भी है। अतएव उन्होंने इन कवियों की नि:सृत वाणी की सापेक्षता में अपनी पहचान को झुठला कर नकली मुखौटा धारण कर लिया। इन कवियों को तमाम स्थितियां-परिस्थितियां निरर्थक और बेजान प्रतीत होने लगी।

अस्तु बीट कविता भी विक्षुब्ध, संत्रस्त मन की उपज है, जिसकी बुद्धि विवेक और मानसिक विघटन के कारण पंगु हो गई है, वैसाखी का सहारा लेकर चलने को उद्यत है। इनका जीवन दर्शन है– गांजा-भांग, धतूरे का सेवन, इस सेवन के पश्चात् उद्‌भृत दृष्टि को ही प्रामाणिक खोज मानना। समाज से वितृष्णा क्योंकि वैयक्तिक विकृत अभिव्यंजनाओं के प्रकटीकरण में इसे व्यवधावक समझना। समाज से सम्बन्ध विच्छेद रखना। यौन प्रवृत्तियों, यौन स्वच्छन्दता और यौन संबंधों का खुलकर प्रदर्शन करना, स्वच्छन्द लेखन का प्रयास। हर प्रतिष्ठित वस्तु के उन्मूलन का दृढ़ संकल्प।

कवि के स्वमुख में 'पेच्छाव कराने की इच्छा', 'ईश्वर का पोंद चूमने की कामना, राज से मुंह धोने या कुल्ला करने की कामना, शुभा की योनि प्रसारित करने का साग्रह उपदेश तथा सड़क पर अपने-अपने शिश्न पकड़ कर भाईयों का दौड़ना।

यह सब स्वांग बहुत दूर तक नहीं ले जाता और हिन्दी में नकल तो नकल और भी गलीज लगती है। बीट कविता का ग्लेमर और क्रेज इधर उसी के लिये संकट बनने लगा है।"३८ जीवन दृष्टि की कुत्सित-वर्णनों में अभिरूचि साक्षी है कि यह निर्जीवता का पर्याय है जो प्रगति का दस्तावेज नहीं बन सकता। बीट कवियों ने रचनात्मक धरातल को ही उजागर किया है। पैशन के अनुसार प्रचार व प्रसार की नीति ढकोसलों का आलेख होती है।"

'परम्परा से टूटन और सांस्कृतिक संकट की अनुभूति को कुछ बाहरी दिखावे और अनुकरणवृत्ति की वजह से बीट या नाराज स्वयं को बहुत ढकोसलों से मुक्त नहीं कर

सके। उनकी जिज्ञासा शरीर भोग की विकृतियों में प्रकट हुई। वीभत्स स्थितियों में उन्होंने महानगर के संकट को उभारा। हॉरर पैदा किया।"३९ आस्था तथा सोद्धेश्यता के चालित विद्रोह की परिणति जिस परिवर्तन में पर्यावसित होती है वह परिवर्तन विकास से जुड़ा होता है। नई रचनाशीलता परम्परा का भंजन नहीं करती, नई परम्पराओं का निर्माण करती है। परम्परा और प्रयोग के सम्बन्धों को सही दिशा देना साहित्यकार का दायित्व है। परम्परा और अपने युग के जीवन मूल्यों की उपेक्षा करके साहित्य सृजन करना ढकोसला का प्रतीक है जो अस्थायी होता है।

बीट कवियों की स्थापना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है। बीट कवियों में अनेक ऐसे कवि हैं जो स्वीकारते हैं नशीले पदार्थों का सेवन करने के उपरान्त उनका मानसिक क्षय ही हुआ है। उनका अनुदान नगण्य है, अर्थहीन है, अयोग्य है। यह एक प्रकार से विक्षुब्धता, कुरूपता का आन्दोलन है जिसमें अभिव्यंजित रचना संसार किसी भी प्रतिमा को निर्मित करने में असक्षम है। 'लिखने पढ़ने सोने गांजा अफीम सिगरेट पीने भरने का अपना एकमात्र कमरा अन्दर से बन्द करके दोपहर दिन के पसीने पेशाब वीर्यत्पात्–

"मटमैले अंधेरे में लेटे हुए
धुआं, क्रोध, दुर्गन्धियां पीते रहने के सिवा
जिसने कभी कोई बड़ा काम नहीं किया अपनी देह
अथवा अपनी चेतना में
इस उम्र तक
जटिल हुए किन्तु कोई प्रतिमा बनाने के योग्य नहीं हुए उसके अनुभव
नहीं निद्राएं और नहीं पैशाची संभोग
यातनाएं भी नहीं।"४०

इतिहास कवच को उतारकर फेंकने के लिए आमद इस वर्ग के कवियों के लिए अतीत और भविष्य दोनों मृत्तक है क्योंकि सिर्फ वर्तमान ही उसको अभीष्ट है। रचना बोध घृणा, उन्माद, अनैतिकता के मध्य संवरता है।

"मैं अपनी किताबों और अफीम गांजे में बन्द हो गया

वह मेरी बुझी हुई आंखों में
मैं उसके स्तनों के गोलाम्बर में बन्द
अब हम कभी बाहर नहीं आएंगे न साइरन की चीख सुनकर और नहीं
राशन खरीदने के लिए।"४१

वस्तुत: उनका आक्रोश झूठा और व्यर्थ है। उनकी अतृप्ति सेक्स की है, भ्रष्टता के प्रचार की है, आत्माभिव्यंजना के आत्मसुख के लिए स्वच्छन्द लेखन की है। 'आध्यात्मिक मूल्यों और अभौतिक सत्यों का अन्वेषण करने की भूख नहीं है। वे परम्परा का खुलकर विरोध करते हैं और आत्मसुख को आचरण का प्रमाण मानते है। (यही नहीं) लगता है कि उनकी भूख सेक्स और प्रचार की है।'४२ बीट कविता का यह चिंतन शीघ्र ही ठंडा पड़ गया। इस सम्बन्ध में श्याम परमार की अवधारणा है- त्रिलोचन और शमशेर बहादुर ने कुछ दिनों गिन्सबर्ग से दीक्षा प्राप्त करके चाहा तो यही था कि कविता को अनावृत्त करें मगर उनके लिये 'प्रगट-सत्य' और वास्तविक सत्य के बीच भेद करना मुश्किल सिद्ध हुआ है।'४३

धर्मवीर भारती ने भी मार्च १९६७ की सारिका में 'तलाश ईश्वर की बजरिये अफीम' के अन्तर्गत लिखा है 'कैसी व्यंग्यात्मक परिणति है। वे अपना विद्रोह शुरू करते हैं एक ऐसी दुनिया के खिलाफ जहां बुद्धि और विवेक झूठा पड़ गया है जहां झूठे मुखौटे और पाखण्डी मूल्य है और अन्त में आश्रय पाते हैं एक ऐसी दुनिया में जो अफीम या मारिजुआन या एल॰एस॰डी॰ द्वारा उन के लिये कल्पना में निर्मित कर दी गई है। आत्मवंचना और पलायन का यह नया ढंग उन्हें भी बहुत आकर्षित करता है जिनमें न प्रतिभा है न सच्ची सृजनात्मकता, न अदम्य विद्रोह, न पराजय की पीड़ा, झूठे मुखौटे से लड़ाई लड़ने की शपथ से शुरू होने वाला यह सशक्त आन्दोलन खुद मुखौटे में परिणत हो गया।"४४

संक्षेपत: बीट कविता के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि–

१. यह वाह्य प्रभाव की निर्जीव अनुकृति है।
२. प्रभाकर माचवे की अपेक्षा राजकमल चौधरी के माध्यम से सृजनात्मकता को विशेष आश्रय मिला।
३. इसकी प्रवृत्ति अर्थहीन उद्देश्य की विद्रोह के आधार पर अगुवानी करती है।

४. जिसका जीवन दर्शन है- गांजा, अफीम, धतूरे का उपभोग करना। यौन सम्बन्धों को खुलकर प्रदर्शित करना।

५. कुत्सा को व्यंजित करना इसका मुख्य प्रतिपाद्य है।

नवगीत

नवगीत भी एक अभिनव प्रयोग है। इस नये प्रयोग के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका पत्र-पत्रिकाओं की रही है। इन पत्रिकाओं ने न केवल नवगीत की स्थापना का प्रयास किया वरन गंभीर विवेचना के साथ इसको विश्लेषित भी किया। इस विश्लेषण से नवगीत अपनी संरचना में अधिक ताजा और अधिक यथार्थपरक बना।

नवगीत को गीत की पुरानी परिभाषा के सन्दर्भ में व्याख्यायित करना संभव नहीं क्योंकि गीत की पुरातन अवधारणा निश्चितता में बंधी है। यह नया प्रयोगशील गीत पुराने संदर्भों में प्रतिबद्ध नहीं होता। वह युग की संवेदना को अर्जित कर अपनी विशिष्ट पहचान को मूर्तित करता है। नवगीत एक नया प्रयोग है।

'गीत कनरसियों की फरमाइश का जवाब बन गया है, अत: उसे कथ्य और शिल्प के नूतन प्रयोगों से काव्य के धरातल पर प्रतिष्ठित करना आज के गीतकार का दायित्व है। इस दायित्व निर्वाह की परिधि में ही गीत प्रकाशन की प्रेरणा छिपी हुई है।'४५ नया गीत जिन नूतन प्रश्नों को लेकर उभरा उन प्रश्नों को समकालीनता में सहजता से देखा और परखा जा सकता है। नवगीत ने भुक्त अनुभूतियों और बौद्धिक संवेगों को सहजता से उपस्थित किया है। युग की संवेदना को गेय बनाना ही नवगीत की प्रमुख उपलब्धि है।

सन १९५८ में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने गीत को नवगीत की संज्ञा दी। गतांगिनी के सम्पादकीय में नये गीत का अभिवादन करते हुए उनका कथन था– 'समकालीन हिन्दी कविता में महत्वपूर्ण और महत्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में गीत परम्परा 'नवगीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है। नवगीत नई अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा। जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा।'४६ नवगीत ने

गीतों को एक जीवंत परम्परा के रूप में परिवर्तित कर दिया। यह परम्परा से सम्बद्ध नहीं है। उसकी प्रासंगिकता आधुनिक निकायों में सार्थक प्रतीत होती है।

१९६४ में ओम प्रभाकर द्वारा कविता १९६४ का प्रकाशन भी वस्तुत: अपने आप में नवगीत आन्दोलन की स्वतन्त्र घोषणा न होकर डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद सिंह और भगीरथ भार्गव के समर्थन में उठा हुआ प्रामाणिक हाथ भर था जिसकी पुष्टि १९६९ में चन्द्रदेव सिंह द्वारा सम्पादित 'पांच जोड़ बांसुरी' से भी होती है। इसके अतिरिक्त कई मानसिक पत्र-पत्रिकाओं का योगदान भी मिला था, वासन्ती, वातायन, उत्कर्ष, माध्यम, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान सध्यमित्र प्रभृति। आज के प्रमुख प्रगीतकार है- शंभुनाथ सिंह, रामनाथ अवस्थी वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, शलभ श्रीराम सिंह, नईम, बालस्वरूप राही, रवीन्द्र भ्रमर, शंकर माहेश्वरी, बुद्धिनाथ मिश्र, पं॰ छविनाथ मिश्र आदि।

नवगीत एक ऐसा प्रयोग है जिसने सचमुच परम्परा के प्रवाह से अलग कर खुद को प्रस्तुत किया और एक नई अनुभूति, एक नया कथ्य और एक नया शिल्प, एक नये रूप में अपनी पहचान दी। "वास्तव में नवगीत में न तो छायावादी आध्यात्मिक रहस्य भावबोध है और न है अमांसल अपार्थिव काल्पनिक प्रणयभाव एवं सगुंफित कलात्मक ही। मार्क्सवादी काव्यधारा के प्रगीतों की तरह ये नवगीत राजनीतिक प्रचार की विज्ञापनी शब्दावली भी नहीं बने। इन्होंने वैयक्तिक प्रणय की यथार्थोन्मुख धारा के वैयक्तिक अवसाद उल्लास से भी अपने परिवेश को अलग रखा।

सांस्कृतिक और राष्ट्रीय प्रगीतों के भांति नवगीत ने मिथ्या गौरव, आदर्श के पाखण्ड गान, प्रशस्तियों की झूठी नामावली प्रस्तुत नहीं की। प्रयोगशील कवियों के गीतों से शक्ति लेकर भी वह उनका पर्याय नहीं बना। मंचीय गीतों की मस्ती भावुकता, रूग्ण फलसफा और ख्याति के सम्मोहन से नवगीत मंत्र कीलित नहीं हुआ। गीत की इतनी-इतनी परम्पराओं का सहयात्री न बन नवगीत ने दिशान्तर किया।"४७

इस दिशान्तर का अर्थ था समकालीन बोध को उजागर करना, रोमानी अनुभूति के साथ प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से ग्राम सौन्दर्य को भास्वर करना, आंचलिक जीवन के अमित रूप को वाणी देना। नवगीत की प्रकृति और परिवेश को निश्चित आयाम देना

संभव नहीं है। वह सदा नव्यता का स्वागत करता है। वास्तव में नवगीत ने गीत के अनछुये सत्यों को पुनर्जीवित किया है। बालस्वरूप राही ने नये गीत में रीत गए छंदों के क्रम को तोड़ते हुए लिखते हैं–

"गीत नया जन्मा
लय की मानवता से
मन को संवेदन से जोड़ेगा
लेकिन भावुकता की
रीत गए छंदों की रूढ़िया तोड़ेगा।"४८

नवगीत ने रूढ़ छंदों का परित्याग किया। परिवेश और युग जीवन के प्रति सजगता दिखलाई। उसमें आधुनिक जीवन का तीखा यथार्थ अंकित है। एक ओर नयी सौन्दर्यवादी दृष्टि है, दूसरी ओर प्राकृतिक प्रतीक और बिम्बों का सहज निरूपण। प्रणय की नयी दृष्टि से विवेचना है, महानगर के संत्रास का उभार है। निराशा, अनास्था, मानसिक द्वन्द्व मुखरित है, समसामयिकता अर्जित है। नवगीतकार प्रवृत्ति का भी उपासक है। वह वैयक्तिक अनुभूति को महत्व देता है।

"चाहे वे कड़वी हों, चाहे वे हो असत्य
मुझको तो प्यारी है वे ही अनुभूतियां
जो नितांत मेरी है।"४९

नवगीतकार भले ही परिवर्तित चेतना में निजी अनुभूति को महत्वूर्ण बतलाये परन्तु लय और रागात्मकता तो उसकी परम्परा से अनुगृहीत है। परम्परा का रूढ़ि से उसने सम्बन्ध विच्छेद किया है। परम्परा तो अविच्छेद्य होती है। जैसे वटवृक्ष शाखा से एक नई शाखा प्रस्फुटित होती है। नवगीत भी इसी का पर्याय है। प्रकृति सदियों से कवि मन को आप्लावित करती रही है। छायावाद युग में प्रकृति अध्यात्म का विषय बन गई है। नवगीत तक आते-आते प्रकृति व्यक्ति मन की पीड़ा की सहभागिनी बनी—

"रश्मि के सौन्दर्य में डूबी हुई वह झील
चरणों पर विनत शेफालिका
खिलता अरूण जलजात, कैसे भूल जाऊं

यह अकेलापन
अजाने प्राण को
झकझोरती चन्दन समीरा छांह
थाहें नापती हैं
चांदनी की ज्योतिनीरा बांह
मुस्कराए हरसिंगारों के अधर
और सिहरे चेतना के मौन स्वर
मुक्त यानों पर उड़ाने भर रही हर गंध
झरते पारदर्शी निर्झरों के
वे मधुर आघात कैसे भूल जाऊं।"५०

नवगीतकार प्रकृति को आश्चर्य से देखता नहीं। वह प्रकृति का प्रयोग प्रतीक रूप में करता है। प्रकृति को जीवन के अंग रूप में चित्रित करता है। नवगीतकार यथार्थ की भूमि पर विचरण करता है। 'शलभ श्रीराम सिंह' का सूने सिवानों का गीत यहाँ उल्लेखनीय है।

"बांसुरी बजने लगी है फिर
आजकल सूने सिवानों में
अब किसी से भी रहा जाता नहीं है
समर्पित हो रही है याद में डूबी हुई मुमताज
और वह शाहे-जहां ऐसा कि जिसने
कर दिये हैं दफन अपनी जिन्दगी के धड़कते सपने
हथौड़ों-आग की लपटों-मशीनों-कारखानों में।"५१

महानगर का परिवेश औद्योगिक उपकरणों से विनिर्मित है। यहां एक ओर सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन देखा जाता है दूसरी ओर जीवन की रागात्मक प्रवृत्ति का हास भी मिलता है। विघटित मूल्य और तनाव के बीच झूलती जिंदगी को हर क्षण खण्डित परिलक्षित होता है। उनका विश्वास गूंगा है, कृत्रिम अवरोधों से वह ग्रस्त है, विसंगतियों से बिंधी जिंदगी का जीना बीमार रोगी का सा जीना है मानों जीवन की अर्थवत्ता ही समाप्त हो गई हो।

"बिखरे संदर्भ और टूटे जलयान
पीढ़ी ने पाया विरासाती प्रयाण
प्रश्न ओ समस्याएं, रिक्तता तनाव का
सदियों कर्ज किन्तु उम्रभर अभाव
संकट, भय, संशय, दु:ख, अविनय, अज्ञान
पीढ़ी ने पाया विरासती विधान।"५२

नवगीतकार में प्रणय के चित्रों की भी बहुलता मिलती है। इसमें रहस्यात्मक आवरण नहीं, न भोगपरक मांसलता का वर्णन है। वह प्रणय को वैयक्तिकता के धरातल पर प्रस्तुत करता है।

"आओ यह सांझ
बस कुछ घड़ियों की सांझ
इसे बरसों की कर लें।"५३

संक्षेप में कहा जा सकता है नवगीत समकालीन हिन्दी कविता का एक अनुपम प्रयोग है जिसमें परम्परा के साथ-साथ आधुनिकता का भी उचित निर्वाह है। इसकी विशिष्टता यह है कि इसने समकालीन जीवन मूल्यों को अनुभूति की प्रमाणिकता के आधार पर विश्लेषित किया। इसने युगीन संवेदना को गीतमय बनाया। अलंकार, छन्द और रस से दूर हटकर इन गीतकारों ने सहज आवेग और ताजगी से शिल्प को ठोस बनाया।

——————

१. उत्कर्ष - गोपाल उपाध्याय "कविता-विशेषांक", पृ० १७६

२. श्याम परमार - अकविता और कला - सन्दर्भ, पृ० ४४

३. वहीं, पृ० ४४

४. वीणा - सम्पादक, डॉ० नेमिचन्द्र जैन, नवम्बर १९६९ - सम्पादकीय अभिधा की खोज, पृ० ३१

५. स्वदेश भारती : रूपाम्बरा १९६६ के प्रारम्भ में उद्धृत

६. कवि से प्राप्त व्यक्तिगत पत्र से उद्धृत

७. सम्पादक, शलभ श्रीराम सिंह - युयुत्सा वर्ष। १ अंक ३, पृ० ९०

८. वही, पृ० ९०

९. सम्पादक, जयन्त कुमार, युयुत्सा वर्ष, अंक ९, पृ० ११-१२

१०. सम्पादक, शलभ श्रीराम सिंह, वर्ष-१, अंक-१, पृ० ८५

११. श्यामसुन्दर घोष - प्रतिमान, पृ० ८९-९१

१२. शलभ श्रीराम सिंह- कल सुबह होने से पहले- आस्तीन का लहू

१३. शलभ श्रीराम सिंह - कल सुबह होने से पहले, आठवें आश्चर्य के बाद '१९६६'

१४. शलभ श्रीराम सिंह - नया अर्थ '१९६५'

१५. छविनाथ मिश्र - रूपाम्बरा जून ६५ संख्या २ पृ. ० ३

१६. छविनाथ मिश्र - समय दंश, पृ० ७

१७. डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त - आधुनिक काव्य संदर्भ और प्रकृति, पृ० १०७

१८. वही, पृ० १०७

१९. डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त - आधुनिक काव्य संदर्भ और प्रकृति, पृ० १०७

२०. वही, पृ० १०७

२१. विमल पाण्डेय - अर्थ - ३, मई - १९६६

२२. डॉ० श्यामसुन्दर घोष - प्रतिमान, पृ० ५३

२३. श्याम - परमार - अकविता और कला - सन्दर्भ, पृ० ४४

२४. वही, पृ० ४४

२५. श्याम परमार - अकविता और कला सन्दर्भ, पृ,० ४६

२६. युयुत्सा अप्रैल ६७, पृ० ३१

२७. अकविता स्थितियां और अन्तर्धाराएं - सम्पादक रामव्यास पाण्डेय, कपिल आर्य, श्रीनिवास शर्मा, अलखनारायण, पृ० - १०७

२८. वही, पृ० १२३

२९. कविता - स्थितियां और अन्तर्धारायें - सम्पादक, रामव्यास पाण्डेय, कपिल आर्य, श्री निवास शर्मा, अलखनारायण, पृ० १५५

३०. जगदीश चतुर्वेदी - विजय प्रतिन्यास, पृ० १०१-१०२

३१. जगदीश चतुर्वेदी - विजय पृ० ४९

३२. जगदीश चतुर्वेदी - विजय, पृ० ५५

३३. वही, पृ० १०९

३४. रमेश कुन्तल मेघ - अभिव्यक्ति - १, पृ० १३६

३५. वही, पृ० १३६

३६ . डॉ० नरेन्द्र देव वर्मा - आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ० २३१

३७ . वही, पृ० २३३

३८० डॉ० जगदीश गुप्त - नयी कविता - स्वरूप और समस्या, पृ० २२९

३९. श्याम परमार - अकविता और कला सन्दर्भ, पृ० ३४

४०. डॉ० नरेन्द्र मोहन - कहीं भी खतम कविता नहीं होती, मुक्ति प्रसंग, पृ० ११३-११४

४१. वही, पृ० १२५

४२. वातायन, सम्पादक - हरीश-भादनी, पाठक अंक, पृ० ४०

४३. श्याम परमार- अकविता और कला सन्दर्भ, पृ० ३४

४४. धर्मवीर भारती, 'तलाश ईश्वर की बजरिये अफीम' सारिका, मार्च-१९६७

४५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान ३० अक्टूबर १९६६ 'नीरज' प्रश्न - चिन्हों की भीड़ में घिरा गीत, पृ० - ३७

४६. गीतांगिनी ५८, पृ० ३

४७. डॉ० विनोद गोदरे - छायावादोत्तर प्रगीत काव्य, पृ० २४०

४८. बालस्वरूप राही - जो नितान्त मेरी है, पृ० २

४९. वही, पृ० ७८

५०. सम्पादित, दिनेश सक्सेना तथा भूपेन्द्र कुमार स्नेही - गीत २/३१

५१. वही, पृ० २-७१

५२. चन्द्रसेन विराट गीत-२, पृ० ६६

५३. चन्द्रदेव सिंह गीत-२, पृ० ७१

————————

अध्याय - ८

छायावादोत्तर काव्य की भाषा, परम्परा और प्रयोग

काव्य भाषा से तात्पर्य है कवि अभिव्यक्ति की विशिष्ट प्रणाली में बंधकर काव्यक्षेत्र में अपने स्वभावानुसार काव्य भाषा को नवीनता से संयुक्त करता है। आज का कवि परम्परा के नियमों को स्वीकार नहीं करता। परम्परा को वह बंधन नहीं मानता। उसकी दृष्टि अतीत और वर्तमान, परम्परा और नवीनता दोनों का उचित समाहार की आकांक्षिणी है। हिन्दी कविता के वर्तमान युग में बड़ी शीघ्रता से परिवर्तन हुआ। इस युग का काव्य साहित्य अनेक धाराओं में विभाजित होकर विकासोन्मुख हुआ है। काव्य में परिवर्तित विषयों के अनुरूप भाषा में भी नये प्रयोग किये गये। छायावादोत्तर काव्य भाषा में परम्परा और प्रयोग का अनुशीलन वास्तव में एक महत्वपूर्ण विषय है। जिसका यहां विवेचन अपेक्षित है। देखा जाये तो हिन्दी काव्यक्षेत्र में भारतेन्दु द्वारा 'खड़ी बोली काव्य और काव्यभाषा का प्रयोग हुआ। यह युग खड़ी बोली का प्रारंम्भिक उत्स है जिसने आगे जाकर द्विवेदी युग में आन्दोलन का रूप धारण किया। काव्य भाषा के विचार से इस युग के साहित्यकारों की काव्य भाषा अतीव सरल, सजीव और उर्दू मिश्रित बोलचाल की काव्य भाषा है जहां शिल्पविधि के नवीन प्रयोग बहुलता से मिलते हैं। निज भाषा की उन्नति के लिये इन्होंने काव्य भाषा के विकास की ओर ध्यान तो अवश्य दिया किन्तु इसे कटु व्यंग्यों को झेलना पड़ा। द्विवेदी युग में खड़ी बोली काव्य भाषा पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित हुई। इस युग में भाषा शैली सम्बन्धी जो प्रयोग हुए वे शैल्पिक दृष्टि से महनीय है। भाषा संस्कृतिनिष्ठ और इतिवृतात्मक हुई। संस्कृत वर्ण वृत्तों का प्रयोग हुआ। द्विवेजी जी ने सर्वप्रथम प्राचीन छन्दों के बंधन को तोड़ा। भाषा को व्याकरण सम्मत और रसानुकूल कर भाषा का परिष्कार किया। परम्परागत अलंकारों के साथ नवीन पद्धति का समन्वय भी हुआ। यथा: मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, शब्द ध्वनन, आदि पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग। प्रतीक और बिम्ब में भी नवीन प्रयोग हुए। काव्य रूढ़ि का प्रयोग द्विवेदी युग की विशेषता है। द्विवेदी युगीन संस्कृतनिष्ठ और इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध छायावाद का आविर्भाव हुआ। छायावाद युग में सर्वप्रथम काव्य भाषा में सर्जनात्मक प्रवृत्ति अपनाई गई। छायावाद युग में काव्य भाषा में परिष्कार का मुख्य कारण शब्दों के नूतन विन्यासक्रम का प्रयोग है। छायावादी कवियों

ने भाषा की समृद्धि निमित्त अपनी संस्कृत परम्परा के तत्सम शब्दों को ग्रहण किया और उसमें नवीन अर्थों का समन्वय किया। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने शब्दों को भी गढ़ा। किन्तु काव्य शास्त्र के व्याकरणिक नियमों का खुलकर विरोध करने का दुस्साहस भी दिखाया। अपनी भाषा की समृद्धि के लिये अलंकार प्रयोग की प्रवृत्ति पर बल दिया। अर्थ व्यंजना में चमत्कार पैदा करने के लिये छायावादी कवियों ने लक्षणा, व्यंजना, सांकेतिकता एवं प्रतीकात्मकता का आश्रय लिया। इसके साथ इन कवियों ने परम्परागत शास्त्रीय छन्दों का अवलम्बन लेकर नूतन छन्द योजना का भी निर्माण किया। अतुकांत छन्द और मुक्त छन्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। निराला ने मुक्त छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया। 'इन्होंने संगीतात्मक लय को सुरक्षित रखते हुए छंदशास्त्रीय रूढ़िबंधनों से मुक्त अनेकानेक नवीन भावानुवर्तिनी छांदस् संयोजनाओं द्वारा खड़ी बोली काव्य की विकास संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त किया।"१ काव्य भाषा की दृष्टि से छायावाद में भाषा का जो स्वरूप प्रयुक्त हो रहा था वह एक विशेष वर्ग के लिये उचित था। साधारण जन समाज से सामंजस्य स्थापित करने में इस युग की भाषा एकदम असफल साबित हुई। उसमें कतिपय त्रुटियों का सन्निवेश हुआ जिसका छायावादोत्तर काव्य भाषा के सन्दर्भ में हम विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे। छायावादोत्तर काल एक संक्रामक युग है जिसमें अनेकानेक धारायें एक छोटे अंतराल में उत्पन्न हुई और एक नई धारा में तिरोहित हो गई यथा: उत्तरछायावादी काव्य, राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन हिन्दी कविता। उत्तरछायावादी काव्यधारा में छायावादी काव्य भाषा की तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

यह प्रतिक्रिया भाषा के क्षेत्र में सहजता, सरलता, यथार्थ परक अभिव्यक्ति को लेकर हुई। कवियों ने भावों के अनुकूल भाषा का चयन किया। हृदय की सहज अनुभूति को अलंकार और छन्द के जरिये प्रस्तुत कर उत्तरछायावादी कवियों ने प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति भंगिमा का सहारा लिया। साधारण बोलचाल की भाषा में प्रयोग से इन कवियों ने सहजता से जनसाधारण के साथ तादात्म्य स्थापित किया इन्हें विशेष लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। इस काव्यधारा के प्रतिनिधियों में सर्वप्रसिद्ध है– बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल।

बच्चन उत्तरछायावाद काव्यधारा के प्रवर्त्तक है। बच्चन की रचनाओं में एक सहजता और सरलता विद्यमान है। इसमें साधारण जनभाषा का प्रयोग है। इनकी भाषा में प्रयुक्त

शब्द सायास आभासित होते हैं। ज्यों-ज्यों कवि की रचनात्मक प्रणाली में अभिवृद्धि हुई त्यों-त्यों भाषा में एक अनोखी सादगी का समावेश मिलता है। 'यहां' न भाषा अलंकारिक है, न चमत्कारिक, न प्रतीकात्मक और न अधिक चित्रमय। इन कृतियों में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह एकदम उद्‌गारों की वाहिनी है- उसमें व्यक्ति की पीड़ा की वीणा का राग है।"२ उनकी काव्य भाषा में अभिधा का प्रयोग मिलता है। विशुद्ध अलंकार का व्यामोह बच्चन को कभी नहीं रहा। उसमें लोक तत्वों का जो प्रयोग है वह नूतन प्रयोग है। ऐसे प्रयोग लोकधुनों पर आधारित गीतों में बहुलता से प्रयुक्त है। इनकी कविता में उर्दू शब्दों का सफल प्रयोग हुआ है। उसमें कलात्मकता का अभाव है।

नरेन्द्र शर्मा दूसरे सफल रोमांटिक कवि हैं। इनकी भाषा में संस्कृत की गूढ़ तत्सम शब्दावली और ठेठ ग्रामीण बोली के शब्द का समाहार है। अरबी फारसी के साथ आंचलिक शब्दों का प्रयोग है। नरेन्द्र शर्मा के काव्य भाषा की विषेषता यह है कि उन्होंने भावों के अनुसार भाषा का संयोजन किया है। नरेन्द्र शब्द प्रयोग के लिये विशेष प्रसिद्ध है। जैसे- हरियाले गीत, चेतना की मदालस अंगड़ाई, धारा की मीन सी मुरला, मछुए की मुरलिया, सोरठ का सुरीला गान, चौबारे पर नौबत बजना, बांसी का वन, चितवन की चालक इत्यादि। नरेन्द्र जी की रचनाओं में प्रतीकों का प्रयोग भी बहुलता से व्याप्त है। ये प्रतीक पौराणिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वर्गों के लिये किये गये हैं। मुक्त छन्द और अलंकार का सायास समावेश हो गया है।

अंचल भी उत्तरछायावादी काव्य के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। कवि ने कहीं भी भाषा को कलात्मकता से सजाने का प्रयास नहीं किया है। जिस रूप में भाव कवि मन में आलोड़ित होते हैं वे उसी रूप में कविता में प्रस्फुटित होते है। 'भाषा कवि की स्वानुभूति को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने का सुन्दर माध्यम है क्योंकि भाषा ही भाव एवं विचारों को वहन करने कवि की स्वानुभूति उसके अन्तर्प्रदेश से वाह्य जगत में लाती है और अपनी अपूर्व क्षमता द्वारा उन्हें सर्वजन सुलभ बनाती है।'३ कवि को अतृप्ति, उन्माद और मांसलता का कवि कहा जाता है। इन भावों के प्रकटीकरण हेतु जिस भाषा की आवश्यकता थी अंचल ने वैसी ही भाषा का प्रयोग भी किया है। अंचल की कविता में अलंकारों का विशेष प्रयोग नहीं है। उपमा और अनुप्रास का ही प्रयोग मिलता है। प्रतीकों के प्रयोग के प्रति कवि की निजी उत्कृष्टता दिखाई पड़ती है। उनका प्रतीक

विधान मौलिक है। उन्होंने सांस्कृतिक प्रतीकों को ग्रहण किया है। दूसरी ओर प्रचलित प्रतीकों का नये अर्थ में प्रयोग किया है उनके छन्द प्रयोग भी प्रशंसनीय है। कविता में शुक्लजी ने यत्र-तत्र चित्र भाषा का प्रयोग भी किया है। अंचल के ही शब्दों में "काव्य शिल्प को मैं तो कोई ऊपर सो ओढ़ी हुई वस्तु या कवि कौशल द्वारा ऊपर से पहनायी गई विशेषता नहीं मानता। कथ्य में नये बिम्बों के संवहन की जैसी, जितनी क्षमता होती है वैसा-वैसा वह बनता है और रूपायित होता है। अपनी चित्रभाषा और सहजता के प्रति मैं आश्वस्त हूँ। काव्य प्रतीतियों और अभिव्यक्तियों में जितना वैविध्य और साहस क्रान्तिकारी भावबोध और नवीनता का अन्वेषण इस युग में दिखायी देता है वैसा पहले कभी नहीं देखा गया।"४

अंचल ने सैद्धान्तिक नियमों और रूढ़ियों से मुक्त कर आधुनिक अभिव्यंजना के लिये नयी भाषा का अन्वेषण किया। छायावादोत्तर काव्य भाषा को उनका योगदान प्रशंसनीय है। इसके अलावा गोपाल सिंह नेपाली, आरसी प्रसाद सिंह, जानकी बल्लभ शास्त्री एवं शम्भुनाथ सिंह के नाम विशिष्ट हैं। भाषा की सहजता और सरलता इन कवियों की विशेषता है। इन सबों ने अप्रस्तुत विधान और बिम्ब विधान तथा मुक्त कृत्तों में गीतात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा छायावादोत्तर युग की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो भारतेन्दु युग से प्रवाहित होकर स्वतन्त्रता पश्चात् तक अविरल गति से प्रवाहोन्मुख रही है। इस युग के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि प्रमुख है। इन कवियों के काव्य में राष्ट्रीय और स्वच्छन्दतावादी दोनों प्रवृत्तियाँ निहित है। प्राय: सभी कवियों ने भाषा, छन्द, शैली सभी में नए प्रयोग किये। भावों के अनुकूल इनकी भाषा आवेश, उत्तेजना और सशक्त वाणी से ओत-प्रोत मिलती है। जो सहज ही हृदय को प्रभावति करती है। इन समस्त कवियों ने गेय छन्दों का इस्तेमाल कर मुक्तक शैली का निर्वाह किया है। चूंकि इन कवियों का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण के अन्तस में स्फूर्ति, साहस और शक्ति को जागृत करना था। अतएव उन्होंने उसी से काव्य भाषा का निर्माण किया है। इसके लिए उन्होंने अभिधा शक्ति का प्रयोग किया।

माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा में ओज प्रेरणा शक्ति और अभिव्यक्ति की वक्रता वर्णित है। नई उपमाएं, मुहावरे और उर्दू शब्दों का भावानुकूल प्रयोग है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उग्र विचारवादी राष्ट्रीय कवि थे। उनकी काव्य भाषा में ओज, बल स्फूर्ति का समावेश है। इसके साथ ही आक्रोश, उत्तेजना का भी समन्वय है। छन्द और भाषा पर यद्यपि नवीन का विशेष अधिकार परिलक्षित नहीं होता। स्वयं कवि ने अपनी काव्य भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि "जहां" तक छन्द शास्त्र का ताल्लुक है, मैंने उसे बिल्कुल नहीं पढ़ा। न मुझे रसों का नाम मालूम है, न मैं यगण-भगण जानता हूँ परन्तु मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छन्द ढीले नहीं होते। दूसरे जीवन एक प्रकार से उखड़ा-उखड़ा सा रहा है। मेरे पास न शब्द है, न कला-कौशल है, न अध्ययन गांभीर्य है और न खेद सामर्थ्य। एक मैं हूँ जो स्वर ध्वनिमय शब्दों का ताना-बाना पूरने का नाटक रचता हूँ, पर तन्तुवायु को ध्यान केन्द्रीयता की साधना नहीं कर सका हूँ।"५ उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू, ब्रज एवं बैसवाड़ी के शब्दों का प्रयोग है। दोहा, सोरठा, कवित आदि प्राचीन छन्दों के साथ उर्दू बहरों का भी प्रयोग है। दिनकर भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के उन्नायक है। उनकी काव्य भाषा भी ओजपूर्ण और प्रवाहपूर्ण है। अलंकार प्रयोग पुष्ट तथा प्रांजल है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से उनकी शब्दावली सशक्त बनी है। प्राचीन और नूतन छन्दों का उचित समाहार है। पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग से आधुनिक समस्याओं को उजागर करने में दिनकर निपुण है। भाषा की दृष्टि से भी अभिव्यंजना को निखारने के लिये दिनकर ने तत्सम्, तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। अलंकार का प्रयोग पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये न होकर स्वाभाविकता लिये है। काव्य रूपों की दृष्टि से कवि ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों की रचना की है। प्रगतिवादी कवियों ने अपनी काव्य भाषा में छायावादी और प्रयोगवादी कवियों की भांति प्रयोग की चेष्टा नहीं की। इसके प्रतिनिधिकर्त्ताओं ने वस्तु पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया। उसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, अलंकार विधान का नितान्त अभाव है। उनकी काव्य भाषा जन समाज की भाषा है। छायावादी कवियों से इन कवियों ने उतनी कोमलता ग्रहण की जिसका जनजीवन पर व्यापक असर पड़ सके साथ ही भाषा का सौन्दर्य भी विनष्ट न हो पाये। उनकी मान्यता यह थी कि शब्दों के चमत्कार और सप्रयास वाक्य निर्माण से कविता का सौन्दर्य अक्षुण्ण नहीं रहता। कविता का सौन्दर्य स्वाभाविक और सहज भावों में निहित होता है। अतएव इसके प्रस्तोता कवियों ने जनजीवन का चित्रण करते हुए लोक प्रचलित शब्दों

को प्रधानता दी और अभिव्यंजना में व्यंग्यपूर्ण भाषा को भी प्रमुखता दी। डॉ॰ वार्ष्णेय के मतानुसार 'इसमें सन्देह नहीं कि प्रगतिवाद ने विकृत मन के कारागार में पड़ी हुई कविता कामिनी को मुक्त किया है और कविता की टेकनीक में भी नवीनता उत्पन्न की है। भाषा शैली की दृष्टि से भी प्रगतिवाद ने नवीन आदर्श स्थापित किया है।

वाक्पटुता, वक्रोक्ति बनाव श्रृंगार आदि को वह बूर्ज्वा कहता है और स्वयं परूषावृत्ति से काम लेता है। प्रगतिवादी कविता में माधुर्य और छायावादी कलात्मकता का अभाव और गद्यात्मकता पाई जाती है। वह परम्परागत उपमायें और प्रतीक भी ग्रहण नहीं करती। उसे व्यंग्यात्मकता और मुक्त छन्द विधान में विश्वास है। प्रगतिवाद को कला कला की दृष्टि से स्वीकार नहीं। कला स्वांत सुखाय नहीं।"६ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि विशिष्ट प्रगतिवादी कवि हैं।

छायावादी काव्य भाषा समृद्धि की सोद्धेश्यता से संचालित थी। शिल्प की दृष्टि से देखें तो यह भाषा अत्यधिक परिष्कार और संवरने के प्रयास में जन विमुख हो गई। छायावादोत्तर काल के कवियों ने अपनी परम्परा से सुस्पष्टता और सहजता की प्रवृत्ति को चुना और इसका प्रयोग बोलचाल की भाषा में किया। चूंकि प्रगतिवाद ने सामाजिक यथार्थवाद को महत्ता दी थी अत: उनके भाव और विचार भी सामाजिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में सरल और सहानुभूति से पूर्ण थे। 'मिट्टी और फूल शीर्षक कविता के निवेदन में नरेन्द्र शर्मा ने इसी कथन का समर्थन करते हुए लिखा' इन नए कवियों ने अपनी सरल भाषा, स्पष्ट शैली और यथार्थ ग्राहकता के द्वारा हिन्दी कविता की परम्परा को आगे बढ़ाया है।"७ इसका अर्थ यह कदापि नहीं था काव्य भाषा के प्रति ये समस्त एकदम उदासीन रहे। जीवन की जिन छोटी-छोटी समस्याओं की ओर इनकी दृष्टि मुड़ी वह सहज भाषा में आबद्ध होकर भी प्रभावोत्पादक बन सकती थी। किसी उत्कृष्ट कला कौशल में आबद्ध होकर उसका प्रस्तुत होना निश्चय ही नीरस व अरूचिकर होता। प्रगतिवादियों ने इसलिए व्यावहारिक प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया ताकि उनकी सामाजिक यथार्थवाद की अभिव्यंजना प्रणाली कहीं भी दुर्बोधता और दुरूहता के कारण जटिल न हो सके। प्रगतिवादी कवियों ने काव्य भाषा में चित्रात्मकता को भी साकार किया है। वे अलंकारों के प्रयोग पर बल नहीं देते थे। नरेन्द्र शर्मा ने इसे स्पष्ट रूप से व्यक्त भी किया है–

"असुन्दर लगेगा मुझे रूप सुन्दर, अलंकार पहने, न पहने बराबर
नहीं काम की कान्त कविता किशोरी, अगर कवि कहे झूठे बातें सरासर....

अगर कवि हृदय है हृदय में विनय है, नयन यदि सदय है, सदय पर अभय है,
"नहीं सांच को आंच" ऊंची चढ़ेगी, असुन्दर पर्दा सहज सुन्दर लगेगी।"८

इसी तरह छन्दों का बंधन भी इन्हें प्रिय नहीं। छन्दों की साधना से ये पूर्णतया दूर रहे। छन्दों की प्रति इनकी कोई अनुरक्ति न थी। पर लोक धुनों के प्रयोग की ओर इनमें पर्याप्त आकर्षण मिलता है। समग्रता से प्रगतिवादी काव्य भाषा का आकलन करें तो इनकी भाषा अस्पष्टता, क्लिष्टता, दुरूहता के विपरीत स्पष्ट, सुबोध और सरलता से पूरित है। एक ओर इस धारा के अनुयायियों ने सरल खड़ी बोली भाषा को प्रवाह दिया दूसरी ओर आंचलिक शब्दों के प्रयोग से भाषा को समर्थवान किया। कहीं-कहीं उर्दू के आधार पर रूबाईयों, गजलों और शेरों का भी संचयन किया। निराला में इस प्रकार के प्रयोग की बहुलता है।

"सबकुछ सबकुछ सबकुछ सबकुछ भाषा
भाषा की अंगुलि से मानव हृदय टो गया
कवि मानव का, जगा गया नूतन अभिलाषा
भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है
ध्वनि में क्रियाभरी है और क्रिया में बल है।"९

इसमें दो मत नहीं है प्रगतिवादी काव्य भाषा यथार्थ के अधिक निकट है। वह छायावाद से आगे अपनी परम्परा का एक अगला विकास है। वह एक नया प्रयोग है। अज्ञेय ने भी सहमति दी है 'छायावाद ने भाषा को जो नया लचकीलापन अर्थ गौरव और गहराई दी थी, उसे प्रगतिवाद से मिली हुई परीक्षणशीलता और प्रखरता ने पुष्ट किया और इससे परवर्ती साहित्य का रूप और स्वाद बदल गए। प्रगतिवाद ने लोक जीवन के अध्ययन को और लोक साहित्य तथा प्रादेशिक संस्कृतियों को भी प्रोत्साहन दिया।'१० साहित्य की धारा सदैव पुराने और नये के सामंजस्य से परिवर्द्धन और परिवर्तन करती चलती है। साहित्य में विकास नये के प्रयोग से होता है।

छायावाद कवियों के पश्चात आविर्भूत प्रगतिवादी कवियों की काव्य भाषा में प्रवाह और नवीनता का समावेश मिलता है। उनकी शब्द संयोजना, नवीन उपमायें, नवीन गजल, सनेट प्रयोग, लोक जीवन से गृहीत शब्द योजना ने अपनी परम्परा को प्रखरता से पुष्ट किया तथा परम्परा का भी विस्तार किया। प्रगतिवाद काव्य भाषा ने काव्य में अनेक प्रयोग किये हैं। परवर्ती काल प्रयोगवाद को इसको परीक्षण का काल माना जा सकता है। प्रयोगवाद ने साहित्य की प्रचलित परम्पराओं के प्रतिरोध में नयी काव्य भाषा का स्वागत किया। नवीन भाषा, नवीन शब्द, नवीन छन्द, नवीन प्रतीक के प्रयोग से नयी काव्य-भाषा के निर्माण पर बल दिया। क्योंकि आज के बदले संदर्भ में न केवल उसका जीवन जटिल और उलझनों से परिपूर्ण बना अपितु विस्तारित जीवन के किसी भी हिस्से को व्यक्त करने निमित्त एक नई दृष्टि की आवश्यकता महसूस हुई। दूसरी ओर अंग्रेजी संस्कृति के प्रभाव नई शिल्प दृष्टि को उसने आगे बढ़कर स्वीकार किया। "कहना है कि नया कवि नई वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है क्योंकि वह उसे प्रेषण से काट कर अलग नहीं करता है। नई शिल्प उसे मिली है। यह दूसरी बात है कि वह "सब में एक सी गहरी न हो या सब देखे पथ पर एक सी सम गति से न चल सके हो।"११ केदारनाथ सिंह ने भी इसी पर अपनी सहमति प्रकट करते हुए अपने वक्तव्य में कहा है "यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि रस की सत्ता से इनकार करना, काव्य की सत्ता से इन्कार करने के समान है। पर आधुनिक कविता में रस की धारणा बदल गई है। रसवाद के लक्षणों के अनुसार अधिकांशत: बौद्धिक कविताएं अवरकोटि में आयेगी। परन्तु फिर भी वे हमें प्रभावित करती है और कभी-कभी बहुत प्रभावित करती है यह उनके श्रेष्ठ काव्य होने का प्रमाण है।"१२

इस प्रकार नई कविता का वैशिष्ट्य नये शैल्पिक प्रयोग में सन्निहित है। भाषा की ओर इन कवियों का विशेष सम्मोहन था। अत: कवियों ने नई संवेदना को नये व्यंजना में मूर्तित किया। सर्वप्रथम इसके समर्थकों ने साधारणीकरण के प्रश्न को उठाया। साधारणीकरण तब ही संभव होता है जब कवि क्षीण पड़ती विशेषता में नये अर्थ का समावेश करे। अज्ञेय के शब्दों में 'जब चमत्कारिक अर्थ भर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है, जिससे पुन: राग का संचार हो, पुन: रागात्मक संबंध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है।"१३ प्रयोगवाद में अंग्रेजी संस्कृति के प्रभाव से शब्द

प्रयोग में वैविध्यता परिलक्षित होती है। उसने काव्य भाषा में शब्द रसायनिक विज्ञान से भी अर्जित किया है। वह शब्द चयन, छन्द प्रयोग, अंग्रेजी वाक्य विन्यास, पैरन्थीसिस, आदि दृष्टि से प्रयोग रत हुआ। शब्द प्रयोग को वह अन्वेषण मानता है। साथ ही उसकी यह मान्यता है कि कोई भी शब्द किसी दूसरे शब्द का पर्याय नहीं होता। कोई शब्द जहां प्रयुक्त होता है वह उसी स्थान के लिये प्रयुक्त होता है।"शब्द अपने आप में स्वयंभू या आत्यंतिक नहीं है, किसी भी शब्द का स्वयंभूत अर्थ नहीं है। इसके साथ ही वे यह भी मानते हैं कि कोई भी शब्द किसी दूसरे शब्द का सम्पूर्ण पर्याय नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग-अलग लक्षणायें और व्यंजनायें होती है– अलग संस्कार और ध्वनियां।"१४ इससे आगे अज्ञेय ने कहा– 'प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपयोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है– यही उसका कल्प है। इसी प्रकार शब्द का 'वैयक्तिक प्रयोग भी होता है और प्रेषण का माध्यम भी बना रहता है, दुरूह भी होता है और बोधगम्य भी, पुराना परिचित रहता है और स्फूर्तिप्रद अप्रत्याशित भी।'१५ यानी प्रत्येक शब्द नये संस्कार से परिमार्जित होता है। इससे शब्द भी जीवंतता का पर्याय बना रहता है। कवि शब्द को पुन: प्रयोग से फिर मूर्त करता है और शब्द की सर्जनात्मकता को गतिशील रखता है, प्रयोगवादी कवि ने पुराने प्रतीकों के स्थान पर नये प्रतीकों को प्रस्तुत किया। इन कवियों ने चित्र योजना और बिम्ब योजना पर भी प्रकाश डाला है।

केदारनाथ सिंह कविता में बिम्ब विधान के प्रयोग को अनिवार्य मानते हैं, 'कविता में सबसे अधिक ध्यान देता हूं बिम्ब विधान पर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषयवस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त।'१६ मानव अभिव्यक्ति बिम्ब, प्रतीक से उजागर होती है। छन्द की दृष्टि से अधिकतर प्रयोगवादी कवियों ने नए लयात्मक मुक्त छन्दों का प्रयोग किया है। दरअसल प्रयोगवादी कवियों ने काव्य भाषा के विकास निमित्त ही परम्परा के सुनिश्चित मानदण्डों को अस्वीकार किया क्योंकि उनके भाव किसी बंधी बंधायी लीक में अभिव्यक्ति पाने में असमर्थ थे। धर्मवीर भारती ने सप्तक में स्वीकार किया है 'भाषा के प्रश्न को कभी भारती ने अधिक महत्व नहीं दिया। भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस न तो पत्थर का ढोंका बनकर कविता के गले में लटक जाय और न रेशम का जाल बनकर उसकी पांखों में उलझ जाय।"१७

प्रयोगवादी कवियों ने अलंकार की कहीं भी चर्चा नहीं की। यद्यपि रूपक, उपमा अलंकारों का प्रयोग किया। प्रयोगवाद और नई कविता के समर्थक काव्य भाषा में परम्परागत उपकरणों को रूढ़ मानकर अस्वीकार करते हैं। देखा जाय तो इस धारा के प्राय: सभी कवियों ने प्राचीन परम्परा के मान्य सिद्धान्तों का अवमूल्यन कर नये सिद्धान्तों के निर्माण का सद्प्रयास किया। समकालीन हिन्दी कविता का सम्बन्ध युगीन सत्य से रहा। इस काल की अनुभूतियां इतनी विद्रोहात्मक, आक्रोशपूर्ण और रूग्ण मानसकिता की उपज थी कि उसने एक नई परम्परा की प्रयोग के द्वारा प्रतिष्ठा की। समकालीन नई अनुभूति को नये अभिव्यक्ति शिल्प की आवश्यकता थी। इस वर्ग के कवियों में से अनेक ने भाषा की जड़ता पर रोशनी डाली और नई भाषा के निर्माण की मांग की। समकालीन हिन्दी कविता की भाषा सहज और मौलिक है। जगदीश चतुर्वेदीने निषेध की भूमिका में स्पष्ट किया है "भाषा के संकट की बात आज के कवि की एक ऐसी विकट समस्या है जिसका निराकरण उसे स्वयं करना है।'१८ इस पीढ़ी के कवि की चेष्टा भाषा के उस रूप के निर्माण की है जो समकालीन जीवन की जटिल समस्याओं को व्यक्त कर सके।

इस युग की काव्य भाषा अनेक स्रोतों में विभक्त है– राजनीति परिवेश, यौन सन्दर्भ, जीवन सन्दर्भ, पौराणिक सन्दर्भ। राजनीतिक परिवेश को चित्रित करने के लिये राजनीतिक शब्दावली का प्रयोग हुआ। अकविता, बीट कविता और अस्वीकृत कविता के प्रस्तोता कवियों ने नैतिक मर्यादाओं के विरुद्ध अनैतिक जुगुप्सापूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया। यह प्रयास सचमुच किसी काव्य भाषा के अनुपम सौन्दर्य को दूषित करने जैसा था। पौराणिक संज्ञाओं का प्रयोग इन्होंने परम्परा के अलगाव की दृष्टि से किया है। युयुत्सावादी कवियों की कवितायें सीधी और सपाट न होकर लाक्षणिकता से परिपूर्ण हैं। कहीं-कहीं व्यंग्य के सहारे आक्रोश की अभिव्यक्ति भी इनमें मिलती है। दरअसल सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को उधेड़ने के लिए समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। परम्परागत प्रतीक सूरज, सर्प आदि को नई गरिमा यहां मिली है। इन सभी ने नये प्रतीकों को भी जन्म दिया है। इनमें बिम्ब योजना के प्रति आकर्षण विद्यमान है। इसमें दो प्रकार के बिम्बों का प्रयोग है– राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालने वाले बिम्ब तथा प्राकृतिक बिम्ब। अकविता, अस्वीकृत कविता, बीट कविता के कवियों के प्रयुक्त बिम्ब निश्चय ही भदेसपन के द्योतक हैं।

कुछ युवा कवियों ने यौन प्रतीकों और बिम्बों के कुरूचिपूर्ण और वीभत्स प्रयोग से कविता के सौन्दर्य को क्षति पहुंचाई है। परम्परा नौतिक मान-मर्यादाओं का खुला विरोध और नयी परम्परा को यौन विकृत शब्दों के प्रयोग से विकसित करने की कोशिश वास्तव में एक गलत प्रयास है। इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता की काव्य भाषा का यह स्वरूप एक ओर अपनी परम्परा से विलगाव को रेखांकित करता है दूसरी ओर इनकी काव्य भाषागत सीमा को भी उपस्थित करता है।

———————

१. प्रधान सम्पादक - डॉ० नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास दशम् भाग, उत्कर्ष काल “काव्य” सं० १९७५-१९९५ वि०, पृ०-३१९

२. जीवन प्रकाश जोशी - बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १५५

३. डॉ० श्यामसुन्दरलाल - साहित्यालोचन

४. अंचल - अनुपूर्वा, पृ० १०४

५. डॉ० देवीशरण रस्तोगी - आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन, पृ०-५

६. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४३

७. नरेन्द्र शर्मा - मिट्टी और फूल “निवेदन”

८. नरेन्द्र शर्मा - हंसमाला, पृ० २७

९. त्रिवोचन - दिगन्त, पृ० ६३

१०. अज्ञेय - आज का भारतीय साहित्य, पृ० २९०

११. अज्ञेय - तीसरा सप्तक भूमिका, पृ० १८

१२. वही, पृ० १८२-८३

१३. अज्ञेय - दूसरा सप्तक भूमिका, पृ० ११

१४. अज्ञेय - तीसरा सप्तक भूमिका, पृ० ५

१५. वही, पृ॰ ५

१६. तीसरा सप्तक, पृ॰ ११४

१७. दूसरा सप्तक, पृ॰ ७८-८०

१८. सम्पादक - जगदीश चतुर्वेदी - निषेध, पृ॰ १४

——————————

अध्याय – ९

उपसंहार

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की अभाव उपलब्धि का अनुशीलन करते परम्परा भित्तिक काव्यधारा की प्रासंगिक मूल्यवत्ता को रेखांकित करना जितना जरूरी था, उतना ही प्रबल आग्रह था विवेक का कि कविता के विविध प्रयोगों के उज्ज्वल पक्ष का समुचित मूल्यांकन किया जाय। मेरा अनुशीलन - विवेचन इसी विवेक से अनुशासित है। छायावादोत्तर काल की हिन्दी कविता में जहां परम्परा - सुमुखता है, वहां कोरा अतीत-स्तवन और युग-धर्म से जुड़े सवालों की उपेक्षा नहीं है, वरन् सांस्कृतिक विरासत के आलोक और विशद पटभूमि से युक्त कर अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं के आनयन की कृती उदारता है। अपने प्रबन्ध में परम्परावादी कवियों के वैशिष्ट्य विवेचन के सन्दर्भ में उनकी यथार्थ समय प्रतीति और युग संसक्ति को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार यथा स्थान यह स्पष्ट संकेत दिया है कि संवेदना शिल्प के स्तर पर प्रयोग वैविध्य छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की प्रातिभ सजगता का प्रमाण है। इतना ही नहीं, कई दृष्टियों से हिन्दी की काव्य यात्रा समृद्ध हुई है। पुष्ट तथ्य और तर्क के आधार पर अपनी धारणा को स्थापित करने की मैंने चेष्टा की है।

आधुनिक हिन्दी कविता की राष्ट्रीय चेतना को छायावादी कवियों ने अपनी कविता द्वारा उदात्त भाव-भूमि से समृद्ध किया। कविता की संवेदना और सत्य देश के भूगोल में सीमित नहीं रहता। विश्व मानुष की चेतना भारतीय प्रतिभा के लिये अपरिचित नहीं थी, लेकिन आधुनिक युग में रवीन्द्रनाथ की तरह हिन्दी के छायावादी कवियों ने उस चेतना को नयी अर्थवत्ता दी और दुनिया की कविता से भारत की कविता का सीधा सम्पर्क हुआ। विज्ञान की शक्ति ने हमारे ज्ञान लोक को विशिष्ट समृद्धि दी, साथ ही राजनीतिक हिंसा से जुड़कर विज्ञान की शक्तिमत्ता आधुनिक मनुष्य के संकट संत्रास का सबसे बड़ा हेतु बन गयी। विश्वयुद्ध ने मानव मूल्यों की धुरी को ही कठोर आघात दिया। अपनी लोक यात्रा के उपसंहारकाल में भारतीय कवि रवीन्द्रनाथ ने राजनीति औद्धत्य से जन्मी हिंसा लीला को लक्ष्य कर मानव जाति के नये संकट के प्रति विश्व के कलाविदों, मनीषियों और शिल्पियों को संहार-शक्ति का प्रतिभा द्वारा मुकाबला करने और मानव मूल्यों की रक्षा का संकेत दिया था। दुनिया के साहित्य पर मानवीय संवेदना

को क्षत करने वाली बीसवीं शताब्दी की कुटिल राजनीति की हिंसा मुद्रा का गहरा प्रभाव पड़ा। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ के आयोजन की यह एक ऐतिहासिक घटना जिसका हिन्दी प्रतिभा पर प्रत्यक्ष और गहरा प्रभाव पड़ा।

परवर्ती काल में प्रगतिशील लेखक संघ की मूल्य प्रतिज्ञा विशेष राजनीतिक दर्शन के दबाव से संकुचित होने लगी। परिणामत: मूल्यों के पक्षधर रचनाकार और विचारक प्रगतिशील लेखक संघ वियुक्त होने लगे। दुनिया की आबोहवा से जुड़कर हिन्दी के रचनाकार चलने लग गये थे। उनकी रचना संसार के मनुष्य को सीधे सम्बोधित करने लग गयी थी। रचना की सम्बोधन-सामर्थ्य को पुष्ट करने के लिये नये शिल्प और नयी भाषा की तलाश एक महत्वपूर्ण साहित्यिक अपेक्षा थी – नये प्रयोग की अपेक्षा। कविता में नये प्रयोग की दिशा का पहला समर्थ संकेत था "तार-सप्तक" का प्रकाशन। आधुनिक हिन्दी कविता के नये प्रयोग के आदि चरण का विवेचन करते यथा प्रसंग मैंने प्रयोग के ज्योष्ठ, उद्योक्ता अज्ञेय के औदार्य का संकेत किया है कि तार-सप्तक और प्रतीक के सम्पादक में जो विचार सहिष्णुता और रचना विवेक था उसी ने नये साहित्य के लिये पुष्टभित्ति तैयार की। जैसे "तार सप्तक" के माध्यम से भिन्न विचारधारा और विश्वासों के कवियों की रचना को समान महत्व के साथ अज्ञेय ने प्रस्तुत किया, ठीक वैसे ही "प्रतीक" को विरोधी विचारधारा के प्रकाशन माध्यम के रूप में अज्ञेय ने उन्मुक्त रखा। परवर्ती काल में शिविरबद्धता का इतना जोर बढ़ा कि एक ही विचारधारा में अनेक खेमे बन गये और समान विश्वास के लोग भिन्न-भिन्न सरणियों से यात्रा करने लगे। साहित्यिक क्षेत्र में रोज-रोज बनने वाले खेमे और उसके अनुशासन में रचे जाने वाले साहित्य के मूल में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और साहित्येतर प्रेरणा ही प्रमुख थी। इसलिये उसकी विधायक भूमिका का प्रमाण प्रकाश में नहीं आ सका। जिस चिन्ता से प्रगतिशील लेखक संघ का जन्म हुआ था और जो विजातीय दबाव से आदर्श-च्युत हो संकीर्ण सरणि पर क्रियाशील हो गया, उसी चिन्ता ने यानी मानव-मूल्यों के उद्धार और रक्षा की चिन्ता ने 'परिमल' को जन्म दिया। 'परिमल' के उद्योक्ता नयी संचेतना और नये मूल्यों के, नये शिल्प और नयी भाषा के आग्रही थे। स्पष्ट ही उनके आदर्श अज्ञेय थे, जो विश्व-साहित्य के नये प्रयोगों की समीपी और प्रामाणिक जानकारी रखते थे और हिन्दी प्रतिभा को विश्व की संवेदना से जोड़ने के आग्रही थे। उक्त सन्दर्भ का विवेचन करते मैंने यथा स्थान यह साभिप्राय संकेत किया है

कि 'परिमल' के मुख्य सदस्य और उद्योक्ता ही नहीं उनके आदर्श पुरुष अज्ञेय भी छायावाद के प्रमुख स्तम्भ निराला, पन्त और महादेवी के प्रति श्रद्धावनत थे, उनकी शुभाशंसा भी इन्हें उपलब्ध थी। विशेष प्रसंग में इस तथ्य से मैंने अपनी मूल धारणी की पुष्टि की है कि परम्परा और प्रयोग एक दूसरे को पूर्णता और बल देते हैं।

हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा पर अपने प्रबन्ध की सीमा और उद्देश्य को ध्यान में रखकर मैंने विचार किया है। साम्राज्यशाही अभिशाप से राष्ट्रीय अस्मिता को मुक्त करने के लिये जिनकी प्रतिभा जागरूक प्रहरी की तरह क्रियाशील थी उनकी सृजनशील यात्रा आजादी के वर्षों बाद तक कायम रही। राजनीतिक स्वाधीनता, देश का विभाजन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या, चीन का आक्रमण, साम्प्रदायिक संघर्ष, भूदान आन्दोलन इत्यादि ज्वलंत समस्याएँ थीं जो उनके जातीय संस्कार को रचना के लिये उत्प्रेरित करती रही। इस सन्दर्भ में उस महत्वपूर्ण विन्दु को भी मैंने स्पर्श किया है कि कविता के नये प्रयोग और शिल्प-संवेदना के स्तर पर नवता का अत्यधिक आग्रह राष्ट्रीय काव्यधारा के पुराने निष्ठावान कवियों की प्रतिभा को म्लान या कुंठित न कर सका। यथा स्थान मैंने निवेदन किया है कि राष्ट्रीय काव्यधारा के ज्येष्ठ प्रतिनिधि पुष्ट निष्ठा के ही कवि नहीं थे, नवता के प्रति उनमें अपेक्षित औदार्य था। यह निरा संयोग नहीं है कि मैथिलीशरण गुप्त, अज्ञेय के प्रातिभ व्यक्तित्व के मुखर प्रशंसक थे, विचारों से सहमति न रखते हुए भी। और अज्ञेय के सर्वाधिक प्रिय मैथिलीशरण गुप्त थे, उतने ही प्रिय और महत्वपूर्ण जितने निराला, पन्त और महादेवी को प्रिय थे। निराला, पन्त, महादेवी छायावादी और अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रतीक पुरुष और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त घोर परम्परावादी कवि। हिन्दी कविता के इस यथार्थ सन्दर्भ से मेरी अवधारणा को समर्थन बल मिला है।

हिन्दी में गीत विधा की सुदीर्घ परम्परा है। प्रयोगवाद और नयी कविता के साथ ही गीत की मुद्रा में भी युगानुरूप परिवर्तन आया। नये प्रस्थान को नवगीत कहा गया। छायावादी संस्कार के गीतकार की रचना धर्मिता यद्यपि कुंठित नहीं हो गयी। आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री जैसे पुरानी पीढ़ी के श्रेष्ठ गीतकार आज भी सृजनशील हैं किन्तु नवगीत के पुरस्कर्ताओं में संवेदना और शिल्प के स्तर पर सर्वथा नवीन और युगधर्म के अनुरूप प्रयोग किये। छायावादोत्तर गीत रचना के प्रसंग में नवगीत पर मैंने विस्तार से

विवेचन करते यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि गीत का मौसम व्यतीत का मौसम नहीं है।

छायावादोत्तर काव्य को अज्ञेय और उसके समानधर्मा कवियों ने विशिष्ट समृद्धि दी, विश्व मंच द्वारा हिन्दी की नयी कविता समादृत हुई। इस महत्ता का विवेचन करते पांचवें, छठवें दशक की उन काव्यधाराओं का भी तटस्थ मूल्यांकन किया है जो नवता और प्रयोग के आत्यन्तिक आग्रह के चलते कविता के न्यूनतम अनुशासन और विधान की उपेक्षा करती रही है। 'तार-सप्तक' के कवि नेमिचन्द्र जैन को प्रतिकूल टिप्पणी करनी पड़ी कि 'चलते-चलते आज हम ऐसी काव्य प्रवृत्ति के द्वार पर आ खड़े हुए हैं जो नई ही नहीं अटपटी भी लगती है, यहां तक कि बहुत बार दुर्बोध और निरर्थक भी।' यह सामान्य आदमी की चिन्ता नहीं है। नयी कविता के प्रख्यात विचारक एवं अग्रणी कवि डॉ० जगदीश गुप्त ने प्रयोग की आड़ में प्रवर्द्धित काव्य क्षेत्र की अराजक प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते लिखा है, "किसी काव्य कृति का कविता होने के साथ 'नयी' होना अभीष्ट है। वह 'नयी' हो यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती।" साठोत्तरी पीढ़ी के विवेचन के सन्दर्भ में मैंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि डॉ० जगदीश गुप्त की दृष्टि कितनी महत्वपूर्ण है। साठोत्तरी पीढ़ी की ऊर्जा का जितना हल्ला हुआ उतना ही उसका रचनात्मक पक्ष कमजोर सिद्ध हुआ। डॉ० जगदीश गुप्त और श्री नेमिचन्द्र जैन जैसे अधीत विचारक और नवता के आग्रही कवि की टीका टिप्पणी के बावजूद अराजकता वहां पहुंच गयी जब 'अव्यवस्थित और असंयोजित कथन' को कविता कहा जाने लगा और कवि कर्म जैसा महत कार्य अति सरल बन गया। अनुशासनहीनता को कविता के लिये, काव्य मूल्यों के लिये अभिशाप मानते साम्प्रतिक कविता की प्रातिभ ऊर्जा को रेखांकित किया है। साम्प्रतिक काव्य आन्दोलन के सन्दर्भ में मैंने अपनी दृष्टि से अज्ञेय की धारणा का समर्थन किया है कि 'जिससे हम बने हैं, उसे पहचानते हुए उसे सच्ची अभिव्यक्ति दें तो वर्तमान और भविष्य हमारे हैं; नहीं तो हम कहीं के नहीं हैं।'१ छायावादी कवि और उनके पूर्ववर्ती - परवर्ती कवियों में आधार और विरासत की पहचान हैं, उसे सच्ची अभिव्यक्ति देने की क्षमता थी। मैंने अपने विवेचन में इस तथ्य को रेखांकित किया है कि जो क्षीण प्रातिभ पूंजी के बल पर कोरे चमत्कार और विक्षोभ की सृष्टि के लिये प्रयोग करने वाले लोग थे वे न तो उस आधार की सही समझ रखते थे और न तो अपने समय की संवेदना को सही समझते थे। उनके

द्वारा विजातीय प्रेरणा से उत्थित उनके आन्दोलन अंधड़ की रचना कर काल-कवलित होते गये।

हिन्दी काव्य में प्रयोगशीलता के शीर्ष कृती पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित अज्ञेय ने आधुनिकता के अनावश्यक बोझ से दबी और निराधार दावे - दंभे में जीने वाली पीढ़ी पर सटीक टिप्पणी की है 'आज के साहित्य में जिस साहित्य को 'आधुनिक' कह कर अभ्यर्थना की जाती है उसका अधिकांश ऐसा है जो किसी भी भूमि पर नहीं खड़ा है। जहां तहां से बहकर आई हुई खपच्चियां जोड़कर बनायी गयी एक बिना पतवार की नौका पर तैर रहा है। ऐसा साहित्य एक मिथ्या आत्म तोष का निमित्त भले ही बना रहे, वह न टिक सकता है और न सम्मान पा सकता है – समूचे साहित्य को प्रतिष्ठा दिलाने की बात तो दूर है।२ इस मूल्यांकन दृष्टि को विधायक दृष्टि के रूप में मेरा अनुशीलन सम्पुष्ट करता है। छायावादोत्तर हिन्दी काव्य प्रयोग वैविध्य और वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण अत्यन्त जटिल है। पूर्ववर्ती प्रवृत्तियां नये प्रयोगों के समानान्तर क्रियाशील रही हैं। इस जटिलता के बीच प्रवेश कर कविता की संवेदना को समझना अपने विषय के अनुरूप परम्परा और प्रकृति को समझते उसका मूल्यांकन करना निःसन्देह मेरे लिये दुरूह कार्य था। तथापि मैंने विनम्र किन्तु जागरूक प्रयत्न किया है। मेरा श्रम मेरे लिये तोषप्रद है क्योंकि पूर्ववर्ती अध्येताओं से सर्वथा भिन्न दृष्टि से मैंने छायावादोत्तर हिन्दी काव्य को देखा-परखा है और अपनी स्वतन्त्र अवधारणा को तर्क और तथ्यों के आधार पर स्थापित कर सकी हूँ।

——————

१. अज्ञेय - अद्यतन - पृ० १४

——————

परिशिष्ट - १

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

समीक्षात्मक ग्रन्थ		लेखक
अशोक के फूल	...	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	...	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
अकविता और कला सन्दर्भ	...	श्याम परमार
अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य	...	डॉ० श्याम सुन्दर मिश्र
आधुनिक हिन्दी साहित्य	...	सच्चिदानन्द वात्स्यायन
आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और प्रयोग	...	डॉ० गोपालदत्त सारस्वत
आधुनिकता और समकालीन रनचा सन्दर्भ	...	डॉ० नरेन्द्र मोहन
आधुनिक साहित्य के संदर्भ में	...	गंगाप्रसाद विमल
आस्वाद के धरातल	...	धनंजय वर्मा
आस्था के चरण	...	डॉ० नगेन्द्र
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां	...	डॉ० नामवर सिंह
आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका	...	बलभद्र तिवारी
आधुनिक कवि भाग ९	...	नरेन्द्र शर्मा
आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन	...	डॉ० देवीशरण रस्तोगी
आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां	...	डॉ० नगेन्द्र
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	...	डॉ० श्रीकृष्ण लाल
आधुनिक काव्यधारा	...	डॉ० केसरीनारायण शुक्ल
आधुनिक निबन्ध	...	रामप्रसाद किचलू
आधुनिक काव्य संदर्भ और प्रकृति	...	डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त
आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान	...	डॉ० नरेन्द्र देव वर्मा
इतिहास स्वरूप और सिद्धान्त	...	गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

इतिहास और आलोचना	...	नामवर सिंह
कविता और कविता 'आधुनिक कवि'	...	डॉ० इन्द्रनाथ मदान
काव्य की भूमिका	...	रामधारी सिंह दिनकर
चिन्तामणि भाग-१	...	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
चुने हुए कवि और लेखक	...	डॉ० वेदभानु आर्य
छायावादोत्तर काव्य	...	सिद्धेश्वर प्रसाद
छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत	...	डॉ० विनोद गोदरे
छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	...	डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय
तारसप्तक	...	अज्ञेय
तीसरा सप्तक	...	अज्ञेय
दूसरा सप्तक	...	अज्ञेय
द्विवेदी युग का काव्य	...	डॉ० रामसकल राय
दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता	...	डॉ० जयसिंह नीरद
दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना	...	सुनीति
धर्म, नैतिकता औ विज्ञान	...	दिनकर
नये प्रतिमान पुराने निकष	...	लक्ष्मीकान्त वर्मा
नयी कविता के प्रतिमान	...	लक्ष्मीकान्त वर्मा
नयी कविता सीमाएं और सम्भावनायें	...	गिरिजाकुमार माथुर
नयी कविता स्वरूप और सीमायें	...	जगदीश गुप्त
नयी कविता और अस्तित्ववाद	...	रामविलास शर्मा
नयी कविता में वैयक्तिक चेतना	...	अवधनारायण त्रिपाठी
नयी कविता नये कवि	...	विश्वम्भर मानव
नया हिन्दी काव्य	...	डॉ० शिवकुमार मिश्र
नया साहित्य नये प्रश्न	...	नन्ददुलारे वाजपेयी
नये प्रतिनिधि कवि	...	हरिचरण शर्मा
नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य	...	लक्ष्मीनारायण शर्मा
निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक	...	डॉ० वेदव्रत शर्मा
निराला का परवर्ती काव्य	...	रमेशचन्द्र मेहरा
पन्त आधुनिक कवि	...	फूलचन्द्र पाण्डेय
परम्परा बंधन नहीं	...	विद्यानिवास मिश्र

प्रगतिवाद	...	शिवकुमार मिश्र
प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य	...	रेखा अवस्थी
प्रयोगवाद और नई कविता	...	डॉ० कृष्णलाल हंस
प्रेमचन्द कुछ विचार	...	प्रेमचन्द
प्रगतिवादी काव्य साहित्य	...	डॉ० कृष्णलाल हंस
प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन	...	हंसराज रहबर
बच्चन जीवन और काव्य	...	नवल किशोर भाभड़ा
बापू का काव्य सौन्दर्य	...	राकेश एम० ए०
बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	...	जीवन प्रकाश जोशी
भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान	...	डॉ० बलदेव मिश्र
भाषा और समाज	...	रामविलास शर्मा
मध्यकीलीन बोध का स्वरूप	...	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
मार्क्सवादी साहित्य चिनतन इतिहास तथा सिद्धान्त	...	शिवकुमार मिश्र
महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण	...	रामविलास शर्मा
मुक्तिबोध साहित्य एक अनुशीलन	...	डॉ० शशि शर्मा
माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	...	कृष्णदेव शर्मा
मिट्टी की ओर	...	दिनकर
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य	...	महादेवी
मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता	...	डॉ० उमाकान्त
राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला	...	शेखरचन्द्र पन्नालाल जैन
लहर मीमांसा	...	स्वदेश चावला
लहरों के राजहंस	...	मोहन राकेश
विचार वितर्क	...	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
विचार बोध	...	केदारनाथ अग्रवाल
विवेचन संकलन-१	...	बालकृष्ण राव

वृहत्त्रयी ... विजय बहादुर सिंह
विजय ... जगदीश चतुर्वेदी
साहित्य और इतिहास दृष्टि ... मैनेजर पाण्डेय
साहित्य का इतिहास दर्शन ... नलिन विलोचन शर्मा
साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा ... सरनाम सिंह
साहित्य सहचर ... आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्य विवेचन ... क्षेमचन्द्र सुमन
साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य ... डॉ० रघुवंश
साहित्यालोचन ... डॉ० श्यामसुन्दर दास
समानान्तर ... रमेशचन्द्र शाह
सह चिन्तन ... अमृतराय
साहित्यानुशीलन ... शिवदान सिंह चौहान
समाज और साहित्य ... रामेश्वर शुक्ल अंचल
समकालीन कविता विचार कविता ... बलदेव वंशी
समीक्षाएं एवं मूल्यांकन ... डॉ० रामचन्द्र मालवीय
सुमित्रानन्दन पन्त ... डॉ० बच्चन
सुमित्रानन्दन पन्त ... डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का इतिहास ... आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य की भूमिका ... आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां ... डॉ० जयकिशन प्रसाद
हिन्दी साहित्य का इतिहास ... डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का इतिहास ... डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णेय
हिन्दी कविता में युगान्तर ... डॉ० सुधीन्द्र
हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य ... डॉ० प्रेमशंकर
हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा ... डॉ० देवराज शर्मा
'पथिक'
एक समग्र अनुशीलन
हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन ... डॉ० प्रतापसिंह चौहान
हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों ... डॉ० गोविन्द

में इतिहास प्रयोग		
हस्तक्षेम	...	धनंजय वर्मा
त्रिशंकु	...	अज्ञेय

परिशिष्ट - २

काव्य - ग्रन्थ और उनके रचयिता सूची

काव्य - ग्रन्थ		रचयिता
अरी ओ करुणा प्रबामय	...	अज्ञेय
आंगन के पार द्वार	...	अज्ञेय
कितनी नावों में कितनी बार	...	अज्ञेय
चिन्ता	...	अज्ञेय
हरी घास पर क्षण भर	...	अज्ञेय
इत्यलम्	...	अज्ञेय
सागर मुद्रा	...	अज्ञेय
इन्द्रधनु रौंदे हुए	...	अज्ञेय
मधुलिका	...	अँचल
अपराजिता	...	अँचल
अनुपूर्वा	...	अँचल
किरण - वेला	...	अँचल
करील	...	अँचल
लाल चूनर	...	अँचल
विराम चिन्ह	...	अँचल
प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी	...	अँचल
कलापी	...	आरसी प्रसाद सिंह
संचयिता	...	आरसी प्रसाद सिंह
नींद के बादल	...	केदारनाथ अग्रवाल
युग की गंगा	...	केदारनाथ अग्रवाल

आग का आईना	...	केदारनाथ अग्रवाल
फूल नहीं रंग बोलते हैं	...	केदारनाथ अग्रवाल
भैरवी	...	केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
चाँद का मुंह टेढ़ा है	...	गजानन माधव मुक्तिबोध
भारत - भिक्षा	...	भारतेन्द्र ग्रन्थावली
भारत दुर्दशा	...	भारतेन्द्र ग्रन्थावली
भारत - भारती	...	मैथिलिशरण गुप्त
नहुष	...	मैथिलिशरण गुप्त
विश्व वेदना	...	मैथिलिशरण गुप्त
काबा और कर्बला	...	मैथिलिशरण गुप्त
हिमकिरीटिनी	...	मैथिलिशरण गुप्त
हिमतरंगिनी	...	मैथिलिशरण गुप्त
युगचरण	...	मैथिलिशरण गुप्त
माता	...	मैथिलिशरण गुप्त
मरण ज्वार	...	मैथिलिशरण गुप्त
अतुकान्त	...	लक्ष्मीकान्त वर्मा
कल सुबह होने से पहले	...	शलभ श्रीराम सिंह
चुका भी हूं नहीं मैं	...	शमशेर बहादुर सिंह
रूप रश्मि	...	डॉ० शम्भुनाथ सिंह
छायालोक	...	डॉ० शम्भुनाथ सिंह
विषाद	...	सियाराम शरण गुप्त
पाथेय	...	सियाराम शरण गुप्त
भैरवी	...	सोहनलाल द्विवेदी
धरती	...	त्रिलोचन शास्त्री
दिगन्त	...	त्रिलोचन शास्त्री
शब्द	...	त्रिलोचन शास्त्री

परिशिष्ट - ३

सम्पादित ग्रन्थ - सूची

बच्चन रनचावली भाग १-२	...	अजित कुमार
निराला	...	इन्द्रनाथ मदान
डा० शम्भुनाथ सिंह व्यक्ति और स्रष्टा	...	करुणापति त्रिपाठी तथा अन्य
दिनकर की काव्य यात्रा का प्रारूप	...	डा० गोपाल राय
डा० कल्याणमल लोढ़ा-लोकप्रिय बच्चन	...	दीनानाथ शरण
गीत - २	...	दिनेश सक्सेना तथा भूपेन्द्र कुमा३र 'सनेही'
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	...	मैथिलीशरण गुप्त
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास 'उत्कर्ष काल' 'काव्य'	...	डा० नगेन्द्र
निराला रचनावली भाग - १	...	नवलकिशोर
माखनलाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व	...	प्रेमनारायण टण्डन
आरसी प्रसाद सिंह	...	युगलकिशोर झा
डा० रवीन्द्र भ्रमर आधुनिक कवितायें	...	रणधीर शर्मा
अकविता स्थितियां और अन्तर्धाराएं	...	रामव्यास पाण्डेय, कपिल आर्य
समीक्षा एवं मूल्यांकन	...	श्रीनिवास शर्मा, अलखनारायण
नागार्जन	...	रामचन्द्र मालवीय
साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया	...	सुरेशचन्द्र त्यागी
दिनकर	...	सच्चिदानन्द कत्स्यायन
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास 'अधतन काल'	...	डा० हरवंश लाल
माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरुष	...	श्रीमान्त जोशी
केदार व्यक्तित्व एवं कृतित्व	...	श्री प्रकाश

परिशिष्ट - ४

कोष ग्रन्थ - सूची

हिन्दी साहित्य कोष

हिन्दी विश्वकोष "त्रयाविंश भाग"

पत्रिका - सूची

अर्थ

अवन्तिका

अभिव्यक्ति

आलोचना

उत्कर्ष

कल्पना

धर्मयुग

निषेध

नई कविता

नया साहित्य

वातायन

वीणा

प्रतिमान

युयुत्सा

रूपाम्बरा

लहर

सरिका

साहित्य सन्देश

रूपाभ

सम्मेलन पत्रिका

हंस

परिशिष्ट - ५

सम्पादित

ENGLISH BOOKS

Culture	...	A. L. Kroeber and Dyde Cluckohn
The Philosophy of Humanism	...	Corlis
Lyrical Forms in English	...	Hepple N.
Literature & Art	...	Harl Marx and F. Engels
Advancement of Learning	...	Mathew Arnold
Judgement in Literature	...	Worsfold

Encyclopedia Books

Encyclopedia of Religion and Ethics
Encyclopedia of Social Sciences
Encyclopedia of Britanica

Dictionary

Dictionary of World Literature